HUMOUR
IN
MEDIEVAL HINDI AND MALAYALAM POETRY
(मध्यकालीन हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य में हास्य)

THESIS SUBMITTED TO THE UNIVERSITY OF COCHIN
FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
V RAMALINGOM IYER

SUPERVISOR
DR. N. E. VISWANATHA IYER
PROF AND HEAD OF DEPT.

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN-22

1977

मध्यकालीन हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य में राम

कोचिन विश्वविद्यालय की पिएच.डी.उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

*

अनुसन्धाता

मि. [illegible]

निर्देशक

डा. एन. ई. विश्वनाथय्यर

आचार्य तथा अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

कोचिन विश्वविद्यालय

कोचिन - 22

1977

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by Sri. V.Ramalingam Iyer, under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi
Cochin University
Cochin - 22

Dr. N.E. Visvanatha Iyer
M.A.(Sanskrit, Hindi), Ph.D.
Supervising Teacher.

PROFESSOR AND
HEAD OF THE DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN

विषय - सूची

प्रथम अध्याय : प्रवेश (P 1 - 21)

आदिकालीन भारतीय साहित्य - मध्यकालीन भारतीय साहित्य - भक्ति - शृंगार - हास्य - भक्तकवि और हास्य - शृंगार कवि और हास्य - भारतीय संस्कृति और हास्य -

द्वितीय अध्याय : हास्य का वैज्ञानिक अध्ययन (P. 22 - 88)

रस - रस कल्पना का विकास - हास्य रस कल्पना का स्वरूप - रसों के बीच हास्य का स्थान - स्थायीभाव - विभाव - अनुभाव - संचारी भाव - वर्ण - देवता - शत्रु तथा मित्र - हास्य के भेद - हास्य की परिभाषा - हास्य की उत्पत्ति - जीवन में हास्य का महत्व - हास्य के भेद : पाश्चात्य मत - हास्य - वाग्वैदग्ध्य - व्यंग्य - वक्रोक्ति ।

तृतीय अध्याय : मध्यकालीन हिन्दी में हास्य (भाग - 1) (P. 89 - 231)

(1) मध्यकालीन हिन्दी - काल-विभाजन - मध्यकाल का परिधि - विस्तार

(2) मध्यकालीन हिन्दी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(3) हिन्दी में हास्य की परंपरा ।

(4) कबीर का व्यंग्यात्मक हास्य - हास्य - व्यंग्य की विशेषतायें - हठयोगियों का प्रभाव - बाह्याचारों पर व्यंग्य - मूर्तिपूजा - मालाजप - शिरोमुण्डन - जातिपाति का भेदभाव छूआछूत - जप-तप-तीर्थ - व्रतोपवास वेली - धर्मग्रंथ - कथावाचक - पुजारियों पर - धार्मिक पाखंड - उलटबासियों द्वारा हास्य - वाग्वैदग्ध्य ।

(5) सूर का हास्य - प्रभु से छेड़छाड़ - बंधन मोचन प्रसंग - बाललीला प्रसंग राधाकृष्ण का प्रथम मिलन - राधा यशोदा संवाद - राधा माता संवाद - पनघट की छेड़छाड़ - दानलीला - गोपिकाओं की वाग्मिता - मुरली प्रसंग कुब्जा प्रसंग - भ्रमरगीत प्रसंग - वाग्वैदग्ध्य और वक्रोक्ति ।

(6) तुलसी का हास्य - खल - निन्दा - शंकर विवाह प्रसंग - उमा - शम्भु संवाद - नारदमोह प्रसंग - बाललीला प्रसंग - पुष्पवाटिका में सीता की यामिकता - जनकपुर की सखियों से सम्बन्धित - परशुराम का प्रसंग - ग्राम वधू प्रसंग/केवट प्रसंग - विन्ध्याचल के तपस्वियों के प्रति तुलसी की चुटकी - शूर्पणखा प्रसंग - लंका दहन प्रसंग - रावण - अंगद संवाद - भालु और कपि द्वारा हास्य - कलियुगवर्णन - भोले बाबा की मजाक - गोपियों के विरहोद्गार में व्यंग्य ।

चतुर्थ अध्याय : मध्यकालीन हिन्दी कविता में हास्य - भाग - 2 (P 232 - 328)

(1) केशव का हास्य - बाण-रावण संवाद - राम परशुराम भेंट प्रसंग - अंगद - हनुमान संवाद - अंगद-रावण संवाद - रावण हनुमान संवाद - रानियों तथा वानरों का लुकाछिपी खेल - लव शत्रुघ्न संवाद - लव विभीषण संवाद - लवकुश - लक्ष्मण संवाद-सन्यासी निन्दा का प्रसंग - गागर में सागर भरने की कला - शृंगार के सहायक के रूप में हास्य - हास्य के शास्त्रीय अध्ययन में केशव का योगदान ।

(2) बिहारी का हास्य - ईश्वर के प्रति व्यंग्य - शृंगार विषयक - नीति संबन्धी हास्य व्यंग्य (क) गुदुष नीति (ख) अयोग्य व्यक्ति (ग) कपटाचरण (घ) कृपणता और लोभ (ङ) अन्य व्यंग्य - सरस व्यंग्य - वाग्वैदग्ध्य - वक्रोक्ति विधान - ध्वनि तत्व द्वारा व्यंग्य ।

(3) रीतिकाल के अन्य कवियों के हास्य- व्यंग्य — शृंगार संबन्धी - आश्रयदाता संबन्धी पारिवारिक सामाजिक जीवन संबन्धी - अन्य विषयक ।

पंचम अध्याय : मध्यकालीन मलयालम कविता में हास्य भाग - 1 (P 329 - 413

(1) मध्यकालीन मलयालम - मध्यकाल - आलोच्यकाल में देश की परिस्थिति - मध्यकालीन मलयालम का सामान्य स्वरूप - प्रमुख प्रवृत्तियाँ - भक्ति - शृंगार हास्य - हास्य की परंपरा ।

(2) मध्यकालीन मलयालम में हास्य -

(अ) मणिप्रवाल साहित्य में हास्य - मारलेखा मलर्बाणकेलि - उण्णुनीलि सन्दे चन्द्रोत्सव ।

(2) चेरुशेरी का हास्य - (क) घटनाजन्य - बाललीला - चीरहरण - अर्जुन और सुभद्रा की भेंट - रुक्मिणी स्वयंवर में तोता - (ख) वर्णन जन्य - स्वयंवर केलिए पहुँचे राजाओं की चपलता - ब्रह्मा का अहंकार शमन - शिवजी की भागदौड़ - कपट सन्यासी पर आलोचना - गोपियों की असमंजस - मुरलीगान का प्रभाव - विरहिणी गोपियाँ - मानवीय दुर्बलता (ग) अलंकारों द्वारा (घ) वाग्वैदग्ध्य - कुछ फुटकल हास्य प्रसंग ।

(3) पुनम का हास्य - सीता विवाह प्रसंग - रामाभिषेक प्रस्ताव - अशोकवन प्रसंग - शूर्पणखा की प्रणययुक्ति - राम-परशुराम संवाद - वनदहनप्रसंग लंकादहन प्रसंग - रावणवध पर लोगों का आनन्द ।

षष्ठ अध्याय : मध्यकालीन मलयालम में हास्य - भाग-। (~~Pages 473~~ (P 414 — 487)

कुंचन नंपियार का हास्य - विनोदप्रिय व्यक्तित्व - हास्य की पृष्ठभूमि - हास्य की नींव - कुंचन के हास्य की विशेषतायें : समाजसुधार का माध्यम कारुणिक सहानुभूति व्यष्टि पर नहीं समष्टि पर हास्य - हास्यास्पद अंशों को चुनने की क्षमता - आत्म परिहास - कुंचन के हास्य का विभजन : घटनाजन्य - वर्णन जन्य - संवाद जन्य - पात्र स्वभाव जन्य - अलंकार जन्य - छन्द जन्य - पात्रोचित भाषा जन्य - शब्द जन्य उपकथाओं द्वारा - व्यंग्य -

सप्तम अध्याय : तुलनात्मक आलोचना के सिद्धांत - (P 488 — 499)

अर्थ और महत्ता - आधार तत्व - क्षेत्र विस्तार, पद्धति और वर्गीकरण : प्रभाव मूलक दृष्टिकोण - साम्य वैषम्य मूलक दृष्टिकोण ।

अष्टम अध्याय : मध्यकालीन हिन्दी और मलयालम कविता में हास्य (P 500 - 549)

(1) समान कवियों के बीच -

(2) श्रृंगार के पोषक या सहचारी के रूप में हास्य - स्वयंवर सभा में सन्निहित राजाओं की चपलता-काममवासना में पड़े लोगों की चपलता - प्रेमी या प्रेमिका की यांत्रिकता - चीर हरण प्रसंग - भ्रमरगीत प्रसंग - शूर्पणखा प्रसंग ।

(3) वात्सल्य के पोषक के रूप में हास्य - माखनचोरी - शरारतें - बालक की तीव्र बुद्धि - परछाईं प्रसंग - चाँद का प्रसंग - बड़े भाई पर शिकायत - बालों को बढ़ाने के लिए दूध पीना ।

(4) <u>हास्य स्वतंत्र रूप में</u> - देवों पर व्यंग्य - ब्राह्मणों पर - सन्यासियों पर वैद्यों पर - ज्योतिषियों पर - भिक्षुओं पर - आश्रयदाताओं पर ।

(5) <u>हास्य सृष्टि के उद्देश्य की दृष्टि से तुलना</u> - मनोरंजन के लिए - समाज सुधार केलिए ।

(6) <u>हास्य की अभिव्यंजना की विधाओं की दृष्टि से तुलना</u> - घटनाजन्य - वर्णन जन्य - संवाद जन्य - पात्र स्वभाव जन्य - अलंकार जन्य - उपकथाओं द्वारा ।

उपलब्धियाँ ।

....

भूमिका

एक विद्यार्थी की हैसियत से विगत कुछ वर्षों से हिन्दी साहित्य के अध्ययन-मनन में मेरा मन रमा हुआ था । एक अध्यापक होने पर हिन्दी तथा मलयालम दोनों साहित्यों की ऐसी कुछ समान प्रवृत्तियां मैं ढूंढ रहा था जो मलयालम भाषी हिन्दी विद्यार्थियों को पढ़ाते समय सहायक हो । इस प्रसंग पर मलयालम और हिन्दी की समस्त हास्य काव्य-धारा का प्रभाव मुझपर पड़ा । खासकर दोनों भाषाओं के मध्यकालीन काव्य में जो हास्यधारा थी, वह अतीव आकर्षक रही । इसका एक विशेष व्यक्तिगत कारण भी है । मेरा गांव अम्बलपुषा है जो मलयालम का हास्य सम्राट कुंचन का कर्मक्षेत्र रहा । कुंचन की कविता मुझे विशेष प्रिय रही । इससे समानता वाले हिन्दी साहित्य ढूंढने का प्रयत्न भी मैंने किया । परिणाम स्वरूप मैं 'मध्यकालीन हिन्दी काव्य और मलयालम काव्य में हास्य' पर शोधकार्य करने लगा ।

हिन्दी कविता में हास्य पर शोधपूर्ण अध्ययन का कार्य थोड़ा बहुत हुआ है । डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी का प्रबन्ध 'हिन्दी साहित्य में हास्यरस', डा. सरोज खन्ना का 'हिन्दी कविता में हास्यरस', प्रेमनारायण टंडनजी द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य' आदि का अपना क्षेत्रीय महत्व है । श्री मेक्कोले परमेश्वरन पिल्लै से रचित हास्य दर्शनम्, संजयन की हास्यप्रबन्धम् आदि ग्रंथ इस दृष्टिकोण से मलयालम में निकले हैं मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कविता में हास्य की प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक किसी ने नहीं किया है । यही इस दिशा का सर्वप्रथम प्रयास है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में दोनों भाषाओं के कवियों (मध्यकालीन) की हास्यचेतना में परिलक्षित समानता और असमानता का निदर्शन कराया गया है । यद्यपि हास्य की प्रवृत्ति दोनों साहित्यों में कई बातों में एक सी है तो भी कुछ कुछ बातों में प्रत्येक भाषा के कवियों के अपने अपने दृष्टिकोण अलग हैं ।

जहां तक विषय वस्तु सम्बन्धी सामग्री का प्रश्न है दोनों भाषाओं का विस्तृत काव्य जगत तो था ही । हिन्दी काव्य की मध्यकालीन प्रवृत्तियों का समीक्षात्मक साहित्य भी प्राप्त हो सकता था, लेकिन मलयालम काव्य की मध्यकालीन प्रवृत्तियों की समीक्षा का क्षेत्र सुपुष्ट नहीं रहा । पण्डितों से चर्चा द्वारा ही मलयालम काव्यों के विषय में निष्कर्ष निकालने पड़े ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के पहले अध्याय में भारतीय सामाजिक विकास और उसकी मूलवर्ती संस्कृति की समरूपता का परिचय देते हुए मध्यकालीन भारतीय साहित्य की तीन मुख्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। भक्ति, शृंगार और हास्य इन तीनों में हास्य की प्रवृत्ति हिन्दी और मलयालम में ही अधिक विकसित है। अतः उसकी तुलना की संभावना और आवश्यकता सिद्ध करके विषय प्रवेश किया गया है।

दूसरे अध्याय में हास्य का सैद्धान्तिक अध्ययन हुआ है। हास्य-सम्बन्धी पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोण, पाश्चात्य और भारतीय सिद्धान्त, पाश्चात्य और भारतीय दृष्टि से हास्य के भेद - इन सब पर विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तीसरे अध्याय में मध्यकालीन हिन्दी के स्वरूप पर एक सर्वेक्षण करने के बाद उस समय तक की हास्य परंपरा पर एक झलक प्रस्तुत की गयी है। फिर पूर्वमध्यकालीन अर्थात् भक्तिकालीन हिन्दी कवियों की हास्य चेतना पर प्रकाश डाला गया है। प्रतिनिधि कवियों के रूप में कबीर, सूर और तुलसी प्रस्तुत किए गए हैं।

चौथे अध्याय में उत्तर मध्य कालीन अर्थात् रीतिकालीन कवियों के हास्य सर्वेक्षण हुआ है। केशव और बिहारी की चर्चा के बाद फुटकल कवियों की हास्य चेतना भी व्यक्त की गयी है।

पाँचवाँ अध्याय 'मध्यकालीन मलयालम कविता में हास्य(भाग-1)' शीर्षक का है। मध्यकालीन मलयालम के स्वरूप की समग्र चर्चा करने के बाद अविज्ञात कवियों का हास्य, पुनम का हास्य, चेरुश्शेरी का हास्य इन सब की विशद रूप से व्याख्या हुई है।

छठे अध्याय में मध्यकालीन मलयालम के जनकवि कुंचन नम्पियार की हास्य चेतना का विशद अध्ययन है।

सातवें अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन के सिद्धान्तों का सम्यक् परिचय दिया गया है जिनके आधार पर ही मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम में प्रकट हास्यचेतना का तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है।

आठवें अर्थात् अन्तिम अध्याय में पहले, दोनों भाषाओं के समान कवियों के बीच तुलना प्रस्तुत की गयी है। फिर दोनों साहित्यों में इस आलोच्यकाल में शृंगार तथा वात्सल्य के पोषक के रूप में तथा स्वतंत्र रूप में हास्य को प्राप्त स्थान का मूल्यांकन ही गया है। हास्यसृष्टि के उद्देश्य की दृष्टि से भी तुलना की गयी है। हास्य की अभिव्यंजना की शिल्प की दृष्टि से भी तुलना हुई है।

कहीं कहीं कुछ प्रसंगों की आवृत्ति हो गयी है, कोई तथ्य अछूता न रह जाय, इस विचार को ध्यान में रखने के कारण ही यों हो गया है ।

तत्वों की विवेचना में यथाशक्ति दूसरों से सार संग्रह किया गया है, साथ ही अपनी ओर से स्वतंत्र चिन्तन की चेष्टा भी की गयी है । उदाहरणों के विषय में युग के प्रतिनिधि कवियों को महत्व दिया गया है । उद्धरणों के विषय में मध्यम मार्ग अपनाया गया है । जगह जगह पर मूल और अनुवाद, कहीं अनुवाद और टिप्पणियों में मूल एवं कहीं केवल भावार्थ दिया गया है । प्रबन्ध के आकार एवं प्रामाणिकता की दृष्टि से ऐसी नीति पर चलना पड़ा है ।

अपने निर्देशक गुरुवर डा. विश्वनाथय्यर जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिए शिष्टाचार की वाणी में औपचारिक धन्यवाद देकर ही उऋण नहीं हो सकता । उनसे प्राप्त कृपा और संबल को मैं शब्दों की सीमा में कैसे बांधूं ?

जिन अगणित आचार्यों तथा मित्रों के आशीर्वाद से यह ग्रंथ पूरा हो सका, उन सब का स्मरण करते हुए यह कृति प्रस्तुत करता हूं ।

यहां मैं उन सभी विचारकों और लेखकों के प्रति अपना आदर और आभार प्रकट करता हूं जिनकी कृतियों को पढ़कर मेरे भीतर विचार करने की योग्यता गठित हो सकी है और प्रेरणा मिल सकी है ।

प्रबन्ध के टंकण में खासकर मलयालम छन्द के लिप्यन्तरण के प्रसंग में भूलें सहज ही हो सकती है । इसकेलिए प्रस्तोता क्षमा प्रार्थी है ।

V. Ramalingam Iyer

– वि. रामलिंगम अय्यर

कोचिन - 22
19.4.1977

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

प्रस्तावना :- सम्पूर्ण विश्वसाहित्य की मानवीय शाश्वत वृत्तियाँ समान होती हैं । संसार की सभी भाषाओं के साहित्य में एक सी रागात्मक वृत्तियाँ विद्यमान हैं और भारतीय साहित्य भी इस शक्ति का धनी है । समग्र भारतीय तथा हिन्दी साहित्य की अन्तश्चेतना एक ही है ।

इस प्रसंग पर दिनकरजी का यह कथन उल्लेखनीय है 'यद्यपि हम अनेक भाषायें बोलते हैं (जिनमें 14 भाषायें तो ऐसी हैं जिन्हें भारत सरकार ने स्वीकृति दे दी है । ये भाषायें हैं :- हिन्दी, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड, उडिया, असमी, पंजाबी, काश्मीरी और संस्कृत) किन्तु भिन्न भिन्न भाषाओं के भीतर बहनेवाली हमारी भावधारा एक है तथा हम प्रायः एक ही तरह के विचारों और कथावस्तुओं को लेकर अपनी-अपनी बोली में साहित्य-रचना करते हैं । रामायण और महाभारत को लेकर भारत की प्रायः सभी भाषाओं के बीच अद्भुत एकता मिलेगी क्योंकि ये दोनों काव्य सब के उपजीव्य रहे हैं । इसके सिवा संस्कृत और प्राकृत में जो साहित्य लिखा गया था, उसका प्रभाव भी सभी भाषाओं की जड़ में काम कर रहा है । विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है । अतएव, भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य हैं जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी अन्त में आकर एक ही साबित होते हैं'[1] ।

सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में जैसी प्रवृत्तियाँ वर्तमान हैं, वैसी ही उत्तर और दक्षिण सभी भाषाओं में प्राप्त हैं । आर्य तथा द्राविड भाषाओं के साहित्य में भावात्मक एकता प्रकट है । अतः यदि हम समग्र रूपों से सभी का तुलनात्मक अध्ययन

---

1 संस्कृति के चार अध्याय - पृ. 107 रामधारी सिंह दिनकर

करें तो राष्ट्रीय साहित्य का सम्पूर्ण स्वरूप हमारे आगे प्रकट हो जाय। दूसरे साहित्यों के प्रति एक तरह की प्रादेशिक संकीर्णता हमारे मन में भरी है, इसके कारण ही उन भाषाओं के प्रति हमारे मन में श्रद्धा और प्रेमभावना जग नहीं पाती। विराट राष्ट्रीय साहित्य की एकता के एकत्र दर्शन से हमारी संकुचितता समाप्त होगी। किस प्रान्त की भाषा के किस युग में कैसी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ विद्यमान है? क्या जो किसी भाषा-साहित्य में उत्पन्न किसी प्रवृत्ति की सीमा वहीं तक रह गयी या प्रवृत्तियों का विस्तार और विकास हुए अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी विविध रूपों में क्या विद्यमान है? जिज्ञासु साहित्य-विद्यार्थियों के ऐसे प्रश्नों का उत्तर जब प्राप्त होता है तब भारत की भावात्मक एकता की अनुभूति सभी को हो जाती है। समस्त भारतीय भाषाओं की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ सूत्रबद्ध है। इसके दो मूलकारण है:-
(क) एक समान देशकालीन परिस्थितियाँ (2) एक ही अध्यात्म एवं संस्कृति का संपूर्ण देश में फैलाव। इसी कारण से हीचकती हिन्दी साहित्य की विविध प्रवृत्तियों से अन्य भारतीय भाषाओं की साहित्यिक प्रवृत्तियों की तुलना करना चाहते हैं। उनमें पारस्परिक साम्य-वैषम्य और मौलिकता आदि का विश्लेषण उनका मुख्य लक्ष्य रह जाता है।

भारतीय भाषाओं के साहित्य में हिन्दी की साहित्यिक प्रवृत्तियों से विविध रूपेण साम्य - वैषम्य निरूपित करने के लिए अनेक तुलनीय तथ्य विद्यमान हैं। इसलिए हमें इनकी छानबीन आवश्यक हो जाती है।

(1) आदिकालीन भारतीय साहित्य — हिन्दी साहित्य के आदिकाल में सिद्ध-साहित्य, नाथ साहित्य तथा वीरगाथात्मक साहित्य की रचनायें हुईं। अन्य भारतीय भाषाओं - तमिल, मलयालम तेलुगु, कन्नड आदि में भी न्यूनाधिक रूप में इसी ढंग की रचनायें प्रस्तुत हुई हैं:-

बंगला: बंगला साहित्य की आरंभिक प्रवृत्तियों पर भी सिद्धों और नाथों के साहित्य का प्रभाव है। पं. हरप्रसाद शास्त्री के मतानुसार 'नेपाल से प्राप्त 'बोधिचर्यावतार'[1] और डाकार्णव आदि ग्रंथों में हजार वर्ष पहले के बंगला का आरंभिक रूप है।

- -

1 हिन्दी साहित्य कोश - भाग - 1 — पृ. 550

इसलिए बंगाल का आरंभिक साहित्य भी सिद्धों और नाथों की परंपरा का साहित्य है। इनमें बौद्ध मतों का निरूपण किया गया है।

उड़िया : बौद्धगान और दोहा में उड़िया का आरंभिक रूप स्वीकार किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने जिन चौरासी सिद्धों की वार्ता की चर्चा की है, उनमें कई उड़ीसा के थे। उनमें कान्हुपा, शबरी पा, लुईपा आदि प्रमुख है। शुक्लजी ने लिखा है 'बौद्ध धर्म विकृत होकर वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में देश के पूर्व भागों में बहुत दिनों से चला आ रहा था। इन बौद्ध तांत्रिकों के बीच वामाचार अपनी चरमसीमा को पहुंचा। ये बिहार से लेकर आसाम तक फैले थे[1]। असमिया के चर्यापदों में भी सिद्ध साहित्य का स्वरूप उपलब्ध है जिसमें बौद्ध तांत्रिक सिद्धांतों की मान्यता दी गयी है'[2]।

गुजराती : प्राचीन गुजराती साहित्य में भी हिन्दी की भांति ही जैनाचार्यों सिद्धों - नाथों की प्रवृत्तियां मिलती है। 'गुजरात में शैवशाक्त - साधना एवं गोरख पंथी साधना का भी व्यापक प्रचार था। गोरख पंथी साधना के अन्तर्गत ही लकुलीश और कापालिक पंथ खूब चल रहा था। बारहवीं सदी इसका काल है। नाथपंथी प्रभाव कच्छ और गिरिनार की ओर विशेष रहा है। नाथपंथी गुजराती संतों के कुछ नाम बताए गए है ...... दत्तात्रेय तथा दादाधोरमनाथ (धुरंधर नाथ) जो मत्स्येन्द्रनाथ के परम शिष्यों में थे। कच्छ के उन गोरखनाथी साधुओं को 'पीर' कहकर संबोधित किया जाता है। अन्य संतों में झलनाथ जी, गरीबदास जी तथा खाड नाथ जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है'[3]।

काश्मीरी, मराठी और पंजाबी : इस प्रकार काश्मीरी, मराठी और पंजाबी साहित्य के आरंभ काल में बौद्ध-धर्म संबन्धी परवर्ती नाथ पंथी और सिद्ध-साहित्य विराजमान है। काश्मीरी में तेरहवीं शतक में शितिकण्ठ ने तांत्रिक साधनों से सम्बन्धित 'महान्याय प्रकाश' नामक प्रथमकृति की रचना की[4]। मराठी का आरंभिक साहित्य भी नाथ संप्रदाय संबन्धी है।

- -

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.11 रामचन्द्र शुक्ल।
2 हिन्दी साहित्य कोश - भाग - 1 - पृ.89
3 गुजरात के सन्तों की हिन्दी साहित्य को देन पृ.56-57 डा.रामकुमार गुप्त।
4 Literature in Modern Indian Languages - Introduction p.15 - Dr. B.K. Gokak

1188 ई. में श्री मुकुन्दराज द्वारा लिखित 'विवेक सिंधु' इस अवसर की प्रसिद्ध रचना मानी जाती है।

पंजाबी का प्रारंभिक साहित्य, हिन्दी साहित्य से बहुत साम्य रखता है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार हिन्दी के आदिकालीन साहित्य पर गोरखनाथ का प्रभुत्व है, उस प्रकार पंजाबी पर भी है। हिन्दी की भांति पंजाबी साहित्य का उद्गम भी 8वीं, 9वीं और दसवीं सदी है। हालांकि हिन्दी साहित्य के उद्गम को सिद्ध, सरहपा (669 सं.) से मानकर विद्वानों ने उसे और भी पीछे ले जाने का परिश्रम किया है[1]। इसके बावजूद हिन्दी और पंजाबी नाथपंथी साहित्य धारा समान है। पंजाबी साहित्य के आरंभ में गोरखनाथ के अलावा रतनलाल, पूरननाथ, चरपटनाथ - इन तीनों हठयोगियों ने सांप्रदायिक साहित्य के निर्माण में योग दिया था[2]।

कन्नड : कन्नड के पंप, पोन्न और रन्न - रत्नत्रयी पुकारे जाते हैं। इन कवियों ने जैन मत को आधार बनाकर जैनधर्म संबन्धी काव्यों की रचना की। यह हिन्दी के आदिकालीन जैन-काव्यों के समान है। कन्नड के जैन कवियों में नेमिचन्द्र, जन्नवर्मा, अण्डय्या, मल्लिकार्जुन, केशिराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं[3]।

(2) मध्यकालीन भारतीय साहित्य - मध्यकाल में भारतीय साहित्य की दो धाराएं प्रमुख रूप से प्रवाहमान हैं। एक धार्मिक आध्यात्मिक काव्य की और दूसरी रीति काव्यों की। इसे सुविधा की दृष्टि से उत्तर मध्यकाल और पूर्व मध्यकाल पुकारना सरल होगा। मध्यकाल का पूर्वार्द्ध भक्तिकाल है और उत्तरार्द्ध रीतिकाल। भक्ति साहित्य को मानवतावादी काव्यधारा भी कहा जा सकता है। डा. रामविलास शर्मा के अनुसार 'सदियों से वर्णाश्रम धर्म और सामन्ती शासन की चट्टानों के नीचे जो धारा उमड रही थी, वह मध्यकाल में हठात् फूट पडी और उसने कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, बंगाल से लेकर गुजरात तक इस देश की विशाल धरती को सींच दिया। इतने बडे पैमाने पर तब तक मानव इतिहास में किसी साहित्यिक धारा का प्रसार नहीं हुआ था[4]।

- -

1 प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव पृ.283
डा. रामसिंह तोमर।

2 Literature in Modern Indian Languages Introduction. p.11
Dr. V.K. Gokak

3 हिन्दी साहित्य कोश, भाग - 1, पृ.209

4 लोकजीवन और साहित्य पृ.17 डा. रामविलास शर्मा।

भक्ति साहित्य भारतीय संस्कृति की आकस्मिक धारा नहीं है । यह विशेष सामाजिक परिस्थिति की देन है । भारतीय जीवन की जिस परिस्थिति से भक्ति साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, वह है सामन्ती शक्ति का ह्रास सामन्ती ढाँचे की कमजोरी । सैकड़ों वर्षों से चला आता हुआ भारतीय सामन्तवाद अब तक अपनी ऐतिहासिक भूमिका पूरी कर चुका था और उसको समाप्त करने वाली शक्तियाँ उसी के गर्भ से जन्म ले रही थीं । अतः भक्त कवियों में इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह जन्म लेता है जो उनके साहित्य में प्रतिबिम्बित है । कबीर, तुलसी, मीरा, वेकुलोरी, एलुत्तच्छन, तिरुवल्लुवर, चण्डीदास, गिरिधर दास, कंपन जैसे भक्त इस परम्परा के अंग हैं ।

लेकिन भक्ति साहित्य में भी आन्तरिक अन्तर्विरोध लक्षित होते हैं । इस साहित्य में हमें निरन्तर यह भावना मिलती है कि संसार असार है, माया के बंधनों में मनुष्य की आत्मा बंधी है । एक प्रकार का दुखवाद और पराजयवाद भी इसमें मिलता है । लेकिन ये सीमायें भक्त कवियों की न होकर उनके युग की, युग की धारणाओं की हैं, जिससे नितान्त कट कर कोई साहित्य जन्म नहीं ले सकता, पनप नहीं सकता।[1] भक्त साहित्य की यह ऐतिहासिक भूमिका है कि उसने जनता को जातीय और जनवादी चेतना को पुष्ट किया और क्षोभ आशा और विजय कामना को वाणी दी ।

मध्यकालीन साहित्य में भक्ति के साथ साथ एक दूसरी परम्परा भी चल रही थी जो संस्कृत की ह्रासशील परम्परा से संबद्ध थी जिसे रीतिकालीन कविता कहा जाता है, वह वास्तव में दरबारी कविता है और उसकी परम्परा संस्कृत से चली आ रही थी - लक्षण ग्रंथ, नायिकाभेद, अलंकार, चमत्कारवाद, सूक्तिप्रियता, अश्लीलता-मध्यकाल के उत्तराधिकारियों को ये सब गुण विरासत में संस्कृत से मिले ।

रीतिकालीन साहित्य विशेष सामाजिक परिस्थितियों में जन्मा था और एक विशिष्ट वर्ग से सम्बन्धित था । अतः भारत भर के विविध भाषा साहित्यों में उसका मूल स्वर एक ही था । यह साहित्य अपनी पूर्ववर्ती दोनों धाराओं से विशिष्ट और पृथक है । रीतिकाव्य मुगल साम्राज्य के अस्तकाल का साहित्य है और अतः इस काव्य में निरन्तर ह्रास के चिह्न प्रकट हैं । यह जनता से उनकी आशा-आकांक्षाओं से कटा हुआ साहित्य है, इसीलिए इसमें वह शक्ति नहीं है जिसका मूलस्रोत लोकजीवन होता है ।

- -

1 लोकजीवन और साहित्य - पृ. 36 डा. रामविलास शर्मा ।

मध्यकालीन भारतीय साहित्य की एकता के बारे में प्रभाकर माचवे का कथन इस प्रसंग पर स्मरणीय है 'मध्ययुग में हिन्दी भाषा और उत्तर भारतीय बोलियाँ तथा भाषायें इतनी सम्मिलित हो गयी थी कि उस युग के संत कवियों पर एक भाषा-भाषी लोग ही नहीं, वरन अन्य भाषा-भाषी भी उनको अपना संत कवि मानते थे। उदाहरण के लिए विद्यापति मीराबाई, गुरु नानक, नामदेव आदि को लीजिए। विद्यापति को बंगला भाषा का कवि माना जाता है, परन्तु हिन्दी-भाषी उसे अपनी भाषा का कवि मानते हैं, जबकि भाषा विज्ञान की दृष्टि से वे मैथिली उपभाषा के कवि थे। मीराबाई को गुजराती और हिन्दी दोनों भाषाओं के इतिहासकार अपनी ही संत कवयित्री मानते हैं। परन्तु वास्तव में वह राजस्थानी थी। गुरु नानक को पंजाबी और हिन्दी दोनों भाषाओं के लेखक अपना महान संत कवि मानते हैं। ऐसे ही संत नामदेव के विषय में भी कहा जाता है। वे इतिहास में मराठी और हिन्दी दोनों भाषाओं के कवि माने जाते हैं[1]।

अब हम इस अन्तराल की प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय पाने का प्रयास करें।

(क) मध्यकालीन भारतीय साहित्य की पहली प्रवृत्ति : भक्ति - मध्यकालीन भारतीय साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति भक्ति रही। मध्यकालीन भक्त कवियों की कुछ विशेषताओं पर भी ध्यान देना भारतीय साहित्य की मूल चेतना की खोज में सहायक सिद्ध होगा। वे हैं :-

(1) धार्मिक संघर्षों और अन्तर्विरोधों को दूर करने का प्रयास - सम्पूर्ण मध्यकालीन उत्तर भारतीय साहित्यिक चेतना ने नवीन धार्मिक उन्माद लेकर आनेवाले इस्लाम और प्राचीन सांस्कृतिक गर्व से पूर्ण हिन्दू धर्म के बीच व्याप्त संघर्षों और अन्तर्विरोधों को दूर भगाने का अथक परिश्रम किया। उत्तर भारत के मध्यकालीन सन्तों को दो संस्कृतियों के आपसी विरोधों के निर्मूलन का प्रयत्न करना पड़ा; लेकिन दक्षिण भारत में तो ऐसे धार्मिक संघर्ष नहीं हुए थे। सांस्कृतिक अन्तर्विरोधों को दूर करने के लिए हिन्दी के कबीर और जायसी ने जो किया, वही पंजाबी में नानक ने किया।

उत्तर भारत में हिन्दु-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का प्रभावशाली माध्यम था साहित्य का सूफीवाद। मुसलमान सूफी कवियों ने हिन्दुओं के साथ अपना तादात्म्य

---

1 आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य पृ.5 - प्रभाकर माचवे

प्रचार करने का प्रयत्न किया । उर्दू में सन् 1420 ई. के करीब गेसुदराज ने सूफीदर्शन की परम्परा को कायम रखते हुए बड़ी श्रेष्ठ कार्य्य किया । मराठी के शेख मोहम्मद कबीर के अवतार माने जाते हैं[1]। उन्होंने भी हिन्दु - मुस्लिम एकता के लिए तूलिका चलाई 'योग-संग्राम' और ज्ञानसागर' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ है जो उपदेशों से भरे हैं । इस प्रकार अकबर हुसैन नामक मराठी कवि ने भगवद्गीता की प्रशंसात्मक टिप्पणी प्रस्तुत की । काश्मीरी के शेख नुरुद्दीन (चौदहवी शताब्दी) ने भी सूफी साधना के बहाने हिन्दु मुस्लिम ऐक्य को बढ़ाने का सफल प्रयास किया ।

(2) परिस्थितियों का तटस्थ भाव से चित्रण - मध्यकालीन भक्त कवियों में लोक प्रवृत्ति और लोक रुचि का आदर करनेवाले कुछ कवि थे । उन्होंने अपनी युगीन परिस्थिति का तटस्थ भाव से चित्रण किया । मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में सामन्तवादी मान्यताओं के अन्त का पूरा समर्थन भारतीय कवियों ने किया था । चौदहवी - पन्द्रहवी सदी में विभिन्न भारतीय भाषा साहित्यों के कवियों ने सामन्तवादी तथा सामन्तों के विरुद्ध विप्लव की पुकार मचायी थी । सामन्तवादी के फलस्वरूप समाज में फैले भ्रष्टाचार के विरुद्ध हिन्दी के कबीर, मलयालम के कुंचन नंपियार, बंगला के भारतचन्द्र, गुजरात के कवि अखा, कन्नड के सर्वज्ञ और तेलुगु के वेमना आदियों ने व्यंग्य बाण कसे थे ।

(3) प्राचीन सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा - सम्पूर्ण भारत के मध्य कालीन भक्ति काव्य की चेतना ने प्राचीन आदर्शों को पुनर्जन्म देकर समाज की सूखी सूखी नसों में नया रक्त बहाया । ऐसे पुनरुत्थानवादी आन्दोलन की प्रवृत्तियां हिन्दी के विद्यापति, कबीर, दादू और रैदास, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, रसखान आदि भक्त कवियों के समान मराठी के ज्ञानेश्वर, मुकुन्दराय, चक्रधर, ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास आदि में भी पायी जाती है । गुजराती के नरसिंह मेहता, उड़िया के सरलदास, असमिया के शंकरदेव, बंगला के चण्डीदास, तमिल के सन्त, कन्नड के कनकदास, तेलुगु के त्यागराज, मलयालम के चेरुश्शेरी नम्पूतिरी तथा एषुत्तच्छन, नेपाली के भानु भक्त आदि सब कवियों ने भारतीय संस्कृति की प्राचीनता को जाग्रत करने का परिश्रम थोड़ा बहुत किया है ।

---

[1] Literature in Modern Indian Languages. p.22

Dr.V.K. Gokak

सभी भारतीय मध्यकालीन कवियों ने वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा संस्कृत के अनेक काव्यों से अमूल्य प्रेरणा ग्रहण की। अतः उनमें मानवतावाद का तत्व पूर्ण रूपेण विद्यमान है। भारतीय जन जीवन में व्याप्त उदासी और खिन्नता को हटा देने का प्रयत्न सब भक्त कवियों ने किया। जागरण का अमर सन्देश उन्होंने सब कहीं पहुँचाया। हिन्दी के कबीर और तुलसी की भांति लोक-जीवन-निर्माण के प्रयत्न तमिल के शैव एवं वैष्णव सन्तों, कन्नड के वैष्णव सन्तों तथा मराठी के नामदेव ने किया। मध्यकालीन साहित्य का यह मानव कल्याणकारी पक्ष विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन का उचित विषय है।

(ख) मध्यकालीन भारतीय साहित्य की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति : शृंगार — भक्ति के बाद मध्यकालीन भारतीय साहित्य की और एक प्रमुख प्रवृत्ति है शृंगार। 'भक्ति एक भावावेश की चरमावस्था है। वह हृदय के भावों में उत्कट गति चाहती है। ऐसी भावाविष्ट दशा सदा नहीं बनी रह सकती, न सदा रुचिकर ही हो सकती है। रीतिकाव्य ने उसी प्रेम तत्व को दिव्य धरातल से उतार कर शरीर - हाड-मांस में अनुरक्त कर दिया। यह एक प्रतिक्रिया थी। दिव्य में से उन्होंने ईश्वरत्व निकालकर अपने जैसा सबल मानव नायक अथवा नायिका का रूप दे दिया।[1] मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में भगवान कृष्ण नायक माना गया, लेकिन उत्तरार्द्ध में नायक, कृष्ण माना गया। मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में प्रेम, अभाव्य तथा ब्रह्म समर्पित माना गया, लेकिन उत्तरार्द्ध में प्रेम भोग्य और ऐन्द्रिक विषय माना गया। मानव की स्वाभाविक और शाश्वत वृत्ति शृंगार और प्रेम की अध्यात्मपरक अभिव्यक्ति भक्ति काव्यों में हुई तथा शृंगार के लौकिक रूप की अभिव्यक्ति रीति या शृंगार काव्यों में हुई। नायक-नायिका का शृंगार, लक्षण उदाहरण-निरूपण, अत्युक्ति वर्णन, काव्य की बाह्य साजसज्जा की कलात्मक प्रवृत्ति आदि की दृष्टि से अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक सी अन्तश्चेतना दृष्टिगत होती है। हिन्दी की तरह सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साहित्य में रीति और शृंगार की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। लेकिन हिन्दी में ही यह अधिक दिखाई पड़ी 'भक्ति भावना हिन्दी काव्य का अभिन्न अंग बनी तो भक्त कवियों की बाढ़ सी हो चली। भक्त या राधिका - कृष्ण के स्मरण की बात शृंगाररस की अभिव्यंजना के लिए केवल बहाना तक बन गयी। फिर शृंगारी कवियों का

- -

1 कला, कल्पना और साहित्य पृ. 21। डा. सत्येन्द्र

ही देखा जाता । इन नए कवियों ने घोर शृंगार को अपना लक्ष्य घोषित तो नहीं किया उन्होंने तो काव्य शास्त्र के पीछे से ग्रंथ रचने और उनमें शृंगार रसाधिक के सौदाहरण लक्षण देने की घोषणा की[1] ।

मध्यकालीन हिन्दी के उत्तरार्द्ध में शृंगार रस के विलास की रचनायें प्राप्त हैं । तुलसी में भी शृंगार की कविता है, किन्तु उसमें शृंगार रस का विलास नहीं, सूर की रचनायें तो अति शृंगार-पुष्ट हैं फिर भी उनमें रस का विलास नहीं ।

मतलब यह कि मध्यकालीन कवियों ने जीवन के प्राचीन मूल्यों पर विचार करने के बजाय, राजदरबारों में रहकर राजाओं का प्रशस्तिगान और उनकी इच्छाओं का पालन कर शृंगारिक चित्रण करना ही अपना लक्ष्य बना लिया था । इन कवियों की दृष्टि बाह्य कलात्मक साज सज्जा की ओर लगी रही । कभी कभी उन्होंने सामाजिक वास्तविकता का चित्रण किया और उसकी नवीनता की व्याख्या की । अतः सम्पूर्ण मध्यकालीन साहित्य के विविध भाषा काव्यों में रीति की कई प्रवृत्तियां मिलती हैं, लेकिन उनमें परिमाण का फरक है ।

(ग) मध्यकालीन भारतीय साहित्य की तीसरी प्रवृत्ति : हास्य – उपरियत के विवेचन से हमने देखा कि मध्यकालीन भारतीय साहित्य की दो सर्व प्रमुख प्रवृत्तियां हैं – भक्ति और शृंगार । इस काल की एक तीसरी प्रवृत्ति भी ढूंढ निकाली जा सकती है । वह सिर्फ एक गौण प्रवृत्ति ही मानी जा सकती है । वह है हास्य ।

भक्ति और शृंगार के परिपोषक या सहायक के रूप में हास्य की प्रवृत्ति इस काल में अधिकांश प्रकट हुई । वह कैसे हुई इसका विवेचन हम यों करेंगे :-

(1) भक्त कवि और हास्य – क्या भक्ति और हास्य के बीच ऐक्य हो सकता है ? क्या भक्त कवि हास्य का उपयोग करेंगे ?

भारतीय भक्ति धारा प्रधानतः भेद में अभेद देखने का प्रयास करती है। द्वैत को मिटाकर अद्वैत भावना का पोषण ही उनका लक्ष्य रहा । समय समय पर उत्पन्न विभिन्न वादों का लक्ष्य अद्वैत की स्थापना है[2] । यह मनोवृत्ति सहज ही

---

1 राष्ट्रभारती के काव्य की विकास दिशायें शीर्ष लेख से - काव्यसौरभ पृ.19
डा.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर

2 ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।

अतिशय गंभीर है[1]। भेद की प्रतीति के बिना हास्य का उत्कर्ष दुरूह है[2]। फलतः स्वभाव से शृंगार भक्तों के लिए हास्य हेय है। लेकिन भक्त और भक्त कवि मे फरक है। भक्त तो सिर्फ मोक्ष ही चाहता है। भक्त कवि मोक्ष के साथ भक्ति का प्रचार तथा सहृदय मान सरंजन चाहता है। जिस प्रकार पुराण कथावाचक भक्त श्रोताओं को अपने चारों ओर इकट्ठे रहने के लिए अपने वचनों को सरस बनाता है उसी प्रकार भक्त कवि पाठकों के मनोरंजन के लिए सरस बन जाता है। कोरी भक्ति अधिकतर लोगों को आकर्षित नहीं करती। भक्ति के गूढ तत्व केवल भक्ति मात्र के सहारे थोड़े ही जनसामान्य की समझ मे आते है। दैनिक जीवन के विभिन्न अनुभवों का सहारा लेना तथा उनका सरस वर्णन साथ मिलाना इन गूढ तत्वों को समझाने मे सहायक होता है। बड़े बड़े महात्मा लोग इसी उपाय को अपना लेते है। हास्यात्मक ढंग से उनको अभिव्यक्त करने से और भी सुगम तथा संवेद्य हो जाता है।

अदृश्य अरूप विश्वव्यापी ब्रह्म को सहज संवेद्य करने के लिए कबीर ने जीवन के सतत संपर्क मे जो बाते रहती है, उन बातों का आश्रय लिया। ये बाते चिरपरिचय से पाठकों के लिए सुगम होती है। शक्कर से पुती तीखा औषधि की सी अवस्था इन बातों की होती है। विराट विश्व मे व्याप्त इस परमात्मा को मानवमन मे समाहित करने मे कबीर ने इसी उपाय से सफलता पायी। कबीर ही क्यों, हर किसी भक्तकालीन कवि की भी यही दशा है। इसलिए सूर ने अपनी अलग शैली मे हास्य को अपनाया, जहाँ तुलसी ने उससे बिलकुल भिन्न प्रकार के हास्य को स्वीकार किया। श्रीराम-कृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि ने हास्य के आवरण मे आध्यात्मिक तत्वों को अभिव्यक्त किया।

इस प्रकार हम देखते हैकि मध्यकालीन भक्त कवियों को हास्य को भी थोड़ा सा स्थान अपनी रचनाओं मे देना एक मजबूरी थी।

(2) **शृंगार कवि और हास्य** - इस बात मे कोई शक नहीं कि भारतीय काव्य मीमांसकों ने मान लिया था शृंगार और हास्य के बीच गाढ संबन्ध है। भरत ने हास्य को शृंगार रस

- -

1 हास्य की उद्बुद्धि के लिए असंगति अथवा भेद की सूक्ष्म और तीव्र चेतना अनिवार्य है और चूंकि भारतीय प्रतिभा अपने दार्शनिक संस्कारों के कारण अभेदद्रष्टा है, इसलिए वह हास्य के लिए अधिक अनुकूल नहीं पडी।

विचार और विवेचन पृ.68 डा.नगेन्द्र

की अनुकृति कहा है[1]। अभिनव गुप्त के मतानुसार श्रृंगार से श्रृंगाराभास या श्रृंगारानुकार उत्पन्न होता है। श्रृंगाराभास से हास्य सृष्टि होती है। एक उदाहरण यों है :- यदि रावण समझता कि सीता उससे घृणा करती है तो रावण उसपर आसक्त न होता। उसकी हृदयगति बिना समझे उसपर कामासक्त होनेवाला रावण रत्याभास और फलस्वरूप हास्य का पात्र बन जाता है। शारदातनय सूचित करते है कि ब्रह्मरचित समझे जाने वाले 'त्रिपुरदाह' नामक रूपक मे अन्य सब रसों के लिए उचित उदाहरण दिया गया है, लेकिन हास्य के लिए जो उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, वह श्रृंगार जन्य है[2]। जटा-मुकुट, व्याघ्र चर्म, भस्मलेपन, सर्पाभूषण, अग्निलोचन आदि के साथ विलक्षणरूपी शिव पार्वती से क्रीडा करने की कोशिश करने लगे तो उससे पार्वती तथा सखियों मे हास्य ही उत्पन्न होता था। शिंगभूपाल के रसार्णव सुधाकरम् मे भी प्रमाणित किया गया है कि हास्य श्रृंगारजन्य है। इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय विचारक श्रृंगार और हास्य के बीच के संबन्ध को दृढ मानते थे। यह बात स्मरणीय है कि आधुनिक मनोविज्ञान के आधार पर फ्रायड आदि लोग भी इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि श्रृंगार या उसके ठीक उलटे भाव ही हास्य का कारण है। फ्रायड ने Wit को Harmless wit और Tendency Wit के रूप मे दो प्रकार का बताकर उस Tendency wit को रतिजन्य तथा द्वेषजन्य के रूप मे विभक्त किया है। रसार्णवसुधाकर तथा Wit and It's relations to the unconscious दोनों रचनाओं मे हुए विभजन की तुलना मनोरंजक है।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रृंगार और हास्य के बीच घनिष्ट संबंध है। 'प्रेमियों के हास-विलास व्यवहार तथा रतिगोपन आदि कार्यों मे तो हास्य की झलक रहती है'[3]। श्रृंगार के कवि अपनी रचनाओं मे बीच बीच मे हास्य को भी स्थान देते है। ये श्रृंगारी कवि अधिकांश आश्रय दाताओं के मनोरंजन के लिए भी हास्य रस की व्यंजना करते थे।

---

1 श्रृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो।

2 जटाजिनधरो भीमि भूषणः साग्निलोचनः
भस्माङ्गरागश्च यदा देव्या। काम्यते रती
तदा सखीनां देव्याश्च हासः समुद भूत्तदा
तस्माद्धयाप्यसमुत्पत्ति श्रृंगारादिति कथ्यते।

3 रसरत्नाकर पृ. 38 हरिशंकर शर्मा

हास्य और भारतीय संस्कृति के बीच का सम्बन्ध भी इस प्रसंग पर उल्लेखनीय है ।

भारतीय संस्कृति और हास्य — समाज के जीवन का व्यापक धर्म ही संस्कृति है । समाज की वाणी उसका साहित्य होता है । साहित्य में सुनी जानेवाली हँसी ही हास-साहित्य है । समाज की गति - विधियाँ ही साहित्य की सम्पत्ति बनती है । साहित्य समाज की मानसिक चिन्तन विधि और उसके आत्मिक विकास को प्रकट करने का सूक्ष्म साधन है । इसी से साहित्य के अन्तर्गत सांस्कृतिक जीवन का स्वरूप देखा जा सकता है

संस्कृति अनुभव से प्राप्त धरोहर है और सभ्यता बुद्धि द्वारा अर्जित सत्ता (समाज) में व्यवहार का तरीका । सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है'[1] । इससे मिलता जुलता मत आर्नल्ड ट्वायनबी प्रस्तुत करते है 'हमारी संस्कृति वह है जो हम है, हमारी सभ्यता वह है, जिसका हम उपयोग करते है । एक मूल्यों पर बल देती है तो दूसरी उपयोगिता पर । एक का आत्मा से सम्बन्ध है तो दूसरे का शरीर मात्र से'[2] ।

संस्कृति और सभ्यता का अर्थ यों स्पष्ट करने के बाद भारतीय संस्कृति के स्वरूप पर हम विचार कर सकते है । पं. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में' भारतीय जनता की सांस्कृतिक संस्कृति का रूप सामासिक (काम्पोज़िट) है'[3] ।

यह बात तो सर्वविदित है कि सभ्य तथा संस्कृति संपन्न जनता में ही उच्च स्तर की हास्य चेतना रहती है । मध्यकालीन भारतीय साहित्य में उच्च स्तर की हास्य चेतना हम पाते है तो उसका अर्थ यह है कि उन दिनों भारत संस्कृति संपन्न था ।

हास्योद्रेक के ढंग, हास्यपुष्टि के आलम्बन — ये सब एक देश के तत्कालीन चिन्तन स्वरूप तथा सांस्कृतिक आधार को व्यक्त करने वाले तथ्य है । बच्चों को आकर्षित और हँसानेवाले विषय शायद ही नौजवानों को हँसा सके । बूढों को हँसाने के लिए और एक प्रकार के विषयों की आवश्यकता है । व्यक्ति के मानसिक स्तर

---

1. Encyclopaedia of Educational Research (Newyork-Macmillan 1960) p.350 N.Ernestesy
2. A study of History -p.102 Arnold.J.T. (Oxford University Press, Newyork - 1956)
3. दिनकरजी से प्रणीत संस्कृति के चार अध्याय की प्रस्तावना से ।

के अनुसार हास्य के आलम्बन बदलते रहते हैं । इस तथ्य के अनुसार संस्कृति के इतिहास के विभिन्न स्तरों की हँसी के आधार पर कालविशेष और एकदेशविशेष मे जनता की मानसीक संस्कृति क्या थी, इसका अनुमान गलत नहीं होगा । हास रूपी नाडीस्पन्दन परीक्षा द्वारा तत्कालीन समाज के स्वास्थ्य की स्थिति की जानकारी प्राप्त हो सकती है । यदि एक जनसमूह शारीरिक पीडन या कठिन मानसिक दुख को दया और सहानुभूति का पात्र बिना बनाए हास्य मानती है तो हम यह समझ सकते है कि वे युद्ध विजय तथा धनमद पर आनन्द लेनेवाली एक निर्दय जाति के है जिनका सांस्कृतिक स्तर नीचे तल का है । अरस्तु अपने समय के नौजवानों के बारे मे जो कुछ कहते है वह उस समय मे जारी रहनेवाली हास्य रीतियों मे गुणहीनता का प्रमाण है । वह यों है 'वे ज्यादा हँसना चाहनेवाले और फलतः विनोदप्रिय है । यह विनोद कुशलता तो एक प्रकार की व्यवस्थित मर्यादाहीनता है[1] ।

प्लेटो का यह कथन होमर के समय के समाज की सांस्कृतिक अवनति का अनुमान लगाने मे सहायक है 'लंगडे हिफस्टस को देव मन्दिर के चारों ओर लंगडाते लंगडाते चलते देख देवों के बीच हँसी फूट पडी - होमर का यह वर्णन मुझे चकित करता है[2] ।'

सहजीवियों की बदकिस्मती तथा अवनति से आनन्दित होनेवाले एक नीचे तले का सांस्कृतिक स्तर आदि कथाओं मे हम पा सकते है । इससे मिलता जुलता भाव ही अठारहवीं सदी के प्रमुख यूरोपिय व्यंग्यकार ड्रैडन तथा पोप की रचनाओं मे भी हम पाते है । 'शारीरिक हास्य' के रूप मे स्मिथ महोदय इस हास्य को पुकारते है[3] । बाद को यह मानसिक हास्य या सात्विक हास्य कैसे बना? उच्च सांस्कृतिक स्तर के आलम्बन से । चार्लस डिकेन्स, जार्ज मेरेडिथ आदि यूरोपीय साहित्यिकोंकी कृतियों मे प्राप्त हास्य

---

1. The young are fond of laughter and consequently facetious facetiousness being disciplined inslence.
   poetics, ii - 14 (Translation by Water)
2. Republic iii. p389 - Plato
3. 'Civilization improves the humour of the body into the humour of the mind. Elementary Sketches of Moral Philosophy.
   p.151 Sydney Smith.

उच्च हास्य रस का परिचायक है । उपर्युक्त सर्वेक्षण से हास्य तथा संस्कृति का दृढ़ संबन्ध व्यक्त होता है ।

संस्कृति-संपन्न साहित्य ही उच्च स्तर की हास्य सृष्टि कर सकता है । सभ्य जनता ही उच्च स्तर के हास्य का आस्वादन भी कर सकती है । मध्यकालीन भारतीय साहित्यों में हास्यचेतना की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि तत्कालीन समाज सभ्य था । हास्यपूर्ण बातों को अनूठे रूप से प्रस्तुत करने के लिए सभ्यता आवश्यक है ।

अपनी महान संस्कृति के कारण ही भारतीय हास्यचेतनायुक्त बन गए । भारतीय संस्कृति की पहली विशेषता है भौतिकता में आध्यात्मिकता का अनुभव । 'यह आध्यात्मिकता कोरी कल्पनिक वस्तु न होकर भौतिक प्रगति का आश्रयस्थल है, विकास की चरम बिन्दु है ।' आध्यात्मिकता ने भारतीय संस्कृति के किसी अंग को अछूता नहीं छोड़ा । कला, साहित्य, संगीत, दर्शन, धर्म, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों को इसने प्रभावित किया । उच्च स्तर के हास्य में इसी आध्यात्मिक दृष्टिकोण की जड़ है । जीवन की असंगतियों और दुःखात्मक पीड़ा से उत्पन्न है यह हास्य । क्षणभंगुर जीवन और अनिवार्य मौत एक ओर, मानव की कभी न सीमित कामनाएँ और उसकी तीव्र गतियाँ दूसरी ओर - इन दोनों का भीषण द्वन्द्व है यह जीवन । बीते गए जीवनावधान की विभिन्न सीढ़ियों पर यदि हम एक झलक डालें तो समझेंगे कि हम अमुक अवसरों पर कितने परिहास्य थे । जिस प्रकार एक प्रौढ़ मनुष्य अपने बचपन के अनावश्यक कोप-तापों के बारे में सोच कर अपने को सारहीन समझ मन ही मन हँस लेता है, उसी प्रकार एक सभ्य मनुष्य असभ्य मनुष्यों के क्रियाकलापों पर मन ही मन हँस लेता है । जैसे -

एक जहाज डूब रही है । एक कोने में दो जन झगड़ा कर रहे हैं, एक ने दूसरे का कुछ कर्ज न चुकाया था, यही बात है । उनका झगड़ा हमारे लिए हास्यास्पद है । थोड़े ही निमिषों के अन्दर वे दोनों मृत्यु की गोद में जानेवाले हैं, फिर भी उनका यह झगड़ा ।

आध्यात्मिकता की दृष्टि से देखें तो यह संसार स्वयं डूबता रहनेवाला जहाज़ है जहाँ हम छोटी छोटी अनावश्यक बातों के लिए झगड़ा कर रहे हैं - सचमुच यह कितना हास्यास्पद है ?

- -

भारतीय दर्शन (खण्ड - 1) पृ.72 डा.राधाकृष्णन

शंकराचार्य जैसे महान दार्शनिक इस सारे संसार को एक अज्ञात शक्ति की लीला समझते हैं । जिन्हें मानव श्रेष्ठ मानते हैं उन्हें वे सारहीन मानते हुए पूछते हैं :-

का तव कान्ता कस्ते पुत्रः ।
संसारोऽयमतीव विचित्रः[1]

प्रत्येक जीवित समाज और संस्कृति में देशकाल के अनुसार परिवर्तन की आवश्यकता होती है । समय की मांग को कोई रोक नहीं सकता । स्त्रियों की शिक्षा सम्पत्ति के अधिकार तथा पुनर्विवाह आदि के निषेधों तथा बाल विवाह सती प्रथा, स्त्री-पुरुष की असमानता आदि का वैदिककाल में पता ही न था । मध्ययुग में बदलते इन सब पर पुनर्विचार हुआ । परिस्थितियों के अनुसार आचार-विचार तथा रहन-सहन में परिवर्तन आवश्यक है । युगानुरूप परिवर्तनों को आत्मसात् करने के लिए जो तैयार नहीं उनपर हास्यसाहित्यकार का नज़र पड़ जाता है । तीखे व्यंग्य बाणों से वह उनको बदल देने का महान काम कर दिखाता है ।

भारतीय संस्कृति की दूसरी प्रमुख विशेषता है सहिष्णुता और समभाव समन्वय की भावना इसकी जड़ में है । भारतीय संस्कृति की इसी विशेषता के कारण ही डा. राधाकृष्णन जैसे दार्शनिक, डा. सुनीति कुमार चटर्जी जैसे भाषा वैज्ञानिक, नेहरू जैसे राजनेता, आचार्य कृपलानी जैसे विचारक एवं दिनकर जी जैसे महाकवि ने भारतीय संस्कृति को सामासिक संस्कृति के रूप में स्वीकार किया है । समन्वय की चिन्ता के लिए भावुक हृदय की आवश्यकता है । भावुक हृदय में ही हास्यचेतना भी रहती है ।

भारतीय संस्कृति की तीसरी प्रमुख विशेषता है त्याग से परिपोषित भोग की कामना । भारतीय जीवन का सच्चा सुख त्याग में निहित माना जाता है, भोग में नहीं । बाह्य वस्तुओं का संचय उनका लक्ष्य कभी नहीं रहा । वर्तमान भारत हम त्याग की उपेक्षा कर रहे हैं । पूंजीपति धन का संग्रह कर रहे हैं, राजनीतिज्ञ पदों के संग्रह में लिप्त हैं, मंत्रीगण कुर्सियों के त्याग से घबड़ा जाते हैं, विद्वान लोग

---

1 द्वादशमंजरी 4/18

उपाधियों के संग्रह में अपना सम्मान समझ रहे हैं । भारतीय संस्कृति की इस दुर्गति में हास्य-व्यंग्य का स्थान तो महत्त्वपूर्ण है । व्यंग्य बाणों से तीखे आघात करके इन संचयकारों में परिवर्तन लाना है ।

अब हम भाषागत शब्दों की गूढ रमणीयार्थ प्रतिपादकता को लेंगे । यह भी हास्य व्यंग्य के अन्तर्गत माना जाता है । वर्तमान में प्रचलित भारतीय भाषाओं की जन्मदात्री माता संस्कृत मानी गयी है । संस्कृत के तत्सम और अपभ्रंश शब्द भी अच्छी मात्रा में इन भाषाओं में प्रयुक्त हो रहे हैं । इससे यह निष्कर्ष निकला कि भाषा के विषय में संस्कृत भाषा अपने राष्ट्र की एक अमूल्य निधि है । इतना ही नहीं, अपितु वह धुरी है जिसके बिना किसी भी भारतीय भाषा का अस्तित्व ही संभव नहीं है । संस्कृत जहाँ राष्ट्रीय एकता की एक ओर समर्थित करती है, वहाँ दूसरी ओर वह उन शब्दरत्नों को भी जनमानस में बिखेरती है जो शब्दों की यौगिक शक्ति से अति रमणीय गूढ व गंभीर अर्थों को सहजता से प्रकट किया करते हैं । उदाहरण कीजिए अति प्रचलित माता और पिता शब्दों को ही लीजिए जो केवल सन्तान पैदा करनेवाले दम्पती - युगल के लिए ही प्रयुक्त नहीं होते और केवल यही अर्थ प्रकट नहीं करते, अपितु समान रीति से अन्य अर्थों को भी प्रकट करने में सक्षम है । अन्यथा यह कैसे संभव था कि हम पृथ्वी गौ, सरस्वती, वेद, ईश्वर - इत्यादि को भी माता कह कर पुकार पाते हैं और गुरु, राजा, मेघ, ईश्वर - इत्यादि को पिता कहकर पुकार पाते[1] । 'माता भूमिः पुत्रो हं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु' (अथर्ववेद), 'गावो विश्वस्य मातरः (ऋग्वेद) 'स्तुता मया वरदा वेदमाता' (अथर्ववेद), तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते' (स्मृतिः) 'योनः पिता जनिता यो विधाता' (ऋग्वेद) इत्यादि निदर्शन प्रमाणार्थ है । 'माता' शब्द का अर्थ है मान (सम्मान) और निर्माण करनेवाली । अतः इस निर्माणादि की प्रक्रिया में जहाँ जननी का प्रथम स्थान है, वहाँ वाणी (भाषा), पृथ्वी, गौ और वेद (ज्ञान) का भी कोई कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं ।

उसी ही प्रकार पालन करनेवाला पिता कहलाता है ।(पिता कस्मात् पाता पालयिता वा -) अतएव पालन पोषण की दृष्टि के कुटुम्ब में जो स्थान जनक का है,

- -

1 अथर्ववेद 20/108/2

वही राज्य या राष्ट्र मे राजा अथवा राष्ट्रपति का है । इसी तरह आधिदैविक जगत मे भूमि यदि माता है तो उसे पालित - पोषित एवं हरी-भरी बनानेवाले सूर्य मेघादि पिता है इसी प्रकार समष्टि मे शिव माता व पिता दोनो है, क्योंकि दोनो के गुणकर्मो की समता उसमे मानी गयी है । अतएव 'त्वं हि नः पिता वसोत्वं माता शतक्रतो बभूविथ अधा ते सुम्नमीमहे'[1] 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' इत्यादि शब्दो से उसकी स्तुति की जाती है । इसी प्रकार –

जनकश्चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता च पंचैते पितरः स्मृताः ।।[2] तथा
प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ।।[3]

आदि श्लोकों मे जनक (पिता) के सहित गुरु, उपनयनकर्ता आचार्य रक्षा करनेवाला, अन्नादि का दान करनेवाला और सब प्रकार से अनुशासन और सुख मे प्रजा को रखनेवाला राजा को पिता कहा गया है । यह सब संस्कृत भाषा के शब्दो के यौगिकार्थत्व (धातुजत्व) का ही चमत्कार है ।

अब हम 'पत्नी', भार्या इत्यादि शब्दो को भी ले । इनमे जो भाव छिपे है वे फारसी के बीवी-बेगम और अंग्रेजी के 'वाइफ' शब्दो मे कहा ? पत्नी शब्द की व्युत्पत्ति दर्शाते हुए महामुनि पाणिनि ने लिखा है – 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे',[4] जिसका अभिप्राय यह है कि पति शब्द से स्त्रीलिंग मे ङीप् प्रत्यय और नकारान्तादेश करके पत्नी शब्द निष्पन्न होता है । लेकिन हर कोई स्त्री क्या पत्नी कही जा सकती है ? नही । केवल वही 'पत्नी' कहे जाने योग्य है, जिसका यज्ञाग्नि के समक्ष वैदिक विधि से विवाह - संस्कार हुआ हो और जो पति की सह-धर्मचारिणी रहे । अस्थायी सम्बन्ध को प्राप्त हुई अथवा अधिकार वंचिता स्त्री पत्नी नही कही जा सकती । एवमेव भर्त्ता और भार्या शब्दो मे भी क्या ही सुन्दर अर्थगाम्भीर्य है ? भरणपोषण करने के कारण यदि

---

1 अथर्ववेद 20/108/2
2 चाणक्यनीति 5/12
3 रघुवंश 1/24
4 अष्टाध्यायी, सूत्र 4/2/33

पुरुष (पति) भर्ता कहलाता है तो पुरुष द्वारा भरणपोषण की प्राप्ति होने के कारण स्त्री (पत्नी) भार्या कहलाती है । इत्यादि रूप से बड़ा वैशिष्ट्य और अर्थ गौरव संस्कृत शब्द में हमें प्राप्त होता है और ऐसे अनेक शब्दों की व्याख्या से भारतीय संस्कृति ही प्रकारान्तर से व्याख्यात होती है ।

मध्यकालीन भारतीय कवियों में प्राप्त श्लेषजन्य हास्य की जड़ उपर्युक्त बात में ही है ।

भारत के वेदपुराणों तथा प्राचीन ग्रंथों में भी उल्लासपूर्ण जीवन बिताने का उपदेश दिया गया है । 'मनुष्य को विषादग्रस्त नहीं बनाना चाहिए, विषाद में बहुत बड़ा दोष है । जैसे क्रोध में भरा हुआ सर्प बच्चे को काट खाता है, वैसे ही विषाद मनुष्य का नाश कर डालता है ।[1] जो पुरुष निरुत्साह, दीन और शोकाकुल रहता है, उसके सब काम बिगड़ जाते हैं और वह बहुत बड़ी विपत्ति में पड़ जाता है[2] । इस प्रकार कई उपदेश लोगों को दिये गये हैं जिनमें एक उल्लासपूर्ण जीवन बिताने का आह्वान भरा पड़ा है ।

संक्षेप में सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में, हास्य के विस्तृत मापदण्ड से, अन्तश्चेतना की खोज संभव है । हमने तो आदिकाल तथा मध्यकाल पर ही प्रकाश डाला, आधुनिककाल में भी यही बात लागू है । देशकाल की अनेक भिन्नताओं के बावजूद विभिन्न मानवीय परिस्थितियाँ, जीवन की शाश्वत वृत्तियाँ, लोकमंगलवादी दृष्टि एवं मानवतावाद के प्रगतिशील तत्वों की भूमि पर भारत के विभिन्न भाषा साहित्य समान अनुभव होते हैं । हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं के साहित्य में अनेक तुलनीय तथ्य विद्यमान हैं और ये वर्तमान शोधकर्ताओं के अध्ययन के विषय बनते जा रहे हैं । मानवतावादी साहित्य की वृद्धि के लिए ऐसे अन्वेषण की परम अपेक्षा है ।

---

1 न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः ।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः ।।
किष्किन्धा 64/9

2 निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ।।
लंका. 2/6

हम ने देखा कि मध्यकालीन भारतीय साहित्य में भक्ति और शृंगार के साथ हास्य भी एक प्रवृत्ति रही । यह तुलनात्मक आलोचना के लिए उचित विषय रहा है । मध्यकालीन भारतीय भाषाओं में भक्ति की प्रवृत्ति के बारे में तो काफी तुलनात्मक अनुसन्धान कार्य हो चुके हैं । शृंगार के बारे में भी यही बात हुई है । मध्यकाल के विभिन्न भाषा साहित्यों की हास्यचेतना का तो एक सर्वेक्षण अवश्यक है । अर्थात् भारत के विभिन्न भाषा साहित्यों की हास्य प्रवृत्तियों की तुलना एक मजबूरी है, यद्यपि उनकी अन्तश्चेतना एक ही है, उनके रंग-ढंग समान ही हैं । हमारे शोधकर्ताओं की दृष्टि अब तक इस ओर नहीं पड़ी है । अतः मेरा विनम्र प्रयास इस दिशा में है । हिन्दी और मलयालम के मध्यकालीन काव्यों में हास्य की तुलनापरक आलोचना मेरे इस शोध का विषय होगा ।

हास्य का प्रयोजन निरंतर की गंभीरता से आक्रान्त मस्तिष्क को स्वस्थ सजीव बनाना है । श्रेष्ठ कवि अपने काव्य के गंभीर वातावरण को हलका करने के लिए बीच-बीच में हास्य की नियोजना करते हैं । नाटक में विदूषक की स्थिति का यही औचित्य है । आधुनिक नाटक से विदूषक का निष्क्रमण हो गया है तथापि उसके स्थान पर अधिक सूक्ष्म कौशलों से हास्य-योजना की जाती है । कविगण भी और कुछ सूक्ष्म कौशलों से हास्य-योजना करते हैं । दोनों भाषाओं के विभिन्न कवियों से हास्ययोजना के लिए उपर्युक्त सूक्ष्म कौशल सहृदय पाठकों के लिए आकर्षण की वस्तु हो सकता है ।

व्यथित आन्तरिक पीड़ा से उपराम होने के लिए प्रायः परिहासप्रिय हो जाता है । आज मानवीय युयुत्सा (संघर्षेच्छा) और अतिबौद्धिकता ने जीवन को मुमुर्षु तथा क्लान्त बना दिया है । इस संक्रमणशील परिस्थिति में विपर्यस्त मानव चेतना विद्रूपात्मक सी होती जा रही है । सामाजिक असंगतियों का क्षणिक विस्मरण करके व्यक्ति को समझौतापरस्त होना पड़ रहा है जिस के लिए विनोदी मनोवृत्ति बहुत सहायक है । यह भी नहीं, इस निर्वीह - क्षमता से बुद्धि जीवियों में एक ओर जिजीविषा और अस्तित्ववादी वृत्ति विकसित हो रही है, दूसरी ओर उनमें व्यावहारिक विरूपता के प्रति विक्षोभ-भाव भरता रहा है । अतिशय अन्तर्मुखी वृत्ति और बौद्धिक तटस्थता के कारण मानव का रागात्मक तत्त्व हीन हो रहा है, उसका सुधारात्मक आवेश शमित हो रहा है और सहज निर्विकल्पकता

का अंत होता जा रहा है । परिणामतः व्यक्ति का दमित भावावेश उसकी अन्तर्वेदी चेतना और अवरोधक तत्वों के प्रति उसका अन्तर्विद्रोह व्यंग्य विद्रूपों के रूप में प्रादुर्भूत हो रहा है । ऐसे अवसर पर उच्चतर व्यंग्य ही वह करे। नीचे तल के व्यंग्य सृष्टि की ओर वह न झुक जाय - इसके लिए भूतकालीन साहित्यों में छिपे पड़े हास्य-व्यंग्य की जानकारी उसे एक हद तक सहायक ही होगी ।

और एक बात भी । भूतकालीन साहित्य के हास्य-व्यंग्यों की थोड़ी सी जानकारी आधुनिक काल में हास्य-क्षेत्र में प्रकट कुछ बुरी परंपराओं के निर्मार्जन में सहायक भी हो सकती है । आज पद्यक्षेत्र में पैरोडी, मुक्तक, व्यंग्यगीति और कहौआ, गारी जैसे लोकगीतों, तथा काव्य-प्रहसनों के स्फुट रूप से हास्य रस के प्रस्फुरण हुए हैं, लेकिन प्रायः हास्यक्षेत्र में लिज लिजी और भोंडी कुरुचि को ही प्रश्रय दिया जाता है । सस्ते मनोविनोद के ध्येय से प्रेरित होकर सब भाषाओं के काव्य चुटकुलों, लतीफों और आक्षेप - प्रत्याक्षेपों तक ही सीमित रह गया है । हास्य के तथाकथित कवि विचित्र उपनामों से समालंकृत होकर अंग्रेजी-फारसी आदि के अनावश्यक तथा अटपटे शब्दों के भड़कीले प्रयोगों द्वारा रोमांचक झटके देने का प्रयत्न करते हैं । ऐसी ठठोलियाँ, घरेलू पत्र-पत्रिकाओं और नुमायशी कवि-सम्मेलनों में ही जनप्रिय हो जाती हैं । उत्तम हास साहित्य में इन चौकड़ियाँ फुलझड़ियों और चौपदों की गणना नहीं होती, चाहे वे कितने ही चोखे, चुभते और बेधड़क रस बरसाने वाले क्यों न हों क्योंकि हास्यरस का अस्तित्व विदूषकी मसखरेपन और भड़ैती से सर्वथा भिन्न है ।

<u>अनुसन्धान के इस विषय की महत्ता</u> के बारे में ही हम यहाँ सोच रहे हैं । सहृदय पाठकों के लिए मनोरंजन की एक वस्तु भी इससे प्राप्त होनेवाली है । उसकी भी चर्चा यहाँ उचित होगी ।

हास्य अत्यन्त कोमल रस है । सुनार के तराजू की भाँति इसका तोल ठीक रखना अत्यन्त कठिन है । कोई भी पलड़ा तनिक भी झुका नहीं, कि तुरन्त वह हास्य की कोटि से निकल कर व्यंग्य में चला जायगा । ऐसे कलाकारों की उच्च हास्य सृष्टि का प्रयत्न जिज्ञासु सहृदयों के लिए देखते रहने लायक मनोरंजक वस्तु है । कलाकार बड़ी सावधानी से एक या दो वाक्यों में इस कमाल से हास्यसृष्टि करे कि उसमें शिष्टता की सीमा का उल्लंघन न हो, हास्य भी प्रस्फुट न रहे, प्रच्छन्न ही रहे, स्थूल न हो,

सूक्ष्म ही रहे । कवियों का यह प्रयत्न और उनमें उनकी जय-पराजय की सरसता, अनुभव करने की चीजें है । मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों की इस प्रवृत्ति को जो कभी कभी असफल और कभी सफल होती है, देखते आनन्द पाना सहृदयों के लिए मनोरंजन का कार्य है ।

'मध्यकालीन हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य में हास्य की प्रवृत्तियों की तुलना करते समय एक को श्रेष्ठतर, दूसरे को उससे कम श्रेष्ठ, इस प्रकार का मूल्यांकन करना ठीक नहीं । प्रत्येक साहित्य कृति का अखण्ड रूप से आस्वादन करना ही अच्छा है । प्रत्येक कृति की विशेषता का परिचय पाना और उसकी बातों की सिल-सिलेवार जानकारी प्राप्त करना - उस समस्त कृति के मर्म को पहचानने में सहायक होगा तभी उसके रचयिता के साथ हमारा हृदय तादात्म्य का अनुभव करेगा ।

— —

द्वितीय अध्याय

हास्य का वैज्ञानिक अध्ययन

द्वितीय अध्याय

हास्य का वैज्ञानिक अध्ययन

हास्य रस का वैज्ञानिक अध्ययन करने के पहले रस कल्पना पर थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक है ।

रस –

पाँच कोषों से मानव शरीर बना है । वे हैं :- (1) अन्नमय कोष (2) प्राणमय कोष (3) मनोमय कोष (4) विज्ञानमय कोष (5) आनन्दमय कोष । इनमें आनन्दमय कोष की महत्ता सर्वोपरि है । साहित्य, संगीत सब आनन्दजनक है । विशेषतः परमानन्द-स्वाद काव्य का प्रयोजन है । शैली ने कहा 'काव्य सदैव आनन्द परिपूर्ण है'[1] । यह आनन्द तो अलौकिक है । इसे ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा गया है । बूचर ने भी कहा है 'आनन्द का प्रत्येक क्षण स्वतः सम्पूर्ण है और परम आनन्द के आदर्श लोक से उसका सम्बन्ध है'[2] । काव्यशास्त्र में रस शब्द से ही इस आनन्द की प्रसिद्धि है । आनन्द (Pleasure); रसात्मक (Emotional) और विचारात्मक (Intellectual) होता है । बूचर के मतानुसार 'प्रत्येक सुकुमार कला की भाँति काव्य का उद्देश्य भी भावोत्थित आनन्द की विशुद्ध तथा समुच्च आनन्द की सृष्टि करना है'[3] इसमें Pleasure & delight – ऐसे दो शब्दों का उपयोग उन्होंने किया है । इस आनन्द के लिए वर्ड्सवर्थ ने 'Passion' और कीट्स ने Joy[4] का प्रयोग किया है । क्रोचे ने इस काव्यानन्द को Poetic Joy पुकारा है ।

---

1. 'Poetry is ever accompanied by pleasure' Shelly
2. 'Each is a moment of joy complete in itself and belongs to the ideal sphere of supreme happiness' Butcher
3. 'The object of poetry, as of all the fine arts, is to produce emotional delight, a pure and elevated pleasure' Butcher
4. 'A thing of beauty is a joy for ever' Keats.

रस कल्पना भारतीय साहित्य की खासकर संस्कृत साहित्य की देन है। अंग्रेजी साहित्य में इसका कोई पर्यायवाची शब्द नहीं। वस्तुतः परिपुष्ट भाव का नाम ही रस है। अंग्रेजी में भाव को "Emotion" कहते हैं।

डा. नगेन्द्र के मतानुसार 'रस आस्वादजन्य आनन्द है। भाव, इमोशन, जज्बा, आवेग इत्यादि का अनुभव रस नहीं है। रस तो वस्तुतः उस अनुभव का स्मरण अथवा उसके आस्वादन का ही दूसरा नाम है'[1]। नगेन्द्रजी की यह व्याख्या ज्यादा सूक्ष्मतर

मनोवैज्ञानिक डा. वाटवे का कथन यों है 'काव्य की उत्कट भावनाओं के सुन्दर प्रकाशन के प्रति सहृदय पाठकों की सुख-संवेदक समग्र प्रत्युत्तरात्मक क्रिया ही रस है'[2]।

'क्रोचे का जो 'Poetic idealization' है वही आलंकारिकों के भाव और उनके कार्य कारण का विभाव और अनुभाव में परिणत होना है। क्रोचे का जो 'Passage from trublous emotion to the serenity of contemplation' है वही लौकिक भावों का आस्वाद्यमान रस में रूपान्तर होना है'।[3]

'प्राच्यों ने जिसे ब्रह्मानन्द सहोदर आदि शब्दों से पुकारा है उसे पाश्चात्य पण्डितों ने 'Pure and elevated pleasure', 'joy for ever'; Supreme happiness पुकारा है'[4]।

- -

1 विचार और विवेचन - पृ. 19 डा. नगेन्द्र

2. 'The pleasant and total emotional response of a sympatheic reader to the elegant expression of intense emotion in poe is Ras.

3 काव्य जिज्ञासा - पृ. 96 - अतुलचन्द्र सेन

4 काव्यदर्पण पृ. 38 - रामदहिन मिश्र

'रस्यते इति रसः' जो रसित, आस्वादित हो, वही रस है। भरतमुनि ने आस्वाद्य होने के कारण ही उसे रस संज्ञा दी[1]। ध्वन्यालोककार ने यों व्याख्या दी' भावत्कम चित्त में सच्चिदानन्द का प्रकाश ही रस है[2]। 'रस अलौकिक चमत्कारकारी उस आनन्द विशेष का बोधक है जिसकी अनुभूति सहृदय को द्रुत, मन को तन्मय, हृदय व्यापारों को एकतान, नेत्रों को जलाप्लुत, शरीर को पुलकित और वचन रचना को गदगद करने की क्षमता रखती है। यही आनन्द काव्य' का उपादेय है और इसी की जागृति वाङ्मय के अन्य प्रकारों से विलक्षण काव्य नामक पदार्थ की प्राण प्रतिष्ठा करती है[3]।

'आनन्द, सुख या प्रसन्नता सभी कलाओं की आत्मा है। चाहे चित्रकला हो चाहे वास्तुकला, चाहे संगीत हो चाहे कविता, कला की आन्तरिक शान्ति आनन्द ही है। भारतीय साहित्य में आनन्द का प्रतिशब्द "रस" है। परमात्मा को उपनिषदों में रस कहा गया है और उसी रस सभी जीव आनन्दित होते हैं[4]'। विपिनचन्द्रलाल का यह कथन इस प्रसंग पर चिन्तनीय है। आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में विभाव अनुभावों द्वारा रति आदि स्थायी भाव जब सहृदय सामाजिकों के मन में व्यक्त होता है, दूध से दही की परिणति की भांति रूपान्तरित होता है, तब वह रस है[5]।

- -

1 अभाव - रस इति कः पदार्थः
उच्यते, आस्वाद्यत्वात् नाट्यशास्त्र

2 ध्वन्यालोक

3 रसायन की भूमिका से उद्धृत

4. Anandam or bliss of joy is the soul of all arts. This Anand is the eternal quest of art whether of painting, sculpture or architecture or poetry or music. A synonym for this Anandam in Hindu thought and realisation is Ras. The absolu has been described in the upanishads. रसो वै रसः He is Ras. Through gaining this Ras all being are possessed with Anand. Bengal Vaishnavaism. p.127

5. विभावेनानुभावेन व्यक्तः स चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादि। स्थायीभावः सचेतसाम्॥
साहित्य दर्पण पृ.312 आचार्य विश्वनाथ।

पारिभाषिक शब्दावली में दी गयी व्याख्या भी इससे मिलती जुलती है[1]। बाबू गुलाबराय की व्याख्या यों है 'विभावों और अनुभावों से पुष्ट किये हुए स्थायीभाव की परिपक्वावस्था को ही रस कहते हैं'[2]। जगद्विनोद और कुलपतिमिश्र की व्याख्यायों भी उद्धृत करते हैं[3]।

यहाँ हमने रस की कई व्याख्यायें देखी। हम यही समझते हैं कि सहृदय के हृदय में स्थित स्थायीभावों के संस्कार का नाम ही रस है। यह स्थायीभाव वासना-रूप में हृदय में अपनी स्थिति बना लेते हैं तथा विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से युक्त होकर पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त कर सहृदय की सहज सात्विकता के कारण एक आनन्दमय स्वरूप को प्राप्त करता है, यही रस है। चित्त की मधुमति भूमिका में काव्यों के माध्यम से प्राप्त आनन्द का अनुभव ही रस है।

---

1 विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से मिलकर वासना रूप (संस्कार रूप) स्थायीभाव जब अपनी व्यक्त और पूर्ण परिपक्वावस्था को पहुँचता है तब वह आत्मा की सहज सात्विकता के कारण रस का आनन्दमय रूप धारण करता है।

2 नवरस - पृ. 15 - बाबू गुलाबराय (पारिभाषिक शब्दावली

3(क) मिलि विभाव अनुभाव पुनि सं चारिन के वृन्द।
परिपूरन थिर भाव यों सुर स्वरूप आनन्द ।।
जो पय पाय विकार कछु, द्वै दधि होत अनूप।
तैसेई थिर भाव को, बनित कवि रस रूप ।।

(ख) सुनत कवित्त देखत सुनत भये आवरन भंग।
आनंद रूप प्रकास है, चेतन ही रस अंग ।।
जैसो सुख है ब्रह्म को, मिले जगत सुधि जाति।
सोई गति रस में मगन, भये सुरस नौ भाति ।।

अभिनवगुप्ताचार्य के आधार पर कुलपति मिश्र

(यह 3(क) तथा (ख) नवरस पृ. 16 से उद्धृत है)

रस कल्पना का विकास

रस अनेक है, किन्तु नवरस माने गये है[1] । नवरस मन के प्रभावित होने के नौ प्रकार है; अर्थात् नौ ऐसे मुख्य भाव है जिनके उत्तेजित होने से चित्त एकाग्र होकर आनन्द मग्न हो जाता है ।

अग्नि पुराण के अनुसार मुख्य रस चार माने गये है – श्रृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स । इन चारो के आधार पर शेष रसो की उत्पत्ति होती है । श्रृंगार से हास्य, रौद्र से करुणा, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक का अविर्भाव हुआ है[2] शास्त्रीय विचारो मे आद्याचार्य भरत ने भी पहले चार रस की उत्पत्ति मानी है – श्रृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स[3] । उन्होने भी श्रृंगार से हास्य की उत्पत्ति मानी[4] । दशरूपककार ने सर्वप्रथम शान्तरस को भी स्थान देकर इन आठो भेदो मे एक को जोडकर नवरस बनाया । इस प्रकार काव्य मे श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त, यह नौ रस माने जाने लगे । लेकिन भरत ने 'अष्टौनाट्ये रसाः स्मृताः' कहकर शान्तरस को अलग ही रखा था । इन नौ रसो के अतिरिक्त भक्ति रस और वात्सल्य रस को भी विद्वानो ने जोड दिया[5] । अतः रसो की संख्या ग्यारह हो गयी ।

- -

1 नवरस सब संसार मे, नवरस मे संसार ।

2 'श्रृंगाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणोरसः ।
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद् वीभत्साद् भयानकः' ।।

3 श्रृंगारानुकृतिर्यातु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः ।
रौद्रस्यैव च यत्कर्म सः ज्ञेयः करुणोरसः ।।
वीरस्यापि च यत्कर्म सोऽद्भुत परिकीर्तितः ।
वीभत्सदर्शनयच्च ज्ञेयः स तु भयानकः ।।

4 श्रृंगाराद्धि भवेद्धास्यो । – नाट्यशास्त्र - 6/40

5 .... 'इसके उपरान्त रसो और स्थायी भावो की संख्या को बढाने के अनेक प्रयत्न हुए जिनमे सबसे महत्वपूर्ण दो है –
(1) विश्वनाथ द्वारा वत्सल रस और वात्सल्य स्थायी की प्रतिष्ठा
(2) भक्त आचार्यों विशेषकर रूपगोस्वामी द्वारा भक्तिरस और भगवत् - रति की प्रतिष्ठा । रीति काव्य की भूमिका - पृ.76 – डा.नगेन्द्र

कालान्तर में उद्भट, लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त आदि टीकाकारों ने भरत के ग्रंथ की व्याख्यायें प्रस्तुत की[1]। फिर विश्वनाथ कविराज, आचार्य मम्मट आदि पण्डितों ने भी अपनी सेवायें की है। रस साहित्य शास्त्र के विकास की दूसरी दशा नायिका निरूपण में है। भानुदत्त ने रसमंजरी के द्वारा नवीनदृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इस प्रकार रस कल्पना के विकास में योग देनेवाले सब आचार्यों का उल्लेख एक अलग इतिहास का ही विषय है। रीतिकाल में काव्य प्रकाश, साहित्य दर्पण, रस तरंगिणी आदि संस्कृत ग्रंथ के भावानुवाद, शब्दानुवाद और आशयानुवाद कई निकले। केशवदास, चिन्तामणि, मतिराम पद्माकर, नवीन कवि, कुलपतिमिश्र, देवकवि आदि लोगों का नाम रीतिकालीन लेखकों में मुख्य है। आधुनिक काल में नवीन दृष्टि के प्रवेश के विचार से बाबु गुलाबराय (नवरस), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा), हरिऔध (रस कलश), विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (वाङ्मय विमर्श), रामदहिन मिश्र (काव्यालोक, काव्यदर्पण), डा. नगेन्द्र (रीतिकाव्य की भूमिका, भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका) डा. गणपतिचन्द्र गुप्त (रससिद्धांत का पुनर्विवेचन) आदि का नाम विशेष रूप से लेना है।

हास्य रस कल्पना का स्वरूप

भरत ने हास स्थायीभाव के आधार पर व्यक्त होनेवाले हास्यरस का मूल कारण विकृति बताया। यद्यपि भरत मुनि ने विकृति सिद्धांत को महत्व दिया, किन्तु साथ ही अनौचित्य तथा असंगति को स्वीकार करने के लिए अन्य विभावों की भी गणना की[2]। नाट्य के प्रसंग में ही शारदातनय ने इस सम्बन्ध में वासुकि का मत प्रतिपादित करते हुए शृंगार संबन्धी रति और प्रीति में से प्रीति द्वारा होनेवाला चित्त-विकार ही हास्य का साधन है। उन्होंने शृंगार के ललित भाव के आभास के साथ विभाव, भाव तथा सत्वाभिनय के प्रकर्ष से रजस तथा तमस गुणों को प्रभावित होते माना है और उसी के फलस्वरूप हास्य की उत्पत्ति बताकर उसका सम्बन्ध मानो रजोगुण तथा तमोगुण से जोड़ दिया है, यद्यपि वह प्रीति की

- -

1 व्याख्यातारो भारतीये लोल्लटोद्भटशंकुकाः
भट्टाभिनवगुप्तश्च श्रीमत् कीर्तिधरो परः
संगीत रत्नाकर - शारंगदेव

2 नाट्यशास्त्र. चौ. पृ. 74

भावभूमि पर उत्थान पाता है[1]। नारद के पक्ष से उनका कथन है कि रजोगुण का विनाश होने पर सत्वगुण की अवस्थिति हास्य के लिए उचित है[2]। यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रीति सिद्धांत और श्रृंगार रस की विकृति के सिद्धांत से इसकी उत्पत्ति मानने में यह रहस्य भी प्रतीत होता है कि भारतीय मतानुकूल हास्य, प्रेम की शक्ति का ही यत्किंचित परिवर्तित रूप है। आलंकारिकों में सामान्यतः हास्य को भामह, उद्भट तथा दण्डी ने अलंकार के अन्तर्गत और वामन ने गुण के अन्तर्गत समेट लिया और जैसे रस - सामान्य पर कोई विशेष विचार प्रकट नहीं किया, उसी प्रकार इसे भी छोड़ दिया। एकमात्र रुद्रट ने भरत के विकृति - सिद्धांत के साथ साथ अधोगति सिद्धांत को भी अपना कर इसका विचार किया और शारीरिक कुरूपता, असाधारण वेश या अनौचित्य पूर्ण कार्य के आधार पर पनपने वाले इस रस का मुख्यतः स्त्री, अशिक्षित या असभ्य व्यक्ति या बालकों से सम्बन्ध माना। 'रुद्रट महाशय ने हास्य को पहली बार सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया है[3]'। लेकिन राजशेखर ने इसे वक्रोक्ति के अन्तर्गत जा बिठाया और इसके शाब्दिक व्याख्यान में ही प्रवृत्त रहे। इस प्रकार उन्होंने हास्य का सम्बन्ध वक्र, श्लेष और व्यंजना तीनों से स्थापित किया।

हास्य - विवेचन के क्षेत्र में भरत के बाद महत्वपूर्ण स्थान अभिनवगुप्त है जिन्होंने आभास - सिद्धांत की अवतारणा के प्रसंग में सभी रसों के आभास से हास्य की सिद्धि स्वीकृत की। भरत द्वारा प्रस्तुत श्रृंगारानुकृति को हास्य का कारण मानते हुए भी उन्होंने

- -

1 यदा तु ललिताद्यासा भावैः स्वोत्कर्षहेतुभिः ।
सत्वादिभिस्त्वाभिनयैः स्थायिनं वर्धयन्ति ते ।।
तदा मनः प्रेक्षकाणां रजः स्पृष्टं तमोऽन्वयि ।
चैतन्याद्यपि तभ्यो विकारो यः प्रवर्तते ॥
स हास्य रस इत्याख्यां लभते रस्यते च तैः । - भावप्रकाशम्, पृ.44

2 बाह्यार्थालम्ब नवतो मनसो रजसि स्थितात् ।
साहित्यादिद्विपकारो यः स श्रृंगार इतीरितः ।।
तस्यैव रजोहीनात्सत्वाद्धास्य संभवः । - भाव प्रकाशम् पृ.47 पंक्ति 13-15

3 रस सिद्धान्तः स्वरूप - विश्लेषण पृ.332 - डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित

आचार्य सिद्धांत हास्याभास तक का वर्णन किया है[1]। श्रृंगार से ही नहीं, वे शोक से भी हास्य की उत्पत्ति मानते हुए बताते हैं कि अबन्धु के प्रति शोक की अवस्था हास्य में परिणत हो जाती है[2]। अभिनवगुप्त ने पहली बार काव्यगत प्रसंग की अनुकूलता - अननुकूलता के साथ रसों का स्पष्ट विचार किया। अभिनवगुप्त के पश्चात् इस क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय किसी आचार्य का नाम नहीं जान पड़ता।

इस विवेचन से तो निष्कर्ष यह निकलता है कि (1) हमारे यहाँ हास्य का नाट्यप्रसंग में ही विशेष विचार होने से उसके व्यावहारिक रूप की ओर विशेष ध्यान जा सका है। (2) हमारे यहाँ हास्य घृणा और विद्वेष की भूमि पर अंकुरित होता नहीं माना गया है, बल्कि सामाजिक सम्बन्धों के विपरीत अनौचित्य प्रवर्तित कार्यों को ही हास्य का आलम्बन बनाकर सामाजिक का मन व्यापक प्रेमानुभूति और सहज उल्लास में बोरने का प्रयत्न किया गया है।

रसों के बीच हास्य का स्थान

रसों के बीच हास्य का स्थान श्रेष्ठ है। हास्य रस के महान गुणों से प्रभावित होकर ही कुछ आलोचकों ने हास्य को रसराज साबित करने का परिश्रम किया।

संस्कृत साहित्य के आचार्यों तथा हिन्दी साहित्य के लक्षण ग्रंथों के लेखकों ने श्रृंगार रस को ही रस राज माना है। सब के सब लक्षणग्रंथों में श्रृंगाररस पर ही अधिकाधिक विवेचन हुआ; यह स्वयं यह साबित करता है कि उन्होंने श्रृंगार को ही प्रधानता दी। महाकवि देव ने स्पष्ट रूप से प्रकट किया कि श्रृंगार ही रसराज है[3]। श्रृंगार के रस-राजत्व से

---

1 अभिनव भारती - 1, पृ.296

2 हर्ष यो यस्य न बन्धुस्तच्छोके कुर्वीत हास्य स्वैति सर्वत्र योज्यम। भावप्रकाशन पृ.296

3 द्वै विभाव अनुभावहि, सात्विक संचारीनु।
सो सिंगार सुरूप सुमे, प्रेमांकुर रति बीजु।
निर्मल शुद्ध सिंगार रस, देव अकास अनन्त।
उड़ि उड़ि खग ज्यों और रस, बिवस न पावत अन्त।।

देव

रस-राजत्व[1] से आकर्षित होकर विभिन्न विद्वानों ने भी अपने अपने प्रिय रसों को इस पद का अधिकारी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । उत्तररामचरित के रचयिता महाकवि भवभूति ने करुण रस को ही प्रधान रस माना[2] । आचार्य विश्वनाथ ने अद्‌भुत रस को शीर्षस्थान देने का परिश्रम किया[3] । हास्यरस के समर्थकों ने भी ऐसा किया है जिनमें दो नाम उल्लेखनीय है

(1) श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर

(2) श्री बरसानेलाल चतुर्वेदी ।

श्री केलकर ने अपनी रचना 'सुभाषित आणि विनोद' में हास्य को रसराज सिद्ध करने का प्रयत्न किया । नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 1916 में 'हास्यरस' शीर्षक एक लेखमाला निकली इसी विवेचन के आधार पर अपने शोधप्रबन्ध 'हिन्दी साहित्य में हास्यरस' में श्री बरसानेलाल चतुर्वेदी ने भी हास्यरस को रसराज सिद्ध करने का परिश्रम किया ।

शृंगार रस के समर्थकों के दो प्रमुख तर्कों का खण्डन करने का प्रयत्न हास्य के समर्थकों ने कर डाला है । शृंगार रस के समर्थकों का पहला मत मनोवैज्ञानिक है । मानवसृष्टि की परंपरा चलाने केलिए रतिभाव आवश्यक है, शृंगार आवश्यक है, अतः शृंगार को ही पहला स्थान देना है । प्रजोत्पत्ति देने केलिए रतिभाव आवश्यक है अतः शृंगाररस और वात्सल्य रस ही श्रेष्ठ है । शृंगार के समर्थकों का दूसरा मत यह है कि हास्यरस केवल

- -

1 नवरस सब संसार में, नवरस में संसार ।
नवरस सार सिंगार रस, युगल सार सिंगार ।। (नवरस (बाबू गुलाबराय)
पृ.235 से उद्‌धृत)

2 एको रसः करुण एव।
— भवभूति

3 रस सारश्चमत्कार : सर्वत्राप्यनुभूयते ।
तच्चमत्कार रसासत्वे सर्वत्राप्यद्‌भुतो रसः ।।
- दत्त

मनुष्य जाति तक सीमित है, लेकिन श्रृंगार की व्याप्ति समस्त सजीव जगत में व्याप्त है। इसी तथ्य को दूसरे दृष्टिकोण से देखकर हास्य रस के समर्थक हास्य को श्रेष्ठतम मानते हैं। उनका मत है कि श्रृंगार रस का आनन्द लेनेवाली इन्द्रियाँ पशुओं में भी हैं, लेकिन हास्य का सम्बन्ध मन तथा बुद्धि से है। यह मनुष्यों में ही पायी जाती है। मनुष्य को श्रृंगार का अनुभव कुछ नियमित काल तक ही रहता है, लेकिन हास्य का अनुभव जन्म से मृत्यु तक जारी रहता है। इस प्रसंग पर श्री केलकर का मत पठनीय है।[2] वे हास्य और करुण को प्रधान मानते हैं। करुणरस का स्थायीभाव प्यारे का नाश या अनिष्ट की प्राप्ति है। मनुष्य तो अपने दुख से नहीं और लोगों के दुख से भी दुखी होता है। हास्यास्पदता चाहे अपने से संबन्धित हो चाहे पराये से उसे देखकर मनुष्य हंस जाता है।

- -

1 हास्य रस मनुष्य तक परिमित है, इसलिए न तो वह श्रृंगार के इतना व्यापक है और न उसके इतना आस्वादित होता है। उसमें सृजन शक्ति भी नहीं है। अतएव वह अपूर्ण और गौणभूत है। यदि श्रृंगार रस जीवन है तो वह आनन्द यदि वह प्रसून है तो यह है विकास, दोनों में आधार आधेय का सम्बन्ध पाया जाता है। आधेय से आधार का प्रधान होना स्पष्ट है'।

रसकलश - पृ. 103 - हरिऔध जी

2 'चाहे मनुष्य मात्र के जीवन में होनेवाली भावजागृति के विचार से देखिए, चाहे उससे होनेवाले आनन्द और उसके उपयोग की दृष्टि से देखिए, हास्य करुण और वीर ये तीनों रस, श्रृंगार रस की अपेक्षा अधिक महत्व के प्रमाणित होंगे क्योंकि प्रायः हास्य और शोक में ही मनुष्य मात्र का अनुभव बंधा हुआ है। आनन्द उत्पन्न करनेवाला पदार्थ प्राप्त करने से दुख उत्पन्न करनेवाली बात टालने में ही मनुष्यमात्र की सारी प्रवृत्ति रहती है। हां, यदि यह कहा जाय कि हास्य और करुणरस का अनुभव मनुष्य को पग पग पर हुआ करता है तो कुछ अनुचित न होगा।

हास्य रस - पृ.49 मू.ले. केलकर

अनु. श्रीरामचन्द्र वर्मा

शृंगार रस यौवन तक ही परिमित है, परन्तु हास्य रस समान भाव से बचपन, यौवन, बुढ़ापा तीनों में होगा । इस पर हरिऔधजी का मतभेद काफी मशहूर है ।

यहाँ हमने देखी शृंगार और हास्य के समर्थकों के बीच रसराजत्व संबन्धी वादविवाद की एक झलक । हमारा निष्कर्ष यही है कि हास्य रस का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है । आलम्बन की दृष्टि से इसका मूल या अस्तित्व किसी प्रकार की विकृति है । हास्य के आश्रय के दृष्टिकोण से इसमें एक प्रकार की श्रेष्ठता का भाव रहता है । हरिऔधजी का यह कथन कि यदि शृंगार प्रसून है तो हास्य विकास, इस बात को पुष्ट करता है कि शृंगार के समान हास्य भी महत्वपूर्ण है । पुष्प का विकास होने पर सुन्दरता आती है, सुगन्धि फैलती है । हमारी समझ में हास्य को रस राज सिद्ध करने का श्रम शिशु को सम्राट पद पर प्रतिष्ठित करने के तुल्य है । शृंगार को रसराजत्व मुख्यतः उसकी तीन विशेषताओं से मिलता है :-

(1) उसका आधार वह काम-प्रवृत्ति है जिसका उन्मेष एवं विकास पशु-पक्षियों तक में पाया जाता है ।

(2) शृंगार रस में सभी संचारी भावों का समन्वय प्रसंगानुसार हो सकता है ।

(3) शृंगार रस का प्रत्येक अवयव - आलम्बन की कोई चेष्टा आश्रय की कोई उक्ति, संचारी भाव की एक लहर और भावदशा की कोई परिस्थिति भी पाठक के हृदय को आकर्षित एवं तन्मय करने में समर्थ है ।

- -

1 'क्या मलयानिल युवकों को ही मुग्ध बनाता है, बाल - वृद्ध को नहीं ? क्या हँसता हुआ मयंक, रस बरसाते हुए घन, पुष्प - संसार विलसित बसंत, पपीहे की पिहक, कोकिल की काकली और मयूर का नर्तन बालक और वृद्ध को आनन्द निमग्न करने की सामग्री नहीं है । .... शृंगार अस्तित्व में आए बिना दुःख-सुख की कल्पना ही ही नहीं सकती । अंगपुराण के आधार से यह बात प्रतिपादित हो चुकी है और किस प्रकार शृंगार से हास्य रस और करुण रस की उत्पत्ति होती है, यह भी बतलाया जा चुका है । मेरा विचार है कि जिस पहलू से विचार किया जाएगा, शृंगार पर हास्य को प्रधानता न मिल सकेगी ।

रसकलश - पृ.204 - हरिऔध जी

ये विशेषतायें हास्य में नहीं । हास्य रस का संचार केवल मनुष्यों तक सीमित है, इसे तो हास्य रस के समर्थकों ने भी स्वीकार किया है । डा.बरसानेलाल का यह तर्क 'श्रृंगार रस का आनन्द लेनेवाली इन्द्रियाँ पशुओं में भी पायी जाती है, लेकिन हास्य का सम्बन्ध मन से तथा बुद्धि से है'[1]। यह इसके क्षेत्र की संकुचितता ही सिद्ध करता है । हास्य के संचारी भावों की संख्या भी बहुत सीमित है तथा हास्य में केवल विषयवस्तु का आलम्बन से संबन्धित बातें ही रस संचार की क्षमता आती है, श्रृंगार की भाँति आश्रय की नहीं वस्तुतः भावनाओं की व्यापकता एवं गंभीरता की दृष्टि से हास्य में वे विशेषताएँ नहीं मिलती कि जिससे उसे रसराजत्व दिया जा सके । डा.बरसानेलाल के समान हम उसे रसराज बनने के अधिकारी मानते नहीं । श्रृंगार को छोडकर अन्य सब रसों में हास्य ही श्रेष्ठ है, यही हमारा निष्कर्ष होगा ।

हास्यरस का स्थायीभाव :

हृदय में वासना रुप में संचित, अन्यभावों द्वारा किसी प्रकार भी न दबनेवाले, प्रधान, विरोधी-अविरोधी भावों को अन्तर्हित करके आत्म-भाव प्राप्त करा सकनेवाले, चिरकाल अथवा आप्रबन्ध स्थायी रहनेवाले आस्वाद-योग्य मनो भावों को स्थायीभाव कहते हैं । भरतमुनि ने स्थायी भाव की परिभाषा देते हुए बताया है कि जिस प्रकार मनुष्यों में राजा है, शिष्यों में गुरु है, इस प्रकार भावों में स्थायीभाव श्रेष्ठ है[2]।

---

1 'हास्य को रसराज भले ही न माना जाय, किन्तु इस तथ्य को स्वीकार करने में किसी भी सन्देह न होना चाहिए कि हास्य रस का महत्व किसी भी अन्य रससे कम नहीं है यदि रसराज किसी को बनाना ही अभीष्ट है तो हास्यरस भी अपना नाम अन्य रसों के चुनाव में भेजने का अधिकारी है और इसकी जीत में किसी को सन्देह न होना चाहिए
हिन्दी साहित्य में हास्य रस - पृ.38 - डा.बरसानेलाल चतुर्वेदी

2 'यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः ।
एवंहि सर्वभावानां भावः स्थायि महानिह ।। भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - पृ.205

हास्यरस का स्थायीभाव हास है । आचार्य विश्वनाथ के अनुसार वाणी, वेश-भूषादि की विपरीतता से जो चित्त का विकास होता है, वही हास है[1] ।

देव ने भी स्थायी भाव के वर्णन करने के सिलसिले में एक दोहे के द्वारा हास को हास्यरस का स्थायीभाव माना है[2] ।

<u>हास्य के विभाव :</u>

विभाव, कारण, निमित्त और हेतु पर्याय है[3] । आद्याचार्य भरत के मतानुसार विकृत वेश, विकृत अलंकार दोनों ही हास्य रस के विभाव है, साथ ही धृष्टता, लौल्य, प्रलाप, व्यंग-दर्शन तथा दोष-उदाहरण आदि भी उसके विभाव कहे गए हैं[4] । इस प्रकार भरत मुनि ने यद्यपि विकृति सिद्धान्त को महत्व दिया, किन्तु साथ ही अनौचित्य तथा असंगति को स्वीकार करने के लिए अन्य विभावों की भी गणना की । विकृत-आकृति, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि को देखकर लोग हँसे वह यहाँ आलम्बन और उसकी चेष्टा उद्दीपन विभाव होते हैं[5] ।

---

1 'वागादिवैकृतैश्चेतोविकासो हास इष्यते'

साहित्य दर्पण - तृतीय परिच्छेद - पृ.34

2 रति हाँसी अरु सोक रिस, अरु उछाह भय मानु ।
निन्दा विसमय शान्त ये, नव थिति भाव बखानु ।।

भा.व रसायन - देव

3 'विभावः कारणं, निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः' । नाट्यशास्त्र - भरतमुनि

4 'स च विकृत वेषालंकार धार्ष्ट्य लौल्यकु
हकासत्प्रलाप व्यंगदर्शनदोषो -
दाहरणादिभिर्विभावैः रुत्पद्यते' ।

भरतमुनि, नाट्यशास्त्र - पृ.74

5 'विकृताकार वाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः ।
तदत्रालम्बनं प्राहुः तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।'

- साहित्य दर्पण - परिच्छेद 3 - पृ.151 - विश्वनाथ

विकृताकार, विचित्र वेशभूषा, धूर्तताकारी चेष्टाएँ, निर्लज्जता, छिद्रान्वेषण आदि आलम्बन है। टेढ़े मेढ़े वचन, विचित्र अंग-भंग, अव्यवस्थित वेशभूषा और अन्य हास्यवर्धक चेष्टाएँ उद्दीपन है

हास्यरस के अनुभाव

अमरकोषकार के अनुसार 'अनुभावो भाव बोधकः'। अनुभाव वास्तव में शारीरिक चेष्टायें हैं भरतमुनि के अनुसार ओष्ठ दंशन, नासिका तथा कपोल का स्पन्दन, दृष्टि-व्याकोश या आकुंचन आदि हास्य के अनुभाव हैं[1]। आचार्य विश्वनाथ ने हास्य रस के अनुभाव के रूप में नयनों का मुकुलित होना और वदन का विकसित होना बताए हैं[2]।

हास्यरस के संचारी भाव

साहित्यदर्पणकार ने संचारी भावों की व्याख्या यों की है 'जो विशेषतया अनियमित रूप से चलते हैं वे व्यभिचारी कहलाते हैं। ये स्थायीभाव में समुद्र की लहरों की भांति आविर्भूत तथा तिरोभूत होकर अनुकूलता से व्याप्त रहते हैं। संचारी भावों को अन्तर संचारी या मनः संचारी भी कहा है। इन्हीं का व्यभिचारी भाव भी कहा है क्योंकि एक ही भाव भिन्न भिन्न रसों के साथ पाया जाता है'[3]। भरतमुनि ने आलस्य, अवहित्था, तन्द्रा निद्रा, स्वप्न, प्रबोध, असूया आदि को हास्य के व्यभिचारी भाव के अन्तर्गत रखा है[4]। साहित्यदर्पणकार का कथन है कि निद्रा, आलस्य तथा अवहित्थ आदि हास्य के संचारी भाव होते हैं[5]। अश्रु रोमांच, कम्प, हर्ष, स्वेद, चंचलता आदि भी माने जाते हैं। आचार्य शुक्लजी ने निद्रा, आलस्य आदि को त्याज्य बताया है। प्रश्न यह है कि हास्य के आलम्बन में निद्रा, आलस्य आदि का होना

- -

1 नाट्यशास्त्र - चौ.पृ.74

2 अनुभावो क्षिसंकोच वदन स्मेर तादयः - साहित्यदर्पण - विश्वनाथ परिच्छेद 3 पृ.161

3 'विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिणा।
स्थायिन्युन्मग्न निर्मग्नास्त्रयास्त्रिंशच्च तद्विधः।।
साहित्यदर्पण - विश्वनाथ परिच्छेद 4, पृ.153

4 नाट्यशास्त्र - चौ.पृ.74

5 साहित्यदर्पण - विश्वनाथ - परिच्छेद 3 - पृ.159

तो स्पष्ट ज्ञात होता है किन्तु आश्रय में आलस्य, निद्रा आदि की संचारी-स्थिति न होगी ।[1] यह शंका निर्मूल है । व्यवहार तथा प्रभाव के दृष्टिकोण से हास्य के संचारियों का वर्गीकरण प्रो. जगदीश पाण्डे ने यों किया है :-

(1) स्नेहज - जहाँ करुणा संचारी होकर आलम्बन के प्रति हास्य को सरल तथा स्वीकार्य बनाता

(2) उपहासक - जहाँ संचारी अक्सर हास्य आलम्बन को तिरस्कार्य भी बना देता है ।

(3) विभाव संक्रमित - जहाँ संचारी आश्रय को भी स्वतंत्र आलम्बन बना देता है । लाड-प्यार से बिगड़ा हुआ लड़का बाप की दाढ़ी-मूँछ उखाड़ता है । बाप का ऐसे बेटे पर प्यार आना उस बाप को आश्रय से आलम्बन बना देता है ।

(4) परिहासक - स्वर-स्वर संगीतकार के गाने पर धीरे धीरे लोगों का सो जाना, अरुचि से उत्पन्न, यह निद्रा संगीत के माधुर्य पर व्यंग्य है ।

(5) रेचक-नायक की उग्रता तथा अमर्ष से पराजित हास्यास्पद भी हो जाते हैं । उनके प्रति प्रति परितोष की भावना का भी रेचन होता चलता है ।

(6) उद्दामक - जैसे वितर्क, पहेलिका, विमूढ़ता आदि ।

हास्य का वर्ण -

शृंगार से उत्पन्न होने पर भी हास्य का वर्ण, शृंगार के श्याम वर्ण के विपरीत श्वेत है[2] हास्य का वर्ण ब्राह्मण माना जाता है क्योंकि दोनों युगयुग में आसक्त न होकर सदैव प्रसन्नता से अपना कार्य करते हैं ।

हास्य का देवता -

शृंगार से उत्पन्न होने पर भी शृंगार के देवता विष्णु के स्थान पर इसके देवता प्रमथ अर्थात् शिवगण बताए गए हैं[3]। इसकी सूचित कथा यों है - भगवान विष्णु और नारद एक स्वयंवर में शामिल हुए । हास्य सृष्टि के लिए विष्णु ने नारद को वानरमुख दिया ।

- -

1 हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य - पृ.64 - प्रो. जगदीश पाण्डे

2 अथ वर्णा नाम श्यामो भवति शृंगारः
सितो हास्यः प्रकीर्तितः - नाट्यशास्त्र - 6-42, 43

3 हास्यः प्रमथ दैवतः वही - वही 44

स्वयंवरकन्या वन्दरमुख को देखकर उस ओर गयी भी नहीं । कन्या ने विष्णु के गले पर माला डाली । क्रोधी होकर लौटनेवाले अपने वन्दर मुख के बारे में अनभिज्ञ नारद की हंसी उड़ायी, मार्ग में, शिवजी के प्रथम गण ने । दर्पण में अपना रूप देखकर नारद ने विष्णु तथा प्रमथ ग को शाप दिया । अतः प्रमथ हास्य देवता माना गया ।

हास्य के शत्रु और मित्र

काव्य ग्रंथों में रसों की मैत्री और शत्रुता पर पूर्ण विचार किया गया है और रसों के शत्रु और मित्र निर्धारित किए गए हैं ।

शृंगार का हास्य, करुणा का रौद्र, वीर का अद्भुत, बीभत्स का भयानक-मित्र माना गया यही रस जनित रस भी है ।[1] एक को दूसरे से उत्पत्ति होने के कारण मित्रता मानी गई है । इस प्रकार रसशत्रुता के बारे में भी कहा गया है[2] । साहित्यदर्पणकार ने रसों के विरोध के बारे में ही वर्णन किया है[3] । आनन्दवर्धन ने रस-व्याघात के पांच कारण बताये हैं । यथा

(1) विरोधी रस के सम्बन्धी विभावादि का ग्रहण ।

(2) रस से सम्बन्ध रहने पर भी अन्य वस्तु का विस्तार से कथन ।

(3) असमय रस को समाप्त करना या अनवसर उसे प्रकट करना ।

(4) रस का पूर्ण पोषण होने पर भी उसका पुनः पुनः उद्दीपन करना ।

(5) व्यवहार का अनौचित्य । आनन्दवर्धन ने रसशत्रुता के तीन कारण यों बताये

(1) आलम्बन की एकता के कारण । यथा वीर और शृंगार का आलम्बन एक ही हो या हास्य, रौद्र एवं बीभत्स का आलम्बन एक ही ।

---

1 होत हास्य शृंगार ते करुना रौद्र ते जानु ।
वीर जनित अद्भुत कहो, बीभत्स ते भयानु ॥ शब्द रसायन - देव - चतुर्थप्रकाश प.

2 रिपु बीभत्स सिंगार को, अरु भय रसु रिपु वीर ।
अद्भुत रिपु रौद्रहि कहत, करुन हास्य रिपु धीर ॥ गुलाबराय रचित नवरस से उद्धृत पृ.596

3 ध्वन्यालोक 3/18-19 — आनन्दवर्धन

4 ध्वन्यालोक - पृ. 36 ।

(2) आश्रय - ऐक्य के कारण । यथा जो वीर हो उसी में भय का प्रदर्शन हो ।

(3) नैरन्तर्य तथा विभावैक्य के कारण, जैसे, शान्त और श्रृंगार एक साथ दिखाने का प्रयत्न हो या दोनों के विभाव एक होंगे । प्राचीन लेखकों से इस प्रकार वर्णित शत्रुता और मैत्री का दिग्दर्शन निम्न रूप में बताया जा सकता है[1] ।

संख्या	रस	मित्र	शत्रु
1	श्रृंगार	हास्य	बीभत्स
2	हास्य	श्रृंगार	करुण
3	करुण	रौद्र	हास्य
4	रौद्र	करुण	अद्भुत
5	वीर	अद्भुत	भयानक
6	भयानक	करुण	वीर
7	अद्भुत	वीर	रौद्र
8	बीभत्स	भयानक	श्रृंगार

हास्य के भेद

यदि हम समग्र जीवन पर ध्यान दें और उसके व्यावहारिक, बौद्धिक, मानसिक आदि क्षेत्रों की खोज करें, तो अनेकानेक परिस्थितियों, और कारणों से कई रूपों में हास्य की छटा खिलती मिलेगी । हास्यरस का स्थायी भाव हास है । इस स्थायीभाव हास को लेकर हास्य के अनेक भेद किए गए हैं । ये भेद अधिकतर आश्रय पर आधारित हैं ।

5 5

1 रस - सिद्धान्त : स्वरूप - विश्लेषण - पृ. 390
डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित

भरत ने हास्य के दो प्रकार के भेद माने हैं । एक भेद के अनुसार हास्य आत्मस्थ और परस्थ, दो प्रकार का होता है । जब व्यक्ति स्वयं हँसता है तो आत्मस्थ हास्य और दूसरे को हँसाता है तो परस्थ कहलाता है[1] । किन्तु रसगंगाधरकार ने इन भेदों की दूसरे प्रकार से व्याख्या की है । उनके मतानुसार हास्य - विषय को देखने से उत्पन्न हास्य आत्मस्थ और दूसरे को हँसता देखकर हँसने से परस्थ हास्य की सिद्धि होती है । आत्मस्थ को ही दूसरे विद्वानों ने स्वसमुत्थ और परस्थ को परसमुत्थ कहा है । अभिनवगुप्त ने उन विचारकों का विरोध किया है जो आत्मस्थ और परस्थ भेदों का अर्थ यह समझते हैं कि आत्मस्थ में विकृत वेशादि विभावों के कारण विदूषक स्वयं हँसता है और परस्थ में दूसरों को हँसाता है[2] । वस्तुतः रसगंगाधरकार का ही मत उचित ज्ञात होता है ।

दूसरे प्रकार का भेद भरत ने हास्य की स्फुटता के विचार से प्रस्तुत किया है । इस भेद के अन्तर्गत हास्य के भरतकृत (1) स्मित (2) हसित (3) विहसित (4) उपहसित (5) अपहसित तथा (6) अतिहसित नाम प्रकार - भेद आते हैं । यद्यपि भरत ने 'स्त्रीनीच प्रकृतावेष भूयिष्ठं दृश्यते रसः' कहकर हास्य का सम्बन्ध स्त्री और नीच पुरुषों से ही जोड़ दिया है, तथापि उन्होंने मनुष्य - प्रकृति के विचार से उत्तम, मध्यम और अधम तीन भेदों के अन्तर्गत उक्त छः प्रकार भेद सीमित कर दिए हैं । स्मित तथा हसित उत्तम प्रकृति वाले मनुष्य में पाए जाते हैं, विहसित, उपहसित मध्यम प्रकृति व्यक्ति में और अपहसित तथा अतिहसित अधम प्रकृति में । इन प्रकार - भेदों के लक्षणों पर ध्यान देने से भरत के विभाजन की समीचीनता स्पष्ट हो जाएगी । स्मित हास्य अंग्रेजी के 'स्माइल' शब्द का पर्याय कहा जा सकता है । कपोलों की हलकी रक्ताभा, सौष्ठवपूर्ण कटाक्ष तथा अलक्षित दन्त-पंक्ति आदि लक्षणों को स्मित के अन्तर्गत माना जाता है । मामूली बातचीत में भी दाँत फाड़कर हँसना

- -

1 यदा स्वयं हसति तदा आत्मस्थः
यदा तु परं हासयति तदा परस्थः नाट्यशास्त्र - पृ.74

2 आत्मस्थैर्विभावैर्विकृतवेषादिभिर्विदूषकः
स्वयं हसति स तस्यात्मस्थः ।
देवी च हासयतीति तस्याः परस्थः ...... तदिदमसत् ।।
अभिनवभारती - पृ. 323

हँसना अच्छा नहीं समझा जाता । अतएव उत्तम व्यक्ति से सम्बन्धित स्मित के अन्तर्गत असक्षित दन्त - पंक्ति आदि का वर्णन उचित है । स्मित क्या है - सिर्फ मुस्कान मात्र । यह मुस्कान ही निरन्तर श्रीराम और श्रीकृष्ण के मुख पर विराजमान थी । यह हास का प्रारंभिक रूप है । इसीसे आगे जब मुख और नेत्र कुछ उत्फुल्ल से दिखाई देने लगते हैं तब उस अवस्था को 'हसित' कहा जाता है । इसके आगे आंख और कपालों का आकुंचन उपस्थित होने पर ज उसके साथ मधुर शब्द भी मिला रहता है और मुखाकृति लाल हो जाती है तो 'विहसित' अवस्था उपस्थित होतीहै । 'उपहसित' अवस्था में कपिलादि के सहज फड़कने को छोड़कर नासिकाग्र फूल उठते हैं; कन्धे और सिर का आकुंचन होने लगता है तथा हँसनेवाला व्यक्ति इधर उधर और लोगों पर भी दृष्टिपात करने लगता है । 'अपहसित' वह अवस्था है जिसमें अस्थान हो इस प्रकार हँसा जाता है कि आंखों में पानी भर आए और कन्धा तथा शरीर ज़ोर ज़ो से हिलने लगें । अन्तिम अवस्था का नाम अतिहसित है । इस अवस्था में नेत्रों से अबाध और अत्यधिक पानी निकलने लगता है, तीव्र और उद्धत स्वर उत्पन्न हो जाता है तथा हँसी के वेग के कारण सहज ही उसे रोकने में असमर्थ होकर व्यक्ति अपने दोनों पार्श्व दबाने लगता । इन लक्षणों से स्पष्ट होता है कि ये भेद हास के वेग के आधार पर किये गए हैं । व्यक्ति जितना भी सभ्य तथा शिष्ट क्यों न हो वह इन आवेगों को उतना ही संयमित करने में असमर्थ होगा । इसलिए इन्हें उत्तमादि भेदों में बांटना अनुचित नहीं । इस वर्गीकरण से और एक बात भी स्पष्ट होती है कि भारतीय विचारक हास्य के अन्तर्गत आनेवाले व्यंग्य आदि कटूक्ति मिश्रित कथनों को उत्तम प्रकृति का नहीं मानते थे । इनमें से स्मित, विहसित, अवहसित को आत्मस्थ या स्वसमुत्थ की संज्ञा दी गई है और शेष को परस्थ या परसमुत्थ की ।

प्रभाव के दृष्टिकोण से आचार्य विश्वनाथ ने भी भरत के दृष्टिकोण से मिलता जुलता वर्गीकरण प्रस्तुत किया है[1] ।

---

1 'ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च ।
नीचानामपहसितं तथापि हसितं तदेष षड्भेदः ।। ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताधरम् ।
किंचिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः ।
मधुरस्वरं विहसितं सांसशिरः कम्पमवहसितम् ।
अपहसितं सास्राक्षं विक्षिप्ताङ्गं (च) भवत्यतिहसितम् ।।

साहित्यदर्पण - आचार्य विश्वनाथ - पृ. 158 - श्लोक 217

दशरूपककार धनंजय ने हास्य की तीन प्रकृतियाँ - श्रेष्ठ, माध्यम, और अधम - मानते हुए उसके छः भेद बताए हैं जो नाट्यशास्त्रकार के विभजन से मिलते जुलते हैं। संस्कृत के परवर्ती आचार्यों में से अनेक ने इस विभाजन को स्वीकार किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात समझने में देरी न होगी कि भारतीय साहित्य में हास्य के विभागों का उल्लेख मुख्यतः शारीरिक आधार पर किया गया है। विदूषक के सम्बन्ध में भी विकृत वेषभूषादि को स्थान देकर शारीरिक विकृति को प्रधानता दी है। भरत ने कलहास, व्यंग्य, दोषदर्शन आदि का उल्लेख विभावों के अन्तर्गत किया। इनका विकास बाद के लेखकों ने किया नहीं। यहाँ तक कि आत्मस्थ 'हास्य भेद के द्वारा भरतमुनि ने जिस मानसिकता और स्मरण शक्ति का संकेत किया था, उसे रुद्रट जैसे कुछ आचार्यों ने उल्लेख-योग्य नहीं समझा। उन्होंने भरत कथित छः भेदों में से सिर्फ चार को ही स्वीकार किया। मध्यम तथा अधम हास्य के केवल विहसित तथा अतिहसित भेदों को स्वीकार करके उन्हीं उपहसित तथा अपहसित को छोड़ दिया। भोज ने और भी आगे बढ़कर केवल स्मित, हसित और विहसित को ही स्वीकार कर उसे तीन तक ही सीमित किया। कुछ आचार्यों ने भरत कथित इन छः भेदों में से प्रथम तीन को आत्मसंमुत्थ तथा पिछले तीन को परसमुत्थ कहा है। वस्तुतः ये स्थितियाँ हास्य की तारतम्यक दशाओं मात्र की सूचक हैं।

हिन्दी के आचार्यों में केशवदास जी ने अपनी मौलिकता का परिचय देते हुए हास्य को (1) मन्दहास (2) कलहास (3) परिहास (4) अतिहास आदि चार स्वतंत्र भेदों में विभक्त किया है[1]। केशव का प्रेरणास्रोत नाट्यशास्त्रोक्त भेद ही है। इन चार भेदों में प्रथम तीन भेद भरत के प्रथम तीन भेदों के समान हैं, किन्तु 'परिहास' स्थिति सापेक्ष अवस्था है, तारतमिक दशा नहीं। केशवजी ने उदाहरण सहित हास्य - विभाजन प्रस्तुत किया है :-

- -

1 रसिक प्रिया 24/3, 8, 12, 15

(1) मन्दहास : जिसमें दांत, कपोल तथा नेत्र विकसित दिखाई पड़े उसे केशवदास मन्दहास पुकारते हैं ।

(2) कलहास : जिसमें कोमल ध्वनि शरीर और मन को मोहित कर ले, उसे केशव ने कलहास बताया है ।

(3) अतिहास : जिसमें थोड़े थोड़े समय में मुख से निःशंक हंसी उत्पन्न होती है वही अतिहास है ।

(4) परिहास : जिस हास्य में नायक की प्रीति परिजनों के परिहास का कारण बन जाय ऐसे परिहास का वर्णन बुद्धिबल भी नहीं कर सकता, यही केशव का मत है[4] ।

यह अन्तिम भेद एक परिस्थिति विशेष पर है ।

- -

1 विकसहि नयन कपोल कछु दसन-दसन के वास ।
मंदहास तासो कहै कोविद केसव दास ।
केशवदास - रसिकप्रिया - पृ.3

2 जहँ सुनिये कल ध्वनि कछू कोमल विमल विलास ।
केसवतन मन मोहिये बरनहु कवि कलहास ।
वही वही पृ.9

3 जहाँ हँसहि निरसंक है प्रगतहि सुख मुखवास ।
आधे - आधे बरन पर उपजि परत अतिहास ।। वही - वही पृ.12

4 जहँ परिजन सब हँसि उठै, तजि दमति की कानि ।
केसव कौन हू बुद्धिबल सो परिहास बखानि ।
वही वही पृ.26

डा.रामकुमार वर्मा के मत

हास्य के भेद पर वर्माजी ने दो प्रसंगों पर, दो दृष्टिकोणों से प्रकाश डाला है :-

(1) दृश्यकाव्य में हास्यतत्त्व नामक लेख द्वारा

वर्माजी ने संस्कृताचार्यों के हास्य-भेद संबन्धी तत्त्वों से प्रभावित होकर यों विभाजन कर डाला है। पण्डितराज जगन्नाथ तथा आचार्य भरत के हास्य-भेद संबन्धी मतों का सम्मिश्रण करते हुए उन्होंने हास्य के बारह भेद माने हैं[1] :-

हास्य	उत्तम	स्मित	आत्मस्थ	1
			परस्थ	2
		हसित	आत्मस्थ	3
			परस्थ	4
	मध्यम	विहसित	आत्मस्थ	5
			परस्थ	6
		उपहसित	आत्मस्थ	7
			परस्थ	8
	अधम	अपहसित	आत्मस्थ	9
			परस्थ	10
		अतिहसित	आत्मस्थ	11
			परस्थ	12

---

1 'वस्तुतः अपने प्रभाव की दृष्टि से हास्य तीन प्रकार का माना गया, उत्तम, मध्यम और अधम। [illegible] उन तीनों प्रकारों में प्रत्येक के दो भेद हैं। उत्तम के भेद हैं स्मित और हसित। मध्यम के भेद हैं विहसित और उपहसित। अधम के भेद हैं अपहसित और अतिहसित। ये प्रत्येक भेद आत्मस्थ और परस्थ हो सकते हैं।

'दृश्यकाव्य में हास्य तत्त्व' लेख से उद्धृत आलोचना - जनवरी 1955 - पृ.64

- डा.रामकुमार वर्मा।

(2) रिमझिम की भूमिका द्वारा

डा. वर्माजी ने अपने रिमझिम नामक एकांकी संग्रह की भूमिका में हास्य के भेद का और एक दृष्टिकोण[1] दिखाया है । सहज से भिन्न कुतूहल वर्द्धक या हास्योद्रेक स्थिति का है यह । 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपनी ओर से पांच स्वतंत्र भेदों की स्थापना की जिनमें से प्रत्येक में दो दो उपभेद करके कुल दस प्रकारों में हास्य के सब प्रचलित स्वरूपों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है[2] ।

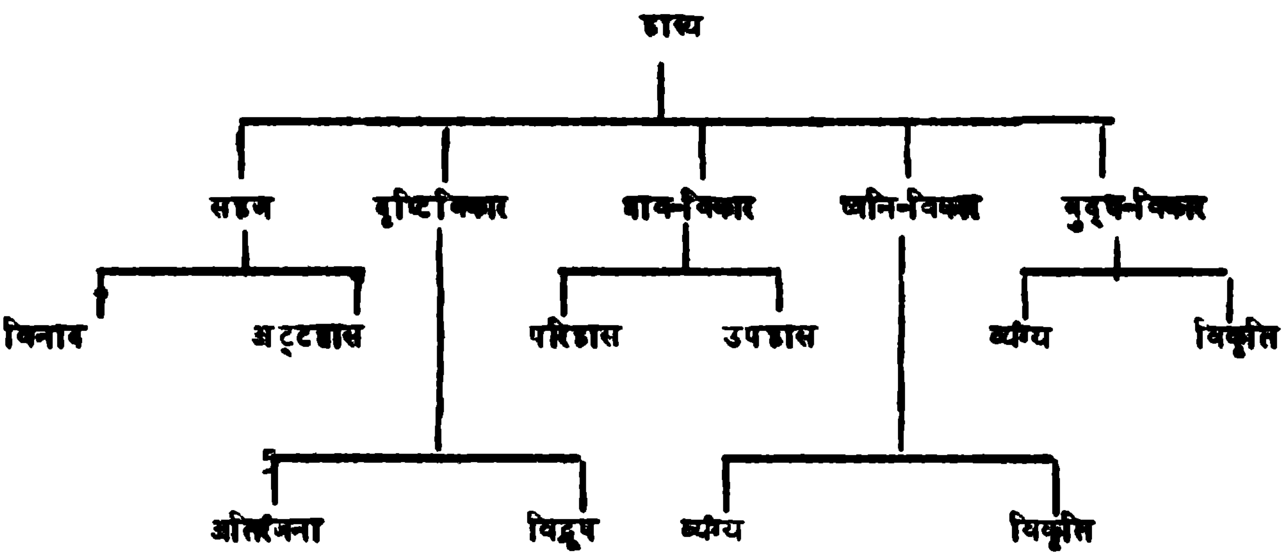

इस विभाजन के कुछ दोष हैं । विनोद और वाग्वैदग्ध्य, विट (Wit) के रूप में माने गए हैं । उनको बुद्धि विकार से अलग मानना और सहज तथा ध्वनिविकार नामक वर्गों में रखना गलत है । ~~काव्यशास्त्रानुसार वक्रोक्ति~~ । ध्वनि विकार के अन्तर श्लेष वक्रोक्ति नहीं आती । अर्थात् श्लेष वक्रोक्ति पर आधारित हास्य को इस विभाजन में स्थान नहीं ।

- -

1 इस भांति हास्य सहज विनोद से चलकर क्रमशः दृष्टि, भाव, ध्वनि और बुद्धि में नाना रूप ग्रहण करता हुआ विकृति में समाप्त होता है'। रिमझिम–डा. रामकुमारवर्मा पृ. 13

2 हिन्दी नाटकों में हास्य - तत्व - डा. शान्ता रानी – पृ. 69

और एक बात । व्याजोक्ति जो वाच्यार्थ का एक गुण है ध्वनिविकार के अन्तर्गत नहीं आ सकती क्योंकि ध्वनि विकार उसका आधार नहीं ।

बाबू गुलाबराय के अनुसार 'हँसना कई प्रकार का है । मृदु-हास्य, मुक्त-हास्य, स्मित हास्य, अट्ट हास्य, इत्यादि ।[1]

हास्य के इन भेदों पर विचार करने पर इन्हें चार मुख्य भेदों में हम बांट सकते हैं :-

(1) शुद्ध या कोमल हास्य
(2) उदासीन हास्य
(3) कठोर हास्य
(4) निर्दय हास्य ।

यह भेद हम प्रभाव की दृष्टि से करेंगे :-

(1) शुद्ध या कोमल हास्य

जिन हास्योक्तियों से किसी प्रकार की घृणा व्यक्त न हो और केवल आनन्द मिलता हो, चित्त में उल्लास की तरंग फैलती हो, वह हास्य शुद्ध या कोमल कहा जायगा । इसमें हास्यकर्ता और हास्य का लक्ष्य दोनों ही प्रसन्न रहते हैं । रामचरितमानस में शिव की बरात का वर्णन इसी विभाग के अन्तर्गत आता है । शिव की उसी बेढंगी बरात को देखकर यदि किसी ने यह कह ही दिया कि

'बर लायक बरात नहिं भाई,
हँसी करैहौ परपुर जाई'

तो इससे किसी प्रकार की घृणा व्यक्त न होकर हल्की हँसी का दौर ही दौड़ गया, क्योंकि शिव स्वयं भी अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे ।

- -

1 नवरस - बाबू गुलाबराय - पृ.436

(2) <u>उदासीन हास्य</u>

जिस स्थान पर व्यंग्य, वक्रोक्ति के रूप में उपस्थित हो, चोट छिपे छिपे हो, प्रभाव का पता आन्तरिक रूप में लगे, तब उदासीन हास्य माना जा सकता है । लक्ष्मण-परशुराम संवाद में इसका उदाहरण है :-

'बहु धनुही तोरिउ लरिकाई ।
कबहुं न असि रिसि कीन्ह गुसाईं' ।

(3) <u>कठोर हास्य</u>

जब चिढ़ाने की प्रवृत्ति या क्षोभ उत्पन्न करने की इच्छा से कोई बात कही जाती है जो (Sarcasm) सरकाजम के अन्तर्गत आ जाय, जिसमें दीर्घकाल तक चुभन उत्पन्न करने की शक्ति हो, वही कठोर हास्य है । उदाहरणतः 'टूट चाप नहिं जुरय रिसाने, बैठिय होई है पाय पिराने' पंक्ति में परशुराम के प्रति यही हास्य प्रकट है ।

(4) <u>निर्दय हास्य</u>

यह घृणा प्रधान हास्य है । विपक्ष को हानि पहुंचाने की प्रवृत्ति विशेष रूप से जाग उठती है, वही सटायर (Satire) है । कबीर इसके प्रवीण थे । विपक्ष का खण्डन करने के लिए बिलकुल विचित्र उपमाओं से वे काम लेते हैं । इनमें तत्कालीन चोट पहुंचाने की क्षमता बहुत अधिक है । दो उदाहरण हम लेंगे ।

'मूंड मुंडाये हरि मिलें सब कोइ लेय मुंडाय ।
बार बार के मूंडते भेड़ न बैकुण्ठ जाय' ।

अथवा

पाहन पूजे हरि मिलें तो मैं पूजूं पहार ।
ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार ।।

विपक्ष के किसी आचार विचार का तिरस्कार करने के लिए अथवा उसका बेढंगापन प्रम करने के लिए कबीर ने वैसी ही बेढंगी उपमा से काम लिया है । व्यंग्य की तीव्रता के यहाँ निर्दय हास्य है ।

हास्य :

'हास्य' शब्द अपनी अपरिभाषेयता पर अभिमान करता है । हास्य की व्याख्या लोग की हास्यप्रियता के विरुद्ध है[1] । प्रसिद्ध हास्य व्यंग्य तत्ववेत्ता बर्नार्ड शा की परिभाषा सर कोई भी वस्तु जो हँसाए, वही हास्य है'। कुछ आचार्य हास्य को हर्ष का बाह्य सूचक मानते हैं । जैसा कि डा. गुलाबराय ने बताया है 'जिस प्रकार प्रसन्नता के सूचकों में नृत्य, ताली बजाना इत्यादि है, उसी प्रकार हास्य भी एक प्रकार है'[2]। इससे मिलती जुलती व्याख्या डा. बरसानेलाल जी यों देते हैं 'हँसी अपने गौरव की अनुमति से उद्भूत प्रसन्नता का प्रका है'[3] । भावुकता के शत्रु होनेवाली एक सामाजिक वृत्ति के रूप में बर्गसाँ हास्य की परिभाषा देते हैं[4] ।

- -

1 (a) It is a term which not only refuses to be defined; but in a sense boasts of being indefinable and it would commonly in humour to search for defānition.

Encyclopaedia Britinica. 1927 Edition.

(b) 'To emit explosive inarticulate sounds of the voice, generally with a mile, leaving of the sides and other bodily movements under the influence of amusement, joy, scorn or other emotion or of body stimulates as tickli

Chamber's 20th Century Dictionary. (1958) p. 602.

2 नवरस - बाबू गुलाबराय - पृ. 420

3 हिन्दी साहित्य में हास्यरस - पृ. 42-43 - डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी ।

4 Le Rire (1900) - Henri B-ergson. Laughter. p. 82. Translation to English (1911) By Brereton and Rothewell.

'सहृदय मनुष्य, दुर्बलताओं, विषमताओं, अपूर्णताओं और स्वीकृत अनाचारों के विरुद्ध अथवा आक्रोश मुस्कराहट की सीमाओं में बांधकर चेतना को जाग्रत करने का प्रयत्न करता है तो वही हास्य है'[1]। शरीर विज्ञान से सम्बन्धित हास्य की और एक परिभाषा भी मशहूर है' बाह्य वातावरण एवं कोई भूली भटकी स्मृति द्वारा मस्तिष्क गत विशिष्ट केन्द्र की हलचल का परिणाम जो होठों एवं मन तथा मुख की भाव - भंगिमा पर लौटकर प्रतीत होता है, उसे हास्य कहते[2] दया के एक प्रत्यौषध के रूप में हास्य को देखनेवाले पण्डित भी हैं[3]। मानव सहज क्रीडावासना के फल स्वरूप जनित वृत्ति के रूप में हास्य की आलोचना करनेवाले मैक्स ईस्टमान की परिभाषा यों है' हास्य प्रकृति की मानव को दी गयी एक जन्मजात वासना है जो मानव में तकलीफों को खिलाड़ी मनोभाव के साथ आनन्दपूर्वक अपनाने कीतैयारी लाता है'[4]। 'हास्य एक प्रीतिपरक भाव है जो चित्त की संचित गंभीरता में आकस्मिक स्फोट सा उठाकर उसे कुछ क्षणों के लिए सात्विक प्रसन्नता से भर देता है[5]। सहृदयों पर सोया पड़ा यह भाव अनुकूल अवसर पाकर आकस्मिक भाव से जाग उठता है। इसी 'आकस्मिकता' को हम हाज़लिट की व्याख्या में भी पाते हैं। वे हास्य को 'आकस्मिकता और विपरीत परिस्थिति से उत्पन्न विकार'[6] मानते हैं।

- -

1 हिन्दी नाटकों में हास्य-तत्व - पृ.55 — डा.शान्ता रानी

2 हास्य के सिद्धांत तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ.16
एवं नारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नारायण दीक्षित

3 'An antidote to sympathy'. An outline of Psychology.P.72
William Mc Dougall.

4 The Sense of Humour. p.9 - Max Eastman

5 हास्य का विवेचन शीर्षक लेख - डा.बलदेवप्रसाद मिश्र (हिन्दी साहित्य में हास्य व्यंग्य' के पृ.11 से उद्धृत)

6 'Laughter may be defined to be the same sort of convulsive and involuntary movement, occasioned by mere surprise or contrast before it has time to reconcile its belief to contradictory appearances' The English comic writers. p.2
Willaim Hazlitt.

एक प्राचीन व्याख्या होने पर भी साहित्य दर्पणकार की व्याख्या कैसे इन सब व्याख्याओं से श्रेष्ठतम है, यह भी बताये बिना हास्य की परिभाषा पर का यह विचार अपूर्ण ही रहेगा। उन्होंने 'वाणी और वेष भूषादि के वैपरीत्य से उद्भूत चित्तविकास को ही 'हास्य' कहा था[1]।

हास्य की उत्पत्ति -

हम क्यों हँसते है ? किन किन कारणों से हँसी उत्पन्न होती है ? इन प्रश्नों का उत्तर जटिल है। हास्य अनेक प्रकार के कारणों से उत्पन्न होता है। इस विषय पर विशद विवेचन के लिए हम इससे संबन्धित भारतीय तथा पाश्चात्य मतों पर प्रकाश डालेंगे :-

(1) भारतीय मत

भारतीय आचार्यों ने इस विषय में तो विशद विवेचना नहीं की; फिर भी उन्होंने जो कुछ भी प्रतिपादित किया, वह सटीक तथा श्रेष्ठ है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ जी के अनुसार वाणी, चेष्टा, आकार आदि की विकृति से हास्य रस की उत्पत्ति होती है[2]।

दशरूपककार के मतानुसार हास्य का कारण अपनी अथवा दूसरे की विचित्र वेषभूषा, चेष्टा, शब्दावली तथा आर्यकलाप है[3]।

- -

1 वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते - साहित्यदर्पण - पृ.42

2 विकृताकार वाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद् भवेत् ।
हास्यो हास स्थायीभावः श्वेतः प्रमथ देवतः
- साहित्यदर्पण - विश्वनाथ - परिच्छेद 3 - पृ.224

3 विकृताकृति वाग्वेषैः आत्मनोऽथ परस्य वा ।
हास्यः स्यात् परिपोषस्य हास्यामि प्रकृतिः स्मृतः
- दशरूपक, चतुर्थ प्रकाश - पृ.75 - धनंजय

धनंजय और विश्वनाथ के लक्षणों में फर्क यही है कि धनंजय के लक्षणों से यह स्पष्ट है कि वेषभूषा, चेष्टा, शब्दावली तथा कार्यकलाप में विचित्रता अपनी भी हो सकती है और अन्य की भी ।

काव्यप्रकाशकार ने यों कहा : 'वागादिवैकृतात्चेतो विकासो हास उच्यते'

इन तीनों परिभाषायें सचमुच हास्योद्रेक के कारण यों बताते हैं :-

(1) विकृत शब्दावली

(2) वेषभूषा

(3) कार्यकलाप

प्राचीन आचार्यों ने हास्य को रागजन्य माना । शारदातनय ने रजोगुण के अभाव और सत्वगुण के आविर्भाव से ही हास्योत्पत्ति मानी । उन्होंने उसे प्रीति पर आधारित एक विशेष[1] माना । अभिनवगुप्त ने रसाभास से भी हास्य की उत्पत्ति मानी[2] । 'करुणोऽपि हास्य एवेति' कहकर आचार्य ने उसे भी मान्यता दी । अन्य लोगों के विकृत वेषालंकार, धृष्टता, लोलमनोव झगडा, असम्बद्धप्रलाप, अंगवैकल्य प्रदर्शन, आपस का दोषारोपण इन सबसे हास्योत्पत्ति बताकर अभिनवगुप्त ने कुछ मौलिकता भी दिखायी[3] । पिछकालीन आचार्यों ने इन सबको मान लिया और फलतः इसपर वे मौन रहे ।

---

1 'स शृंगार इतीरितः
तस्मादेव रजोहीनात्स्यमत्वा हास्य सम्भवः'
- भावप्रकाश - शारदा तनय – पृ.47

2 'तेन करुणाद्याभासेष्वपि हास्यत्वं सर्वेषु मन्तव्यम्'
- अभिनवभारती - अभिनवगुप्त – पृ.297

3 हास्योनाम - विकृतपरवेषालंकारा धार्ष्ट्य लौल्य
कुहकासेत प्रलाप व्यंग्यदर्शन दोषादाहरणादि भावै सत् पद्यते ।
अभिनवभारती - पृ.298

(2) पाश्चात्यमत

मनोविज्ञान का आश्रय लेकर पाश्चात्य विद्वानो ने सत्रहवी शताब्दी से आज तक हास्य के मूल कारणो पर पर्याप्त खोज की है । फलस्वरूप हास्योत्पत्ति के बारे मे अनेक सिद्धान्तो का जन्म हुआ है । सब पर विचार करना यहा अनुचित और असंगत है । अतः प्रधान तत्ववेत्तावो के मुख्य मुख्य सिद्धान्तो पर ही हम प्रकाश डाल सकते है ।

इन सिद्धान्तो मे कोई भी पूर्ण रूपेण खरा नही उतरता । एक दूसरे को तो पूरक अवश्यक है; लेकिन कोई भी तत्व अपने मे पूर्ण नही । प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है :-

(1) अलघुता दर्शन या बडप्पन का अनुभव
(2) असंगति के निरीक्षण
(3) विपरीतता
(4) असमानता
(5) यांत्रिकता
(6) विफल आशा
(7) शरीर की अतिरिक्त शक्ति
(8) क्रीडा सिद्धान्त
(9) दया की प्रत्यौषधि
(10) उपचेतना मे दबे हुए भाव

अब हम इस पर विशद रूप से प्रकाश डालेगे :-

(1) लघुता-दर्शन या बड़प्पन का अनुभव

आरंभ में लघुता-दर्शन हास्य का एक कारण माना गया । जब हम दूसरों को किसी मूर्खता में फँसे या किसी लघुता एवं हीनता में पड़े देखते हैं तब हमें उन लोगों की लघुता या अपने बड़प्पन पर हमें प्रसन्नता होती है इससे हँसी उत्पन्न होती है । इस सिद्धांत के समर्थक हैं यूनान के तत्ववेत्ता अरस्तू, अंग्रेज विद्वान हाब्स और प्रो. बेन । अरस्तू ने कोमेडी की व्याख्या करते हुए उसे मनुष्य स्वभाव का हल्कापन वर्णन करनेवाला काव्य 'बताया है । हाब्स महाशय के अनुसार' हँसी अपने गौरव की अनुभूति से उद्भूत प्रसन्नता का प्रकाशन है[1] ।

यही हाब्स के अनायास उत्कर्ष का सिद्धांत है जो लघुता दर्शन सिद्धांत पर आधारित है । हाब्स के अनुसार औरों की अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता का ध्यान हमें आता है तब एक प्रकार का "मैं मैं" (I, I, Igoism) भाव उत्पन्न होता है तब हास्योत्पत्ति होती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि हाब्स अरस्तू से आगे निकल गए हैं ।

इस सिद्धान्त के दोषों पर प्रकाश डालते हुए डा.बरसाने लाल चतुर्वेदी यों लिखते हैं' वास्तव में यह सिद्धान्त एकांकी है । मनुष्य इतना दुष्ट प्रकृति का जीव नहीं जो सदा ही दूसरों के पतन में अपने गुरुत्व का अनुभव करे । इससे तो यह प्रमाणित होता है कि हम अपने शत्रुओं की भूलों पर खूब हँसेंगे और अपने मित्रों की भूलों पर कदापि नहीं[2] । हँसी और सहानुभूति के बीच घनिष्ठ संबन्ध है । इस मत के दोषों पर डा.सरोज खन्ना के ज़रा सुनिए' उत्कर्ष - दर्शक उल्लास से गर्व की सृष्टि हो सकती है, हास्य की नहीं । और यह कहने की आवश्यकता भी नहीं कि गर्व तथा हास्य परस्पर विरोधी भाव हैं[3] ।

प्रो.एलेक्जेन्डर बेन ने इसी सिद्धांत को थोड़ा और कुछ परिष्कृत करके प्रस्तुत किया । वह यों है लघुता दर्शन ऐसी परिस्थिति में नहीं होनी चाहिए जिसमें गंभीर अथवा आवेशयुक्त विचारों के उत्पन्न होने की संभावना हो ।

- -

1. The passion of laughter is nothing else but sudden glory arisi from a sudden comparison with the infirmity of others, or with our own formerly' - Hobbes.

   हिन्दी साहित्य में हास्य रस से उद्धृत - पृ.56

2 वही वही पृ.57
3 हिन्दी कविता में हास्य रस पृ.32 डा.सरोज खन्ना

(2) **असंगति के निरीक्षण**

स्पेन्सर हास्योत्पत्ति का दूसरा सिद्धांत स्पेन्सर के असंगति निरीक्षण का है । उनका कहना है कि हास्य का मूल कारण अधोन्मुख असगति (Perception of descending in congruity) है । हमारी चेतना की, उत्कर्ष से अपकर्ष की ओर उन्मुख होनेवाली गति ही हास्य का कारण है, यही उनके तत्व का सार है । 'हास्य की स्वाभाविक उत्पत्ति उस समय होती है, जब बोध ज्ञान बडी वस्तु से छोटी वस्तु की ओर आकर्षित होता है, जिसे हम अधोन्मुख संगति कहते है[1] । इसके विपरीत उत्तरोत्तर असंगति होती है जिससे हास्य की उत्पत्ति न होकर आश्चर्य भाव की उत्पत्ति होती है । इस अधोन्मुख असंगति के दृष्टांत के रूप मे बर्गसाँ यो कहते है 'एक अभ्यागत बैठक मे घुसता हुआ, चायका प्याला लिए हुए एक महिला से टकरा जाता है, उसका प्याला एक बूढे व्यक्ति पर उलट जाता है, जिसके (बूढे के) खिडकी से टकराने पर उसका शीशा टूट कर राह पर चलते हुए पुलिसमैन पर गिरता है, वह शोर मचा अपने साथियो को बुला लेता है[2] ।

स्पेन्सर के इस सिद्धांत के दोष व्यक्त है । असंगति सदैव हास्य का कारण नही होती । हास्य को जन्म न देनेवाली तथा अन्य दूसरे भावो को जन्म देने वाली कई असंगतियां जीवन मे उत्पन्न होती है । सज्जन मनुष्य पर अत्याचार होते समय, किसी शिक्षित व्यक्ति को बेकार मारा मारा फिरते समय, हममे क्रोध एवं करुणा के भाव उत्पन्न होते है न कि हास्य ।

---

1. 'Laughter naturally results only when consciousness is unaivarely transferred from great things to incogngruity.... In the case of ascending congruity there is no laughter and the emotion we call wonder results' Laughter - Spencer.

2. A caller rushing violently into a drawing room, Knocks again a lady who upsets her tea cup over an old gentleman who slip into a glass window, which falls on a constableb head, who sets the pblice force agog. etc.'

Laughter - Bergson. p.81

हाब्स तथा स्पेन्सर के सिद्धांतो की तुलना डा.बरसानेलाल चतुर्वेदी यो करते है 'हाब्स द्वारा जो कारण दिया गया है, उसमें और स्पेन्सर द्वारा दिये गये कारण में कोई ऊपरी भेद दिखाई नहीं देता । किन्तु तात्विक दृष्टि से गहराई में जाकर विश्लेषण किया जाय तो अन्तर स्पष्ट हो जायगा । हाब्स ने हास्य का कारण उस उल्लास को माना है जो अपने उत्स के पूर्व कमज़ोरियों की तुलना करने पर होता है । जबकि स्पेन्सर उल्लास के विषय में मौन है'[1]।

(3) विपरीतता - हास्योत्पत्ति का कारण

अंग्रेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक विल्यम् हेजलिट ने हास्योत्पत्ति के लिए विपरीतता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया । यह सिद्धांत स्पेन्सर के सिद्धांत से मिलता जुलता है । मनुष्य न होकर मानवीय कृत्य करने वाली कठपुतली हास्य को उत्पन्न करती है । सारहीन काठ के टुकड़े को राजा या मंत्री का गौरव देने में हास्य की जड़ है[1]। आधुनिक मनोवैज्ञानिक मैकडुगल महोदय हैसलिट से भी कुछ आगे बढ़ गए हैं । उनका कहना है कि ज़रा ज़रा सी बात पर दुखी होनेवाले मनुष्य को बचाने के लिए हास्य की योजना हुई है । भूल ही मनुष्य के दुखी का कारण है । ज़रा ज़रा सी भूल या विपरीतता पर वेदना अनुभव करने लगेंगे तो जीना दुष्कर हो जायगा । मैकडुगल साहब ने विपरीतता को व्यापक बना दिया । गुदगुदाने से उत्पन्न हंसी के कारण के रूप में वे मानते हैं कि मनुष्य ज़रा से पंख अथवा उंगली के संचालन को सहन नहीं कर सकता ।

यह तत्व भी अपने में पूर्ण नहीं । सभी प्रकार की हंसी का मूल वेदना नहीं । वेदनाशून्य हास्य भी हो सकता है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मैकडुगल की व्याख्या संकीर्ण हो पड़ी है ।

---

1 हिन्दी साहित्य में हास्य रस पृ.57 डा.बरसानेलाल चतुर्वेदी

2. 'The essence of the laughable then is the incongruous, the disconnecting one idea from another or jostling of one feeling against each other'. W. Hazlitt.

(हिन्दी कविता में हास्य रस - सरोज खन्ना पृ.27 से उद्धृत ।)

(4) असमानता -

शोपनहॉवर महाशय ने कुछ आगे बढ़कर बताया है कि अपनी कल्पना में आयी हुई तथा वास्तविक वस्तु में किसी प्रकार की असमानता देखकर हास उत्पन्न होता है । किन्तु 'यह विचार पूर्ण संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अपनी कल्पना और विषय वस्तु की समानता का अभाव हमारे हृदय को केवल तभी प्रसन्नता देता है जब हम किसी लक्ष्य - विशेष को न जाते हुए निरपेक्ष कल्पना करते हैं[1] । साकांक्ष कल्पना की असमानता हमें एक धक्के के समान लगती है, विषाद और करुणा को जगाती है, हास्य को नहीं । अतएव असम्बद्धता के गुण-दोष का विचार केवल योजना-हेतु और उसके परिणाम को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए । शापेनहॉवर का यह मत इसलिए भी बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि यह असमानता के अतिरिक्त उद्भूत परिस्थितियों में जनित हास्य का विचार नहीं करता । यदि इस सिद्धान्त को इस रूप में ग्रहण करें कि हमारे चित्त में उन्हीं वस्तुओं की कल्पना उत्पन्न हुआ करती है, जो प्रतिछवि अंकित किये रहती है और उनकी कल्पना तथा विषय वस्तु में असमानता देखकर हमें हँसी आती है, तो भी उसे युक्तियुक्त एवं पूर्ण सिद्ध न किया जा सकेगा, क्योंकि ऐसा मानने से मानवीय कल्पना-शक्ति पर नियंत्रण सिद्ध होता है और फिर भी उन स्थितियों का समाधान नहीं हो पाता जिनमें किसी विदूषक की बातों पर हमें हँसी आती है । हमारे मन में पहले से उसकी कोई प्रतिछवि अंकित नहीं रहती कि उसकी आकस्मिक असमानता से हमें हँसी आ जाती है ।

(5) यान्त्रिक क्रिया सिद्धान्त

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक हेनरी बर्गसां ने अपनी पुस्तक Laughter (Le Rire) में हास्य क्या है ? हँसी क्यों आती है ? आदि प्रश्नों को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से हल करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है । उन्होंने लिखा है जब मनुष्य अपनी नैसर्गिक स्वतंत्रता को छोड़कर यंत्र की तरह काम करने लगता है तब हास्य का विषय बन जाता है । जैसे यदि कोई मनुष्य रास्ता चलते चलते फिसल पड़े तो वह लोगों की हँसी का भाजन बन जाता है । मनुष्य तभी

---

1 रस - सिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण पृ. 336 - डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित

गिरता है जब वह अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता को भूलकर जड मशीन की भांति आचरण करने लगता है। यह भी एक तरह की विपरीतता है। मनुष्य अपने स्वभाव से विपरीत चलता है[1]। उनके अनुसार 'हास्य के आलम्बन को समाजप्रिय न होना चाहिए, हंसनेवालों को उसका ज्ञान न होना चाहिए एवं घटना, शब्दावली और पात्र में यांत्रिक क्रिया (Automatism) आवश्यक है। बर्गसाँ का यह सिद्धांत आवृत्ति (Repetition) एवं विपर्यय (Inversion) पर आधारित है जो जीवित को यन्त्र के समान जड बना डालता है[2]। बर्गसाँ का मत सत्य के बहुत निकट प्रतीत होता है। 'हास्य की भावना समष्टि-निष्ट है। अतः हास्य के आलम्बन के लिए विशेष शर्त है कि वह समाजप्रिय न हो। यदि आलम्बन को समाजप्रियता प्राप्त हुई तो अनेकों असंगतियों के बावजूद भी वह हमारे हास्य उद्रेक में सहायक न हो सकेगा[3]।

बर्गसाँ के सिद्धांत में, पिछले के सभी सिद्धांतों का सार तथा मौलिकता दोनों का सम्मिलित रूप हम देखते हैं। हास्य के तीन कारणों पर उन्होंने विश्लेषण किया है :-

- -

1. A man running along the streets, stumbles and falls, the passers by burst out laughing. They would not laugh at him I imagine, could they suppose that the whim had suddenly seized him to sit down on the ground. We laugh because his sitting down is unvoluntary....... Now take the case of a person who attends to the petty occupations of his every day life with mathematial precisio ...... The laughable elements in both cases consists of a certain mechanical inelasticity, just where one would expect to find the wide awake adaptability and the living pliableness of a human bei
Laughter by Hery Bergson. pp.9 & 10.

2. Insociability on the part of the object laughter, insensibility c the part of the laughter and the certain automatism in the situation in the words or in character'. Laughter - Bergson.

3. Society will therefore be suspicious of all inelasticity of character of mind and even of body, because it is the possible sign of a slumbering activity as well as of an activity with separatist tendencies that inclines to severe from the common centre round which society gravitates ; Anz short, because it is the sign of an eccentricity'.
Laughter by Henry Bergson. p.19.

(1) आलम्बन का समाजप्रिय न होना ।

(2) आलम्बन का अनभिज्ञ या अचेतन होना ।

(3) यान्त्रिक क्रिया ।

समाजप्रिय व्यक्ति विविध असंगतियों के होते हुए भी हास्य का आलम्बन नहीं हो सकता । लेकिन 'चोर के घर गठकटा' मनोरंजक है क्योंकि चोर समाज के लिए प्रिय नहीं । बर्गसाँ का दूसरा कारण है आलम्बन का अचेतन होना[1] । स्वयंवर सभा में अपने 'बन्दरमुख' के बारे में अनभिज्ञ होकर बैठनेवाला, नारद इसका अच्छा उदाहरण है । बर्गसाँ का तीसरा का 'यान्त्रिक क्रिया' मामूली जीवन में देखी, सुनी, अनुभवी बात है । यह दो प्रकार की है, शारीरिक और वाणीगत । शारीरिक यान्त्रिक क्रिया का एक उदाहरण बाबू गुलाबराय के शब्दों और आशय में यों है 'फोन पर एक पुलीस इन्सपेक्टर साहब बात कर रहे थे । दूसरे छोर पर सुपरिन्टेन्ड साहब ने कहा कि मैं एस.पी.बोल रहा हूं । तुरन्त इन्सपेक्टर साहब का हाथ ऊपर उठकर फौजी मुद्रा में हो गया । देखने वाले हंस पड़े'[2] ।

एक ही वातावरण में रहने के कारण और एक ही कार्य करते रहने के कारण मशीन की भी जड़ता दूर रहती है । इसी कारण से भारतीय नाट्यशास्त्र में विदूषक को और पाश्चात्य रंगमंच पर fool या clown को स्थान दिया गया । वे अपनी रहन-सहन, वेष-तथा रंग-ढंग से हास्योत्पत्ति करते हैं ।

(6) <u>विफल आशा -</u>

काण्ट महाशय विफल आशा को ही हास्य का कारण मान बैठे । काण्ट ने बताया कि दीर्घकाल से उठी हुई किसी अपेक्षायुक्त कल्पना के आकस्मिक अनस्तित्व से जो मनोविकार उत्पन्न होता है वही हास है । निश्चय ही इस सिद्धान्त के द्वारा काण्ट विषयगत असम्बद्धता अथवा असंगति या वैषम्य-सिद्धान्त को हास्य का कारण सिद्ध करना चाहते हैं, किन्तु केवल

- -

1. To realise this more fully, it need only be noted that a comic character is generally comic in proposition to his ignorance of himself. The comic person is unconscious'.
Laughter p.16. Henry Bergson.

2. हिन्दुस्तान - व्यंग्य विनोद विशेषांक - 28 मार्च 1958 'रसराज हास्य और उसके विभिन्न स्वरूप' लेख - बाबू गुलाब राय ।

विफलता के द्वारा हास्य का प्रादुर्भाव प्रायः संभव नहीं होता और उससे तभी अपने को हंसी आ सकती है जब कोई हानि होने के स्थान पर केवल अपनी मूर्खता का किंचित प्रदर्शन ही होकर रह जाय । यदि विशेष हानि होती दिखाई पड़ेगी तो, विफलता हास्यकारक न होकर क्षुब्धोत्पादक होगी । कभी कभी अप्रत्याशित रूप से हानि शून्य विफलता सामने आने पर आश्चर्य भी उत्पन्न होता है, जिससे अद्भुत की व्यंजना हो सकती है । कान्ट का यह दृष्टिकोण बहुत सीमित है और मानसिक क्षेत्र से बाहर परिस्थितियों पर ध्यान नहीं देता[1] ।

(7) <u>शरीर की अतिरिक्त शक्ति - हास्य का कारण -</u>

शरीर वैज्ञानिकों के मतानुसार हास्य का एक कारण शरीर की अतिरिक्त शक्ति है । उनका कथन है कि मनुष्य अपने शरीर तथा मस्तिष्क में इकट्ठी अवश्यकता से अधिक शक्ति का व्यय खेल, हंसी आदि क्रियाओं के द्वारा करते हैं । डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी एक अच्छी उपमा के द्वारा इसे यों प्रस्तुत करते हैं 'जिस प्रकार एक इंजन के बॉयलर में जब बहुत भाप जमा हो जाती है तो सेफ्टी वाल्व को खोलकर उस अनावश्यक शक्ति को निकाल दिया जाता है । उसी तरह हंसी के द्वारा हम अपनी उस अधिक शक्ति को निकाल देते हैं जिसको हमारा शरीर या मन वहन नहीं कर सकता है'। इस अनावश्यक शक्ति के न निकाले जाने से जो मानसिक अस्वस्थता पैदा होती है सिर्फ हंसी के द्वारा उससे बचा जा सकते हैं ।

(8) <u>क्रीड़ा सिद्धांत -</u>

क्रीड़ा सिद्धांत के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि बाल्यकाल से ही सभी प्राणियों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है और इसकी स्थिति किसी-न-किसी रूपों में वृद्धों में भी बनी रहती है । बालकों और कबूतरों की उछल कूद, प्रौढ़ों और वृद्धों की अठखेलियां, युवकों और युवतियों की चुहल, लुका-छिपी, भाग-दौड़, छद्मवेश, कुटिल कार्य आदि सभी में यही क्रीड़ा-प्रियता काम करती जान पड़ती है और इसीसे हास्य उत्पन्न होता है । इस सिद्धांत के अन्तर्गत इसके

---

1 रस - सिद्धांत : स्वरूप - विश्लेषण - पृ. 336
डा. आनन्दप्रकाश दीक्षित

पोषकों ने गंभीर स्थितियों में उत्पन्न हास्य, अश्लील अथवा अशिष्ट के प्रति उत्पन्न हास्य आदि सभी को समेट लेने का प्रयत्न किया है । फिर भी क्या यह कहा जा सकता है कि मानव जीवन के समस्त क्षेत्र और क्रिया-कलाप केवल क्रीडा सिद्धांत के द्वारा सचमुच विचारणीय ठहरते हैं और क्या उनमें तनिक भी घृणा या विद्वेष अथवा सहानुभूति का लक्षण नहीं मिलता ? उपहास के समय, शत्रु को अपने सामने विवेश भाव से विनत खड़े देखकर अथवा ऐसे ही अन्य समयों पर हमारा मन क्या केवल क्रीडा की भावना से ही भरा रहता है, अपने गौरव-गर्व से भरपूर नहीं रहता ?

उदाहरण के लिए वर्मेसा Jack in the box[1], Dancing Jack[2], Snow ball आदि खिलौनों के बारे में बताते हैं ।

(9) दया की प्रत्यौषधि -

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक William Mc Dougall ने 1923 में An outline of Psychology नामक एक ग्रंथ रचा जिसमें हास्य की विवेचना आधुनिक विज्ञान की रोशनी में की है । उन्होंने हँसी को दया की प्रत्यौषधि के रूप में देखा है । मैकडूगल महोदय के अनुसार हास्य मनुष्य को अतिदुख से रक्षा करने का एक प्राकृतिक विधान है । जब कोई हास्यास्पद वस्तु को हम देखते हैं तब हमारे अन्दर दबी हुई सहानुभूति प्रकट हो जाती और हमें दुखित होने से बचाती है । यदि प्रकृति हमें हास्य जैसी वरदान नहीं देती तो हास्य के आलम्बनों को देखकर हम रो पड़ते ।

- -

1 Jack in the Box भी एक खिलौना है । यह खिलौना एक पेटी है; अन्दर जितना भी दबाए, बाहर कूद पड़नेवाली एक कठपुतली की क्रीडा ही मनोरंजन देती है । दब न दबनेवाले मानवसहज विकारों का प्रतिनिधि है यह ।

2 धागों के सूत्रधारत्व पर नाचने वाली एक पुतली है Dancing Jack
हम सब लोगों और कुछ लोगों के (कोई नहीं है तो ईश्वर) के हाथ की कठपुतली हैं

मैक्डूगल महोदय के अनुसार मानव जब कुण्ठित भावों में डूबने लगता है तब हास्य उन कुण्ठित भावों से छुटकारा दिलाता है ।

(10) <u>उपचेतना में दबे हुए भावों के कारण</u> -

आधुनिक मनोविश्लेषण (Psycho - analysis) शास्त्रियों का सिद्धांत है यह हमारे मन में कुछ लोगों से घृणा है, लेकिन सामाजिक भय के कारण उस घृणा का प्रदर्शन खुले तौर पर हम नहीं कर सकते । यह दबा हुआ भाव अनुकूल अवसर पर सुन्दर वेष धारण कर बाहर आता है, इस प्रकार हास्य की उत्पत्ति होती है ।

हास्योत्पत्ति पर फ्रायड का मत इस प्रसंग पर चिन्तनीय है । फ्रायड ने अपनी श्रेष्ठ रचना Wit and It's relations to the unconscious में हास्योत्पत्ति पर आधुनिक मनोविज्ञान के प्रयोगिक मार्ग द्वारा प्रकाश डाला है । फ्रायड के मतानुसार हास्योत्पत्ति मस्तिष्क के उपचेतन भाग से होती है । उनका कथन है कि मनुष्य में कुछ कुंठित कामवासना मस्तिष्क में एकत्रित होती रहती है जो कि सामाजिक तथा अन्य परिस्थितियों के कारण दबी रहती है । अनुकूल अवसर पाकर यह दबी शक्ति हास्य के रूप में प्रकट होती

लेकिन इस सिद्धांत में हास्योत्पत्ति से संबन्धित कोई तथ्य नहीं निकलता । अतः समीक्षक इसे तथ्यहीन और अतार्किक मानते हैं ।

<u>निष्कर्ष</u> :

अब हमने हास्योत्पत्ति पर भारतीय और पाश्चात्य पण्डितों के सिद्धांतों को जानने की कोशिश की है । भरतमुनि, धनंजय, विश्वनाथ, शारदातनय, अभिनवगुप्त आदि प्राचीन आचा के मतों पर विचार किया गया । हाब्स, हरबर्ट स्पेन्सर, बर्गसाँ, मैक्डूगल, फ्रायड, अरस्तु

आदि पाश्चात्य विद्वानों के विभिन्न दृष्टिकोण भी हमने समझा। ये निष्कर्ष शताब्दियों के मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान के फलस्वरूप हैं। इन पाश्चात्य सिद्धान्तों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से कोई भी तत्व अपने में पूर्ण नहीं। बर्गसाँ के अनुसार हास्य एक ऐसी मानवीय प्रवृत्ति है जिसकी संपूर्ण जीवन में गति है। अतः जीवन के विकास के साथ साथ हास्य के क्षेत्र का विकास भी हुआ है। मानवता के विकास के साथ हास्य के दृष्टिकोण भी बदलते हैं। आज किसी का अपकर्ष देखकर हम हँसते नहीं। लेकिन वो सदी पूर्व मनुष्य अपने उत्कर्ष पर हँसता था। काने कोन कुबड़े लंगड़े लाले लूलों को देख कर हँसने की वह असभ्यता अब हममें नहीं। अतः मानव जीवन की प्रगति के साथ साथ हास्य संबन्धी धारणाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हास्य के आलम्बन अब वह वे नहीं रहे जो वर्षों के पहले थे।

डा. बरसानेलाल ने हास्योत्पत्ति के पाश्चात्य और भारतीय दोनों मतों पर विचार करते हुए निष्कर्ष रूप में हास्य के आलम्बन के इन पाँचों रूपों का उल्लेख किया है (1) शारीरिक गुण (2) मानसिक गुण (3) घटना, कार्यकलाप (4) रहन - सहन (5) शब्दावली। डा. चतुर्वेदी के इस कथन में अस्पष्टता की झलक है। शारीरिक गुण, मानसिक गुण, घटना आदि तो सभी भावों - करुणा, प्रेम के प्रेरक तत्व होते हैं, फिर हास्य रस के आलम्बन में कौन सी विशेषता होती है - इसका स्पष्टीकरण उन्होंने नहीं किया। हमारे विचार से हास्य के आलम्बन में स्वाभाविकता, असंगति एवं विद्रूपता का एक ऐसा मधुर समन्वय होता है कि वह न तो इतना तीखा होता है कि उससे अनिष्ट की आशंका हो जाय और न ही इतना कोमल होता है कि वह करुणोत्पादक है। उदाहरण के लिए यदि एक भिखारी ने अपने शरीर को शीत से बचाने के लिए अस्त-व्यस्त कपड़े पहने हों तो उससे हास्य का उद्रेक न होकर करुणा की उत्पत्ति होगी; जबकि एक धनी पुरुष ने यदि कोट उलटा पहन रखा हो तो वह हास्योद्रेक का कारण हो सकता है।

- -

1 हिन्दी साहित्य में हास्यरस - पृ.
डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी।

अस्तु, समस्त सिद्धांतो पर ध्यान देने से ऐसा लगता है कि सामाजिक धरातल के परिवर्तन के साथ साथ मानवीय मूल्यो मे जो परिवर्तन आए है, उनको देखते हुए बर्बर युग के विजय-दर्प से उत्थित हास और परवर्ती काल के सहानुभूमि आदि अनेक कारणो पर आश्रित हास्य को किसी एक कारण से उत्पन्न नही माना जा सकता । सभी सिद्धांत जीवन के प्रायोगिक पक्ष पर निर्भर करते है, और जीवन सामाजिक मूल्यो के साथ चलता है । हास्य स्वयं सामाजिक महत्व रखता है, अतएव उसका विचार वैयक्तिक भूमि पर नही, सामाजिक परिवर्तन के आधार पर किया जाए तो उसे किसी एक सिद्धांत से बांधा नही जा सकता । इस प्रकार असंगति और अनौचित्य उसके सहज-प्रसारक जान पडते है और सभी सिद्धांतो की मूल भित्ति माने जा सकते है । असंगति केवल व्यवहार की ही नही, वाणी की भी होती है । और विचारो की भी । इसी प्रकार अनौचित्य सामाजिक मूल्यो का ध्यान रखकर निर्धारित किया जाता है । इस रूप मे इन सिद्धांतो से हम हास्य के व्यावहारिक, सामाजिक तथा मानसिक स्तरो का विचार कर सकते है और प्रसंग तथा परिस्थिति का महत्व बनाए रख सकते है ।

जीवन मे हास्य का महत्व -

जीवन मे हास्य के उपयोग और महत्व को अनेक स्वदेशी[1] और विदेशी[2] लेखको ने

। (क) जो मनुष्य अपने जीवन मे कभी नही हंसा, उसकेलिए निम्नांकित संवाद की शब्दावली मे कहना पडेगा - 'वृथा गतं तस्य नास्य जीवनम् । वह मनुष्य नही, पुच्छ - विषाण-हीन द्विपद पशु है क्योंकि हंसना मनुष्य का विशेषाधिकार है ।'
(हिन्दी नाटको मे हास्य तत्व - डा. शान्ता रानी - पृ. 8)

(ख) 'सामाजिक जीवन निरन्तर अस्त - व्यस्त होता आ रहा है । समस्याएं इन्द्रजाल की भांति परस्पर गुंथती चली जा रही है । सुख और शान्ति का छोर खोजने से भी न मिलता ।.... साहित्य की क्रीड मे हास्य एक अवलम्बनीय विषय रहा है जिससे समाज का कलुष बिना प्रयास के निष्कार रहित हो गया ।.... हास्य अमृत की भांति जीवन की संजीवनी प्रदान करता रहा है'।

हिन्दी नाटको मे हास्य तत्व - प्रस्तावना — डा. रामकुमारवर्मा

मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है । हिन्दी में हास्यरस पर शोध - ग्रंथ प्रस्तुत करनेवाले डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी ने हास्य की उपमा लवण से देते हुए हास्य की महत्ता साबित की है[1]। लेकिन इस उपमा पर मतभेद है[2]। हास्यबोध की उपमा चीनि से हुई है[3]। जीवन के आस्वादन के लिए परिमित हँसी अवश्यक है ।

हास्य और विनोद का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है :-

(1) व्यक्तिगत दृष्टि से

(2) सामाजिक दृष्टि से

- -

(b) To be happy the temperament must be cheerful and gay no gloomy and melancholy. A propensity to hope and joy is real riches, one to fear and sorrow is real poverty.'
HUME

(c) 'Cheerful looks make every dish a feast and it is that which founs a welcome'. Massinger.

(d) A merry heart maketh a cheerful countenance'
Oliver Wendel Holmes.

(e) 'To the one man, the world is barren, dull and superfic to another rich interesting and full of meaning'.
Schopenhaver

Select Quations pp.12.13. Indian National publishing C
Delhi.

हँसना मनुष्य का स्वाभाविक लक्षण है । भोजन में विविध भाँति के व्यंजनों का समावेश होने पर भी यदि उसमें लवण का अभाव हो तो सारा भोजन लावण्यहीन फीका पड जाता है, उसी प्रकार जीवन में समस्त वैभव के होते हुए भी यदि हँसी का अभाव हो तो जीवन भार स्वरूप बन जाता है । हिन्दी साहित्य में हास्य रस-हास्य को लवण की भाँति बताकर उसके साथ पूरा न्याय नहीं किया गया । लवण से
ता भी आ जाती है, जबकि हास्य तो मिश्री की भाँति माधुर्यपूर्ण स्वाद
होता है । साहित्यक निबन्ध - पृ.577 - डा. गुप्ता

में चीनि के समान है, सब्जी में नमक के समान है। ठीक अनुपात
रुचिपूर्ण है ।

साहित्य - पृ.19 - पुत्तोवत्तु रामनमेनोन

(1) व्यक्तिगत दृष्टि से

हास्य के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनेक उपयोगी गुणों का विकास होता है[1]।

सब से पूर्व, शरीर विज्ञान की दृष्टि से सोचें तो यह स्वास्थ्य को सुधारनेवाला सिद्ध होता है। श्री केलकर के शब्दों में जिस समय मनुष्य नहीं हँसता उस समय श्वासोच्छ्वास की क्रिया सीधी और शान्त रीति से होती है और हँसने के समय उसमें एकदम व्यत्यय हो जाता है। परन्तु उस व्यत्यय का परिणाम श्वासोच्छ्वास की इन्द्रियों और शरीर के स्वास्थ्य पर अच्छा ही होता है[2]। डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी के मतानुसार हास्य मानव शरीर में नया जीवन, नवीन शक्ति और नूतन स्वास्थ्य का संचार करता है[3]। इसके अतिरिक्त हास्य का एक अप्रत्यक्ष प्रभाव भी है। जब मनुष्य हँसता है तो उसके मस्तिष्क पर रक्त का दबाव कम पड़ता है।

हास्य के कारण आत्मसुधार भी होता है। हास्य एक प्रकार का प्रकाश उत्पन्न करता जिससे बुराइयाँ रूपी अन्धकार नष्ट होता है। दूसरों पर हँसनेवाला मनुष्य उस उजाले से अपनी बुराइयों को भी देख सकता है। जिन असंगतियों पर हम दूसरों पर हँसते हैं यदि आत्म-निरीक्षण करके अपनी असंगतियों पर भी हँसे तो हमारा कल्याण हो सकता है। व्यंग्य वाणी से परेशान होकर हमें आत्मसुधार करना पड़ता है। हमारे जैसे दुर्गुणी अन्य लोगों को सुधरते देखकर स्वयं सुधरने की आवश्यकता हमें भी महसूस होती है।

---

1. (a) Always laugh when you can, it is a cheap medicine Merriment is the sunny side of existance'. Byron

   (b) 'Cheerfulness is health, its opposite, melancholy, is disease'. Hali Burton

   (c) 'Laugh and grow fat'
   Slected Quatations pp.12.13. I.N.P. House, Delhi.

2 हास्यरस - मूल - श्री केलकर - अनुवाद श्रीरामचन्द्र वर्मा - पृ. 147

3 हास्य प्रकृति की सबसे बड़ी पुष्टई है। हास्य से बढ़ कर बलवर्द्धक और उत्साहवर्द्धक और कोई चीज़ हो ही नहीं सकती।

- हिन्दी साहित्य में हास्यरस - पृ. 13

कष्ट सहिष्णुता हास्य की बड़ी देन है । जीवन के सब घावों पर लगा जा सकनेवाला मरहम है हास्य । यदि हम में विनोदशीलता होगी तो हम सांसारिक कठिनाइयों और संकटों के अवसर पर उसे हंसकर टाल सकते हैं । जीवन पथ में प्रायः अनेक ऐसे ऊबड़-खाबड़ स्थान मिलते हैं जिनमें लोगों को ठोकरें, धक्के और झटके लगते हैं । हास्यप्रिय व्यक्ति इन ठोकरों और धक्कों आदि का कुछ भी अनुभव नहीं करते¹ । ऐसे लोगों की जीवन यात्रा सुगम तथा सुखपूर्ण होती है ।

हास्यप्रियव्यक्ति के स्वभाव में कोमलता और सरलता आती है। प्रसिद्ध तत्ववेत्ता कार्लाइल के मतानुसार 'जिस व्यक्ति ने एक बार सच्चे हृदय से खुलकर हंस लिया वह कदापि अत्यन्त बुरा नहीं हो सकता । प्रसन्नचित्त व्यक्तियों के हृदय में कोई बुराई नहीं रह सकती² । विनोदी मनुष्य स्वयं भी प्रसन्न रहता है और दूसरों की प्रसन्नता का कारण भी होता है । अंग्रेजी कवि टैनिसन ने कहा है कि गृहस्थी में अच्छा हास्य सूर्योदय के समान है । जो अध्यापक विद्वान होने के अतिरिक्त विनोद प्रिय भी है, वह शिष्यों के लिए सब से अधिक प्रिय और मान्य होता है । विनोदी व्याख्यानदाता के आगे श्रोतागण मंत्रमुग्ध सा रहते हैं । समर्थ राजनीतिज्ञ, तत्ववेत्ता, व्यवहार चतुर अफसर सब विनोद प्रियता का सहारा लेते हैं³ । संक्षेप में विनोद प्रियता के कारण हम सब कहीं आदर पाते हैं । महादेवी वर्मा जी के शब्दों में रोने की कला

- -

1. (a) The coming of a smile announces a shifting of the point of view, the maladjustment which a movement ago seemed to be wholly on the side of the world showing itself now to be on our side as well. Essay on Laughter - James sully. p.329
(b) Life is a comedy to those who think and a tragedy to those who feel'. Horoswal paul.
(c) 'A man without mirth is like a waggon without springs, in which one is caused disagreeably to jolt by every pebble over which it runs'. Beecher. Selected Quatations. p.102
(d) 'In this sad mad world of ours making fun is one of the most profitable professions'. Good Reading - p.139. W.Stanley Moore (Menton Books 1952 Edn. New York)
2. 'No man who has once wholly and heartily laughed can be altogeth irreclaimably bad. In cheerful souls; there is no evil. Carlyle.

3. 'Good humour is one of the best articles of dress one can wear in the society'. Thackergy.

लेकर तो आदमी उत्पन्न हुआ है, सीखनी तो उसे हँसने की कला है । क्या शिक्षा जगत, क्या परिवार क्या राजनीति जीवन के सब क्षेत्रों में हास्य हमारा सहायक है । हास्य ही मानवजीवन को सह्य बनाता है[1] ।

(2) सामाजिक दृष्टि से -

हास्य की सामाजिक महत्ता श्रेष्ठ है । 'हास्य ही एक सुन्दर अस्त्र है जो मानव को सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति जागृत करता है[2] । समाज की आत्मा सजग, सजीव तथा गतिशील रहती है और सदैव प्रतिकूल आचरण करनेवाले के प्रति सजग रहती है । हास्य के सफल सहयोग द्वारा उसमें विशृंखलता उत्पन्न नहीं होने देती । हास्य सामाजिक जीवन की विशृंखलताओं को एक सफल हथियार है । समाज में उत्पन्न हुई बाधाओं को तथा कठिन समस्याओं को ही हम हास्य द्वारा सुलझाते हैं ।

समाजसुधारक का अच्छा माध्यम तथा श्रेष्ठ साधन है हास्य । व्यंग्य के कोड़े से समाज की बड़ी बड़ी विकृतियाँ दूर हो जाती हैं । असामाजिक व्यक्तियों, समाज में प्रचलित कुरीतियों आदि को मिटाकर सुधार लाने में हास्य व्यंग्य का बड़ा हाथ है । 'वास्तव में समाज के मैल के लिए हास्य साबुन का कार्य करता रहा है[3] । श्री.जी पी श्रीवास्तव का कथन है कि बुराई छुपी पापों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा जंगाजल नहीं । विश्वसाहित्य से चुने हुए हास्यमय वारों को एक एक करके गिनकर श्रीवास्तव यह साबित करते हैं कि हास्य शक्तिशाली है[4] ।

1 जिस मनुष्य में हास्य की मात्रा नहीं, उसका जीवन असह्य हो जाता है । ऐसे मनुष्य से लोग बचने लगते हैं ।....... गांभीर्य का भार बहुत काल तक सहन नहीं कर सकता । इसीलिए नाटककार लोग गांभीर्यपूर्ण दृश्यों के साथ स्थान स्थान पर हास्यपूर्ण दृश्यों का समावेश कर देता है । नवरस - पृ.404 - बाबू गुलाबराय ।

2 हिन्दी नाटक में हास्य तत्व - पृ.91 - डा.शान्तारानी

3 हिन्दी साहित्य में हास्यरस - पृ.17 - डा.बरसानेलाल

4 हास्य वह हथियार है जो बड़े बड़ों के मिज़ाज चुटकियों में ठीक कर देता है । यह वह कोड़ा है जो मनुष्यों को सीधी राह से बहकने नहीं देता । .. स्पेन के सर्वेंटीज ने डानक्यूजोट (Don Quixote) की रचना करके यूरोप भरके बुढ़ाई फौजदारों की हस्ती मिटा दी । इंग्लैंड के शेक्सपियर ने अपने द्वारा सूदखोरों की हुलिया बिगाड़ दी । .... हास्यरस - पृ.12 - जी.पी.श्रीवास्तव

मानव के मनोरंजन मे भी हास्य का बडा स्थान है । हास्य के द्वारा मानव को आनन्द की प्राप्ति होती है । डा.गुलाब राय के शब्दो मे 'हास्य प्रत्याशित से विलक्षण एक सुखद - वैचित्र्य को उत्पन्न कर हमारी एकान्तता संबन्धी दुख को किसी अंश मे दूर करता है । हास्योक्ति चुटकुलो और परिहासमय अनुकरणो मे पिटी हुई लकीर से कुछ हटी हुई बात होती है । इसलिए उनके सुनने से प्रसन्नता होती है[1]। हास्य ही हमारे जीवन मे सुख संचार करता है तथा जीवन को सरस बनाता है । मानव कितना ही चिन्तित एवं दुखित क्यो न हो, हास्य की फुहार उसके कानो मे पडते ही वह प्रसन्न चित्त हो उठता है, चाहे वह क्षणिक ही क्यो न हो ?

संक्षेप मे मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हास्य का विलक्षण प्रभाव पडता है । हास द्वारा मानव की शारीरिक एवं मानसिक थकान दूर हो जाती है । प्रसन्न रहने से आत्मा को बल प्राप्त होता है[2]। हास्य मन की अवसन्नता को दूर करता है, उसे स्फूर्ति और ताजगी प्रदान करता है । साहित्यकार अपनी रचना के गंभीर वातावरण को जरा हलका करने केलिए ही बीच बीच मे हास्य का उपयोग करता है । हास्य का प्रयोजन निरंतर को गंभीरता से आक्रान्त मस्तिष्क को स्वस्थ सजीव बनाना है[3]। हास्य ही हमारे जीवन को मधुर एवं संगीतमय बनाता है । निराशा रूपी अन्धकार मे पडे हुए व्यक्ति को हास्य ही प्रकाश प्रदान करता है । जीवन की उलझनो से थके मांदे व्यक्तियो के लिए हास्य घने वृक्ष की शीतल छाया है । 'समाज के चलते जीवन के किसी विकृत पक्ष को या किसी वर्ग के व्यक्तियो की बेढंगी विशेषताओ को हसने हसाने योग्य बनाकर[4] प्रस्तुत करने वाले हास साहित्य के बारे मे शुक्लजी ने भी जिक्र किया है जिससे हास्य का सामाजिक महत्व स्पष्ट होता है ।

फ्रेंच दार्शनीक बर्गसा ने भी हास्य की सामाजिक महत्ता का खूब वर्णन किया है । सामाजिक हास्य से सामाजिक सद्गुण और समाजहितवाली दृष्टि की श्रीवृद्धि होती है ।

- -

1 सिद्धान्त और अध्ययन - डा.गुलाबराय - पृ.142

2 'Cheerfulness gives elasticity of spirit'. Samuel

3 गुप्तजी के काव्य मे हास्य - व्यंग्य लेख से उद्धृत - प्रो.नवल किशोर शर्मा
हिन्दी साहित्य मे हास्य - व्यंग्य - पृ.228

4 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.47 -
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हास्य द्वारा समाज सुधार का कार्य संपन्न होता है । असामाजिक व्यक्ति, समाज की प्रचलित कुरीतियाँ एवं अन्य विकृतियाँ सदैव से हास्यरस के आलम्बन बनते आये हैं । बर्गसा के अनुसार हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें सामाजिकता की झलक हो । भय, जो यह उत्पन्न करता है, इसके सनकीपन पर रोक लगाती है । यह मनुष्य को सदैव अपने पारस्परिक आदान-प्रदान के उन निम्नस्तरीय कार्यों के प्रति सचेत करता है । संक्षेप में यह यांत्रिक क्रिया के फल - स्वरूप किये जानेवाले व्यवहार को मृदुल बनाता है ।

नीति और न्याय की रक्षा का पालन करने के लिए अदालत है । लेकिन समाज में ऐसे कुछ अन्याय और अनीति व्याप्त हैं जिनके लिए अदालत कुछ न कर सकता । यहीं हास्य सहायता के लिए प्रकट होता है । हास्यकार असुन्दर वस्तुओं को सौन्दर्यपूर्ण वस्तुओं के बीच डालता है । वह असली सुन्दरता, उत्तम तथा सत्य पाठकों को दिखाता है । 'सत्यरूपी अदालत में असुन्दर और असत्यरूपी एक को एक हास साहित्यकार ले जा खड़ा करता है । इस अदालत के जज विवेकी सज्जन हैं । वह झूठा मुकद्दमा है तो मुकद्दमा चलाने वाले को सजा दी जायगी[2] ।

निष्कर्ष :-

हास्य के उपयोग की एक तालिका हम यों बना सकते हैं :-

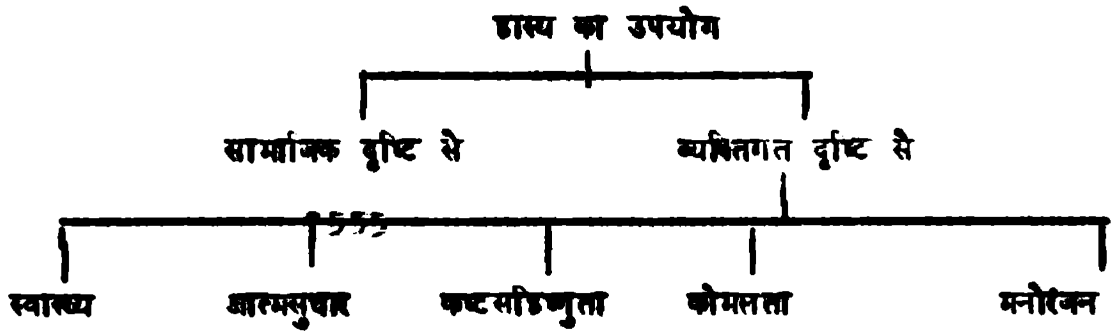

---

1. 'Laughter must be something of this kind, a sort of social gest By the fear which it inspires, it restrains eccentricity keeps constantly awake in mutual contact certain activities of a secondary order which might retire into their shell and to go to sleep and in short softens down whatever the surface of the social body may retain of mechanical inasticity.

Laughter - Henri Bergson. p.20.

2 हासस्साहित्य - पुत्तेथत्तु रामनमेनोन - पृ. 36

जिस प्रकार हास्य का सामाजिक एवं व्यक्तिगत महत्व है उसी प्रकार हास्य की धार्मिक तथा राजनीतिक उपादेयता भी कम नहीं है। धार्मिक जीवन में ही हमें पाखण्डों की चतुराई के अनेक रूप मिलते हैं। जब कभी धर्माध्यक्षों का जीवन धर्माचरण से विमुख हो जाता है तो असत्य, दम्भ, पाखण्ड आदि का बोलबाला हो जाता है तो हास्यसृष्टि हो जाती है। इस प्रकार राजनीति की भी अनेक जटिल परिस्थितियाँ हास्य के माध्यम द्वारा सुलझायी जाती हैं। राजनीति के क्षेत्र में अन्य लोगों पर व्यंग्य कसने की रीति चलती है। वस्तुतः स्पष्ट है कि हास्य का प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है।

गांधीजी ने एक बार कहा 'मुझे हास्यबोध न होता तो मैं ने इसके पहले कई बार आत्महत्या की हुई होगी।' इस वाक्य में भी हम हास्यबोध देख सकते हैं। इसका अर्थ यह कि जो आत्महत्या करता है वह हास्यबोध विहीन है। हास्यबोध के अभाव के कारण ही वह जीवन से यों पलायनवाद (Escapism) अपनाता है। सब महानों ने उपदेश दिया है कि मनुष्य को सदा प्रसन्न रहना चाहिए।[1]

अतिसर्वत्र वर्जयेत वाली उक्ति हास्य एवं विनोद के लिए भी लागू है। अधिक होने पर अमृत भी विष बन जाता है। अमित हंसी-दिल्लगी से एकदेशीयता आती है। मानवजीवन में कभी कभी गंभीरता भी आवश्यक है। विनोदशील मनुष्य में संसार की सब बातों को तुच्छ समझने की एक कुत्सजहनी मनोवृत्ति (superiority complex) है। सब कुछ को सारहीन समझने की आदत बुरी है। विनोद चाहे कितना ही प्रिय और इष्ट क्यों न हो तो भी उसके मूल्य या महत्व की एक निर्दिष्ट सीमा होनी चाहिए।[2] यही

---

1. 'Make it your profession, your business, your trade, occupation vocation, the aim and object of your life to keep yourself always peaceful and happy. The independont of all surroundings circumstances, irrespective of gain and loss, your highest duty in the world laid upon your shoulders by God is to keep yoursel joyful'. Swami Ramthirth.

2. Wit and humour can bridge the deepest intellectual and emotiona chasms, They can create, if only for a moment the completest harmony between men, who are violently and angrily oppased to each other in politics, morality and even character'.
Comedy - L.J. Potts p.50

डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी की चेतावनी है ।

वस्तुतः हास्य व्यक्ति, जीवन और समाज में आनन्द का संचार करने के साथ साथ उसमें स्वस्थ, नैतिक एवं उपयोगी भावनाओं को भी विकसित करता है ।

हास्य के भेद - पाश्चात्यमत -

हास्य विषयक सिद्धांतों पर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में मूलतः कोई मतभेद नहीं, लेकिन हास्य के भेदों के निरूपण में दोनों के बीच बड़ा अन्तर है । आश्रय के दृष्टिकोण से शारीरिक लक्षणों के आधार पर भारतीयाचार्यों ने हास्य के भेद बताए । लेकिन हास्य के व्यंजनापक्ष पर जोर देनेवाले विलायत के साहित्य शास्त्रियों ने हास्य की प्रेरकशक्तियों (गुण, उपकरण तथा उद्देश्य) पर दृष्टि रखकर हास्य विभाजन किया । 'पाश्चात्य विवेचन में हास्य संबन्धी कई शब्दों का प्रयोग होता है, यथा विट या विदग्धता, ह्यूमर या विनोद, जोक या परिहास, आइरानी या विद्रूप या वक्रोक्ति, फन अथवा चापल्य, जेस्ट अथवा उपहास, सारकज़्म अथवा व्यंग्योक्ति, सैटयर अथवा सोद्देश्य व्यंग्य, पैरोडी अथवा विडम्बन काव्य, सारडानिक स्माइल अथवा कटुहास आदि कई शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं । ये सभी मानसिक दृष्टि को स्पष्ट करते हैं[1] ।

प्रभाव की दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानों ने हास्य के निम्न लिखित चार भेद किये हैं :-

(1) हास्य (Humour)[2]

(2) वाग्वैदग्ध्य (Wit)

(3) व्यंग्य या उपहास (Satire)

(4) वक्रोक्ति (Irony)

---

1 रस - सिद्धांत : स्वरूप - विश्लेषण - पृ. 343 - डा. आनन्दप्रकाश दीक्षित

2 डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी तथा अन्य कई विद्वानों ने Homour केलिए स्मित हास्य का उपयोग किया है ।

(1) स्मित हास्य

हास्य का सर्वोत्तम रूप है स्मित हास्य । स्मित हास्य एक अत्यंत सूक्ष्म और सरल मानसिक वृत्ति है । उसकी सरलता के कारण उसकी एक निश्चित परिभाषा नहीं । विशुद्ध सन्तुष्टिवाला हास्य शुद्ध हास्य कहा जाता है । 'ह्यूमर वह अभिव्यंजना है जिससे विशुद्ध परिहास का उद्रेक होता है'[1] ।

प्रसिद्ध तत्ववेत्ता सिली के अनुसार स्मित हास्य एक मनोविकार होते हुए भी बौद्धिकता का पर्याप्त अंश लिए हुए है[2] । अतः स्मित हास्य का निर्माण, चिन्तन, सहानुभूति, संयम, करुणा इन चारों गुणों द्वारा हुआ है । मेरेडिथ का कथन है 'स्मित के लिए समझदारी आवश्यक है जबकि हंसना बेसमझदारी का हो सकता है । इस के लिए एक विशेष प्रकार के चिन्तन की भी आवश्यकता है जो कि कुरा चिन्तन ही न हो, वरन् मनुष्यत्व पर सहानुभूतिपूर्ण विचार करने के उपरान्त उत्पन्न हुआ है'[3] ।

आलम्बन के प्रति सहानुभूति स्मित हास्य की जड़ है । आगे मेरेडिथ का कथन है 'हास्यास्पद के प्रति उसकी हंसी उड़ाने तथा उससे प्रेम करने में सन्तुलन नहीं होना चाहिए उसकी हंसी उड़ाई जाय तो उससे प्रेम भी किया जाय'[4] ।

- -

1. हास्य का विवेचन लेख - डा. बलदेव प्रसाद मिश्र - हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य पृ.13

2. 'Humour is distinctly a sentiment, yet at the same time it is markedly intellectual'.

   Prof. Sully.

3. 'If sensibility is demanded for pure laughter, sensibility rendered necessary for true humour. However we shall fin it is often related to melacholy of a peculiar kind, not fierce melancholy and a melancholy that arises out of pensive thoughts and a brooding on the ways of mankind'.

   An Introduction to Dramatic theory p.47. Meredith.

4. 'If you laugh all around him, tumble him, roll him about, deal him a smack, and drop a tear on him, own his likeness to you, and yours to your neighbour and spare him as littl as you shun, pity him as much as you expose, it is a spiri of humour that is moving you'.

स्मित के लिए पांच बातें घातक है :- (1) प्रयोजन (2) सामान्यता (3) अतिवादिता (4) ईर्ष्या और (5) अस्वीकृति । मेरिडिथ के मतानुसार स्मित हास्य में आलम्बन के प्रति करुणा के भाव भी आवश्यक है[1] । शुक्लजी ने हास्य एवं करुण रसों के सम्बन्ध में मतभेद प्रकट किया है[2] ।

भारतीय मत के अनुसार हास्य और करुण रस के बीच शत्रुता है[3] । उलटे पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि हास्य के साथ करुणा का आगमन सोने में सुगन्धि के समान है ।

- -

1 'The stroke of the great humourist is world wide with lights of tragedy in his laughter'.
An essay on comedy - Meredith. p.84

2 जो बात हमारे यहाँ की रस-व्यवस्था के भीतर स्वतः सिद्ध है वही यूरोप में इधर आकर एक आधुनिक सिद्धांत के रूप में यों कही गयी है कि उत्कृष्ट हास्य वही है जिसमें आलम्बन के प्रति एक प्रकार का प्रेमभाव उत्पन्न हो अर्थात् वह प्रिय लगे । यहाँ तक तो बात बहुत ठीक रही, पर यूरोप में नूतन प्रवर्तक बनने के लिए उत्सुक रहने वाले चुप कब तक रह सकते हैं । वे दो कदम आगे बढ़ कर आधुनिक मनुष्यतावाद या भूत-दयावाद का स्वर ऊँचा करते हुए बोले - 'उत्कृष्ट हास्य वह है जिसमें आलम्बन के प्रति दया एवं करुणा उत्पन्न हो । कहने की आवश्यकता नहीं कि यह होली - मुहर्रम सर्वथा अस्वाभाविक अवैज्ञानिक और रसविरुद्ध है । दया या करुणा दुःखात्मक भाव है, हास आनन्दात्मक । दोनों की एक साथ स्थिति बात ही बात है ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.475 - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

3 आद्यः करुणा बीभत्सरौद्रो वीर भयानकैः ।
भयानकेन करुणेनापि हास्यो विरोधभाक् ।।

साहित्यदर्पण - पृ.152 - विश्वनाथ ।

इस प्रसंग पर सलीमहोदय का कथन माननीय है हंसी तथा रुदन पास ही पास है। एक से दूसरे पर जाना बहुत सरल है। जब कि वृत्ति और कार्य में पूर्ण रीति से संलग्न हो तो कुछ इसी के समान दूसरे कार्य पर बड़ी जल्दी जा सकती है। करुण रस से आक्रान्त मानव हास्य का सहारा पाकर सचमुच थकावट खो बैठता है। ड्राइडन के मतानुसार 'निरन्तर की गंभीरता मस्तिष्क को आक्रान्त किये रहती है। हमें अपने मस्तिष्क को कभी कभी उसी तरह स्वस्थ तथा सजीव बना लेना चाहिए जिस प्रकार हम अधिक सुविधापूर्वक चलने केलिए मार्ग में ठहरते हैं। करुणा से मिश्रित हास्योत्पादक स्थल हमारे ऊपर उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार की अंगों के अंकों के बीच संगीत का विधान। इससे हमें लम्बे कथावस्तु तथा कथोपकथन में - चाहे वह अत्यन्त विशिष्ट हो और उसकी भाषा अत्यन्त सजीव हो - विश्रान्ति भी मिलती है।[2]

हास्य व्यक्तिगत प्रधानता लिये रहता है। जिस बात में एक हंसने केलिए कुछ देखता है, शायद दूसरा व्यक्ति उसमें कुछ नहीं देखेगे। अतः किसी ने हास्य को सार्थक में निरर्थक (Nonsense in sense)पुकारा है।

मॉक्स ईस्टमान के अनुसार स्मित हास्य की दो धारायें हैं; एक अनुलोम तथा दूसरा प्रतिलोम।[3]

संक्षेप में संवेदनशील एवं करुणासिक्त हास्य ही स्मित हास्य है।

- -

1. 'The fact is that tears and laughter be in close proximity. It is but a slip from one to another. The motor centres engaged when in full swing of one mode of action may readil pass to the other and partially similar action'.
   Essay on Laughter - James Sully.

2. 'A continued gravity keeps the mind too muchbbent, we must refresh it sometimes as we wait in a fourney, has the same effect upon us which our Music has beturxt the acts, which we find a relief to us from the heat, plots language of the stage if the discources have been long.' Dryden.

3. 'In adults humour has two currents, a positive and a negati .... There may be appearently no positive current at all so that we are simply tripped up or dropped into a trap oi left staring at nothing'.

The Sense of humour - Max Eastman. p.58

(2) **वाग्वैदग्ध्य** (Wit)

'विट' का सम्बन्ध बुद्धि से है। किसी परिचित शब्द के अर्थ को अनपेक्षित रूप में लाकर उसके द्वारा भिन्न अर्थ की व्यंजना कराना ही विट या विदग्धता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वचनों की विदग्धता के कारण जो उक्ति चमत्कार होता उसे विट (Wit) कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने विट की व्याख्या यों की है :-

(1) ऐसे अनेक पदार्थों का, जिनमें पहले पहल देखने पर किसी प्रकार का सम्बन्ध न दिखाई दे, जोड़कर दिखलाना, जिससे विनोदात्मक चमत्कार उत्पन्न हो - आनन्द आए।[1]

(2) एडिसन की व्याख्या यों है 'पदार्थों की जिस सम्बन्ध योजना में पाठकों या श्रोताओं में प्रसन्नता और आश्चर्य या चमत्कृति उत्पन्न हो, और उसमें भी विशेषतः चमत्कृति जान पड़े, उसे विट कहते हैं'[2]।

(3) ड्रइडन की व्याख्या यों है 'विषय के अनुसार विचार और भाषा प्रयोग का औचित्य'[3]।

(4) अंग्रेजी के वेबस्टर और सेनचुरी शब्दकोषों में विट की व्याख्या यों है वाक्य या लेखन वह गुण या तत्व जो किसी विचार और उसकी अभिव्यक्ति के ऐसे सुघड़ और सुन्दर सम्बन्ध से उत्पन्न होता है जो अपने अप्रत्याशित स्वरूप के द्वारा लोगों के मन में आश्चर्य और आनन्द उत्पन्न करता है।

---

1. Felicitious association of objects, not usually connected, as to produce a pleasant surprise!
हास्य-रस, पृ. 16 से उद्धृत

2. 'Wit is the resemblance or contrast of ideas that give the reader delight and surprise, especially the latter'.
Six papers on Wit - Addison. p. 89

3. (Properiety of word and thought adopted to the subject'.
Dryden.

'विट' की अनेक अन्य व्याख्याये भी प्रचलित है। हिन्दी शब्दसागर मे 'चौज़' की व्याख्या यो दी गयी है 'वह चमत्कारपूर्ण उक्ति जिससे लोगो का मनोविनोद हो'।

विट की व्याख्या के साथ साथ एडिसन ने एक नियम भी जोड दिया है' उक्ति चमत्कार ऐसा होता है जिसका अनुवाद दूसरी भाषाओ मे हो सकता है। यदि भाषान्तर करने मे उसका आनन्द कम या नष्ट हो जाये तो समझना चाहिए कि वह उक्ति चमत्कार नही, शब्द श्लेष मात्र है[2]। एडिसन के अनुसार विट मे मुख्यतः अर्थ का चमत्कार अवश्यक है[3]।

- -

1 (क) वाग्वैदग्ध्य एक विनोदपूर्ण निर्णय है। Wit is playful judgement. K. Fisel

(ख) असमान वस्तुओ मे समानता को निकालने की क्षमता माने गुप्त रूप मे छिपी पडी समानता ढूंढ निकालना - वाग्वैदग्ध्य है।

2. 'Wit is the ability to discover similarities in dissimilia: ties ie. to find hidden similarities'.

(ग) हर दम्पति को मिलानेवाला एक छद्मवेषी पुरोहित है वाग्वैदग्ध्य।

'Wit is the disguised priest who unites every couple'.
Jean Paul.

(घ) अभिप्रायो की विषमता - Contrast of ideas.

(ङ) Confusion and clearness.

(च) The pleasure in rhyme results from the discovery of the famil: at a time when the unfamiliar is to be expected.
The Psychology of Laughter and Comedy. J.V.T. Greig. p.212

(छ) Wit is the contribution to the comic from the sphere of the unconscious'.

Wit and Its relations to the unconscious p.336 Sigmund Fre

2. 'True wit is that which can be transferred in different languages. If it bears the test, you may pronounce it true bu if it vanishes in the experiment, you may conclude it to be a pun'. Six papers on wit - Addison. p.72

3. 'The technique of the witticism lies in the fact that one an the same word - the name - is used in a two - fold applicatio once as a whole and once divided into its syllables like a charade'.
Wit and Its relations to the unconscious. Freud. p.34

विट मे रस और चमत्कार दोनो का होना अवश्यक है । संक्षिप्तता, उक्ति हास्य की आत्मा और शरीर है¹ । वाग्विदग्धता की सीमा वहीं तक है जहां तक कि किसी पर दोषारोपण नहीं होता अथवा किसी को क्षति नहीं पहुंचती । उपालम्भ काव्य मे भी इस प्रकार की विदग्धता दर्शनीय होती है । यह विदग्धता एक और वक्ता की बुद्धिशीलता और प्रत्युत्पन्न-मतिता को प्रकट करती है, दूसरी ओर श्रोता से भी ऊंची योग्यताओं की अपेक्षा करती है । इससे शक्ति मे जितनी गूढता सन्निविष्ट होती है उतनी ही चमत्कार की मात्रा भी बढती जाती है । कभी कभी सरल उक्तियों मे भी ऐसी विदग्धता छिपी रहती है कि जिस व्यक्ति को लक्षित करके बात कही जाती है, वह निरुत्तर हो जाता है । सूरदास, नन्ददास रत्नाकर आदि की गोपिकाओं ने अनेक बार अपनी विदग्धता से ज्ञानी उद्धव को परास्त किया है । सूर की गोपिकाएं

> निर्गुन कौन देस को वासी
> मधुकर हंसि समुझाय सोंह दै
> पूछति सांच न हांसी ।।

कहकर न केवल उद्धव के उपदेश को हवा मे भुस की तरह उड़ा देती है, बल्कि विश्वास का ऐसा आभास भी पैदा करना चाहती है, जिसमे वह अपनापन ही भूल जाए । एडिसन ने वाग्विदग्धता की वंशावली यों दी है 'परिहास या विनोद के श्रेष्ठ घराने का मूल पुरुष सत्य है । सत्य को शोभनार्थ नामक लड़का हुआ । उक्तिचमत्कार ने अपने वंश की आनन्दी नामक लड़की से विवाह किया । उस दम्पति से 'विनोद' नामक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ । विनोद का जन्म भिन्न भिन्न स्वभावों के माता पिता से हुआ था । इसलिए उसका स्वभाव विलक्षण हो गया है । कभी वह देखने मे गंभीर, कभी चंचल और कभी विलासी जान पड़ता है । लेकिन उसमे विशेषतः उसकी माता के स्वभाव का ही अधिक अंश आया है, इसलिए वह स्वयं चाहे, जिस चित्त वृत्ति मे रहे, दूसरों को वह बिना हंसाए नहीं

---

1. **'Brevity alone is the body and soul of wit'.**

Jean Paul.

रहती । हास्य का वाग्वैदग्ध्य को दो श्रेणियों में बाँटते हैं (1) चमत्कार वैदग्ध्य (2) रसात्मक वैदग्ध्य । चमत्कार वैदग्ध्य में वाक्य या शब्द की अप्रत्याशित प्रयोग या विचारों का आरोप है । यदि ऐसी प्रयोग पड़ता जीवन की और ऐसी परिस्थिति की सामने लाती है जिसमें भावसंचालन की क्षमता है तो उक्ति का गुण रसात्मक हो जाता है । फ्रायड ने इसे दो प्रकार का माना है ।[1]

(1) सहज चमत्कार

(2) प्रवृत्ति चमत्कार

सहज चमत्कार में केवल विनोद मात्र रहता है किन्तु प्रवृत्ति चमत्कार में ऐन्द्रियक या प्रतीकात्मक भावना रहती है । अद्भुत शब्दार्थ - योजना के मुख्यतः चार प्रकार के बताये गये हैं (1) पर्यायोक्ति (2) अतिशयोक्ति (3) अन्योक्ति (4) साम्य-विरोध वर्णोक्ति ।

'वाग्वैदग्ध्य की एक विशिष्टता उसकी सामाजिकता है । हास तथा हास्य के विपरीत इसमें तीन पात्रों की आवश्यकता होती है । प्रथम वह जिसके द्वारा प्रयोग हो और तीसरा वह जिसके द्वारा सुनाया जाय ।[2]

- -

1. Truth was the founder of the family and the father of good sense. Good sense was the father of wit who married a lady of a colleteral line called Mirth, by whom he has issued humour. Humour being the youngest of this illustrious family and descended from parents of such various dispositions as very various and unequal in his temper. Sometimes you see hi putting on grave looks and a solemn habit, some times airy in his behaviour and fantastic in his dress, in so much that at different times he appears as serious as a judge and as jucular as a Meary Andrew. But as he has a great deal of the mother in him, whatever mood he is in, he never fails to make his company laught

Six papers on wit - Addison. p.79

2. हास्य के सिद्धांत तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य

श्री.. वि.ना. दीक्षित पृ.100.

स्मित हास्य (Humour) और वाग्वैदग्ध्य (Wit) में भेद

ह्यूमर तथा विट – दोनों में ही हास्योत्पत्ति का तत्व समान रूप से वर्तमान है। असम्बद्धता ही दोनों का आधार है। मानवी स्वभाव और परिस्थिति सम्बन्धी असम्बद्धता ही स्मितहास्य का विषय है तो पदार्थों की असम्बद्धता ही वाग्वैदग्ध्य का विषय है।

ह्यूमर और विट दोनों का अन्तर बताते हुए लेहण्ट ने कहा है कि यद्यपि दोनों भिन्न लक्षणात्मक हैं तो भी दोनों का संयोग और मिलाप वैसा ही होता है जैसे दूध और चीनी का।[1]

हैजलिट के कथन अनुसार 'प्रहसनिक का यथा तथ्य वर्णन हास्य है और विदग्धता उसका किसी दूसरी वस्तु की समानता या वैषम्य द्वारा उद्घाटन है। विट और ह्यूमर दोनों हास्य-कारक होते हैं, लेकिन ह्यूमर में हास्य कारक विषय का वर्णन स्वाभावोक्ति से किया जाता है और विट में यह वर्णन कुछ वक्रोक्ति से किया जाता है, अर्थात् इस प्रकार के वर्णन में उपमा विरोधाभास आदि प्रकारों का व्यवहार आवश्यक होता है। ह्यूमर में जो चमत्कार होता है वह स्वाभाविक होता है; परन्तु विट के लिए एक प्रकार की सुसंस्कृत कल्पनाशक्ति और कला ज्ञान की आवश्यकता होती है।[2] वाग्विदग्धता में प्रायः तत्कालीन सुन्दरता ही है, फलस्वरूप उसका तत्कालीन प्रभाव पड़ता है। इसे पहली बार बड़े आनन्द से हम सुनेंगे, लेकिन फिर से सुनने में विशेष आनन्द नहीं होगा। काव्य को अलंकृत करनेवाली सुन्दरता की भी वाग्वैदग्ध्य में आवश्यकता नहीं।

---

1. Wit and humour are to be found sometimes apart but their richest effect is produced by their combination. Wit apart from humour is an element to sport with, in combination with humour it runs into the richest utility and helps to humarise the world. Leigh Hunt.

   हास्यरस पृ. 12 से उद्धृत

2. 'Humour is describing the rudicrous as it is in itself wit is the exposing it, by comparing it with something else. Humour is, as it were the growth of nature and accident, wit is the product of art and fancy.....' Introduction - The English comic Writers. p.6.7. Hazlitt.

(3) व्यंग्य (SATIRE)

सटायर का जन्म दृश्य काव्य के रूप में या तो रोम में हुआ था या यूनान में। दोनों देश के लोग अपने को सटायर का जन्मदाता मानते हैं[1]। स्केलिगर, हैसियस जैसे यूनानी विद्वानों का मत है कि रोम के लोगों ने यूनान से ही इसे प्राप्त किया। रिगलशियस, कैसाबन जैसे रोमन पण्डितों का कहना है कि यूनान ने उनसे ही इसे पाया।

सटायर शब्द लैटिन Satura जिसका अर्थ गड़बड़झाला है, से विकसित हुआ। 'सैतुरा' के कम से कम दो रूप विकसित हुए थे, जिसका एक रूप बाद में भी प्रचलित रहा और यह रूप पद्य-निबन्ध के समान था। पुरातनकाल में 'सैतुरा' शब्द परनिन्दा के अर्थ में प्रयुक्त होता था, और इस ऐतिहासिक अर्थ की छाया वर्तमान सैटायर शब्द पर भी पड़ी है[2]

विभिन्न विद्वानों ने सटायर की व्याख्या भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। किसी पण्डित ने हँसी द्वारा दण्ड देने को व्यंग्य पुकारा है[3]। मेरिडिथ ने यों लिखा है 'अगर आप हास्यास्पद का इतना मजाक उड़ाते हैं कि उसमें आपकी दयालुता समाप्त हो जाय तो आपका हास्य, व्यंग्य की कोटि में आ जायगा[4]। 'जघन्य अपराध के लिए पुलिस और अदालत है। उससे छोटे अपराध के लिए सार्वजनिक आलोचना या लोकनिन्दा है, जिसे निर्भीक लोग ही कर सकते हैं। कुछ भयभीत और शिष्ट लोग उसके निवारण केलिए साहित्यिक ढंग अपना

- -

1. The Romans claimed to have invented satire and in the sense in which bhey meant it, the claim was justified. Most of bhe literary forms, they borrowed from the Greeks, but not the satire'. - English Satire and Satirists - Hugh Walker.p.5

2. 'In deed, satire originated in deliberately formless writing the word means 'hotch-potch' The latin Ssatura' took atleast two distinct forms, the more persistent was no more than an essay in verse Quite early in its history it was used largel; for invective and from this historical accident, the modern sense of the Word is arrived'. Comedy - L.J. Potts. p.153.

3. 'To punish with laughter'

4. 'If you detect the ridicule and your kindness is chilled by you are slipping into the grasp of satire'.
Idea of Comedy - Meredith. p.79

है और व्यंग्य का प्रयोग करते हैं[1]। इस प्रकार कई व्याख्याएँ निकली है[2]। मेरिडिथ ने व्यंग्यकार की व्याख्या यों प्रस्तुत की है 'व्यंग्यकार एक सामाजिक ठेकेदार होता है, बहुधा वह एक सामाजिक सफाई करनेवाला है जिसका कि काम कचरी के ढेर को साफ करना होता है[3]। व्यंग्य के बारे में ए. निकाल महोदय का मत यों है 'व्यंग्य में नैतिकता का अभाव होता है, इसमें दया, करुणा, उदारता के लिए गुंजाइश नहीं होती। मनुष्य की शारीरिक असम्बद्धता चारित्रिक असम्बद्धता एवं सामाजिक असम्बद्धता पर यह निर्दयता से प्रहार करता है। व्यंग्य की भाषा में चुलबुली कटु, तिक्तता अधिक रहती है[4]। व्यंग्य पर ड्रेडन का मत यों है एक मनुष्य को एक ही वार से हत्या करने से बिलकुल भिन्न है, उसे काट काटकर मार डालकर कटे अंगों को ऐसा सजा रखना कि देखनेवाले को वह जीवित प्रतीत हो। एक हत्यारे के लिए

- -

1 हास्य, विनोद और व्यंग्य लेख - डा. पुत्तूलाल शुक्ल - पृ. 36
हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य

2. (a) Satire is the literary art of diminishing a subject by making it ridiculous and evoking toward it attitudes of amusement contempt indignation or scorn' A Glossary of Literary terms. p.153 - Ed. M.H. Abrams.

(b) Satire :- A literary composition originally in verse, essentially a criticism of folly or vice which it holds up to ridicule or scorn - its chief instruments irony, sarcasm, investive, wit and humour : Satirical writing as a genre : its spirit : the use of or inclunation to use its methods satirical denunciation or ridicule.
The Anatomy of satire - Gilbert Highet. p.561.

3. The satirist is a moral agent, often a social scavenger working in a storage of bile'.
Idea of comedy - Meredith. p.82

4. Satire can be so bitter that it ceases to ve laughable in the very least. Satire falls heavily. It has no moral sense. It has no pity no kindness; no magnanimity. It lashes the physical appearance of the person, sometimes with unmitigated cruelty. It attacks the character of men. It strikes at the manners of the age with a hand that spares not.

An Introduction to Dramatic Theory - A. Nocol. p.102.

किसी को फांसी पर चढाकर मारना आसान है, लेकिन एक मीठी हत्या देना अलग होशियारी है[1]

चेस्टरटन ने एक बार यों कहा है 'शुद्ध युक्तिवाद के बजाने की जानेवाली विचित्र भावनाओं में असली सटायर लीन है[2]।

सटायर में अतिशयोक्ति तो होती है, लेकिन द्व्यर्थकता नहीं । लक्षित व्यक्ति, वस्तु या भाव का उपहास करने अथवा उसे क्षति पहुंचाने का उद्देश्य इससे सहज ही प्रकट हो जाता है । अरुचि और घृणा की आधारभूमि पर सटायर पनपता है । इसका तीखापन विष-बुझे बाण की तरह होता है । यदि इसमें हंसाने केलिए पर्याप्त सामग्री न हुई तो हास्य का रूप उपस्थित नहीं होता । इस प्रकार इन तीनों में उपेक्षा का भावविरोध मिला रहता है । ये तीनों उपेक्षा के कारण शुद्ध हास्य में परिगणित नहीं हो सकते । इनका परिणाम जब तक विश्लेषण और दुःख प्राप्ति हो सकता है । जिस व्यक्ति के प्रति इस प्रकार की उक्तियां कही जाती है, वह क्रोधित भी हो सकतो है और यदि वह सामाजिक-मात्र के उपहास का लक्ष्य है, तब तो उसके प्रति की गई उपेक्षा से जनित उसका क्रोध उनमें हास्य को उभारेगा ही । किन्तु यदि सामाजिक उसके साथ किसी प्रकार की सहानुभूति रखते है, तो हास्य की सिद्धी न होगी । ये तीनों 'कटाक्ष' के पर्याय से मालूम होते हैं । तुलसी ने लक्ष्मण से परशुराम के प्रति कथित 'द्विज देवता घरहि के बाढे' आदि वाक्यावली के द्वारा इसी कटाक्ष की सिद्धि की है ।

व्यंग्यकार लक्ष्य करनेवाला चतुर अहेरी है । एकसाथ दो तीक्ष्ण तीर वह भेजता है - एक कल्पित लक्ष्य पर और दूसरा असली लक्ष्य पर । व्यंग्यकार सुरक्षित रहता है क्योंकि वह दुहरा निशाना मारता है और आहत से वह कह सकता है कि मैं आपको नहीं मार रहा हूं, बल्कि अमुक को मार रहा हूं[3]।

---

1. 'To make a malefactor die sweelty'
The poetical works of Jon Dry den. p.313 (Cambridge ed.190

2. 'True satire is always, so to speak a variation or fantaria upon the air of pure logic. G.K. Chester ton.

(हास्य दर्शनम् पृ.327 से उद्धृत)

3. हास्य - विनोद और व्यंग्य - डा. पुत्तूलाल शुक्ल - हिन्दी साहित्य में हास्य व्यंग्य पृ. 36

व्यंग्य घृणा की भूमि पर पनपता है और शत्रु-मित्र दोनों के प्रति प्रकट होता है। शत्रु के प्रति व्यंग्य में कठोरता घृणा - मिश्रित होती है और अधिक तीखी जान पड़ती है, किन्तु मित्र के प्रति कठोरता भी मैत्री और सौहार्दपूर्ण ढंग से व्यक्त की जाती है जिसमें प्रेम द्वारा सुधार की भावना ही अधिक रहती है। सहानुभूति पूर्ण व्यंग्य, व्यंग्यकर्ता, सामाजिक तथा व्यंग्य विषय तीनों को हंसाता है और दयार्द्र करता है, किन्तु घृणापूर्ण व्यंग्य शत्रुता को बढ़ाने और चिढ़ानेवाला होता है। व्यंग्य किसी वर्ग - विशेष को लेकर कभी कभी समाज तथा साहित्य में प्रचलित हो जाता है। बनिया, सूदखोर, पण्डित, जाति पाँति माननेवाले तिलकधारी ब्राह्मण, राजनीतिज्ञ सदैव समय पर व्यंग्य के आलम्बन बनते रहे हैं।

व्यंग्य तीखा समाज सुधारक है और वह समाज की कमज़ोरी पर हाथ रखता है; उनकी नब्ज पहचानकर उसका उपचार करता है। अत्यन्त तीखा हो जाने पर व्यंग्य हास्य का प्रसारक नहीं रह जाता। ऐसे स्थलों पर हास्य भावना समाविष्ट घटनाओं का सहारा लेकर ही लेखक हास्य उत्पन्न कर सकता है। वस्तुतः व्यंग्य लेखक की सावधानी इस बात में है कि वह अपने व्यंग्य-विषय को अत्यन्त हीन प्रमाणित न कर दे, जिससे कि हम उसके प्रति हंसने की अपेक्षा उससे घृणा करने लगें। इस बात के लिए लेखक को विषय के गुणों का भी ध्यान रखकर चलना होगा और उपयुक्त स्थलों पर उसका समावेश करना होगा।

विषय, तत्व, परिस्थिति इन सबके आधार पर वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक साहित्यिक आदि कई रूपों में हम सटायर को विभक्त कर सकते हैं।[2]

---

1. किसी कमी की ओर ध्यान आकर्षित करानेवाले व्यंग्य चित्र (कार्टून) इसलिए विशेष महत्व प्राप्त करते जा रहे हैं क्योंकि वे सहानुभूतिपूर्ण अनुलेप से व्यंग्य विषय को सही मार्ग दिखाते हैं, चिढ़ाते या हीन सिद्ध नहीं करते।

   डा. आनन्दप्रकाश दीक्षित - रस सिद्धांत : स्वरूप और विश्लेषण - पृ. 345

2. Satires are of two types (1) Direct satire and (2) indirect satire.

   Satire : A Critical anthology - p.83 - John Russell and Ashley Brown.

(5) <u>वक्रोक्ति</u> (Irony)

डा. नगेन्द्र ने Irony के पर्यायवाची शब्द के रूप में वक्रोक्ति को निर्धारित किया है। उन्होंने स्पष्टतः बतलाया है कि यह आचार्य कुन्तक की वक्रोक्ति उक्ति नहीं, वक्र उक्ति ही है

डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी के शब्दों में 'जब किसी वाक्य को कहा किसी और प्रकार से जाय तथा उसका अर्थ दूसरा निकला, वहाँ वक्रोक्ति होती है'[1]।

ग्रिग महोदय ने यों इसकी व्याख्या प्रस्तुत की है 'कुछ कहना, उसका अर्थ औरकुछ होना, आमतौर उसका अर्थ विपरीत अर्थ ही हो, जो कहा जाता है, जो अर्थ लिया जाता है दोनों श्रोताओं के मन में स्पष्ट पड़े, वही वक्रोक्ति है[2]। निकाल महाशय की परिभाषा भी स्मरणीय है :- 'वक्रोक्ति में जिस वस्तु में हम विश्वास नहीं करते उसमें विश्वास दिखाते हैं तथा हास्य में जिस वस्तु में हम वास्तव में विश्वास करते हैं उसमें अविश्वास दिखाते हैं'[3]। वक्रोक्ति का तीखापन यहाँ व्यक्त है। अमृत में विष डालना तथा फूल में कीट बन छिपे छिपे पहुँचना वक्रोक्ति का काम है। बर्गसां ने Irony की परिभाषा यों की है 'कभी कभी हम यह कहते हैं कि यह होना चाहिए और दिखाते भी हैं कि जो कुछ किया जा रहा है उसमें हमारा विश्वास भी है, वहाँ वक्रोक्ति होती है'[4]। मेरिडिथ की परिभाषा यों है 'यदि आप हास्यास्पद पर सीधा व्यंग्य बाण न छोड़ें वरन् उसे ऐसा उमेठ दें एवं चिकोटी निकाला दें, प्यार के आवरण में उसे डंक मारें जिससे वह अन्तर्द्वन्द्व में पड़ जाय कि वास्तव में किसी ने उस पर प्रहार किया है अथवा नहीं, तब आप वक्रोक्ति का उपयोग कर रहे हैं'[5]।

- -

1 हिन्दी साहित्य में हास्य रस - डा. बरसानेलाल - पृ.47

2. Irony simply says one thing and means another, generally the opposite. Both what it says and what it implies are present tothe minds of audience.
The psychology of Laughter & comedy.J.Y.T.Greig. p.186

3. In irony we pretend to believe what we do not believe, in humour we pretend to disbelieve what we actually believe'.
An Introduction to Dramatic Theory. A. Nicol. p.89

4. Some times we state what ought to be done and pretend to believe that this is just what is actually being done, then we have Irony. Laughter.Henry Bergson. p.127

5. If instead of falling foul of the ridiculous person with a satiric rod, to make him writhe and shriek aloud, you prefer to sting him under semi-caress, by which he shall in his anguish be rendered dubious, whether in deed any thing has hurt him, you are an engine of Irony.
The idea of comedy - Meredith p.79

ईस्टमान की परिभाषा यों है 'जो कुछ कहना चाहते है उससे कम कहना वक्रोक्ति और ज्यादा कहना अतिशयोक्ति मानी जाती थी । लेकिन प्रायः इन दोनों को - न्यूनोक्ति और अतिशयोक्ति को समझ लेना मुश्किल है[1] । लेकिन Irony शब्द की व्युत्पत्ति देखते समय यह फर्क हम नहीं देखते । यूनान भाषा में इसका अर्थ है वेष बदलता मनुष्य या कपट्य स्वभाववाला[2] । बाहर एक और अन्दर अन्दर और एक - यही वक्रोक्ति है । हास्यकार के लिए वक्रोक्ति एक मुखौटा है[3] । डा. आनन्दप्रकाश दीक्षित ने Irony की परिभाषा यों की है 'आइरानी वह वक्रोक्ति अथवा विद्रूप है जिसमें बात को सीधे या तीखेपन के साथ न कहकर इस उक्ति-गर्भत्व के साथ कहा जाता है कि ऊपर से बात सुनने में प्रशंसा - स्वरूप न लगे, किन्तु मूलतः उसमें घृणा का कुछ भाव सन्निविष्ट हो[4] । इस प्रकार आइरानी की कई व्याख्यायें निकली है[5] ।

वक्रोक्तिकार धनुष की भांति झूठी नम्रता में झुककर तीर की तरह चोट करता है, इसमें स्तुति तथा निन्दा दोनों झूठी होती है । स्तुतिनिन्दा तथा वक्रोक्ति में भेद ध्वनि का है, काकु का है । ध्वनि में ही अर्थ गूढ रहता है । वक्रोक्ति तथा सच्ची स्तुति या निन्दा में वही साम्य है जो कोयल और कौए में है । वक्रोक्ति को सच मानना विश्वासघात का आखेट बनना है[6] ।

- -

1. Sense of Humour . Max Eastman p.54
2. Eiron = a dissembler, eironeia; a term of abuse meaning something like sly foxery, tinged with connotation of low bred'.
3. Ironic mask.
4. रस सिद्धांत : स्वरूप - विश्लेषण - डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित पृ. 344
5. 'The socratic method of discussion by professing ignorance; conveyance of meaning by words whose literal meaning is the opposite'. Irony - An Historical Introduction'p.561
   J.A.K. Thomson
6. हास्य के सिद्धान्त तथा मानस में हास्य
   प्रो. जगदीश पाण्डे पृ. 56 ।

ए. निकाल महोदय वक्रोक्ति केलिए अनभिज्ञता को आवश्यक मानते हैं[1] ।

वक्रोक्ति पर मेरिडिथ की और एक आलोचना भी स्मरणीय है 'वक्रोक्ति, व्यंग्य का हास है, यह स्विफ्ट की भांति कठोरतम भी हो सकता है जिसमें साथ नैतिक लक्ष्य भी हो और गिबन की भांति गंभीर भी हो सकता है जो द्वेषपूर्ण हो । एक वक्रोक्ति वह है जो कि ऊपर से दिखलाई देती है तथा दूसरी वह है जिसके उद्देश्य में तिरस्कार की भावना होती है तथा जो व्यंग्यात्मक उद्देश्य में असफल हो गई है तथा जिसमें भ्रम के खजाने हों[2] ।

वक्रोक्ति का उद्देश्य रहस्योद्घाटन करके किसी का वास्तविक रूप प्रस्तुत करना होता है यह सरल भी हो सकती है, जिसमें केवल आनन्द और उल्लास की भावना हो और सांकेतिक भी हो सकती है; जिसमें आनन्द के साथ साथ गूढ़संकेत भी सम्मिलित हो । सांकेतिक वक्रोक्ति किसी वर्ग या व्यक्ति को अपना लक्ष्य बनाकर चलती है । वक्रोक्ति का रूप शाब्दिक प्रयोगों पर निर्भर करता है, अतएव श्लेष का प्रयोग इसमें विशेष हितकर सिद्ध होता है । श्लेष के द्वारा कथन में संक्षिप्तता किन्तु मार्मिकता का प्रवेश होता है, उक्ति अर्थपूर्ण होकर प्रभावपूर्ण हो जाती है । शब्द चित्र उपस्थित करने के लिए वक्रोक्ति सबसे सरल उपाय है । शब्दों के अनपेक्षित प्रयोग द्वारा सिद्ध होनेवाली वक्रोक्ति विशेष चमत्कारक जान पड़ती है ।

परिहास की भूमि पर पनपने के कारण वक्रोक्ति में आनन्दप्रियता, प्रेरणा और मानवीय दृष्टिकोण की सिद्धि होती है; केवल शब्द-चातुर्य तक सीमित नहीं रह जाती । विद्वानों ने अयरानी के कई भेद माने हैं[3] । इनमें सरकाज़्म प्रमुख है । जब मुख्य अर्थ या भाव की अपेक्षा गौण अर्थ विशेष स्पष्ट हो उठे तब उपहास सरकाज़्म व्यंग्योक्ति या निन्दा कहलाते हैं

---

1. 'The absurd on the other hand is purely unconscious. We laught at 'e' etourdi but he himself is quite innocent of the sense of our merriment...... the absured charecter puts all his follies to the world'.
   Introduction to the Irony of Drama - A. Nicoll p.207
2. Irony is the humour of satire, it may ve savage as in swift, with a moral object or sedate as in Gibbon, with a malicious. The foppish irony which leers that you shall not mistake its intention, are failures in Satire effect pretending to the treasures of ambiguity. The idea of comedy. Meredith - p.82
3. There are six types of irony. They are :- Invective, Sarcasm Socratic Irony, Dramatic irony, Cosmic Irony, Romantic irony
   Irony - An Historical Introduction. J.A.K. Thomason. p.104

पैरोडी (Parody)

पैरोडी अंग्रेज़ी शब्द है, लेकिन हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में सहजभाव से उपयोग में लाया जा रहा है। साहित्यकारों की बढ़ती तुकबन्दी की खिल्ली उड़ाने का एक माध्यम है पैरोडी। पैरोडी में किसी भी विशिष्ट शैली या लेखक की ऐसी हास्यास्पद अनुकृति होती है कि वह गंभीर भावों को परिहास में परिणत कर देती है[1]।

डा. रामकुमार वर्मा ने पैरोडी की परिभाषा यों की है 'उदात्त मनोभाव को अनुदात्त संदर्भ से जोड़कर हास्य को उत्पन्न करना पैरोडी है[2]।

साहित्य सटयर का एक मुख्य विभाग है पैरोडी या हास्यानुकरण। ..... गद्य या पद्य की साहित्यकृतियों का एक विकटानुकरण चाहे वह हंसी उड़ाने के उद्देश्य से हो या न हो, वही पैरोडी है[3]।

इस शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में चिन्तन करें तो हम समझेंगे कि यवन भाषा में Paro[illegible] का अर्थ है ओड (Ode) नामक भावगीत के अर्थ को विकृत करनेवाला और एक अ[illegible] ओड[4]।

पैरोडी के संबन्ध में स्टीफन लीकोक महोदय का कथन विचारणीय है 'पैरोडियाँ परोप जीवि (Parasites) हास्य कृतियाँ है[5]। इसके हास्य को उन्होंने परोपजीवि हास्य Parasitic humour पुकारा है। मूलग्रंथ नहीं है तो पैरोडी भी नहीं[6]।

- -

1 हिन्दी साहित्य में हास्य रस - पृ.50 - डा. बरसानेलाल

2 रिमझिम की भूमिका - डा. रामकुमार वर्मा - पृ.374

3 हास्यदर्शनम् - मेकोले परमेश्वरन पिल्लै - पृ.374

4. Parode is an ode which perverts the meaning of another ode.

5. Parodies are parasites. Humour - its theory and technique - Stephen Leacock p.182

6. 'A parody is that which iminates the form and style of a part[i]cular work or author'.

Eg. The spendid shilling by John Philip parodying Millon's parodise lost.
A Glossary of Literary Terms - M.H. Abrams. p.17

पैरोडी द्वारा हम समाज में फैली बुराइयों को भी दूर कर सकते हैं क्योंकि हास्य इसका अस्त्र है। कभी कभी गंभीर विषय में ऐसी हास्यास्पद समस्याएँ प्रकट हो जाती हैं जो समाज से सम्बन्धित होती हैं। इस प्रकार पैरोडी का सामाजिक पहलू भी है।

वैपरीत्य पैरोडी का विशेष आधार है। किसी अन्य कवि की कविता की एक पंक्ति लेकर उसी पर अपनी ओर से अनेक ऐसी पंक्तियाँ जोड़ देना जिनके द्वारा केवल विषय का महत्व ही समाप्त न हो जाए, अपितु वह पूर्णतया बदल जाए, किन्तु शैली मूलपंक्ति के समान ही बनी रहे, तब पैरोडी सिद्ध होती है। उसमें शैली का अनुकरण ही महत्व रखता है। वैमनस्य या विद्वेष इसके मूल में नहीं होता। यह बात दूसरी है कि विद्वेष रखकर भी पैरोडी लिखी जा सकती है।

पैरोडी तीन प्रकार की कही जा सकती है – (1) शाब्दिक (2) आकार - प्रकार सम्बन्धी (3) भावना सम्बन्धी।

<u>जोक</u> (Joke)

जोक हास का हल्का रूप है, जिसे परिहास कह सकते हैं। मित्रों में प्रायः इस प्रकार का व्यवहार पाया जाता है। इसी को हम मसखरी पुकार सकते हैं। किसी को बिना हानि पहुँचाए हुए मूर्ख बनाना जोक के अन्तर्गत ही आता है। अथवा स्वयं विरूपता प्रदर्शित करना भी जोक ही है। जहाँ उपहास अगंभीर तथा अर्थहीन रूप में उपस्थित हो, और उसमें वास्तविकता के स्थान पर कृत्रिमता विशेष हो, किन्तु वह वास्तविकता का सन्देह उत्पन्न करती हो, उस स्थिति को हम जेस्ट (Jest), जोक (Joke) या फन (Fun) कहेंगे। साली - सलहजों से किए जाने वाले परिहास को 'प्रैक्टिकल जोक' (Practical Joke) कहते हैं।

शब्दश्लेष और अर्थश्लेष को 'पन' (Pun) कहते है । शब्दो से खेल ही पन है ।[1] (Play upon words) बिहारी के कई दोहो मे हम यह देखते है ।

सैटैनिक लाफ्टर -

जब कटुता - मिश्रित कृत्रिम हंसी, जिसमे हठधर्मी, दूसरे के विनाश की इच्छा, स्वार्थ-साधन, आदि दुष्प्रवृत्तियाँ मिल जाती है तब कपट हास्य प्रकट होता है । इसे अंग्रेज़ी मे 'सैटैनिक लाफ्टर या 'सारडानिक स्माइल 'कह सकते है । इसमे रोष ही प्रधान होता है । हृदय का कालुष्य ही ऐसे स्थानो पर प्रधान रुप से प्रकट किया जाता है । ऐसे समय कवि का लक्ष्य हास्य की सिद्धि कराना नही होता, अपितु उस व्यक्ति के प्रति सामाजिक की उपेक्षा, उसके प्रति घृणा आदि मनोभावो को जगाना ही उसका लक्ष्य होता है । अतः उसे रौद्र के अन्तर्गत भाव मात्र मानकर रखा जा सकता है । उदाहरणतः तुलसी की निम्न पंक्तियाँ ली जा सकती है।

'यह सुनि गुनि सपथ बडि बिहसि उठी मतिमन्द ।
भूषन सजत बिलोकि मृग मनहुं किरातिनि फन्द '।।

कैकेयी कोपभवन मे पडी हुई है, किन्तु उसे शपथ के महत्व का ध्यान आते ही यह विश्वास हो जाता है कि भरत को राज्य दिलाने और राम को वन भेजने मे उसे अवश्य सफलता मिलेगी । अपनी विजय की कल्पना के कारण वह विहँस उठती है, लेकिन वह हंसी शैतान की हंसी है, राक्षसी हंसी है, इसलिए तुलसी ने इस हंसी को हास्य का प्रवर्तक न मानकर इस सम्बन्ध मे 'मतिमन्द' किरातिनि फन्द' आदि शब्दो का प्रयोग किया है । इन से उसके प्रति घृणा की ही सृष्टि होती है ।

---

1. A play on words that are either identical in sound or similar in sound, but are sharply diverse in meaning. A special type of pun, as the equivoque is the use of a single word or phrase which has two disparate meanings in a context which makes both meaning equally relevant.

A Survey of Burlesque and Parody in English.

George Kitchin . p.139.

तृतीय अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी में हास्य (भाग - 1)

तृतीय अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी कविता में हास्य

(1) मध्यकालीन हिन्दी

काव्यधारा के युगों की समाप्ति और प्रारंभ की तिथियाँ केवल आपेक्षिक होती हैं क्योंकि जनमन की विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ चिरंतन रहती हैं। तथापि इतिहासकार युग की प्रमुख काव्य धाराओं के कारण उनका नाम रखते हैं।[1]

मध्यकालीन हिन्दी के बारे में समझने के लिए साहित्येतिहास के कालविभाजन पर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक है। 'काल विभाजन की समस्या साहित्येतिहास की प्रमुख समस्या रही है और सबसे अधिक विचार भी संभवतः इसी विषय पर किया गया है। इसका प्रमुख कारण यही है कि काल को खण्डों में विभाजित करना कितना ही सुविधाजनक क्यों न हो, आसान नहीं है। वैज्ञानिक तो शायद है ही नहीं। परन्तु फिर भी इसकी अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है।[2]

इतिहास के परिपार्श्व में ही किसी साहित्य विशेष का अध्ययन, उसके उचित आकलन में सहायक हो सकता है। वर्ण्य विषय पद्धति, प्रवृत्ति प्रधानता आदि की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का वर्गीकरण किया गया है।

- -

1 साहित्यिक इतिहास को वीरगाथाकाल, भक्तिकाल आदि खण्डों में विभाजित करना व्यर्थ है क्योंकि प्रत्येक काल में ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं जो मुख्य धारा में भी प्रवाहित होती रहती हैं। अतः साहित्यिक इतिहास का काल विभाजन शताब्दियों के आधार पर करना अधिक उचित है, बनिस्बत अस्पष्ट सामान्य शब्दों से प्रत्येक काल का विभाजन करना।

आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य - पृ. 10 - डा. प्रभाकर माचवे -
अनु. डा. जे. हेब. आनन्द पृ. 164

2 साहित्येतिहास : संरचना और स्वरूप - डा. सुमन राजे

हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक गार्सा - द - तासी ने सामग्री एवं साधन के अभाव में काल विभाजन का प्रयास नहीं किया ।

फिर ग्रियर्सन ने विषयवस्तु के आधार पर कालविभाजन प्रस्तुत किया ।

<u>ग्रियर्सन का काल - विभजन</u>

(1) चारणकाल (700 - 1300 ई.)

(2) पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण

(3) मलिक मुहम्मद जायसी की प्रेम कविता

(4) ब्रज का कृष्ण सम्प्रदाय (1500 - 1600)

(5) मुगल दरबार

(6) तुलसीदास

(7) रीतिकाव्य (1580 - 1692 ई.)

(8) तुलसीदास के अन्य परवर्ती (1600 - 1700)

भाग 1 धार्मिक कवि

भाग 2 अन्य कवि

(9) अठारहवीं शताब्दी

भाग 1 धार्मिक कवि

भाग 2 अन्य कवि

(10) कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान (1700 - 1757)

~~कम्पनि के शासन में~~ प्रथम भाग - बुन्देल खण्ड और बघेलखण्ड

भाग दो बनारस

भाग तीन अवध

भाग चार विविध

(11) महारानी विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्थान (1857 - 1887)

(12) विविध

<u>मिश्र बन्धुओं का वर्गीकरण इस प्रकार है ।</u>

(1) आदि प्रकरण (आदिकाल से सं. 1560)

(2) प्रौढ माध्यमिक प्रकरण (सं. 1561 - 1680)

(3) पूर्वालंकृत प्रकरण (सं. 1681 - 1790)

(4) भूमी उत्तरालंकृत प्रकरण (सं. 1791 - ....)

इस काल-विभाजन की आलोचना करते हुए शुक्ल जी ने यों लिखा 'सारे रचनाकाल को केवल आदि, मध्य, पूर्व उत्तर इत्यादि खण्डों में आँखें मूँदकर बाँट देना - यह भी न देखना कि किस खण्ड के भीतर क्या आता है, क्या नहीं - किसी वृत्त संग्रह को इतिहास नहीं बना सकता'[1]।

सर्वप्रथम आचार्य शुक्लजी ने प्रवृत्तियों की मुख्यता के आधार पर हिन्दी साहित्य के काल को चार कालों में विभक्त किया जो यों प्रस्तुत किया गया :-

(1) आदिकाल (1) अपभ्रंश रचनायें

(2) देश भाषा काव्य - वीरगाथाकाल (सं. 1050-1375)

(2) मध्यकाल -

(1) पूर्वमध्यकाल - भक्तिकाल (सं. 1375 - 1700)

1) निर्गुणधारा - ज्ञानाश्रयी शाखा

2) निर्गुण धारा - प्रेममार्गी (सूफी शाखा)

3) सगुण धारा - रामभक्ति शाखा

4) सगुण धारा - कृष्णभक्ति शाखा

फुटकल रचनाएँ

(2) उत्तर मध्यकाल - रीतिकाल (सं. 1700 - 1900)

(3) आधुनिककाल -

(1) गद्यखंड (सं. 1900 - 1950)

(1) गद्यका आविर्भाव

(2) गद्य का प्रवर्तन

(3) गद्य का प्रवर्तन (प्रथम उत्थान)

(4) गद्य का प्रसार (द्वितीय उत्थान)

(5) गद्य की वर्तमान गति (तृतीय उत्थान)

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 1 (वक्तव्य)
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(2) आधुनिक काल (सं. 1900 से)

1) पुरानी धारा

2) नई धारा

- प्रथम उत्थान (1915 - 50)
- द्वितीय उत्थान (1950 - 75)
- तृतीय उत्थान (1975 से)

अपने कालविभाजन के आधार के बारे में इतिहास के वक्तव्य में उन्होंने दो बातों का उल्लेख किया है - (1) विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता।
(2) ग्रन्थों की प्रसिद्धि।[1]

शुक्लजी के चारों कालों का यह विभजन तो सर्वसम्मत है लेकिन आदिकाल या वीरगाथाकाल सदैव से विवादग्रस्त विषय रहा है।

आधार की दृष्टि से शुक्लजी के कालविभाजन में पर्याप्त विविधता है :-

(1) काल की सापेक्षता के आधार पर

1) आदिकाल (2) भक्तिकाल (पूर्वमध्यकाल) (3) रीतिकाल (उत्तरमध्यकाल)
4) आधुनिककाल।

(2) रस के आधार पर = वीरगाथा काल

(3) साधना के एक अंग के आधार पर = भक्तिकाल

(4) सम्प्रदाय के आधार पर = संत शाखा, रामभक्ति शाखा, कृष्णभक्तिशाखा

(5) पद्धति के आधार पर = रीतिकाल

(6) आधुनिक वृत्ति के आधार पर = आधुनिक काल

(7) काव्य भेदों के आधार पर = गद्यकाल

(8) काल खण्ड के आधार पर = प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान, तृतीय उत्थान

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

डा. श्यामसुन्दरदास

डा. श्यामसुन्दरदास शुक्लजी के कालनिर्धारण सम्बन्धी आधार से पूर्णतः सहमत हैं । दोनों विद्वानों के मत में अन्तर केवल इतना ही है कि शुक्लजी ने सं. 1050 से सं. 1375 तक को वीरगाथाकाल कहा है जहाँ डा. श्यामसुन्दरदास ने इस काल का परिधि विस्तार सं. 1050 से 1400 तक माना है ।

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है 'इस काल में वीररस को सचमुच ही बहुत प्रमुख स्थान प्राप्त है । परन्तु इस काल में सिद्ध साहित्य और जैन-साहित्य का प्रणयन भी प्रचुर मात्रा में हुआ है । इसलिए इसे केवल वीरगाथाकाल नहीं माना जा सकता'[1]। उन्होंने आदि-प्रकरण का समय सं. 1008 से 1375 तक माना है ।

राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल को सिद्ध सामन्त युग पुकारा है तो डा. रामकुमार वर्मा ने इसे चारणकाल की संज्ञा दी है । डा. रामकुमार वर्मा का वर्गीकरण यों है।

---

1 हिन्दी साहित्य का आदिकाल - पृ. 110 - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

स	काल विभाग	विस्तार	संस्कृति का स्थान	विचार धारा	विशेष
1	संधिकाल	सं..750 1000	नालन्दा विक्रमशिला राजस्थान	आध्यात्मिक	अपभ्रंश से निकली हुई हिन्दी की रूपरेखा, वज्रयान और जैनधर्म की व्याख्या ।
2	चारणकाल	सं.1000 1300	राजस्थान	लौकिक	पुरानी हिन्दी, काव्य की अपेक्षा भाषा का उत्कर्ष, अधिकतर वर्णनात्मक काव्य, वीररस का महत्व, व्यक्तिगत वीरता, राष्ट्र भावना का अभाव
3	भक्तिकाल	सं.1375 1700	राजस्थान मध्यप्रदेश	पारलौकिक	भाव तथा भाषा दोनों का उत्कर्ष वर्णनात्मक काव्य के साथ रीति काव्य की प्रधानता, कविता के क्षेत्र में शृंगार और शांतरस की प्रधानता, धार्मिक भावना का उत्कर्ष, राष्ट्र भावना का अभाव रचनात्मक साहित्य का प्रणयन ।
4	रीतिकाल	सं.1700 1900	राजस्थान मध्यप्रदेश दक्षिण	पारलौकिक के वेष में लौकिक	भाषा का उत्कर्ष, भावों की पुरानी परम्परा का आवर्तन। कला का अधिक प्रदर्शन, वर्णनात्मक कविता का प्राधान्य, भावों का अनावश्यक विस्तार, शृंगार का प्राधान्य मौलिकता का अभाव, कवित्व की अपेक्षा आचार्यत्व का अधिक प्रदर्शन ।
5	आधुनिक काल	सं.1902 से अब तक	संपूर्ण भारत	लौकिक तथा पारलौकिक	गद्य का विस्तार, जीवन के सभी विभागों पर दृष्टिपात, राष्ट्रभावना का सूत्रपात, रचनात्मक साहित्य का प्रणयन ।

डा.सत्यकाम वर्मा ने कालविभाजन का आधार युग के प्रति कवि की दृष्टि को माना है । 'अधिक उचित तो यह होगा कि हम कवि (अथवा उसके काव्य) की जन मानस व जन जीवन के प्रति दृष्टि को ही उस वर्गीकरण एवं नामकरण का एकमात्र आधार स्वीकार करें । [1] उनका कालविभाजन यों है :-

(1) लोकोन्मुखी साहित्य का युग (प्रारंभ से 1800 ई. तक)

(2) सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग (1400 - 1620 ई.)

(3) काव्यविलास युग अथवा रीतियुग (1620 - 1803 ई.)

(4) उत्क्रान्ति युग (1890 तक)

(5) नव दृष्टि युग या भावनात्मक विद्रोह का युग (1890 - 1935)

(6) यथार्थ युग (1935 से अब तक)

डा.गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने वैज्ञानिक इतिहास में कालविभाजन पर यों पुनर्विचार किया :-

(1) प्रारंभिक काल 1184 - 1350 ई
(उन्मेष काल)

(2) मध्य काल 1250 - 1857 ई.
(विकासकाल)

(क) पूर्व मध्यकाल 1350 - 1500 ई.
(उन्नति काल)

(ख) मध्य मध्यकाल 1500 - 1600 ई.
(चरमोत्कर्ष काल)

(ग) उत्तर मध्यकाल 1600 - 1857 ई.
(अपकर्ष काल)

(3) आधुनिक काल 1857 - 1965 ई.

(क) भारतेन्दुयुग 1857 - 1900 (ख) द्विवेदी युग 1900 - 1920

(ग) छायावाद युग 1920 - 1937 (घ) प्रगतिवादयुग 1937 - 1937

(ङ) प्रयोग युग 1945 - 1965

---

1 हिन्दी साहित्यानुशीलन पृ.56 - डा.सत्यकाम वर्मा

डा. गणपति गुप्त के इस कालविभाजन का बड़ा महत्व है । इसने वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति के द्वार खोले हैं और अनुसन्धान के आयामों को विकसित किया है । काव्य परंपराओं की निर्मिति का आधार भी बहुमुखी है। उदाहरण के लिए –

1) विधागत – रास, गीति, प्रबन्ध, चरित कथा, मुक्तक आदि ।

2) वस्तुगत – धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक

3) भाषागत – मैथिली

4) अभिव्यक्तिगत – रामान्टिक, स्वच्छन्द

5) सम्प्रदाय – संत

6) गुणगत – शास्त्रीय आदि

लेकिन कुछ आलोचकों ने डा. गणपतिचन्द्र के 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास में प्रकट काल विभाजन पर यों आलोचना प्रस्तुत करते हैं 'इतना अधिक विभाजन अनावश्यक है और इससे इतिहास के समन्वित रूप पर उचित प्रकाश नहीं पड़ता है[1]।

डा. रामखेलावन पांडे ने नवीन काल – विभाजन प्रस्तुत करते हुए यों कहा है 'साहित्य का इतिहास समाजशास्त्र का परिशिष्ट नहीं है, वह समर्पित और प्रतिबद्ध भी नहीं है । अतः उन अंतरंग वृत्तियों और स्थितियों का अन्वेषण करना होगा जिनके माध्यम से निर्दिष्ट अवधि की अंतरंग सांस्कृतिक चेतना और साहित्यबोध की निर्दिष्टता दी जा सके । उन वृत्तियों का निर्धारण करना होगा जो कुछ विशिष्ट रचनाओं में समभाव से अनुस्यूत है[2]।

इस आधार पर उनका कालविभाजन यों है ।-

(1) संक्रमण काल (1000 – 1400 ई.) (2) संयोजन काल (1401 – 1600 ई.)

(3) संवर्धन काल (1601 – 1800 ई.) (4) संचयन काल (1800 – 1900 ई.)

(6) संबोधि काल (1901 – 1947 ई.) (6) संचलन काल (1947 –)

- -

1 साहित्येतिहास : संरचना और स्वरूप – पृ. 177 डा. सुमन राजे ।

2 हिन्दी साहित्य का नया इतिहास – पृ. 37 डा. रामखेलावन पांडे ।

लेकिन स्पष्ट नहीं होता कि यह किस वस्तु का संक्रमण, संयोजन, संवर्धन, संचयन, संबोधि एवं संचलन है, साहित्य का ? या चेतना का? इस नामकरण में अनुप्रास का आग्रह अधिक है और साहित्यगत प्रवृत्तियाँ गौण ।

'हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका' में डा.शंभुनाथ सिंह ने साहित्यक काल खण्डों को इतिहास के युगों से जोड़ा है एवं अपना कालविभाजन इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

खण्ड - 1 - प्राचीन काल

	नाम	समाजशास्त्रीय युग	ऐतिहासिक युग	काल
1	उद्भव काल	सामन्ती वीर युग	राजपूत काल	700 - 1200 ई.
2	विकास काल	पतनोन्मुख वीर युग	सलतनत काल	1200 - 1400 ई.
3	उत्कर्ष काल	विकासोन्मुख साम्राज्य युग	पूर्ववर्ती मुगलकाल	1400 - 1650 ई
4	ह्रास काल	पतनोन्मुख साम्राज्य युग	परवर्ती मुगल काल	1670 - 1850 ई.

खण्ड - 2 - आधुनिक काल

	नाम	सामाजशास्त्रीय युग	ऐतिहासिक युग	काल
1	संक्रान्ति युग	विदेशी पूंजीवादी साम्राज्य युग	ब्रिटिश राज्यकाल	1850 - 1900 ई.
2	पुनरुत्थान युग	विदेशी पूंजीवादी शोषण युग	राष्ट्रीय समझौताकाल	1900 - 1920 ई.
3	विद्रोह युग	विकासोन्मुख राष्ट्रीय पूंजीवादी युग	राष्ट्रीय संघर्ष काल	1920 - 1940 ई.
4	सामंजस्य युग	लोकतांत्रिक समाजवादी युग	स्वातंत्र्योत्तर काल	1940 - अब तक

1 अब तक हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहास लिखे जा चुके हैं, किन्तु इतिहास संबंधी आधुनिक मान्यताओं के निकष पर वे खरे नहीं उतरे । ऐसी स्थिति में हिन्दी साहित्य के इतिहास पर पुनर्विचार करके उसे नए ढंग से लिखने की आवश्यकता है ।

हिन्दी साहित्य की सामाजिक भूमिका - पृ.7 — डा.शंभुनाथ सिंह

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन न समाप्त होनेवाली राह पर निरन्तर गतिशील है ।

उपर्युक्त वर्गीकरण और विभाजन के प्रयास हमें कुछ निष्कर्षों पर पहुँचाते हैं ।-

(1) साहित्यिक युगों का निर्धारण सदैव साहित्यिक आधार पर नहीं । 'सुधारवाद' धर्मों के इतिहास से आया, मानववाद प्राचीन मानविकी विद्याओं के इतिहास से, 'पुनर्जागरण' कला के इतिहास से, प्रजाधिपत्य तथा पुनः स्थापन राजनीतिक घटनाओं से आये । विक्टोरिया युग, एडवर्ड युग और जार्जयुग ये सब नामपद राजशासनकाल के देन हैं । इससे अनिवार्य निष्कर्ष यह है कि 'नामावली राजनीति, साहित्य और कला के शब्दों का गोरखधन्धा मात्र है जिसका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता[1] ।

(2) कालविभाजन के लिए कहीं कहीं विषयवस्तु, कहीं रूप और कहीं भाषा आधार बनाए गए हैं ।

(3) वर्गीय आधार की अवहेलना की गई है । अतः वीरगाथा काल को एक वृत्ति न मानकर एक युग माना गया है ।

(4) नामों में परस्पर अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों की व्याख्या नहीं की गयी है ।

कालविभाजन सम्बन्धी विभिन्न साहित्येतिहासकारों के मतों पर हमने इसलिए प्रकाश डाला कि मध्य कालीन हिन्दी के परिसीमा-विस्तार का सही रूप हमें मिले । इसके बारे में विभिन्न पण्डितों का मत यों लिखा जा सकता है ।-

1) ग्रीयर्सन - 1300 - 1743 ई.
2) मिश्रबन्धु - 1292 - 1868 ई.
3) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - 1318 - 1843 ई.
4) डा.श्यामसुन्दरदास - 1343 - 1800 ई .
5) डा.हजारी प्रसाद द्विवेदी - 1318 - 1843 ई.
6) डा.रामकुमार वर्मा - 1318 - 1843 ई.

- -

1 साहित्य सिद्धांत - पृ.243 — रेनेवेलक

—G-1898—

UNIVERSITY

7) डा.सत्यकाम वर्मा – 1400 - 1868 ई.

8) डा.गणपतिचन्द्र गुप्त – 1350 - 1857 ई.

9) डा.शंभुनाथ सिंह – 1200 - 1850 ई.

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते है कि कालविभाजन सम्बन्धी प्राप्य सामग्री के आधार पर आचार्य शुक्ल की मान्यतायें विशेष महत्व पूर्ण है । डा.नगेन्द्र के शब्दों में 'काल विभाजन संबन्धी उपलब्ध सामग्री के उचित परीक्षण के उपरान्त आचार्य शुक्ल द्वारा किया हुआ हिन्दी साहित्य का काल विभाजन प्रायः सर्वमान्य सा हो गया है और वास्तव में सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी कुछ संगत और विवेकपूर्ण है।[1] मध्यकालीन हिन्दी के परिधि विस्तार के बारे में शुक्लजी का मत ही अधिक स्वीकार्य है ।

2) मध्यकालीन हिन्दी की प्रमुख प्रवृत्तियां

आचार्य शुक्लजी मध्यकालीन हिन्दी को सुविधा की दृष्टि से पूर्वमध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल - ऐसे दो रूपों में विभक्त करता है । प्रवृत्ति की प्रधानता की दृष्टि से पूर्वमध्यकाल को उन्होंने भक्तिकाल पुकारा है । इसका परिधि विस्तार 1318 - 1643 ई.है । इस काल के वर्गीकरण का आधार अपने इतिहास के वक्तव्य में स्पष्ट करते हुए उनका कहना है 'एक ही काल और एक ही कोटि की रचना के भीतर जहां भिन्न भिन्न प्रकार की परम्परायें चली हुई पायी गयी है, वहां अलग शाखायें करके सामग्री का विभाग किया गया है । अतः भक्तिकाल को उन्होंने निर्गुण धारा और सगुणधारा में बांटकर प्रत्येक के दो भाग किए है - पहले में ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेममार्गीशाखा तथा दूसरे में रामभक्ति और कृष्ण भक्तिशाखा ।

प्रायः सभी इतिहासकारों ने इस वर्गीकरण को स्वीकार किया है । लेकिन नामकरण के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों की धारणा है कि इस काल को भक्तिकाल न कह कर धार्मिक काल कहना चाहिए क्योंकि भक्तिकाल तो केवल सगुण और साकार का हो सकता है निराकारका नहीं । अतएव इसकाल को भक्ति काल नहीं धार्मिक काल पुकारना है, यही कुछ लोगों का मत है । इस तर्क को शुक्लजी ने स्वयं यों स्वीकार किया है 'भारतीय भक्ति मार्ग साकार और सगुण रूप को लेकर चला था, निर्गुण और निराकार ब्रह्म भक्ति या प्रेम का विषय नहीं माना जाता है।[2]

1 रीतिकाव्य की भूमिका - पृ.112 – डा.नगेन्द्र

2 चिन्तामणि भाग - 2 – पृ.37 — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

शुक्लजी ने जायसी और कुतुबन आदि कवियों को भक्त कवि माना है।
लेकिन कतिपय विद्वानों ने आपत्ति की है कि सूफियों की निर्गुणधारा भक्ति-भावना का अवलम्बन नहीं। सूर तुलसी तथा कबीर की भक्ति तथा सूफियों के प्रेम की पीर से अवश्यक पृथक है। स्वयं शुक्लजी ने भक्ति की व्याख्या यों की है 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जहां दैन्य की प्रतिष्ठा नहीं, वहां भक्ति का उदय नहीं हो सकता। अतः इन प्रेमाख्यानक कवियों को भक्ति काव्यों के अन्तर्गत रखना किसी भी दृष्टि से समीचीन नहीं।

प्रवृत्ति की प्रधानता की दृष्टि से शुक्लजी ने उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल पुकारा है। इस काल का परिधि विस्तार उन्होंने 1643 - 1843 ई.माना है। रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति है - लक्षण ग्रन्थों का निर्माण और श्रृंगारिक कविता का सृजन यहां 'रीति' शब्द एक विशेष प्रकार की काव्य परिपाटी के अनुसरण का द्योतक है। यह काव्य - परिपाटि है - उदाहरण - लक्षण के सहारे अपनी काव्य शक्ति का परिचय देना और काव्यचेतना का आकर्षण - केन्द्र नारी होना। इस प्रकार जब उदाहरण - लक्षण वाली परम्परा में 'रीति' बीजभाव होता है, तो वह कालान्तर में रीति-परम्परा बन जाती है। प्रत्येक रीतिकालीन कलाकार घनानन्द आदि एकाध कवि को छोड़कर ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से इसी रचना - पद्धति से काव्य - सृजन में परिचालित रहा है। अतः शुक्लजी ने इसे रीतिकाल नाम दिया है। आचार्य विश्वनाथ मिश्र ने वर्ण्यवस्तु को ध्यान में रखकर इसे श्रृंगारकाल पुकारा है क्योंकि 'इन रीति ग्रंथों के प्रणेता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। काव्यांगों के शास्त्रीय विवेचन में इनकी प्रवृत्ति अधिक नहीं रही है -- यदि कहीं मौलिकता दिखाई देती है तो श्रृंगार रस के सरस और हृदयग्राही उदाहरणों में - जो लक्षणों को समझाने के हेतु प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकार उन्होंने वर्ण्यवस्तु श्रृंगार को ही ध्यान में रखा है जो पद्धति-मात्र से व्यापक है। रीति ग्रंथों में जितना विवेचन हुआ है, चिन्तामणि त्रिपाठी से लेकर रसिक गोविन्द तक और उदाहरण स्वरूप जितनी भी सामग्री प्रस्तुत की गई है, श्रृंगार ही है। शुक्लजी ने इसमें आपत्ति नहीं की है। उनका कहना है 'यदि इस काल को कोई रस के विचार से श्रृंगार काल कहे, तो कह सकता है[1]।

- -

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

डा. सत्यकाम वर्मा मध्यकालीन हिन्दी को सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग तथा काव्यविलास युग (या रीतियुग) - इस प्रकार दो युगों में विभक्त करते हुए उसकी मुख्य प्रवृत्तियों पर यों प्रकाश डालते है ।-

सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग ।-

कबीर का उन्माद भरा भक्ति रंग अपने उल्लासमय समर्पण को तुलसी के बाद भी बढ़ता है । अतः तुलसी के निधन तिथि के आसपास सन् 1620 ई. तक इस युग की कालसीमा को स्वीकार किया जा सकता है । भक्ति व प्रेम की धाराओं का सम्पूर्ण साहित्य ही संस्कृति के पुनः मूल्यांकन एवं पुनरुद्धार से सम्बन्ध रखता है । कवि का व्यक्तित्व उस भावना में घुलमिल कर एक हो गया है ।

काव्य विलास युग अथवा रीतियुग ।-

युग के प्रति उपेक्षा व काव्य के प्रति उपेक्षा व काव्य के प्रति विलासात्मक आसक्ति ही इस युग के मुख्य लक्षण है । जीवन और जगत का काव्य से सम्बन्ध विच्छिन्न सा प्रतीत होता है । इस युग में परिस्थितियों का प्रभाव काव्य पर अप्रत्यक्ष रूप में ही पड़ा है । भक्ति की मस्ती और समर्पण की शान्ति, काव्य में से, एक साथ ही लुप्त हो गई है । कवि अपने ज्ञान और अपनी कल्पना के बल पर बढ़ा है । लौकिक प्रेम में कहीं कहीं मस्ती के दर्शन हुए है किन्तु कवि का कवित्व यहाँ भी पीछे नहीं छूटा है ।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मध्यकालीन हिन्दी की मुख्य प्रवृत्तियाँ भक्ति और श्रृंगार थी ।

हिन्दी की हास्य - परंपरा

हिन्दी की हास्य - परंपरा का मूल स्रोत संस्कृत ही है । डा. नगेन्द्र का कथन इस प्रसंग पर उल्लेखनीय है' हिन्दी ने जहाँ संस्कृत - प्राकृत की और रीति-नीति उत्तराधिकार में प्राप्त की वहाँ हास्य को सामग्री भी थोड़ी बहुत अपनायी । परन्तु धीरे-धीरे सभ्यता और समाज में परिवर्तित होते रहने के कारण हिन्दी का हास्य उसके श्रृंगार की भांति उसी परंपरा का क्रमानुयायी न रह सका और उसका जो यत्किंचित विकास हुआ, वह स्वतंत्र ही हुआ'।[2]

- -

1 हिन्दी साहित्यानुशीलन - पृ.53 डा. सत्यकाम वर्मा

2 हिन्दी कविता में हास्य रस - लेख से - डा. नगेन्द्र (वीणा - नवंबर 1937-पृ. 33)

जिन परिस्थितियों में हिन्दी का जन्म और विकास हुआ वे हास्य के अनुकूल न थीं। क्योंकि इस युग में एक ओर तो बौद्ध और नाथ-सिद्धों तथा जैन मुनियों की गूढ़, उपदेशमूलक एवं हठयोग की महिमा का प्रचार करनेवाली रहस्यमयी रचनाएँ लिखी जा रही थीं, जिनमें हास्य के लिए स्थान न हो सकता, दूसरी ओर वीरगाथाकाल में कवियों को अपने आश्रयदाताओं की आपसी प्रतिद्वन्द्विता और झगड़ों तथा विदेशी आक्रमणों के कारण हँसने - हँसाने का अवकाश ही कहाँ ? अतः इन परिस्थितियों में गंभीर साहित्य की ही सृष्टि हुई। फिर भी यहीं कहीं कुछ स्थूल और अपरिमार्जित हास्य की सृष्टि हुई। रासो में प्रकट व्यंग्य - गर्भित हास्य रस के एकमात्र स्थल की थोड़ी सी झाँकी यहाँ अनुचित न लगेगी :-

कन्याकुब्जेश्वर के दरबार में महाराज जयचन्द्र एवं चन्द बरदाई के प्रश्नोत्तर का प्रसंग है। चन्द्र को पृथ्वीराज का पराक्रम बखानते देख जयचंद ने उससे श्लेष वक्रोक्ति द्वारा पूछा कि मुँह का दाढ़ी, तुच्छ जीव, जंगलराव (भील, पृथ्वीराज) की सीमा में रहनेवाला, तृण चुननेवाला तथा वन उजाड़नेवाला बरद्द दुबला क्यों हो गया है ?[1]

इसका वैदग्ध्यपूर्ण उत्तर चन्द देता है 'चौहान ने अपने घोड़े पर चढ़कर चारों ओर अपनी दुहाई फेर दी, अर्थात् चारों ओर अपना राज्य स्थापित कर दिया, अपने से अधिक बलवानों के साथ उन्होंने युद्ध किया, शत्रुओं में किसी ने पत्ते पकड़े, किसी ने मौं और किसी ने तिनके, अनेकों भयभीत हो भाग गए। भूलोक में उस दिन बड़ा आश्चर्य माना गया जब कि श्रेष्ठों और सभी का मानमर्दन हुआ। इस प्रकार शत्रुओं ने सार तृण (तृण) दांतों तले दबाने के लिए चुन लिया और अतः बरद्दया दुबला हो गया।[2]

जयचन्द्र ने फिर व्यंग्य किया और कवि ने फिर फबती कसी। निरुत्तर होकर जयचन्द्र ने कवि को बरद्द के स्थान पर 'विरुदवाला' कह संबोधित किया। लेकिन कवि ने 'बरद' शब्द की महिमा का वर्णन कर जयचन्द को ऐसी उपाधि देने हेतु धन्यवाद दिया।

यही व्यंग्यात्मक हास्य के वैदग्ध्य का कारण श्लेष है। जयचन्द्र के हास्य गर्भित श्लिष्ट व्यंग्य वाक्य जंगलराव (1) भील (2) जंगलेश (3) पृथ्वीराज) और

- -

1 मुह दाढ़ि अरु तुच्छ तन जंगलराव सुहद्द। वन उजार पशु तन चरन, क्यों दूबरो बरद्द।

पृथ्वीराज रासो - छन्द 580

2 चढ़ि तुरंग .... बरद्दया।

पृथ्वीराजरासो - छन्द 582

बरदिया (बैल, कन्द बरधायी) आलम्बन है । मुँह बिरिछ, तुच्छ तन, बन उजार, पशु आदि वचन उद्दीपन है । 'क्यों बुड़वो बरदिया' संचारी है ।

अब हम चंद का उत्तर लेंगे । पृथ्वीराज के शत्रुओं को पशु बताना आलम्बन है । इन पशुओं को जांगलराव के सारे वन को खाते कहना उद्दीपन है, थके हुए बरदिया को क्षुधा - शमन के लिए घास भी न मिलना संचारी है ।

प्रतिकूल परिस्थितियाँ होने के कारण आदिकाल में सहज-हास्य का अभाव है

अमीर खुसरो -

फिर अमीर खुसरो का समय आता है । हास्य को स्वतंत्र सत्ता प्रदान करनेवाले अमीर खुसरो ही हिन्दी के प्रमुख हास्यकार है । जीवन में साहित्य को मनोरंजन की वस्तु सबसे प्रथम बनाने का श्रेय अमीर खुसरो पर है । उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दोसखुने विनोदपूर्ण वातावरण प्रस्तुत करने की क्षमता रखते है ।

अमीर खुसरो की कुछ पहेलियाँ ऐसी है जिनका उत्तर पहेली की शब्दयोजना में ही रहता है । उदाहरण है :-

श्याम वर्ण और दांत अनेक
लचकत जैसे नारी
दोनों हाथ से खुसरो खींचे
और कहे तू आरी ।

इसमें स्थूल रूप से खुसरो एक लचकती हुई नारी की कल्पना सामने लाते है और उसे दोनों हाथों से खींचते भी है, किन्तु उसके साथ ही आरी शब्द में श्लेष के द्वारा चमत्कार है । एक ओर उस काल्पनिक चित्र को वह पूर्ण करता है, दूसरी ओर पहेलि का अर्थ भी घोषित करता है । पहेली का अर्थ पहले ही समझनेवाला कवि की विदग्धता पर तो हँसता है । अर्थ प्रथम दृष्टि से समझ न सकने वाला उसे फिर समझने पर इसी पर मन ही मन हँसता है कि पहेली का अर्थ तो उसी में स्पष्टया, वह उसे समझ न सका ।

- -

1 हिन्दी कविता में हास्य रस पृ.51 से उद्धृत

खुसरो की कुछ ऐसी भी पहेलियां है जिनका उत्तर पहेली में विद्यमान नहीं होता, उसे खोजकर बताना पड़ता है जैसे :-

श्याम वर्ण की है एक नारी
   माथे ऊपर लागे प्यारी
जो मानुस इस अर्थ को खोले
   कुत्ते की वह बोली बोले । (भौंह)

इस में भी अच्छा मजाक विद्यमान है । यहां भी खुसरो को एक नारी मिल गई है, संभवतः उसका माथा उन्हें प्रिय है और उसी पर वे अपनी जान भी देते है खुसरो तो यह घोषणा करते है कि जो इस पहेली का अर्थ बतायेगा, उसे कुत्ते की बोली बोलनी पड़ेगी । ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो जान बूझकर कुत्ता बनना चाहेगा । लेकिन जब पहेली का अर्थ खुलता है और यह पता चलता है कि आंखों की शोभा बढ़ानेवाली काली काली भौंह और कुत्ते की बोली में अर्थसाम्य के न होने पर भी ध्वनि साम्य है ।

खुसरो के कुछ दो-सखुने भी एक प्रकार की पहेलियां है । दो या तीन प्रश्नों का एक ही उत्तर हुआ करता है । कतिपय उदाहरण हम देखे :-

1) जूता क्यों न पहना ? समोसा क्यों न खाया ?
   .... तला न था ।
2) सितार क्यों न बजा ? औरत क्यों न नहाई ?
   .... परदा न था ।

खुसरो की रसिकता की चरम सीमा उनकी मुकरियों में है । मुकरियों में पहले प्रसंग ऐसा बांधा जाता है स्वभावतः यह आशा होने लगती है कि अन्त में साजन (प्रिय) शब्द आयगा । सारे लक्षण 'साजन' में घटित होते हुए प्रतीत होते है, लेकिन अन्त में हमारी प्रतीक्षा के विरुद्ध किसी और वस्तु का नाम दे दिया जाता है जिसमें भी सारे लक्षण घट जाते है -

1) जब मोरे मन्दिर में आवे, सोते मुझको आन जगावे,
   पढ़त फिरत वह बिरह के अच्छर ऐस रिव साजन । न सखि मच्छर ।।

---

1 हिन्दी कविता में हास्य रस पृ.51 से उद्धृत

2) बेर बेर सोवतोहिं जगावे, न जागू तो काटे खावे,
व्याकुल हुई मैं हक की बकी, क्यों साखि साजन । नखि न सखि मखि ।

इस प्रकार साजन जब कभी मक्खी, मच्छर आदि बने हुए दिखाई देते है, तब वैपरीत्य की भावना के कारण अनायास ही हास्य का उद्रेक हो जाता है ।

बुद्धि का कौशल, साम्य का अध्ययन, उक्ति की चमत्कारिकता - ये सब हमें चकित करती हुई विनोद की सामग्री उपस्थित करती है, लेकिन इसमें उच्च कोटि का शुद्ध और निश्छल हास्य उतना नहीं दिखाई देता ।

हास्यरस के क्षेत्र में खुसरो महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं क्योंकि वे ही पहले ऐसे कवि थे जिन्होंने हास्य को स्वतंत्र सत्ता प्रदान की, उसे अन्य रसों का सहयोगी मान नहीं चले ।

संक्षेप में शुक्लजी का यह कथन ठीक ही साबित होता है 'खुसरो का लक्ष्य जनता का मनोरंजन ही था[1] ।

इसी काल में मिथिला की अमराइयों में मैथिल - कोकिल विद्यापति की मधुर ध्वनि गूंज उठी । श्रृंगार में अत्यधिक आसक्त उनकी प्रवृत्ति अपनी हास्यमयी प्रकृति को कुण्ठित न कर सकी । उनके मुख से विनोदमयी पंक्तियाँ भी फूट पड़ी, लेकिन उल्लेखनीय हास्य प्रसंगों की या नयी हास्य प्रवृत्तियों को हम उसमें देख नहीं सकते । पूर्णयुवती प्रेमिका तथा किशोर प्रियतम का मिलन जैसे वैपरीत्य की भावना ही उनके हास्यों में अधिकांश हास्योद्रेक का कारण उपस्थित कर देती है ।

यही मध्यकाल तक की हिन्दी की हास्य-परंपरा है । इस भूमिका पर हमें मध्यकालीन हिन्दी काव्यों की हास्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालना होगा ।

मध्यकाल में तो भक्ति और रीति शामिल है । भक्ति धर्मविषयक प्रवृत्ता है । इसकेलिए मर्यादा और विनय जरूरी है । अलौकिक शक्ति के प्रति प्रेम से ही भक्त का संबन्ध होना चाहिए । निर्गुण भक्ति में तो साधना आदि गूढ तात्त्विक विषयों की प्रधानता है सगुण भक्ति में तो शरणागति, अनन्य भक्ति आदि प्रमुख है । ऊपर से ये दोनों गंभीर है, यहाँ हास्य कैसे ?

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.55 - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

इस प्रश्न का उत्तर हमे सीधे ही मिलता है । भक्ति काव्यो के अध्ययन करने पर उसके कवियो का अन्यतम मानवपक्ष प्रकट है । मानव मे कुछ व्यंग्य विनोद भी है । उसे वह किसी भी हालत मे छोड नही सकता ।

धार्मिक और दार्शनिक शास्त्रार्थ मे भी कवि की व्यंग्यकुशलता और हास्य विलक्षणता प्रतिद्वन्द्वी या प्रतिवादी को लज्जित बनाती है । सामान्य जन के मन मे कोरे तथा सूखे दर्शन तत्व उसी भाव से घुस नही जाते । उसके लिए लौकिकता की कुछ झलक का भी मिलना अवश्यक है । बुद्धि को संतुष्ट कर सकने की कुछ सार्थकता, दो अर्थवाले कुछ शब्दो का कौतूहल पूर्ण प्रयोग अलग प्रकार अलंकारविधान - इन सबके द्वारा नीरस विषय सरस बन जाते है ।

कबीर जैसे संतो की वाणी मे भी हम यही देखते है । लोगो का मनोरंजन उनका लक्ष्य कभी नही रहा, लोगो को अपनी ओर आकर्षित करना कबीर का लक्ष्य कभी नही था, उन्होने यह कभी नही कहा कि तुम सब मेरे पास आ जाओ । कबीर की चटुल वाणी मे, तीखे फटकारो मे, मजबूत प्रहारो मे व्यंग्यात्मक हास्य अनजाने ही आ गया । बाह्याडंबरी तथा अन्धविश्वासी को देख देख उनके मन मे उनके प्रति जो घृणा बढी उसने अनुयोज्य अलंकारो को, तीखे भाषा प्रयोगो, प्रसंगोचित तर्को को ढूंढ निकाला - जिन सबने मिल कर ऊंचे तले के व्यंग्यात्मक हास्य की सृष्टि की ।

सगुण भक्ति मे भगवान की लीलाविनोदो का वर्णन है । इनमे कुछ स्वयं विनोदपूर्ण है । प्रभु अपने लौकिक जीवन मे मानवांश को दिखाने केलिए कुछ उपहासास्पद कार्य स्वयं करते है या कवि को इसके वर्णन का मौका देते है । उदाहरण है माता से बालकृष्ण की बेतुकी शिकायतें, माखनचोरी, मिट्टी खाना आदि । जब ईश्वर मामूली मानव सा कमज़ोरी प्रकट करता है, जब मामूली मानव ईश्वर सा कार्य करता है - ये दोनो वैपरीत्य जन्य हास्य की सृष्टि करते है । जिसे हम ईश्वर जानते है उसे मिट्टी खाते देखकर बच्चे के ईश्वरत्व के बारे मे अज्ञात यशोदा कोपिष्ठ होती है । जिसे वह मामूली मानव बच्चा समझता है उससे मै भगवान हूं, मेरी पूजा करो । सुनकर वही यशोदा कोपिष्ठ होती है । दोनो बच्चो मे निहित 'ईश्वरत्व मे मानवत्व और मानवत्व निहित मे ईश्वरत्व' दोनो को देख हम पाठक हंस बैठते है ।

- -

। पुन्तानम् की कृतियां

बाबा तुलसी भी श्रीराम की बाललीला के प्रसंग में चंदा के लिए हठ आदि प्रस्तुत करते है ।

अन्य भक्त कवियो मे भी मानवपक्ष प्रबल है । अतः उनमे भी हास्य विनोद की प्रवृत्ति मौजूद है ।

अब हम मध्यकालीन कवियों की हास्य चेतना पर विशद रूप से प्रकाश डालने के लिए प्रमुख कवियों को एक एक करके लेंगे ।-

कबीर का व्यंग्यात्मक हास्य -

प्रस्तावना -

एक आलोचक ने उचित ही लिखा है 'कबीर हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठतम विभूति है । वे वाणी के वरद पुत्रों में है जिनकी प्रतिभा के प्रकाश से हिन्दी साहित्याकाश चिर आलोकित रहेगा[1] । एक अन्य आलोचक का मूल्यांकन यों है 'हिन्दी साहित्य की काव्यधारा में कबीर की स्थिति एक विशाल जलाशय (RESERVOIR) के समान है[2] । चन्द्रबली पांडे जी के अनुसार उनकी झीनी - झीनी बीनी चदरिया किसको नही भाती, चाहे वह किसी भी ताने और किसी भी बाने से बनी हो[3] । कबीरदास मध्यकालीन विचारधारा के प्रतिनिधि कवि माने जाते है[4] । सारे के सारे साहित्येतिहासकारो ने कबीर को भक्तिकाल की ज्ञान मार्गी शाखा का प्रतिनिधि कवि मान लिया है ।

सर्वतोमुखी प्रतिभा संपन्न तथा विलक्षण व्यक्तित्ववाले कबीर के बारे में आलोचकों के बीच विरोधी मतमतान्तर है, यही सरस बात है । डा.रामकुमार वर्मा ने उन्हे हिन्दी का श्रेष्ठतम कवि माना है[5] । लेकिन कवि सम्राट हरिऔध जी उनके कवित्वरूप को महत्व नही देते[6] । कुछ आलोचक तो उनको उत्तम रहस्यवादी[7] मानते है ।

- -

1 कबीर की विचारधारा - पृ.1 डा.गोविन्द त्रिगुणायत ।

2 हिन्दी साहित्य परिचय - पृ.41 हरिशंकर शर्मा ?।

3 हिन्दी कवि चर्चा - पृ.105 चन्द्रबली पांडे ।

4 नाथ संप्रदाय पृ.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

5 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ.257 डा.रामकुमार वर्मा

6 कबीर वचनावली - भूमिका -पृ.35 - हरिऔध

7 कबीर का रहस्यवाद - पृ.32 डा.रामकुमार वर्मा ।

और कुछ तो मानते हैं उनको उच्चकोटि के दार्शनिक के रूप में[2]। पाश्चात्य विद्वानों ने उन्हें सुधारक का पद दे रखा है[2]। कतिपय अन्य विद्वान भक्त ही समझते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का यह कथन भी विशेषतः उल्लेखनीय है कबीर धर्मगुरु थे। इसलिए उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही आस्वाद्य होना चाहिए। परन्तु, विद्वानों ने नाना रूप में उन वाणियों का अध्ययन और उपयोग किया है। काव्य रूप में उसका आस्वादन करने की तो प्रथा ही चल पड़ी है, समाज सुधारक के रूप में, सर्वधर्म समन्वयकारी के रूप में, हिन्दु मुस्लिम ऐक्य विधायक के रूप में, विशेष सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता के रूप में और वेदान्त व्याख्याता दार्शनिक के रूप में भी उनकी चर्चा कम नहीं हुई है[3]। आचार्य जी यही साबित करते हैं कि कबीर के इन कई विविध रूपों में से किसी एक का प्रतिनिधि समझ कर उनका मूल्यांकन करना ठीक नहीं है।

मध्यकाल के प्रारंभ चरण में कबीर का जन्म हुआ था। इन्होंने हिन्दी साहित्य में व्यंग्य लिखने की परम्परा स्थापित की[4]। और एक आलोचक के शब्दों में निर्गुण सन्तों की अक्खड़ वाणियों में हास्य को कितना स्थान मिल सकता था, यह कहना अनावश्यक है। हां, कबीर में व्यंग्यात्मक हास्य अवश्यक दृष्टिगोचर होता है[5]। कबीर की व्यंग्यकला के बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है 'सच पूछा जाय तो आज तक हिन्दी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करनेवाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देनेवाली शैली और अत्यंत सादी किन्तु अत्यंत तेज प्रकाशन - भंगी अनन्य साधारण है[6]। डा. श्यामसुंदरदास ने भी मान लिया है कि 'उनकी अटपटी वाणी हृदय में चुभनेवाली थी[7]। इनकी मर्म - भेदी व्यंग्योक्तियों से आहत होकर एक बार मुसलमानों ने बादशाह सिकन्दर लोदी को इनके विरुद्ध भड़का दिया।

- -

1 (क) हिन्दी साहित्य - पृ. 135 डा. श्यामसुन्दर दास।

(ख) मिश्रबन्धु विनोद - पृ. 252 मिश्रबन्धु

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 57 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 कबीर पृ. 216 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

4 हिन्दी साहित्य में हास्यरस पृ. 70 डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी

5 हिन्दी कविता में हास्यरस पृ. 54 डा. सरोज खन्ना

6 कबीर पृ. 164 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

7 कबीर ग्रंथावली - भूमिका पृ. 6 डा. श्यामसुन्दरदास

फलतः कबीर को जंजीरों से जकड़ कर गंगा में फिकवा दिया गया, किन्तु अपराजित कबीर का बाल भी बांका न हुआ यों एक कथा प्रचलित है। इस कथा की सत्यता कैसी भी क्यों न हो, कबीर वाणी की व्यंग्यपूर्णता प्रमाणित है।

कबीर को साहित्य-रसिक काव्यानंद का आस्वाद करनेवाला मानते हैं। यद्यपि कबीर ने काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गागरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। प्रश्न हो सकता है कि माया मरीचिका से सावधान रहने वाले कवि से हास्यसृष्टि में लिप्त होने की संभावना ही कैसे की जा सकती है?[2] बात यह है कि उनका हास्य मामूली हास्य से भिन्न है। अर्थात् कबीर का हास्य व्यंग्योक्त है। अन्य हास्य कवियों के समान कबीर में घटनाजन्य, संवाद जन्य या पात्र स्वभाव जन्य हास्य की सृष्टि नहीं की। लेकिन व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में कबीर अपना प्रतिद्वंदी नहीं जानते। पण्डित और काज़ी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी - सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते हैं। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी गहरी चोट करते हैं कि चोट खानेवाला केवल धूल झाड़के चल देने के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं पाता।[3]

परिस्थितियों की आवश्यकता के रूप में कबीर का व्यंग्य -

समय की मांग के रूप में कबीर को चित्रित करते हुए डा. श्यामसुन्दरदास बताते हैं 'काल की कठोर आवश्यकतायें महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए हुआ था।[4] कवि अपने युग का द्रष्टा होता है। प्रतिभा पुष्प के प्रस्फुटन काल में अपने सौरभ के अतिरिक्त वातावरण को दुर्गन्धमय पाकर उसके प्राण छटपटा उठते हैं। यही बात कबीर में भी सच निकलती है। कबीर का प्रादुर्भाव भारतीय संस्कृति के अवनत काल में हुआ था। असन्तोष और अशान्ति की आग सर्वत्र भड़कती

1 गंगा - लहर मेरी टूटी जंजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर।

कहु कबीर कोउ संग न साथ, जल - थल राखत है रघुनाथ ॥

कबीर ग्रंथावली - पृ. 31 से उद्धृत - डा. श्यामसुन्दरदास

2 हिन्दी साहित्य परिचय - पृ. 44 हरिशंकर शर्मा

3 कबीर - पृ. 216 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

4 कबीर ग्रंथावली - प्रस्तावना पृ. 1 डा. श्यामसुन्दरदास

थी । दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों के संघर्ष में जनता पिसी जाती थी । हिन्दुओं के राजमुकुट पराजय और पराभव की धूल में पड़े थे । धार्मिक विद्वेष का बवण्डर सब कहीं व्याप्त था ।

अन्धविश्वास - और अपना फन फैलाए

अज्ञान के अँधेरे बिल में धर्म को समेटे पड़ा था । रूढ़ि-ग्रस्त हिन्दु समाज की नींव खोखली हो चली थी । सर्वत्र धार्मिक कट्टरता का बोलबाला था । धर्म की आधार शिला निर्बल हो गयी थी और उसने आडम्बर का रूप धारण कर लिया था । उस समय के अस्त व्यस्त एवं विशृंखल धर्म व्यवस्था के लिए 'अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग' वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ हो रही थी ।

यद्यपि साधारण गृहस्थों का धर्म पौराणिक (हिन्दु) ही था तथापि देश में कई साधनायें प्रचलित थी । कोई वेदपाठी था तो कोई उदासी, कोई ऐसा था जो दीन बना फिर रहा था तो कोई दान पुण्य में ही व्यस्त था, कोई मदिरा के सेवन को ही चरम साधना मानता था, कोई सिद्ध था, कोई तीर्थव्रती तो और कोई धूम्रपान से शरीर को काला बना रहा था । सब थे पर कोई राम - नाम में लीन नहीं था[1] । उस समय मुनि थे, पीर थे, दिगम्बर थे, योगी थे, जंगम थे, ब्राह्मण थे, संन्यासी थे, पर सभी माया के चक्कर में पड़े हुए थे[2] ।

हिन्दु समाज की दशा अत्यन्त निराशा जनक थी । यवनों के देश में विजयी जाति के रूप में बस जाने पर हिन्दु जनता विजित जाति होने के कारण कुछ दैन्यता और निराशा की भावना का अनुभव करने लगी थी । धर्मान्ध मुसलमान बादशाहों द्वारा अपने सामने अपने उपास्य देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़ा जाता देख उनका ईश्वरीय विश्वास भी शिथिल हो चला । इस प्रसंग पर डा. श्यामसुन्दरदास का यह वर्णन खासकर पठनीय है 'मूर्तियों की असक्तता वि.सं. 2081 में बड़ी स्पष्टता से प्रकट हो चुकी थी, जब कि महमूद गज़नवी ने आत्मरक्षा से विरत, हाथ पर हाथ रखकर बैठे हुए श्रद्धालुओं के देखते देखते

---

1 इक पढ़हिं पाठ, इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरन्तर, रहैं निवास ।
.... यूं मुकुति नहीं बिन रामनाम
कबीर ग्रंथावली - पद 386

2 कबीर ग्रंथावली पद 187

सोमनाथ का मंदिर नष्ट करके उनमे से हज़ारो को तलवार के घाट उतारा था । गजेन्द्र की एक ही टेर सुनकर दौड आनेवाले और ग्राह से उसकी रक्षा करने वाले सगुण भगवान् जनता के घोर से घोर संकट काल मे भी उसकी रक्षा के लिए आते हुए न दिखाई दिए[1] । फलतः मूर्ति पूजा और बहुदेव वाद के प्रति हिन्दुओ की श्रद्धा कम हो गयी । देश मे निराशावाद के पैर दृढता से जम गए ।

निष्कर्ष रूप से कबीर कालीन परिस्थितियो के बारे मे हम यो कह सकते है :-

(1) हिन्दुओ मे निराशावाद फैला था, सगुण भक्ति मे उनका विश्वास नष्ट हो गया था ।

(2) समुचित शिक्षा के अभाव मे अनेक प्रकार के अन्धविश्वास और आडम्बर समाज मे प्रचलित थे[2] । धर्म के ठेकेदारो की तूती बोल रही थी । बाह्याचार बहुल शुष्क साधना की मरुभूमि मे कबीर खडे थे[3] ।

(3) हिन्दु और मुसलमान आपस मे लड रहे थे । भारतीय सब अपनी अपनी आग मे जल रहे थे[4] ।

कबीर के हास्य - व्यंग्य की विशेषताये -

कबीर के व्यंग्यात्मक हास्य की निम्न लिखित विशेषताये पायी जा सकती है

(1) पक्षपाती नही -

कबीर पर कई प्रकार के प्रभाव थे । जन्म या वंश से उनका पालन पोषण मुसलमान घर मे हुआ, दीक्षा रामानन्दी वैष्णव सम्प्रदाय की मिली और उन्ही महात्मा के खंडन मंडनात्मक उपदेशो द्वारा तत्कालीन शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त हुआ । पर्यटन मे वे गोरखपन्थी योगियो के सम्पर्क मे आये । कट्टर मुसलमानो के अतिरिक्त शेख तकी जैसे सूफी फकीरो के भी वे सम्पर्क मे आये - इन सबके होने पर भी वे किसी विशिष्ट वाद के पिष्टपोषक न रहे । जहां जहां बुराई देखी, आंखे मूंदकर उस पर प्रहार किया ।

- -

1 कबीर ग्रंथावली - भूमिका पृ. 11 डा. श्यामसुन्दरदास

2 Nirguna Sehool of Hindi poetry - p.112 Dr. Dadadwal

3 कबीर पृ. 139 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

4 सब जग जलता देखिया अपनी अपनी आगि । कबीर ग्रंथावली पृ. 66

उनकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि वे किसी का पक्षपात नहीं करते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों को उन्होंने एक सा फटकारा । दोनों की कमजोरियों को लक्ष्य करके उन्होंने खरी - खरी सुनाना प्रारंभ कर दिया । मुल्ला की बांग और हिन्दुओं की पीतल - पीटम्स पर उन्होंने तिलमिलानेवाली बुद्धि चुटकियाँ समान रूप से ली । हिन्दू तुरुक हटा नहीं माने, स्वाद सबन को मीठा, वै हलाल, वै झटका मारे आगि दुहो घर लागी आदि इसके उदाहरण है । उनकी समदृष्टि में महादेव और मुहम्मद, राम और रहीम एक थे - वही महादेव, वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए - किन्तु वे किसी के भी मिथ्याचार को सहन नहीं कर सकते थे । वेद और कुरान के प्रति भी समभाव रखते थे, उनका कहना है कि उन पर पूरे तौर से विचार न करने से ही वे झूठे हो जाते है - बेद कितब कौन किन झूठा, झूठा जो न बिचारै । योग मार्ग से प्रभावित पूरे पूरे होने पर भी उनकी बुराई उन्होंने यो घोषित की - महादेव का पन्थ चलावै, ऐसी बडो महन्त कहावै, हाट बाट में लावै तारी, कच्चे सिद्धन माया प्यारी । वे भी कोरे साखी शब्दों के जिनमें अनुभवी ज्ञान न हो, उतने ही विरोधी थे जितने कि आचार्य शुक्लजी ने तुलसी को बतलाया है - 'साखी सबदै गावत भूले आतम खबर न जाना । यही है हृदय की ईमानदारी, इसकी कबीर में कमी न थी[1] ।

(2) लापरवाही

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लापरवाही को कबीर के व्यंग्यों की जान मानते है । वह पण्डित और शेख को इस प्रकार पुकारते है गोया वे नितांत नगण्य जीव हो, केवल बाह्याचारो के गट्टर केवल कुसंस्कारो के गड्ढे । किसी पर आक्रमण करते समय वे लापरवाह होते है और इसलिए लापरवाही भरी एक हंसी उनके अधरो पर मानो खेलती रहती है। इस लापरवाही के कारण ही इन आक्रमणो में एक सहज भाव और एक जीवन्त काव्य मूर्तिमान हो उठा है[2] । अगर कबीर अपनी ओर से इतना निश्चिन्त न होते तो व्यंग्य उतना करारा न हो पाता ।

कबीर के पूर्ववर्ती सिद्ध और योगी लोगो की आक्रमणात्मक उक्तियों में एक प्रकार की हीन भावना की ग्रंथि (Inferiority Complex) पायी जाती है ।

---

1 हिन्दी काव्य - विमर्श पृ.37 प्रो.गुलाबराय

2 कबीर पृ.164 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य द्विवेदी जी के शब्दों में वे मानो लोमड़ी के खट्टे अंगूरों की प्रतिध्वनि है, मानो चितम न पा सकने वालों के आक्रोश है । उनमें तर्क है पर लापरवाही नहीं है, आक्रोश है पर मस्ती नहीं है, तीव्रता है पर मृदुता नहीं[1] । कबीरदास के आक्रमणों में भी एक रस है, एक जीवन है क्योंकि वे आक्रान्ता के वैभव से परिचित नहीं थे और अपने को समस्त आक्रमण योग्य दुर्गुणों से मुक्त समझते थे । इस तरह जहाँ उन्हें लापरवाही का कवच मिला था, वहाँ अखण्ड आत्म विश्वास का कृपाण भी ।

(3) उचित भाषा

समाज को प्रबुद्ध बनाने का यत्न ही कबीर ने किया । उस समय की मजबूरी को ध्यान में रखकर जनकीय भाषा में ही कबीर ने अपनी बातें कहीं । हमने देखा है कि बाह्याचार पर आक्रमण करनेवाले सन्तों और योगियों की कमी नहीं है, पर इस कदर सहज और सरस ढंग से चकनाचूर करनेवाली भाषा कबीर के पहले बहुत कम दिखाई देती है । आचार्य द्विवेदीजी कबीर को वाणी के बादशाह मानते थे[2] ।

मसि-कागद न छूनेवाले दार्शनिक कवि कबीर को, जिन्होंने कभी कलम पकड़ना भी न सीखा था, कोई स्थिर भाषा न थी, किन्तु यह अस्थिरता ही उनकी भाषा का सौन्दर्य है । कबीर का छन्द ज्ञान अत्यन्त अल्प था, किन्तु उनके छन्दों की स्वच्छन्दता ही उनके काव्य की शोभा है । उनकी कविता में अलंकारों का चमत्कार नहीं है, किन्तु उसकी स्वाभाविक सरलता और सादगी ही अलंकार से बढ़कर है । कबीर के भाव साधारण मनुष्य के लिए दुर्बोध्य न होने का कारण तो यही है ।

कबीर की भाषा के शक्त होने का कारण गुलाबरायजी यों बताते हैं कबीर ने कविता के लिए कविता नहीं की, वरन् उसे अपने भावों को जनता तक पहुँचाने का माध्यम बनाया । उनके हृदय में सचाई थी और आत्मा में बल था । इसी कारण उनकी वाणी में भी शक्ति आ गयी । सच्चे हृदय से निकली हुई बात स्वयं सरस होती है[3] ।

---

1 कबीर पृ.165 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

2 भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है - बन गया है तो सीधे नहीं तो दरेरा देकर । भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नज़र आती है ।
कबीर पृ.216 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

3 हिन्दी काव्य विमर्श पृ.41 प्रो.गुलाबराय

कबीर की हास्योचित भाषा के बारे में चन्द्रबली पांडे जी का मत भी उल्लेखनीय है 'कबीर जहां नाद और बिन्दु के चक्कर में नहीं पड़े और अपनी सहज आकुलता को लेकर बानी में फूट पड़े, वही उनका हृदय काव्य के रूप में बरस पड़ा और सारा जनपद लहलहा उठा। कबीर के उपदेश भी कुछ थोड़े नहीं उतरे? व्यंग्य की तो बात ही क्या? फबतियां भी खूब कसी है। बहुयाडंबर की धज्जियां उड़ाने में चूकते ही नहीं। प्रतीत होता है कि उनको बेधने के लिए ही बानी मिली है।[1]

कबीर के व्यंग्यात्मक उपहासों के लिए भाषा कितनी उपयोगी बनी है, उसकी चर्चा आचार्य द्विवेदीजी से एक उद्धरणी के साथ खतम करेंगे 'व्यंग्य वह है, जहां कहनेवाला अधरोष्ठों में हंस रहा हो और सुननेवाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो। कबीरदास ऐसे ही व्यंग्यकर्ता थे -

ना जाने तेरा साहब कैसा है।

मसजिद भीतर मुल्ला पुकारै क्या साहब तेरा बहरा है?
चिउंटी के पग नेवर, बाजे, सो भी साहब सुनता है।
पंडित होय के आसन मारै लम्बी माला जपता है।
अन्तर तेरे कपट - कतरनी, सो भी साहब लखता है।
ऊंचा नीचा महल बनाया, गहरी नेंव जमाता है।
चलने का मनसूबा नाहीं, रहने को मन करता है।
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, गाडि जमीं में धरता है।। कबीर वचनावली पृ.154

कबीर भाषा यह भाषा झकझोर देनेवाली है - जितनी ही सादी उतनी ही तेज।[2]

(4) समाज - सुधार के लिए व्यंग्य

समाज सुधार में व्यंग्य से बड़ा काम निकलता है। कबीर ऐसे समाज सुधारक थे। उन्होंने अपने समय की अवश्यकता को पहचाना। वे हिन्दु मुसलमानों को

---

1 हिन्दी कवि चर्चा पृ.101 चन्द्रबली पांडे

2 कबीर पृ.164 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

एक दूसरे के निकट लाये और शूद्रों को जिनकी स्थिति उस समय धोबी के कुत्ते की सी जो न घर का होता है और न घाट का, हो रही थी, उन्होंने ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। कबीर ने राम और रहीम, आदम और ब्रह्मा, महादेव और मुहम्मद को एक बताकर हिन्दू मुसलमानों को निकट लाकर धार्मिक संघर्ष मिटा दिया। सच्चा सुधारक सत्य बोलने से नहीं डरता। वे इन दोनों जातियों के मिथ्या गर्व को, जिसके कारण वे एक दूसरे के निकट नहीं आने पाते थे, दूर करना चाहते थे[1]।

बुरे लोगों पर व्यंग्य बाणों का प्रहार कर साहित्यकार उन्हें सुधारने का परिश्रम करता है। इसीलिए कुछ आलोचक कहते हैं कि 'कबीरदास हमारे सामने सुधारवादी के रूप में आते हैं[2]। लेकिन कई आलोचक कबीर को समाज सुधारक पुकारने में गलती मान लेते हैं यद्यपि वे कबीर की सुधारात्मक प्रवृत्ति की प्रशंसा करते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के शब्दों में कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कही हैं जिनसे (अगर उपयोग किया जाय तो) समाज सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसलिए उनको समाज सुधारक समझना गलती है। वस्तुतः वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे[3]। ठीक इससे मिलता जुलता मत चन्द्रबली पांडे भी प्रकट करते हैं। कबीर सुधार करते थे पर सुधारक नहीं थे। ...... कबीर चाहते थे सदाचार और सत्य का व्यवहार, किसी जाति का नहीं व्यक्ति का। कबीर की सबसे बड़ी देन यही है कि नीच जाति के लोग भी उनके पंथ में आ जाने से अछूत नहीं, अछूत बन गए। खान - पान और आचार विचार से शुद्ध बने, मांस मदिरा से दूर रहे[4]। डा. गोविन्द त्रिगुणायत भी इससे सहमत होते हैं कबीर क्रान्ति की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने देश में, धर्म में, समाज में, दर्शन में, साधना में, सभी क्षेत्रों में क्रान्ति की जो धारा बहायी थी उससे निश्चय ही उन क्षेत्रों के कालुष्य बह गए। इसे देखकर बहुत से विद्वानों ने उन्हें समाज सुधारक और धर्म सुधारक कहना प्रारंभ कर दिया है। वास्तव में कबीर ने कभी सुधारक बनने की चेष्टा नहीं की थी[5]। साम्यवादी कबीर विषमताओं रूपी कूड़ा करकट को

1 हिन्दी काव्य विमर्श - पृ.50 डा. गुलाब राय
2 हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ.5 जयकिशन प्रसाद
3 (क) कबीर - पृ.218 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
(ख) समाजसुधार कबीर के वक्तव्य के फोकटका माल या बाईप्रोडक्ट ही है।
वही पृ.219
4 हिन्दी कवि चर्चा पृ.103 चन्द्रबली पांडे
5 कबीर की विचारधारा पृ.204 डा. गोविन्द त्रिगुणायत
6 कबीर

प्राचीन धर्म और समाज के क्षेत्र से हटाने में लग गए । यद्यपि कबीर का लक्ष्य सुधार करना न था, किन्तु युगीन परिस्थितियों ने ऐसी बातें करने के लिए बाध्य किया जो उन्हें अब सुधारक की पदवी दिलाने के लिए पर्याप्त समझी जा सकती है । डा. श्यामसुन्दरदास के शब्दों में 'धर्म सुधारक को समाजसुधारक होना ही पड़ता है । कबीर ने भी समाज सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है[1] । जाति-पाँति, छुआछूत, खान-पान आदि के व्यवहारों और मुसलमानों के चाचा की लड़की ब्याहने, मुसलमानी आदि कराने का उन्होंने चुभती भाषा में विरोध किया है और इनके विषय में हिन्दु-मुसलमान दोनों की जी भरकर धूल उड़ाई है ।

कबीर समाज सुधारक पुकारे जायें या न जायें । यह बात सच है कि उनकी सुधारात्मक प्रवृत्ति सबसे प्रशंसनीय रही है । इस सुधार के लिए व्यंग्य ही उनके हथियार थे । 'रूढ़ियों और कुसंस्कारों की विशाल वाहिनी से वह आजीवन जूझते रहे, प्रलोभन और आघात - काम और क्रोध भी उनके मार्ग में अड़ खड़े हुए क्रोध भी उनके मार्ग के होंगे, उन्होंने उनको असीम साहस के साथ जीता[2] । व्यंग्य की तलवार ही उनका एक मात्र साधन था । गुमराह लोगों की गलती दिखाने में उन्हें एक तरह का रस मिलता था। व्यंग्य करने में उन्हें जैसे तृप्ति मिलती थी[3] । अतः अकारण सामाजिक ऊँच नीच मर्यादा के समर्थकों को वे कभी क्षमा नहीं कर सके, भगवान, के नाम पर पाखण्ड रचनेवालों को उन्होंने कभी छूट नहीं दी और दूसरों का गुमराह बनानेवालों को उन्होंने कभी मुक्त छोड़ा नहीं ।

कबीर के व्यंग्यात्मक हास्य पर हठयोगियों का प्रभाव

जाति-भेद के दुर्गमदुर्ग पर सीधा प्रहार करना कबीर ने उचित न समझा । इसीलिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया । कबीर का धार्मिक सुधारक के रूप में अवतरण होना और धर्म - ध्वजाधारी विशिष्ट वर्ग को जाति-विभेद के एकीकरण की चुनौती देना कोई नवीन घटना न थी । वज्रयानी सिद्धों की पूर्व प्रचलित उद्दण्ड विचारधारा का पोषण कबीर की उग्रवाणी में हुआ । कबीर के खण्डन - मण्डन का स्वर भी उन्हीं के सदृश प्रचण्ड था[4] । आचार्य द्विवेदीजी का कथन इस प्रसंग पर स्मरणीय है । बाह्याचारमूलक जिन

---

1 कबीर ग्रंथावली - प्रस्तावना - पृ.46 डा. श्यामसुन्दर दास
2 कबीर पृ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
3 वही
4 हिन्दी साहित्य परिचय - पृ.38 डॉ॰शंकर शर्मा

धार्मिक कृत्यों का खंडन कबीरदास ने किया है, लगभग सभी का खण्डन उनके पूर्ववर्ती हठयोगियों ने उसी प्रकार की चकनाचूर करनेवाली भाषा में किया है। लेकिन यह परम्परा और भी पुरानी तथा और भी व्यापक है। योगियों के भी पूर्ववर्ती सहजयानी सिद्धों ने भिन्न भिन्न मत के बाह्याचार का वैसा ही जोरदार खण्डन किया है[1]।

सरोरुहपाद कहते हैं कि 'ब्राह्मन ब्रह्म के मुख से पैदा हुए थे, जब हुए थे तब हुए थे। इस समय तो वे भी वैसे ही पैदा होते हैं जैसे दूसरे लोग। तो फिर ब्राह्मनत्व कहां रहा? यदि कहो कि संस्कार से ब्राह्मन हो जाते हैं? अगर कहो कि ये लोग हाथ में कुश जल लेकर घर बैठ हवन करते हैं। यदि आग में घी डाल देने से मुक्ति होती हो तो क्यों नहीं सबको डालने देते? होम करने से मुक्ति होती हो या नहीं, धुआं लगने से आंखों को कष्ट जरूर होता है[2]। कबीर के 'जो तुम बाह्मन बम्हनि जाए और राह तुम काहे न आए। से यह कितना मिलता जुलता है? सरोरुहपाद और कबीर की साखियों का भाव साम्य भी देखने योग्य है।

जिहि बन सीह न संचरै, पंखि उडै नहिं जाय।
रैनि दिवस का गम नहीं, तहं कबीर रहा लौ लाय॥ कबीर
जहि मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाह पवेश।
तहि वट चित्त विश्राम करु, सरुहे कहिअ उवेश॥ सरोरुहपाद

इसी प्रकार नग्न साधुओं को लक्ष्य करके सरोरुहपाद कहते हैं 'ये लोग कपट माया फैलाकर लोगों को ठगा करते हैं, तत्व तो ये जानते ही नहीं। मलिनवेश तो धारण किए फिरते हैं और शरीर को व्यर्थ ही कष्ट देते हैं। नंगे घूमते हैं और केश उखड़वा देते हैं। यदि नग्न दिगंबर को मुक्ति मिलती है तो स्यार कुत्तों की मुक्ति पहले होनी चाहिए। यदि लोमोत्पाटन से मुक्ति होती है तो ऐसे पशुओं की मुक्ति हो जानी चाहिए जिनके लोम है ही नहीं। यदि पिच्छि ग्रहण करने से मुक्ति होती हो तो मयूर इसका प्रथम अधिकारी

---

1 कबीर - पृ.132 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

2 बम्भणेहि म जाणन्त हि भेउ। एवइ पढिअउ चउवेउ॥
मट्टी पाणि कुस लइ पढन्त। घरहिं बइसी अग्गि हुणन्त॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमें। अक्खि डहाविअ कडुएं धुमें॥
सरोरुहपाद के दोहे - अद्वयवज्र की टीका - पृ.52
कबीर - पृ.113 से उद्धृत — आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

है। यदि उच्छ भोजन से मुक्ति होती हो तो हाथी घोड़ों की मुक्ति पहले होनी चाहिए[1]।

जैन मुनियों में भी ऐसी व्यंग्य प्रवृत्ति जारी रही। मुनि रामसिंह के पाहुड - दोहों में भी ऐसी उक्तियाँ उठाई गई हैं। बाह्याचार और वेष की व्यर्थता दिखाने के लिए उन्होंने उसे साँप की केंचुली की उपमा दी है। जिस प्रकार ऊपर आवरण के बदलने से सर्प का जहर दूर नहीं होता, उस प्रकार बाह्य वेष के परिवर्तन से मन शुद्ध नहीं होता[2]। तीर्थाटन के बारे में उनका कथन है। एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ तक घूम आने से अधिक से अधिक बाहरी शरीर की धुलाई हो जाती है भीतरी शुद्धि उससे कैसे हो सकती है[3]? मूर्ख लोग मनुष्य के बनाये देवालयों को खोज खोज कर मरते हैं परन्तु हृदय के उस देवालय को नहीं देखते जहाँ सचमुच शिव आवास करते हैं[4]। झूठा है यह कलह, बेकार है यह टंटा, किससे छूत मानूँ और किसकी पूजा करूँ? जहाँ देखता वहाँ एक ही आत्मा है[5]।

निष्कर्ष यह कि इसी परम्परा से कबीर ने अपने व्यंग्य को रूप दिया था। लेकिन यह बात विशेषतः ध्यान देने योग्य है कि अपने पूर्ववर्ती अक्खड़ योगियों की भाँति कबीर ने खण्डन के लिए खण्डन नहीं किया।

- -

1 दीह कलत्तु जइ मोक्खो देसी। नग्गत होइ उपाडिअ केसी।

....

उच्छे भोअणे होइ जाण ता करिह तुरंगह ।। सरोरुहपाद के दोहे पृ. 10

अद्वयवज्र की टीका

2 सप्पि मुक्की कंचुलिय जं विसु तं न मुएइ।

भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंगग्गहणु करेइ ।। पाहुड दोहा - नं. 15 सं. प्रो. हीरालाल जैन

3 तित्थई तित्थ भमंत यह मिल्लेहा कल हूय।

बाहिरु सुद्धउ पाणियहि अब्भिंतर किम हूय ।। उपरिवत् नं. 162 - उपरिवत्

4 मूढा जोवइ देवलई लोयहिं जाइं कियाइं।

देह ण पिच्छइ अप्पणिय जहिं सिउ संतु ठियाइं।

उपरिवत् - नं. 180

5 कासु समाहि करउं को अंचउं। छोपु अछोपु भणिवि को वंचउं।

हल सहि कलह केण सम्माणउं। जहिं जहिं जोवउं तहिं अप्पाणउं ।।

उपरिवत् - नं. 139 - उपरिवत्

बाह्याचारों पर कबीर का व्यंग्य -

सब बाहरी धर्माचारों को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर कबीरदास साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए । कुसंस्कारों, रूढ़ियों और बाह्याचार के जंजालों को उन्होंने बेदर्दी के साथ काटा । 'बाह्याचारों की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसंद नहीं थी[1] । कबीर की भेदक दृष्टि से वेश और भूषा की व्यर्थता छिप नहीं सकती थी, थोथा तर्क और कुटिल तत्वज्ञान उन्हें भ्रम नहीं सकता था, कूट वचन और मधुर शब्द जाल उन्हें फंसा नहीं सकता था । सारा हिन्दु और मुसलमान धर्म कबीर की दृष्टि में एक बाह्याचार बहुल ढकोसलामात्र था । वेदपाठ, तीर्थस्नान, प्रतीमस्थापन, छुआछूत, अवतारोपासना, कर्मकाण्ड इत्यादि सबके विरुद्ध कबीर ने व्यंग्य बाण फेंका है ।

कबीर ने विविध साधनाओं की जटिलता[2] का वर्णन किया है और कभी हिन्दु धर्म के आडम्बरों पाखंडों और अन्धविश्वासों पर प्रकाश डाला है और कभी मुसलमानों के[3] पाखण्डों पर प्रकाश डाला है । कभी उन्होंने रूढ़ियों की हंसी उड़ाई है[4] और कभी धर्म के ठेकेदारों की पोल खोली है[5] । मंदिर मस्जिद मुल्ला साहब के आचरण का रहस्योद्घाटन उन्होंने कैसा किया है :-

- -

1 कबीर - पृ. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

2 इक पढहि पाठ इक भ्रमहि उदास इक नगन निरन्तर रहै निवास ।
इक जोग जुगति तन हौहि खीन, ऐसे राम नाम संगि रहे न लीन । इत्यादि
कबीर ग्रंथावली पृ.256

3 हिन्दुओं के आडंबरों, पाखण्डों और अन्धविश्वासों के उदाहरण :-
(क) कर सेती माला जपे हिरदै बहै डंडूल पग तो पाला मे गिलया भाजण लागी सूल ।
कबीर ग्रंथावली पृ.45
(ख) वैसनो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक ।
छापा तिलक बनाइकरि, दग्ध्या लोक अनेक ।। कबीर ग्रंथावली पृ.46
(ग) एकै पवन एक ही पाणी, करी रसोई न्यारी जानी ।
माटी सूं माटी ले पोती, लागी कहो कहा धूं छोती । कबीर ग्रंथावली पृ.44

4 यह सब झूठी बंदगी बिरिया पंच निवाज । सांचै मारै झूठि पढि काजी करै अकाज ।
कबीर ग्रंथावली पृ.42

5 बाह्याचारों की निन्दा देखिए :-
(क) तीरथ ब्रत सब बेल ही सब जग मेल्या छाई। कबीर मूल निकंदिया कौन हलाहल खाई - कबीर ग्रंथावली 44
(ख) सेख सबूरी बाहिरा क्या हज काबे जाई । जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनको कहा खुदाई ।। कबीर ग्रंथावली पृ.43

कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हते तब दोई ।
चढि मसीति एकै कहै, दरि क्यूं सैचा होई[1] ।।

पण्डितजी भी तो अपने विद्या के मिथ्याडंबर में डूबे रहते थे । पण्डित ही नहीं सन्यासी, जोगी और तपस्वी भी अहंकार से पीड़ित नहीं थे -

पंडित मन माते पढि पुरान, जोगी माते जोग ध्यान ।
सन्यासी माते अहमेव, तपसी माते तप के भेव[2] ।।

मुसलमान धर्म की विभीषिका से बचने के लिए हिन्दू धर्म के ठेकेदारों ने अपने धर्म को और भी अधिक आचार प्रधान बनाकर उसकी नींव दृढ करने की चेष्टा की । धर्म प्रचार के लिए अनेक ग्रंथ रचे गए । इसका परिणाम यह हुआ कि लोग आचारों और विचारों के मायाजाल में फंस रह गए और वास्तविक धर्म को भूल गए । इस पर कबीर का व्यंग्य यों है -

आलम दुनी सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानी ।
छह दरसन छयानबे पाखंड, आकुल किनहु न जानी ।।
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौराना ।
कागद लिखि लिखि जगत भुलाना, मन ही, मन न समाना[3] ।

इस्लाम के ठेकेदार भी पथ भ्रष्ट हो चुके थे । काजी साहब पर व्यंग्य यों है :-

काजी मुल्लां भ्रमिया चलया दुनी के साथि ।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि[4] ।।

उनका सुख यही था कि -

एक न भूला, दोउ न भूला, भूला सब संसारा ।

एक और तो कबीर हिन्दुओं के जपतप, सन्ध्या वन्दन, माला फेरना, तीर्थव्रत, बलि, तिलक आदि का खण्डन करते थे[5], दूसरी ओर मुसलमानों की नमाज़, रोजा, हलाल आदि

- -

1 कबीर ग्रंथावली पृ. 42 - 2 - उपरिवत् पृ. 302
3 कबीर ग्रंथावली पृ. 99 - 4 - उपरिवत् पृ. 42
5 (क) क्या जप क्या तप संयमी क्या व्रत क्या अस्नान,
जब लगि मुक्ति न जानिये भाव भक्ति भगवान । कबीर ग्रंथावली पृ. 329
(ख) हरि बिन झूठे सब ब्यौहार, केते कोउ करौ गंवार,
. . . .
इन्द्री स्वारथ मन के स्वाद, जहां सांच तहां मांडै वाद । कबीर ग्रंथावली पृ. 174

की खिल्ली भी उड़ाते थे[1]। कभी कभी तो बाह्याचारों के प्रचारकों पर इतना अधिक क्रुद्ध हो जाते थे कि कटूक्तियों की वर्षा करने लगते थे[1]। इस उग्रता के मूल में द्वेष भावना नहीं, सिर्फ सत्यनिष्ठा छिपी है[2]। आडम्बरियों से उनका सवाल सुनिए :-

जो रे खुदाय मसीत बसतु है, अवर मुलुक किसी केरा।
हिन्दू मूरति नाम निवासी, दुहमति तत्तु न हेरा।[3]

कहीं कहीं पर उनका तर्क बुद्धिवादी होता है :-

जागे पिछे जोग जे होई बन का मृग मुकति गया कोई।
मूंड मुंडाए जो सिधि होई, स्वर्ग ही भेड न पहुँची कोई॥[4]

उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बाह्याचारों[5] का ही खण्डन किया, सो बात नहीं अवधूत और जैनों[6] की भी खबर ली है। वैष्णवों की आडंबर प्रियता[7] पर भी कबीर ने व्यंग्यबाण छेड़ा है।

---

1 पाँडे न करसि बाद बिबाद .... इत्यादि कबीर ग्रंथावली पृ.172

2 मीयाँ तुम सौ बोल्या नहि बनि आवै ...., इत्यादि कबीर ग्रंथावली पृ.174

2 कबीर की विचार धारा - पृ.375 — डा. गोविन्द त्रिगुणायत

3 कबीर ग्रंथावली पृ.237

4 उपरिवत् पृ.130

5 अवधू कामधेनु गहि बाँधी रे।
भाँडा भंजन करै सबहिन का कछू न सूझै आँधी रे।
जो ब्यावै तौ दूध न देई, ग्यावन अमृत सरै॥ इत्यादि कबीर ग्रंथावली पृ.137

6 मन मथ मरम कै असरारा कल्पत बिन्द धसै तिहि दुवारा।
ताकै हत्या होइ, अवधुता घट बखान मैं जैन विगूता॥
कबीर ग्रंथावली पृ.240

7 बैसनो भया तौ क्या भया, बूझा नहीं
विवेक, छापा तिलक बनाइ करि, दग्ध्या लोक अनेक।
कबीर ग्रंथावली पृ.46

जाति के नाम पर समाज मे उच्च नीच भाव रखने वालो से कबीर पूछते है' 'कौन बाह्मन ? कौन सूद्रा? लोकाचार और वेदाचार ही कुप्रथाये पालित हो जाती है। अतः उन पर कबीर का व्यंग्य है -

साध कबिर लोकाचार वेद कतेबकथे व्योहार।
जारि वारि करि आवे देहा, मुआ पीछे प्रीति सनेहा।
जीवन पित्रहि मरे डंडा, मुआ पित्रसी घाले गंगा।।[1]

कई विषयो पर कबीर ने व्यंग्यात्मक हास्य प्रस्तुत किया है। उन सब की विशद चर्चा इस प्रबन्ध की सीमा को अवश्य अवश्यकता से बढा देगी, इस भय से दो तीन उदाहरणों से उनमे उपयुक्त व्यंग्यकला का स्पष्टीकरण करना ही उचित लगता है।-

(1) मूर्तिपूजा

मन्दिर की मूर्ति से घर की चक्की को श्रेष्ठतर और अधिक उपयोगी सिद्ध कर कबीर मूर्तिपूजको पर व्यंग्य कसते है। कबीर का कथन है अगर पत्थर की मूर्ति की पूजा करने से भगवान मिलेगे तो मै पहाड की पूजा करूगा। मूर्ति छोटा पत्थर है। छोटे पत्थर की पूजा से छोटे भगवान मिलेगे तो बडे पत्थर की पूजा से बडा भगवान मिलना चाहिए। मूर्ति की अपेक्षा चक्की ही हमारे लिए उपयोगी है। दुनियावाले चक्की से आटा पीस कर खाते है और पेट पालते है[2]। कबीर का व्यंग्य है कि उपयोगी चक्की की और लोगो का ध्यान नही जाता है। क्योंकि वे जानते है कि वह पत्थर का टुकडा है। उस हालत मे पत्थर के ही किसी टुकडे को भगवान समझकर उसकी पूजा करना बेवकूफी है।

कबीर जानते थे कि 'चौरि भुजा के भजन मे भूलि परे सब संत'। इसलिए ही उन्होंने यो व्यंग्य किया था।

कबीर ने माना कि मूर्तिपूजा पुजारियो के पेट भरने के लिए प्रयुक्त एक कार्यक्रम है 'लड्डु जैसे मिठाइयो की ढेर मूर्ति के आगे नैवेद्य के लिए प्रस्तुत की जाती है। एक भी उस पत्थर के मुह मे नही पहुचता सब कुछ पुजारि के पेट को चलती है, मूर्ति के मुह मे रेत ही[3]। मूर्ति पूजको से कबीर का सवाल है 'यदि राम उस पत्थर मे समेटा रहता है तो फिर इस बाहरी संसार की बातो को जाननेवाला कौन है ?

---

1 कबीर ग्रंथावली पृ.207
2 पाहन पूजे हरि मिलै तो मै पूजूं पहार ताते ये चकी भली, पीस खाय संसार
कबीर ग्रंथावली पृ.45
3 लाडु लावर लापसी पूजा चढे अपार। पूजि पुजारा ले चला दे मूरति के मुह छार

(2) मालाजप

पुराने साधुसन्त मन को एकतान करने केलिए नामजप को सहायक मानते थे। लेकिन बाद को इस नामजप का दुरुपयोग हुआ। नामजप यांत्रिक तथा प्रदर्शन मात्र केलिए रहा। जो कथाएं पढने और हाथ में माला लिये फिरे उसको भोली जनता सच्चा भक्त मानने लगी। पाखंडी लोग मालाजप के द्वारा लोगों को धोखा भी देने लगे। कबीरदास ने कई दोहों में इस बात की पोल खोली।

ऐसे साधुओं से कबीर का कथन है 'तुम्हारे हाथ में जपमाला फिरती रहती है, मुंह में जीभ भी फिरती रहती है, वह भगवान का नाम जपती है। लेकिन तुम्हारा मन तो चंचल है, चारों ओर विषय वासनाओं में घूमता रहता है। यह भगवान का स्मरण नहीं। पहले मन पर काबू करो, फिर भगवान का स्मरण करो[1]।

और एक दोहे में कबीर का कथन है 'माला फेरते फेरते युग बीत गया, फिर भी मन का फेर अब भी जारी रहता है, मन काबू में नहीं लाया गया अर्थात् माला जप तो यांत्रिकक्रिया सी चलता रहता है और मन इच्छानुसार विषयलालसाओं के पीछे भागता रहता है। मन को एकाग्रता मिलती नहीं। अतः कबीर मालाजप करनेवाले भक्तों से कहते है 'अपने हाथ की मनिका को छोड दो, मन की मनिका को फिरने दो[2]।

मालाजप की निस्सारता भी उन्होंने बतायी है[3]।

(3) शिरोमुण्डन -

सादा जीवन बिताने केउद्देश से योगी और सन्यासी सिर के बालों का मुंडन करते थे। पाखंडी भी लोगों का आदर पाने के विचार से सिर का मुण्डन करके योगी बनने का बहाना करने लगे। उन पर तीखा व्यंग्य कसते हुए कबीर ने अनेक दोहे लिखे।

- -

1 माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुं दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।। कबीर ग्रंथावली पृ.44

2 माला फेरत जुग गया, पाया न मन का फेर।
कर का मनका छाडि दे मन का मन का फेर।। कबीर ग्रंथावली पृ.45

3 कबीर माला काठ की कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपनो कहा फिरावै मोहि।। कबीर ग्रंथावली पृ.44

कबीर पूछते है 'सिर का मुण्डन करके योगी बनना चाहनेवाले मूर्ख, इन बालों ने तुम्हें क्या नुकसान किया जिसके कारण तुम बार बार इन को मुण्डन करके शरीर से अलग करते हो? तुम सिर के बालों को साफ करने के बदले अपने मन को जिस में विषय विकार भरे पड़े है, क्यों नहीं स्वच्छ करते ?[1]

व्यंग्य यह कि शिरोमुण्डन मात्र से कोई योगी नहीं बनता । सच्चा साधु बनने के लिए मन की सारी बुराइयों को दूर कर उसे पवित्र रखना चाहिए ।

कबीर सदैव ही बाह्याडंबर के कट्टर विरोधी थे, अतः उन्होंने समाज के पाखण्डपूर्ण [illegible] आचरण पर अनेक व्यंग्य कसे है । मामूली, सब कहीं फैली, सब से स्वीकृत रीतियों से अलग होनेवाले, हास्य व्यंग्यकार की पैनी दृष्टि में ही जाते है । असंगतियों के निरीक्षण में वह व्यंग्यकार उसे पकड़ समाज के आगे बढ़ाकर देता है । कबीर के बारे में यही बात सच है । शिरोमुण्डन करके स्वर्ग के लिए प्रवेशपत्र पाने के कामियों से कबीर का सवाल है 'अरे भाई, यदि केवल मूड़ मुड़ाने से ही ईश्वर मिल जाते हो तो ये भेड़ें जिन्हें बार बार मूंडा जाता है, अवश्य ही वैकुण्ठ धाम जाती होगी ।[2] हाँ, कबीर के व्यंग्यात्मक हास्य में हथौड़े की सी चोट है ।

(4) जाति पाँति का भेदभाव -

कबीरदास ने देखा कि चारों ओर जाति पाँति और ऊँच नीच की भावनायें दृढ़मूल हो गयी है । कबीर मानते थे कि जाति पाँति आदि कृत्रिम और कल्पित विशेषतायें है । व्यक्तियों की श्रेष्ठता का वह कदापि मापदंड नहीं हो सकता । अतः वे कहते थे 'जाति न पूछो साधु की' बल्कि 'पूछ लीजिए ज्ञान' । जाति के आधार पर लोगों की श्रेष्ठता अश्रेष्ठता का मूल्यांकन करनेवाले लोग अन्दर की तलवार के बारे में बिना सोचे बाहर की म्यान के आधार पर उसे अच्छे या बुरा साबित करने वाले है[2] ।

- -

1 केसन कहा बिगारिया जो मूंडौ सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मूंडिये जा में विषय विकार ।। कबीर ग्रंथावली पृ.

2 जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहने दो म्यान ।।

उच्च कुल मे जन्म प्राप्त करने मात्र से कोई श्रेष्ठ नही बनता । उनके लिए श्रेष्ठ गुणो की भी आवश्यकता है । उच्च कुल मे पैदा हुए बुरे लोग कबीर की आँखो मे मदिरा भरे स्वर्णकलश है[1] । बाहर बाहर एक और अन्दर अन्दर और एक ।

(5) छु आछूत

छूत परम्पराओ से कबीर का विरोध भावना मूलक नही पूर्णतः बुद्धिवादी है । छु आछूत पर तर्क उपस्थित करते हुए कबीर उसके ठेकेदार पण्डितो से ही प्रश्न करते है कि पांडे, बताओ तो जरा, कौन सा स्थान पवित्र है, जहाँ बैठकर भोजन किया जाय । संसार मे वास्तव मे कोई वस्तु, कर्म और स्थल ऐसा नही जो पवित्र हो[2] ।

बीजक मे करीब एक दर्जन पद सीधे पण्डित या पांडे को सम्बोधन करके कहे गए है जो छुआछूत के बारे मे है । एक पद मे कबीर पूछते है । छूत कहाँ से आ गई ? पवन वीर्य और रज के सम्बन्ध से गर्भाशय मे गर्भ रहता है फिर वह अष्टकमलदल के नीचे से उतरकर पृथ्वी पर आता है, ऐसी हालत मे यह छूत कैसे आ गयी ? यही वह धरती है जिसमे चौरासी लाख योनि के प्राणियो का शरीर सड़कर मिट्टी हो गया, इस एक ही पाट पर परमपिता ने सबको बिठाया है तो फिर छूत कैसे रही ? ...... इत्यादि[3] ।

(6) जप-तप-तीर्थ

जप-तप-तीर्थ स्नान कर्मकाण्ड आदि कबीर व्यर्थ समझते थे । वे सहज धर्म मे वर्षो के जप व्रतादि भी नही पसन्द करते थे । उनका कथन है -

तीरथ व्रत सब बेलडी, सब जग मेल्या छाय,
कबीर मूल निकन्दिया, कौन हलाहल खाय[4] ।।

भगवान के भजन का परित्याग कर अहोई का व्रत करनेवाली स्त्री को वे गदही कहने मे नही हिचकते थे[5] । उनका दृढ विश्वास था कि तीरथ व्रत नेम किये ते सबै रसातल जाहि[6] ।

---

1 ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय । सबरन कलस सुरा भरा, साधू निंदै सोय ।।
2 कहु पांडे सुचि कवन ठांव, जिहि घरि भोजन बैठि खाऊँ ।। इत्यादि
कबीर ग्रंथावली पृ.173 नं.25।
3 पंडित, देखहु मनमहि जानी । इत्यादि बीजक, शब्द 4।
4 कबीर ग्रंथावली पृ.44
5 कबीर ग्रंथावली पृ.262 साखी 17।
6 कबीर ग्रंथावली पृ.256

उन्होंने लोगों से पूछा -

क्या जप क्या तप क्या संजम क्या व्रत क्या अस्नान[1] ।

उन्होंने लोगों से बताया कि

झूठा जपतप झूठा ज्ञान राम नाम बिन झूठा ध्यान[2] ।

तीर्थों में कोरे पानी के सिवा और कुछ नहीं, यही कबीर का मत था । गंगा में नहाने पर भी जमुना में नहाने पर भी मन की मैल को न बहा देनेवाले तीर्थस्नानियों की भी उन्होंने खूब खिल्ली उड़ायी है[3] । 'गंगा न्हाइन, जमुना न्हाइन, नौ मन मैल है लिहिन चढ़ाय यों वे उस तीर्थस्नानि को प्रस्तुत करते हैं ।

(7) व्रतोपवास -

हिन्दू और मुसलमानों के व्रतोपवास पर कबीर व्यंग्य यों करते हैं 'न तो हिन्दू और न मुसलमान जिह्वा की चपलता छोड़ता ? एकादशी व्रत के नाम पर खायी जानेवाली मिठाइयों के बारे में वे भूल भी कैसे सकते हैं ? और मानेगी कृष्णाष्टमी के दिन कन्दु मिश्री के साथ बहुत भोजन करना है न ? मुसलमान भी कैसे ? रमज़ान का व्रत पाँचों समय की प्रार्थना मसजिद में बांग पुकार और समूह प्रार्थना सन्ध्या के समाप्त होते ही मुर्गी को काट पकाकर खाना । कहाँ है इनका सुधर्म[4]?'

(8) बलि

ईश्वर प्रीति तथा आत्मप्रीति के लिए जानवरों की बलि हिन्दू तथा मुसलमान करते थे । जानवरों की बलि पर कबीर यों व्यंग्य कसते हैं - किसने कहा कि ईश्वर के लिए बकरे और मुर्गे की बलि चढ़ानी है ? किसकी आज्ञा से इन बेचारे जीवों के गले पर छुरियाँ रखते हो ? दिन भर रमजान भी बिना पिये उपवास और व्रत । अन्धकार के फैलने की देर है । गाय को काट पका खाना । यह हत्या है या भक्ति ? ऐसी भक्ति से ईश्वर प्रीति मिलेगी क्या[5] ?

---

1 कबीर ग्रंथावली पृ.274 — 2 — कबीर ग्रंथावली पृ.174

3 चली है कुलबोरनी गंगा नहाय । .... इत्यादि । कबीर वचन पृ.144

4 कबीर ग्रंथावली पृ. पृ.

5 दिन भर रोजा रहत है, रात हनत है गाय । .... इत्यादि ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.78 आचार्य शुक्लजी

(9) धर्म - ग्रंथ -

नाथपंथियों के सिद्धांतों में पुस्तकी विद्या की खिल्ली उड़ाई गयी है । कथैवय गोरख की एक कहानी गोरख - सिद्धांत - संग्रह में उद्धृत है । दुर्वासा मुनि सब शास्त्र पढ़कर महादेव की सभा में गए । वहाँ पर उनके अध्यात्म ज्ञान के अभाव को देखकर नारद ने उन्हें 'भारवाही गर्दभ' कहा । अमर्षि दुर्वासा ने सारी पुस्तकें समुद्र में फेंक दी और शिव से आध्यात्मिकविद्या की भीख माँगी । कबीरदास का स्वर इन योगियों से मिलता जुलता है । कबीर ने भी पोथी पढ़पढ़ कर मरने वाले और फिर भी राम को न जान सकने वाले ज्ञान बूढ़ों की कुछ ऐसी ही खिल्ली उड़ाई[1] जैसे नारद ने दुर्वासा की । कबीर ने कहा कि पोथी पढ़ पढ़ कर सारा संसार मर गया, मगर पंडित कोई नहीं हुआ, केवल प्रियतम को मिलानेवाला एक ही अक्षर पढ़नेवाला पंडित हो जाता है[2] । सचमुच ये गोरखपंथी योगमार्गियों के ही स्वर में बोल रहे थे 'घर घर में पुस्तक के बोझ ढोनेवाले विद्यमान हैं, नगर नगर में पंडितों की मंडली मौजूद है, वन-वन में तपस्वियों के झुंड वर्तमान है, किन्तु परब्रह्म का जाननेवाला और उसे पाने का उद्योग करनेवाला कोई नहीं[3] । धर्मग्रंथों पर और भी व्यंग्य यों हुए हैं - 'सभी संप्रदाय कहते हैं कि ग्रंथ हजारों की संख्या में है । मैं कहता हूँ कि यदि मेरी बात मानो तो सभी को कुएँ में फेंक दो । भला जो लोग विषय वासनाओं से स्वयं मुक्त नहीं हो सके वे दूसरों को मुक्ति का उपदेश दे भी कैसे सकते हैं ? जो व्यक्ति लोगों को भ्रमजाल में डालने केलिए या अभिमानवश या जीविका केलिए, या व्यसन के लिए, या अन्य किसी अभिलषित वस्तु की प्राप्ति के लिए ग्रंथ लिखा करता है वह धर्मार्थी पुरुषों के आगे कैसे शोभनीय हो सकता है?[4]'

---

1 तू राम न जपहि अभागी ।

....

नारद कहै, व्यास यों भाखै सुखदेव पूछि जाई । कबीर ग्रंथावली पद 37

2 पोथी पढि पढि जग मुआ, पंडित भया न कोई ।

.... पढ़ै सु पंडित होई ।।

कबीर ग्रंथावली पृ.39

3 गृहे गृहे पुस्तक भार भाराः पुरे पुरे पंडित यूथयूथाः ।

.... एकात्मप्रकाशार्थं तत् किं भारं मे प्रकाश्यते ।।

गोरखसिद्धांत संग्रह - पृ.30 सं.गोपीनाथ कविराज

4 गोरख सिद्धांत संग्रह - पृ.77 सं.गोपीनाथ कविराज

बात भी सच है । सैकड़ों तर्क - व्याकरणादि ग्रंथों से मुग्ध होकर ये ज्ञानमूढ़ लोग शास्त्रों के जाल में बुरी तरह फँस गये हैं । जिस अनिर्वाच्य पद को देवता भी नहीं बता सकते उसे ये शास्त्र क्या बतायेंगे ? इसी तथ्य पर मुहर लगाते हुए कबीर ने भी कहा है 'हे भगवान, तुम जैसे हो वैसा तुम्हें कोई नहीं जानता । लोग दूसरा ही दूसरा कहते रहते हैं । चारों वेद के चार मतों में सारा संसार भूला पड़ा है और इस प्रकार श्रुति और स्मृति इन दोनों के विश्वास से जकड़ा हुआ संसार आशा पाश में व्यर्थ ही उलझा पड़ा है'[1] ।

उपर्युक्त विवेचन हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि धर्म ग्रंथों पर किए कबीर के व्यंग्यों । फिर भी उनके व्यंग्य प्रशंसनीय हैं । धार्मिक दृष्टि से भटकते हैं और हलके हैं ।

10) जन्मांतर

हिन्दुओं के सभी संप्रदाय इस मनोवृत्ति को मानते हैं । कबीर पूछते हैं 'हे पंडित, सोच कर बताओ तो सही, किस प्रकार आवागमन छूट सकता है? धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष- ये सब फल किस दिशा में बसते हैं ? अगर ईश्वर के बिना संसार का कोई स्थान ही नहीं है तो भला लोग नरक कैसे जाते हैं ? देखो भाई, जो नहीं जानता उसी के लिए नरक है, स्वर्ग है, परन्तु जो हरि को जानता है उसकेलिए कुछ भी नहीं है[2] ।

- -

1 जस तू तस तोहि कोई न जान, लोग कहै सब आनहि आन ।
•••• ••••••••••••••••••••••••••••••••
जिहि तुम तारौ सोईपै तिरई । कह कबीर नातर बांधे मरई ।। कबीर ग्रंथावली पद 47

2 पंडित, सोधि कहहु समुझाई । जाते आवागवन नसाई ।
••••••••••••••••••••••••••••••••
कहहि कबीर सुनहु हो सन्तो, जहं पद तहां समाही ।।
बीजक, शब्द 42

कबीर तो यहां व्यंग्य कसते है । यहां सत्य बात तो और एक भी है । स्वर्ग और नरक की कल्पना अविद्या की उपज है, लोगों को ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास कराने के लिए ही स्वर्ग और नरक की सृष्टि हुई है । नरक के बारे में बीच बीच में सुधि आने के कारण ही संसार के अधिकांश लोग सीमा से बाहर जाकर बुराई नहीं करते है । लेकिन कबीर के दिनों का पंडित इसे भी नहीं जानता । वह पत्राचारी अपढ़ब्राह्मण है जो ब्राह्मण मत के अत्यन्त निचले स्तर का नेता है ।

11) पुजारियों पर

कबीर ने ईश्वर का प्रेम ही अपना लक्ष्य घोषित किया था । इसमें कोई मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया । प्रेम ही साध्य है, साधन है, व्रत भी नहीं मूर्ति भी नहीं, पूजा भी नहीं, नमाज़ भी नहीं, हज भी नहीं, तीर्थ भी नहीं ।

जीवन और जगत में मिथ्याडंबर फैलाने वाले कौन थे - पंडित और मुल्ला । तभी तो कबीर ने उन पर व्यंग्य बाण छेड़ा । वे मियां साहब को यों फटकारते है :-

मियां, तुम्ह सौ बोलयां बनि नहिं आवै,
हम मसकीन खुदाई बन्दे तुम्हारा जस मनि भावै
अलह अवलि दीन को का साहिब जोर नहीं फुरमाया ।।[1]

पांडे को भी वे छोड़ते नहीं -

'पंडिया कौन कुमति तुम लागे'[2]

वे यह कहने में रत्ती भर नहीं झिजकते कि पंडित झूठ ही बोलेंगे -

'पण्डित बाद बदन्ते झूठा'

बांग पुकारने वाले मुल्ला का व्यंग्य कबीर यों करते है[3] - पत्थर और कंकड़ से मसजिद बनाकर उसके अन्दर अल्लाह को स्थापित किया गया । उस मसजिद उच्चतम लेकिन खुली किवाड़ के पास खड़े होकर दोनों कानें हाथों से बन्द करते हुए मुल्ला उच्च स्थायी पुकार रहा है 'ला इल्ला इलिल्लाह, मुहम्मद रसूल अल्लाह' कबीर का मुल्ला से कथन है'

1 कबीर ग्रंथावली पृ. 174
2 वही पृ. 301
3 कांकर पाथर जोरिके, मसजिद लई चुनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय ।।

कबीर ग्रंथावली पृ.

'जी, ठहरो तो जरा, तुम्हारे अल्ला बहरा बन गये है क्या ?'

मुसलमानो की बांग पुकार पर हथौड़े की सी चोट करनेवाले कबीर मुसलमान पुजारियो से पूछते है 'अल्लाह को मसजिद मे कैद की है तो इस दुनिया का परवरदिगार कौन है ?'

मुसलमानी खूनी प्रवृत्ति सुन्नत से कबीर इतने ऊब उठे कि उन्हे उनकी किताब पर श्रद्धा नही रही । कई पदो मे उन्होने मुल्लाओ को इसके लिए चेतावनी दी है ।

शिवसाक्षात्कार के लिए घर परिवार छोड जंगल भागनेवाले योगियो के बारे मे कबीर करुणापूर्ण व्यंग्य यो कसते है 'योगी गेरुआ कपड़ा पहनता है, लेकिन मन को शिवप्रेम के रंग मे रंगता क्यो नही ? मन्दिर के अन्दर बैठकर एक मूर्ति की पूजा करता है, लेकिन ईश्वर मन्दिर के बाहर है । कान द्वार बना लंबा किया गया है, और लंब दाढी का बाल लंबा किया गया है, सिर पर जटामुकुट बना रखा है । एक बकरा सा दीखता है । इन्द्रियो पर काबू करने के लिए, नपुंसक बनने के लिए महाराज जंगल जा रहे है । वे तो गीता पढ रहे है – टिप्पणी सहित व्याख्या करने के लिए । कबीर कहते है 'हे साधो, आप हाथ और पैर बांध कर मृत्यु के प्रवेशद्वार को जा रहे है ।

और एक पद लेंगे - 'हे दुनियां । तू पागल हो गयी है । सच कहनेवालो को तू मारने दौडती है । जो झूठ है, उसे उसी प्रकार मान लेती है । कई सत्यनिष्ठो और धर्मिष्ठो को मै देख चुका । ये बड़े सवेरे स्नान करते है । पत्थर को स्नान कराकर पूजा क है पद्मासन डालते है, योगिराज का बहाना करते, भजन कीर्तन का आलाप करते है, लेकिन ज्ञान, हाय हाय ज्ञान क्या है, वे जानते नही, आत्मा के बारे मे जानते नही । हिन्दु राम का नाम बता बता गर्व करते है तो मुसलमान रहीम का । ईश्वर के नाम पर दोनो को झगडा करते मरते देखते नही ? सच तो वे जानते है, कितना भी कहे, मानते नही, पकडे लीग को छोडते भी नही ।' यो कहकर कबीर दुखी होते है ।

- -

। न जाने साहब कैसा है ? मुल्ला हो कर बांग जो देवे

क्या तेरा साहब बहरा है ? कीडी के पग नेवर बाजे सो भी साहब सुनता है ।

कबीर - पृ.272 पद 67 सं.हजारी प्रसाद द्विवेदी ।

12) शाक्तों पर

शाक्तों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा है । उनके हिंसावाद के कारण ही कबीर ने शाक्तों की निन्दा की है । शाक्त के साथ रहकर खीर और खांड खाने की अपेक्षा कबीर ने वैष्णवों के साथ भूसी खाकर रहना अच्छा बतलाया है :-

कबिरा संगत साधु की जौ की भूसी खाय ।
खीर खांड भोजन मिलै साकट संग न जाय ।।

शाक्तों की निंदा कबीर की वैष्णवता का ही फल है', यों मानते हैं डा.श्यामसुन्दरदास शाक्त को उन्होंने कुत्ता तक कह डाला है -

साकत सुनहा दूनो भाई, एक नींदै एक भौंकत जाई ।

13) धार्मिक पाखंड

हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक पाखंडों की बार बार चुटकी लेने पर भी कबीर संतुष्ट न थे । अपना अपना बड़प्पन दिखाने केलिए हर धर्म आकुल थे -

हिन्दू गर्व करते हैं कि वे श्रेष्ठ हैं । खानपान का बर्तन भी दूसरों से छूने न देंगे । लेकिन वेश्याओं की चरणसेवा करने में वे हिचकिचाते नहीं । क्या यही उनका हिन्दुत्व है ? मुसलमानों के मुल्ला भी मुर्गी को काटछांट कर खाते हैं, रिश्तेदारों से शादी करते हैं । कहीं से एक लाश को ले आकर साफ करके पका कर घर और गांव के सब लोग खाते और पेट खाते हैं और बड़ाई करते हैं । हाय ! इन हिन्दुओं का हिन्दुत्व और मुसलमानों का इस्लाम धर्म सब मैं देख चुका ।

नागा लोगों की कुंभ की लड़ाई जैसी घटनाओं को देखकर हिन्दू धर्म के ठेकेदारों की पाखंड देख कबीर हैरान हो जाते थे । आश्चर्य स्तब्ध होकर वे देखते थे कि किसी सम्प्रदाय में तोप-बंदूकें तक चला करती थीं । कबीरदास कहते थे 'भई, यह भी अजीब योग है कि महादेव के नाम पर पंथ चलाया जाता है । लोग बड़े बड़े महन्त बनते हैं, हाट-बाज़ार में समाधि लगाते हैं और मौका पाते ही तोप बंदूक लेकर चल पड़ते हैं । भला दत्तात्रेय ने भी कभी मवासियों द्वारा शत्रुओं पर चढ़ाई की थी । शुकदेव ने भी कभी

1 कबीर ग्रंथावली पृ.

तीप संग्रह किये थे, नारद ने कभी बंदूक दागी थी ? अजीब है कि ये बिलात जिन की सोने की गाड़ियां जगमगा रही है, हाथी-घोडों के ठाठ लगे हैं, करोडों पतियों की सी शान है।

कर्मकांड को भी कबीर पाखंड ही के अंतर्गत मानते है, क्योंकि परमात्मा की भक्ति का संबन्ध मन से है परंतु केवल बाहरी माला जपने अथवा पूजा पाठ करने से कुछ नहीं हो सकता। कबीर का मत है कि जो माया ऋषि, दिगंबर, जोगी और वेदपाठी ब्राह्मणों को भी घर पछाडती है वही हरि भगतन के चेरी है।

हिन्दु - मुसलमानों को व्यर्थ झगडते देख कबीर खीझ कर कह उठते थे - 'अरे इन दोउन राह न पाई' इनको 'आपस में लरि लरि मुये' देखकर वे दुखी थे।

उलटबासियों द्वारा हास्य

कबीर ने अपने विचार अधिकतर उलटबासियों में प्रकट किए हैं। इन उलटबासियों को उन्होंने उलटा वेद पुकारा है। सिद्धों से ही कबीर ने इस प्रणाली को अपनाया।

पैरों से ही सब मनुष्य चलते है, लेकिन यदि कोई सिर के बल चलना प्रारंभ कर दे तो लोगों को स्वभावतः कुतूहल होगा। सत्य का ध्यान निश्चय ही असत्य से श्रेष्ठ है, किन्तु यदि कोई कहने लगे कि असत् ही सत् का आधार है तो सुननेवाले आश्चर्य चकित होंगे ही। अंग्रेजी साहित्य में विरोधाभासमूलक उक्तियों (Paradoxes) के प्रणेताओं में आस्कर वाइल्ड (Oscar Wilde) बर्नार्डशा(Bernard Shaw) और चेस्टर्टन (Chesterton) प्रसिद्ध हैं। निरंतर दो और दो-चार सुनने के अभ्यस्त कानों में दो और दो - पांच अथवा तीन सिद्ध करने की गूंज जब सिद्धों की अटपटी बानी में सुन पडी तो जनता की अभिरुचि उनकी ओर बढ चली। कबीर की उलटबासियां भी विचित्रता से परिपूर्ण हैं[2]। निम्न लिखित उलटबांसी अपने बेतुकापन से हास्य पूर्ण हो गया है :-

---

1 ऐसा जोग न देखा भाई। भुला फिरै लिये गफिलाई।।

....

घोरा - चोरी कीन्ह बटोरा। गांव पाय जस चलै कटोरा।।

बीजक, 69 वीं रमैनी

2 देखि देखि जिय अचरज होई। यह पद बूझे बिरला कोई।

धरती उलटि अकासहि जाई। चिउंटी के मुख हस्ति समाई - इत्यादि

बैस रागिनी आसिक चूहा, मेढक ताल लगावै ।
चोला पहिरि गदहिया नाचै, ऊँट बिसुन पद गावै ।
आम डार चढ़ि कछुआ तोड़ै, गिलहरि चुनि चुनि लावै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बगुला भोग लगावै ।

इस प्रकार बेतुकापन और विचित्रता के कारण कबीर की कई उलटबासियाँ हास्य उत्पन्न करती हैं ।

कबीर का वाग्वैदग्ध्य

विरोध और असंभव के चमत्कार द्वारा कबीर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते थे, जैसे -

है कोई गुरुज्ञानी जगत मह उलटि बेद बूझै ।
पानी मह पावक बरै, अंधहि आंखिन्ह सूझै ।।
गाय तो नाहर को धरि खायो, हरिना खायो चीता ।

अथवा

नैया बिच नदिया डूबति जाय और एक दोहे —

माली आवत देखि कै, तरुवर डोलन लाग ।
हम कटे की कुछ नहीं, पखेरू घर भाग ।।

यहाँ माली काल है, वृक्ष का डोलना वृद्धावस्था का कंप है, पक्षी आत्मा है । यह डोलना आत्मा को इस बात की चेतावनी देता है कि शरीर के नाश का दुख न करके ब्रह्म तत्व में लीन होने का प्रबन्ध करो, पक्षी का घर भागना यही है । काटते समय पेड़ को हिलते और वृद्धावस्था में शरीर को कांपते किसने नहीं देखा होगा । परंतु किस लिए वह हिलता - कांपता है, इसका रहस्य निगूढ़ है ।

नाश नीची स्थितिवाला केलिए ही मुंह बाए नहीं खड़ा है, ऊंची स्थितिवाले भी उसी घाट उतरेंगे, इस बात का संकेत निम्नलिखित दोहे में है —

---

1 कबीर ग्रंथावली पृ.

फागुन आवत देखि करि, बन रूना मन माहि ।
ऊँची डाली पात है, दिन दिन पीले थाहि ।।

कबीर की चमत्कारपूर्ण उलटबासियाँ भी वाक्चातुरी के अन्य प्रकार है । एक देखें । कठोपनिषद के अनुसार मनुष्य का शरीर रथ है जिसमें इन्द्रियों के घोड़े जुते हैं, घोड़ों पर मन की लगाम लगी हुई है जो सारथी रूपी बुद्धि के हाथ में है । परमपद का पथिक आत्मा इस रथ पर सवार है, उसकी इच्छा के अनुसार इनका परिचालन होना चाहिए । शरीर सेवक है, आत्मा स्वामी है । यह तो स्वाभाविक क्रम है । परंतु जब स्वामी सो जाय, सारथी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाय और घोड़ों की लगाम निरुद्देश्य ढीली पड़ जाय, और तब यह क्रम उलट जाता है, स्वामी का स्थान सेवक ले लेता है । रथ के अधीन होकर स्वामी भटका फिरता है और प्रायः ऐसा होता है कि घोड़ों (इन्द्रियों) के मनमाने आचरण से रथ (शरीर) और स्वामी (आत्मा) दोनों को अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं । भव-जाल में पड़े हुए मनुष्यों की इसी उलटी अवस्था को विशेष कर कबीर ने अपनी उलटबासियों द्वारा व्यंजित कर लोगों को आश्चर्य में डाला है[1] ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि रूपकों, अन्योक्तियों तथा उलटबासियों के द्वारा अनपढ़ कबीर ने वाग्वैचित्र्य प्रकट किया है जिसकी प्रशंसा शुक्लजी ने यों किया है 'ये नयी न होने पर भी वाग्वैचित्र्य के कारण अपढ़ लोगों को चकित किया करती थी[2] ।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन से कुछ बाते स्पष्ट है जिन्हें आचार्य शुक्लजी ने भी मान लिया है[3] :-

- -

1 ऐसा अद्‌भुत मेरा गुरु कथ्या, मैं रह्या उभेषै ।

....

उलटि मूसै सापिण गिली, यहु अचरज भाई ।। इत्यादि

कबीर ग्रंथावली पृ.62

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.78 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.65 आचार्य शुक्ल जी

(1) उपासना के बाह्य स्वरूप पर आग्रह करनेवाले और कर्मकांड को प्रधानता देनेवाले पंडितों और मुल्लाओं को कबीर ने खरी खरी सुनाई ।

(2) उनके मुंह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं ।

(3) उनकी उक्तियों के विरोध और असंबद्ध का चमत्कार तथा वाग्वैचित्र्य, लोगों को बहुत आकर्षित करते थे ।

डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा कि 'कबीरदास हिन्दी के प्रथम हास्य एवं व्यंग्य कवि माने जा सकते हैं क्योंकि उन्होंने ही प्रथम बार व्यंग्य का अस्त्र लेकर धर्मध्वजियों की धज्जियाँ उड़ाईं[1] ।

डा. रामकुमार वर्मा ने भी कबीर की उचित प्रशंसा ही यों की है 'धार्मिक पाखंडों का विरोध कबीर ने खूब किया । उनमें हास्य - व्यंग्य की झलक पूर्णरूप से हम पाते हैं । हिन्दू धर्म के प्रधान केन्द्र काशी में रहते होकर कबीर के सिवा और कौन पूछ सकता था कि 'जो तुम बाह्मन बाह्मनि जाये, और राह तुम काहे न आये ?' यदि काली और सफेद गाय के दूध में कोई अंतर नहीं होता तो उस विश्व-पिता की सृष्टि में जाति कृत भेद कैसा ?' 'कोई हिन्दू कोई तुरक कहावे एक जमी पर रहिए ।' 'सत्य तो यह है कि सभी परमेश्वर की सन्तान, को ब्राह्मन, को शूद्रा[2] ?

विभिन्न प्रभाव संबन्धी बातों पर प्रकाश डालने के कारण हम इस निष्कर्ष पर भी पहुंच जाते हैं कि व्यंग्य कसने की रीतियों में कबीर में मौलिकता नहीं दीखती । हठयोगियों की रीति का ही अनुकरण अपने रूप में उन्होंने किया ।

कबीर के हास्य - व्यंग्य के स्वभाव के बारे में कटु आलोचनायें हुई हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी का यह कथन इस प्रसंग पर याद करने लायक है 'कबीर ने अपनी झाड - फटकार के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों का कट्टरपन दूर करने का जो प्रयत्न किया वह अधिकतर चिढानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करनेवाला नहीं[3] । मनुष्य मनुष्य के बी

- -

1 हिन्दी साहित्य में हास्यरस - पृ. 186 डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी

2 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ. 235 डा. रामकुमार वर्मा

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 10 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

जो रागात्मक संबन्ध है वह कबीर के हास्य व्यंग्य में व्यक्त नहीं हुआ है । डा. सरोज खन्ना भी इससे मिलता जुलता अपना मत यों प्रकट करती है' कबीर का हास्य हास्य की दृष्टि से मान्य नहीं ठहरता । उनके सामाजिक व्यंग्यों में हँसी की अपेक्षा कटुतापूर्ण फटकार ही अधिक प्रतीत होती है[1] ।

कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्यों का विश्लेषण करने पर यह बात समझने में देरी न होगी कि यह कबीर के हास्य - व्यंग्य का एक दुर्गुण नहीं माना जा सकता । परिस्थितियों के कारण यों हुआ । कबीर उस समाज में पालित हुए थे जो न तो हिन्दुओं द्वारा समादृत था और न मुसलमानों द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकृत थी । नाम मात्र को मुसलमान इस जुलाहा जाति के रक्त में प्राचीन योग - मार्गीय विश्वास पूरी मात्रा में वर्तमान था । परम्परा से ज्ञानार्जन के लिए अयोग्य कुल ही वह समझा जाता था । ऐसे कुल में पैदा हुए व्यक्ति के लिए कल्पित ऊँच - नीच भावना और जाति - व्यवस्था का फैलाया ढाँचा तर्क और बहस की वस्तु नहीं होती, जीवन-मरण का प्रश्न होता है । अतः उनकी उक्तियाँ फटकारें बन गयी तो उसमें अचरज की बात नहीं । जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने कहा है 'कबीर उन शास्त्रीय विचारों से सर्वथा मुक्त थे जो सामाजिक जीवन को स्थितिशील (स्टैटिक) देखने में ही समाज का कल्याण समझते हैं । यह जो बाह्याचारों की जीवन्त प्रतिक्रिया, शास्त्रीय विचार की अनभिज्ञता के कारण निर्भीक आक्रमण कारिता और अपनी निर्दोषिता का परिपूर्ण भरोसा है, उसने उनके आत्मविश्वास को भी आक्रामक (एग्रेसिव) बना दिया था और उनकी लापरवाही को भी रक्षणात्मक (डिफेन्सिव) बना दिया था । इसलिए वे सीधी बात को भी ललकारने की भाषा में बोलते थे । सारी परिस्थिति का विश्लेषण न कर सकनेवाले पण्डित इसे अटपटी वाणी समझकर सन्तोष कर लेते हैं या फिर घमंड और दंभ समझकर कुछ आश्वस्त से हो लेते हैं[2] ।

बात सच है कबीर की गर्वोक्तियों[3] के कारण लोग उन्हें घमंडी समझते हैं ।

- -

1 हिन्दी कविता में हास्य पृ.55 डा.सरोज खन्ना

2 कबीर पृ.166 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

3 (क) हम न मरैं मरिहैं संसारा । (ख) कबीर जुलाहा पारखु, अनभै उतर्या पार ।
(ग) एक न भूला दोई न भूला, भूला सब संसारा ।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम आधारा ।।

कबीर ग्रंथावली पृ.52 - डा.श्यामसुन्दरदास

लेकिन यह मामूली गर्व नहीं । जैसा कि डा.श्यामसुन्दरदास ने बताया है 'कबीर का गर्व लोगों को नीचा दिखानेवाला गर्व नहीं है - साक्षात्कार-जन्य गर्व है, स्वामी के आधार का गर्व है, जो सबमें पारमात्मिकता का अनुभव करके प्राणिमात्र को समता की दृष्टि से देखता है । अपनी पारमात्मिकता की अनुभूति की गरमी में उनका ऐसा कहना स्वाभाविक ही है जो उनके मुंह से अनुचित भी नहीं लगता । जो हो, कम से कम, छोटे मुंह बड़ी बात की कहावत उनके विषय में चरितार्थ नहीं हो सकती[1] । डा.श्यामसुन्दरदास जी यों सिद्ध करते हैं कि कबीर का गर्व उत्तम मनुष्यता का प्रेममय गर्व है जिसकी आत्मा विनय है ।

इसमें यह बात भी स्मरण करती है कि प्रेम और शृंगार में ही हास-परिहास के लिए पर्याप्त सुविधा मिल जाती है । आत्मा रूपी स्त्री और परमात्मा रूपी पुरुष के बीच के प्रेम जिसका ही वर्णन कबीर को करना पड़ा, हास्य-परिहास के लिए अवसर ही उनको मिला नहीं । फिर भी अपनी अन्योक्तियों तथा उलटबासियों द्वारा उन्होंने यथेष्ट व्यंग्य तथा उपहास प्रस्तुत किये । आचार्य चन्द्रबली पांडे जी के शब्दों द्वारा हम उपर्युक्त विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'इतना तो निश्चित ही है कि कबीर ने किसी की करनी को अछूती न रहने दिया और अपनी पैनी बानी से सब की कुछ न कुछ मरम्मत की[2] ।

---

1 कबीर ग्रंथावली - प्रस्तावना पृ.52 डा.श्यामसुन्दर दास

2 हिन्दी कवि चर्चा - पृ.106 आचार्य चन्द्रबली पांडे

4) सूर की काव्यकला

प्रस्तावना :-

कविवर हरिऔध जी के शब्दों में 'सूर भाव राज्य का सम्राट और नवरस मधुमास का वसन्त समीर है[1]। शुक्लजी के मतानुसार सूर रस-भावुक सहृदय कवि है, वे कबीर संत कवियों की तरह शुष्क नहीं है[2]।

'सूर की रसानुभूति का क्षेत्र विशाल था। उनकी मधुर अलंकृत और अर्थ सौरस्यपूर्ण पदावली का कारण उनकी रसानुभूति की विह्वलता और रसावेग की अतिशयता है। सूर की रसानुभूति प्रकाश-बिंब है तो कला, उनकी रश्मियाँ[3]।

सूरदासजी ने रसरूप कृष्ण की प्रधानता दिखायी है। श्रीकृष्ण की बाललीला और प्रेमलीला में रस रूप का प्राधान्य है। वल्लभाचार्य के प्रभाव से सूर में लीलाभाव के रसानन्द का आविर्भाव न हुआ होता तो उनका शिल्पविधान इतना सरस न होता। 'कृष्ण का व्यक्तित्व सरसता का अक्षय स्रोत है। कृष्ण का जो स्वरूप सूर के काव्य में अभिव्यक्त हुआ है, वह लावण्य से संपन्न, सौन्दर्य से युक्त और आकर्षण से परिपूरित है, इसमें कहीं भी कटुता या कठोरता का नाम नहीं है[4]।

- -

1 रस कलश - भूमिका - हरिऔध जी

2 सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 146 पृ.

3 सूर की काव्यकला - पृ.138 डा. मनमोहन गौतम

4 सूर का भावपक्ष लेख से डा. सावित्री शुक्ला।

सूर की साहित्य साधना पृ. 13।

सूर के कृष्ण बालक होते हुए भी पूर्ण रसिक है[1]। रसिक सिरोमणि शब्द का अयोग्य प्रयोग निश्चित ही है।

'सूर काव्य में रस-निर्वाह और रस परिपाक दोनों पाए जाते हैं। उन्हें हृदयवृत्ति की गहरी पहचान है, अतएव वे कोमल रसों की ओर ही अधिक आकृष्ट हो सके हैं। जिन रसों को उन्होंने अपने काव्य का वास्तविक विषय बनाया है, वे हैं शृंगार तथा वात्सल्य और उनका वह कोना कोना झाँक आये हैं। उनके वर्णन में उन्होंने इतनी और ऐसी अन्तवृत्तियों को सामने लाकर रखा है कि अन्य कवियों की उन तक पहुँच नहीं है। सूर काव्य का सम्यक अध्ययन काव्यशास्त्र में रस के अन्तर्गत अभी अनेक मनोदशाओं, हाव भावानुभावों की नयी प्रतिष्ठा कर सकता है[2]।

---

1 माखन की चोरी ते सीखे, कान लगे अब चित की चोरी।

×× ×× ×× ×× ×× ××

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बात निगम बानि बई बोरी। सूरसागर -दशमस्कंध पद 1892

सूरदास प्रभु रसिक रसीले, बहुनायक है नाहुं जीना।। 1915

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, तुम तजि काहि पुकारै। 2113

सूरदास प्रभु रसिक, प्रिय राधिका रसिकिनी कोक गुन सहित सुख लूट लीन्है 2129

मानलीला प्रसंग :-

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि ललहु स्याम सुजान। 2603

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि रसिक रसिकई नीकै जानी। 2630

राधा का निसि रसिक सिरोमनि, कवि कुल परी ठगौरी। 2648

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, मिलति जु सुधा सुधा बरिन्हौ। 2700

भ्रमरगीत प्रसंग

समुझति नहीं बूझि सखि अपनी बहुतै दिन हरि लाए।

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, मधुबन बसि बिसरा।।

सूरसागर - 3308

आचार्य शुक्लजी को भी यों कहना पड़ा 'बाल्यकाल और यौवनकाल कितने मनोहर है, उनके बीच की नाना मनोरम परिस्थितियों के विशद चित्रण द्वारा सूरदास जी ने जीवन की जो रमणीयता सामने रखी उससे गिरे हुए हृदय नाच उठे। वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना कोना वे झांक गए।

हिन्दी साहित्य में शृंगार का रस-राजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने[1]।

कोमल वृत्तियों के विकास ने सूरकाव्य में तीन मार्ग ग्रहण कर लिए। कहीं वह भगवद्विषयक रति में प्रकट हुआ तो कहीं पुत्रविषयक रति में और, और कहीं शृंगार की माधुरी के रूप में।

आचार्य शुक्लजी के शब्दों में 'सूरदास जी को मुख्यतः शृंगार और वात्सल्य का कवि समझना चाहिए, यद्यपि और रसों का भी एक आध जगह अच्छा वर्णन मिल जाता है[2]।

श्रीकृष्ण के लोकरंजक रूप को ही उन्होंने अपनाया। सूरदास ने सगुण कृष्ण की प्रधानता दिखायी। प्रभु की बाललीला एवं प्रेम लीला दोनों में ही सगुण का प्राधान्य है।

सूर ने वात्सल्य रस और शृंगार रस का ही मुख्य रूप से वर्णन किया है, पर उनकी प्रकृत कवि दृष्टि से अन्य रस भी ओझल नहीं रह सके। उनकी रचना में प्रसंग के अनुकूल वीर, रौद्र, भयानक, करुण हास्य आदि सभी रसों का परिपाक हुआ है[3]।

सूर ने अपने इष्टदेव राधाकृष्ण की विविध लीलाओं का विशुद्ध भाव से वर्णन कर निराकार अगोचर ब्रह्म की शुष्क साधना को हास्य पीयूष से सिक्त कर हरित-पुष्पित उद्यान की तरह आकर्षणमय बना दिया है। उनके इस लीलाचित्रण में हास्य की छटा भी है, पर हास्य वर्णन में भी वे यह भूल न सके कि वे जिनकी लीलाओं का वर्णन कर रहे हैं वे उनके आराध्य हैं।

- -

1 सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ.38

2 सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ.157

3 सूर लहरि - पृ.55। डा.सोमनाथ ताहिर।

सूरसागर मे सूर ने अपने सिद्धान्तपक्ष को प्रयत्नपूर्वक दूर रखने का प्रयास किया है, फिर भी परब्रह्म का विरुद्ध - धर्माश्रयत्व बाललीला के प्रसंगो मे वे ध्यानस्थ करते गए है। दावानल को पान करने वाले भगवान गरम दूध से डरने का भाव दिखाते है। अघासुर को मारनेवाले भगवान अंधेरे घर मे भय के मारे प्रवेश करने का दिखावा करते है। मन ही मन पाठक यही हँसते है।

सूरदास का उद्देश्य भागवत की कथा कहना नहीं रह जाता, स्वानुभूति जन्य उल्लास का प्रकटीकरण हो जाता है' डाक्टर मनमोहन गौतम का यह मत ठीक दीखता है। प्रभु की जो लीलाएँ उनके भक्त हृदय को सहज उल्लास देती थी उनको उन्होंने सर्वथा मौलिक रूप मे अथवा एक नवीन रूप मे प्रस्तुत किया। प्रबन्ध काव्य मे भी नीरस गतिशीलता को सरसता प्रदान करने के लिए कुछ मर्मस्पर्शी प्रसंगो की सृष्टि करके सरसता की सृष्टि की गयी है।

सूरसागर मे हास्यरस अधिकतर वात्सल्य और शृंगार का सहायक होकर आया है। वात्सल्य रस मे कृष्ण के चातुर्यपूर्ण उत्तर, बालोचित अभियोग और विनोदी वृत्ति संयोग शृंगार मे उनका पर्याय से कार्यासक्त करना, राधा की नीली साड़ी ओढ लेना तथा शृंगार मे भ्रमर को संबोधन कर उद्धव के निर्गुण ज्ञान की खिल्ली उड़ाना आदि हास्य का उद्रेक करनेवाले प्रसंग है। और भी कतिपय स्थलो पर सूर की रसिक वृत्ति ने हास परिहास के प्रसंगो की उद्भावना की है। सुकुमार एवं सरस भावों की व्यंजना मे तो हिन्दी का कोई भी कवि सूर की समता न कर सकता। हास्य की गणना ऐसे ही भावों मे है, पर यह भाव रस की कोटि तक प्रत्येक स्थल पर नहीं पहुँच सका है।

सूरदासकृत तीन रचनाएँ बतायी जाती है - सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी। इनमे सूरसारावली एक अप्रामाणिक रचना मानी जाती है[1]। साहित्यलहरी मे हास्य व्यंग्य का उदाहरण नहीं। अतएव सूरसागर मे ही प्राप्त हास्य व्यंग्य की चर्चा हम करेंगे। सूरसागर के प्रथम स्कंध मे विनय पद है, नवम मे राम-कथा है और दशम मे ब्रजलीला तथा द्वारकालीला है। हास्य व्यंग्य के प्रमुख उदाहरण उक्त स्कंधों मे ही मिलते है :-

- -

1 सूरसारावली - एक अप्रामाणिक रचना - डा. प्रेमनारायण टंडन।

1) अपने प्रभु से छेड़छाड़

सूरसागर के विनय पदों में अपने प्रभु से कवि की छेड़छाड़ के कई सुन्दर नमूने मिलते हैं। विनय के पदों में अनेक उक्तियाँ ऐसी प्राप्त हैं जिनमें सूर बड़ी चतुराई से आत्मनिवेदन प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास जी की भाँति वे दीनहीन भी हैं। अपने असंख्य पातकों को गिनाते हुए भी वे घिघियाते नहीं। वे तो तीव्र शब्दों में अपने प्रभु को ललकारते हैं :-

के प्रभु हार मानि के बैठो, के करो बिरद सही।
सूर पतित जो झूठ कहत है, देखो खोजि बही।[1]

सूरदास अपने प्रभु से होड़ करने का दुस्साहस इसलिए करता है कि उसके आराध्य ने अधम मूर्तियों के उद्धार का प्रण किया है।[2]

सूर का निश्चय है कि जग की सारी अधमाई करने का और वह देखना चाहता है कि उसका प्रभु अपने प्रण का निर्वाह किस उपाय से करता है :-

मोहिं प्रभु, तुम सों होड़ परी।
ना जानौं करिहौ कहा तुम नागर नवल हरी।
हुती जिती जग में अधमाई सो मैं सबै करी।
अधम - समूह उधारन कारन तुम जिय जक पकरी।।[3]

प्रभु और भक्त की लुका-छिपी जरा देखिए। भक्त की अधमता की सूचना पाकर प्रभु उसका उद्धार करके अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिए उसकी खोज करते हैं, तो वह पाप-पहाड़ की गूढ़ कंदराओं में छिप जाता है। वहाँ से उसे ढूँढ़ लेना प्रभु के लिए भी कठिन है :-

मैं जु रह्यौ राजीवनैन, दुरि पाप-पहार-दरी।
पावहु मोहिं कहाँ तारन कौं, गूढ़ गंभीर खरी।

---

1 सूरसागर (सभा) विनय पद 137
2 हिन्दी साहित्य में हास्य - व्यंग्य पृ.46
3 सूरसागर (सभा) विनयपद 130

प्रभु की कठिनाई देखकर भक्त उन्हें चेतावनी देता है कि मुझ जैसे अधम को मुक्त करने की टेक छोड दो, तभी अच्छा है । मैं साधारण पापी नहीं हूँ । मेरा उद्धार करने का उपाय सोचने में न जाने कितनी देर तुमको माथा-पच्ची करनी पडेगी । मेरा उद्धार मामूली बात तो नहीं । इस कार्य को करने में तुम्हें दाँतों पसीना आ जायगा । अच्छा हो कि अब भी अपना प्रण तोड दो जिससे उसके लिए व्यर्थ तुम्हें पछताना न पडे[1] ।

दैन्य-भाव-प्रधान विनय के पदों में सूर अपने प्रभु के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से अपनी वाक्-पटुता प्रदर्शित करते हैं । वे अपने पाप कर्मों के कारण प्रभु के समक्ष जाते हुए घबराते नहीं बल्कि उन्हीं का सहारा लेते हैं -

गज गनिका अरु विप्र अजामिल, अगनित अधम उधारे ।
यहै जानि अपराध करे मैं, तिन्हूँ सौ अति भारे[2] ।।

इस प्रकार सूर को पाप करने की प्रेरणा मानो भगवान ने ही दी । न भगवान गज-गनिका को तारते, न सूर पाप-कर्म में प्रवृत्त होते ।

अपने ऊपर व्यंग्य करना, अपने दोषों का सगर्व बखान करना पतितपावन विरदधारी प्रभु को चुनौती देना ही तो है । सूर का कहना है कि अजामिल,-जैसे क्षुद्र पापियों का उद्धार करके तुम अब तक जो गर्व करते रहे हो, उसे भूल जाओ । अजामिल जैसे पापियों की तो गिनती क्या, बडे से बडा पापी मेरे सामने पसंगा भी नहीं है । मेरी विकटता का कुछ अनुमान तो तुमको इतना जानकर ही हो जायगा कि मेरा नाम सुनकर नरक भी काँप कर भाग जाते हैं और यमराज ने भी मुझसे भयभीत होकर अपने भवन के द्वारों पर ताले डाल रखे हैं कि कहीं मैं वहाँ पहुँच न जाऊँ । अब यदि मुझ जैसे पापी को तुम तार नहीं सकते तो पतित-पावन कहलाने का भारी विरद क्यों धारण किये हो[3]?

---

1 मोको मुक्ति विचारत हौ प्रभु, पचिहौ पहर घरी ।
श्रम तैं तुम्हें पसीना ऐहै, कत यह टेक करी? सूरसागर

2 सूरसागर (सभा) विनयपद 125

3 बडे पतित पासंगहु नाहीं, अजामिल कौन बिचारौ ।
....
सूर पतित कौं ठौर नहीं तौ बहुत विरद कत भारौ । सूरसागर - विनयपद
प.सं. 131 पृ.सं. 44

सूर का तर्क है कि गनिका जैसी पापिनी अपनी करनी ही से तरी थी, तुम्हें तो व्यर्थ का ही यश मिल गया -

मनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु ! तेरौ ।[1]

इस तर्क से भक्त को बल मिलता है और वह प्रभु को चुनौती देकर कहता है कि आज मैं सारी बातों का निबटारा करके ही टलूँगा । मुझे अपने पापों के बल पर विश्वास है और उसी के भरोसे पर मैं ने लड़ने का निश्चय कर लिया है । अब या तो तुम्हारा प्रण रहेगा या मेरा । मैं साधारण पतित नहीं । मैं सात पीढ़ियों से पतित हूँ और लाज संकोच छोड़कर तुमको विरदविहीन करने के लिए नंगाई पर भी उतर सकता हूँ ।

भगवान को यदि पतित पावन होने का गर्व है तो भक्त भी 'पतित नायक' कहाना चाहता है । अतः आज वह भगवान से होड़ लगाकर कहता है कि या तो तुम्हारा यश रहेगा या मेरा, दोनों का नहीं रह सकता । या तो मैं पावन होकर ही रहूँगा या तुम्हारा विरद ही सदा को छुड़ा दूँगा । सुना है तुमने बहुत से पतितों को तारकर उन्हें सुखधाम किया है, परन्तु सावधान, अब उस धोखे में न रहना, अब तो मुझ जैसे घोर पतित से तुम्हारा पाला पड़ा है ।[2]

बनावटी क्रोध के सुन्दर नमूने हैं ये सब उक्तियाँ । सूर के भक्त - हृदय की इस प्रकार की अनन्य विनोद पूर्ण उक्तियाँ सहृदयों का मन मुग्ध कर लेती हैं । सूर की उक्त पंक्तियाँ पढ़ते पढ़ते अपने अंतर का विनोद किस प्रकार गुदगुदा पड़ता है इसे वे ही समझ सकते हैं जिन्होंने अपने किसी निकटतम आत्मीय जन के प्रति कभी बनावटी क्रोध किया हो या उसको चुनौती दी हो ।[3] अपने आराध्य के ही बल पर उसी को चुनौती देते समय सूर का रोम रोम विनोद से पुलकित है और उनका आराध्य भी विनोद में मग्न हो जाता है ।

- -

1 प्रभु हौं एक-एक करि टारौ ।

....

अब हौ उधरि नच्यौ चाहत हौ, तुम्हैं विरद बिन करि हौं । सूरसागर-विनयपद-134 पृ.44

2 जौ तुम पतितनि के पावन हौ, हौं हूँ पतितन छोटो ।

....

अब तौ आनि पर्यौ है गाढ़ो, सूर पतित सौं काम । सूरसागर, 195

3 हिन्दी साहित्य में हास्य - व्यंग्य पृ.48

डा. प्रेमनारायण टंडन

2) कंकन-मोचन प्रसंग

सूरदास द्वारा वर्णित राम कथा में स्वयंवर के पश्चात् कंकन-मोचन प्रसंग में विनोद का सुंदर उदाहरण मिलता है। नवदंपति के मन में एक दूसरे के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के उद्देश से कंकन मोचना, द्यूत खेलना जैसी आमोद-प्रमोदपूर्ण रस्में हैं। विवाह के बाद राम को सीता का कंकन खोलना है। नववधु के हाथ का प्रथम स्पर्श करते ही राम 'मगन' हो जाते हैं, उनका हाथ कांपने लगता है और इसलिए कंकन नहीं खुल पाता[1]।

विवाह के अवसर पर विनोद केलिए गालों भी गायी जाती हैं। राम को सीता का कंकन खोलने में असमर्थ पाकर सखियां कहती हैं कि तात - भ्रात के आने से काम नहीं बनेगा स्वयं कौसल्या माता आ जायं - और कुछ दिन दूध पिलाकर पुष्ट और सबल कर दें - तब कंकन खोल सकेंगे[2]।

कंकन - मोचन के पश्चात् कनक की कुंडी में जल भरकर द्यूत खेला जाता है जिसमें विनोदी राम स्वयं हारकर और जनक नंदिनी को जिता कर भावी जीवन में उनके प्रति अपार स्नेह बनाये रखने के संकल्प में आश्वस्त कर देते हैं[3]।

3) कृष्ण की बालक्रीडा

सूर के पदों को देखकर ऐसा जान पडता है कि वे अपने आराध्य की बाल-सुलभ क्रीडाओं का वर्णन करते हुए आत्मविस्मृत हो गए हों। वे कभी नन्हे श्याम बनकर स्वयं क्रीडा करते हैं, कभी यशोदा बनकर वात्सल्य और हास्य का आनन्द लूटते हैं, कभी नंद बनकर पुत्र स्नेह में निमग्न हो जाते हैं और हास्य में शामिल हो जाते हैं, और कभी कभी गोपियां

- -

1 कर कांपै, कंकन नहिं छूटै। राम-सिया-कर-परस मगन भए कौतुक निरखि सखी सुख लूटैं।

2 गावत नारि गारि सब दै दै, तात भ्रात को कौन चलावै।
तब कर-डोरि छुटै रघुपति जू, जब कौसल्या माता आवै।

3 पूगीफल जुत जल निरमल धरि पानी भरि कुंडी जो कनक की।
खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति, जिती जनक की।

बनकर हास्य प्रसंग सजने लगते है । कृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित सूर साहित्य के प्रायः सभी पदों में हास्य का पुट बड़ी सफलता के साथ अभिव्यक्त हुआ है ।

बालक की क्रीड़ा से जन्य हास्य तभी पूर्ण तथा सार्थक होगा जब देखनेवाले कुछ बन्धु बान्धव भी उसमें बड़ी रुचि लेते है । सूर ने यही समझकर नन्द यशोदा और कभी कभी स्वयं नन्द बाबा को प्रत्यक्षत या छिपे छिपे कृष्ण के क्रीड़ाकलाप का आनन्द लेते दिखाया है । वात्सल्य के निरूपण में सूर ने जितना स्वभावोक्ति से काम लिया है, उतना ही रूप वर्णन के अलंकृत चित्र उपस्थित करने तथा कृष्ण के विचित्र क्रियाकलाप से हास्य तत्व को ले आने में भी तत्परता दिखायी है[1] ।

बाललीला संबन्धी पदों में कुछ केवल बाल रूप वर्णन है और कुछ में यशोदा मैया की आशंका - आकांक्षा है । कहीं यशोदा लोरी गाती दीख पड़ती है, कहीं दूध पिलाने के लिए चोटी बढ़ने और बलदाऊ के बराबर हो जाने का बहाना करती है । कहीं बालकृष्ण की स्पर्धा है, कहीं उनका रूठना, कहीं बलदाऊ के चिढ़ाने पर माँ से शिकायत । स्वर्गीय शुक्लजी के शब्दों में बालहृदय का तो वे कोना कोना झांक आये है ।

वात्सल्य रस के अन्तर्गत सूरदास ने बाल लीला का यह सरस और मनोहारी वर्णन किया जो अपनी मनोवैज्ञानिकता तथा स्वाभाविकता[2] के कारण ही कुछ कुछ हास्यपूर्ण भी बना ।

दास्य भक्ति के कारण तुलसी बालक राम की क्रीड़ाओं में आदर्श और मर्यादा का भाव प्रस्तुत करते है । पर सूर सख्य भाव में निमग्न है । जहाँ तुलसी के राम अपने साथियों से कभी नहीं झगड़ते, जीतकर भी औरों को जीता देते है, वहाँ सूर के कृष्ण बड़े भाई बलराम के साथ भी खाने और खेलने में झगड़ते है[3] ।

- -

1 सूर ने बालकों की तुतली भाषा, उनके ईर्ष्या स्पर्धा रंजित वचन, बात छिपाने या बदल लेने की चातुरी का चित्रण करके तथा बालकों के प्रति स्नेहसूचक शब्दों का ही प्रयोग करके सूर ने रसोद्रेक में अपूर्व सफलता प्राप्त की है । सूर की साहित्य साधना पृ. 150 डा. भगवतस्वरूप मिश्र

2 बालचेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भण्डार कहीं नहीं है जितना बड़ा सूरसागर में है । सूरदास पृ. 8 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 सूर की काव्य कला - पृ. 47 डा. मनमोहन गौतम ।

सूर ने अपने इष्टदेव राधाकृष्ण की विविध लीलाओं का विशुद्ध भक्ति भाव से वर्णन कर निराकार अगोचर ब्रह्म की शुष्क साधना को हास्यपीयूष से सिक्त कर हरित पुष्पित उद्यान की तरह आकर्षणमय बना दिया है। उनके इस लीला के चित्रण में हास्य की छटा भी है पर हास्य वर्णन में भी वे यह न भूल सके कि वे जिनकी प्रेम लीलाओं का वर्णन कर रहे हैं, वे उनके आराध्य हैं।

सूर के बाल वर्णन में सरलता, सजीवता और हास्यात्मकता क्यों दिखाई पड़ती है? डा. गोपीनाथ तिवारी के शब्दों में हम यों इस का यह कारण बता सकते हैं 'सूर के कृष्ण बहुत चंचल स्वभाव के तीव्र बुद्धिवाले, प्रत्युत्पन्न मतिमान तथा चपल बालक हैं जैसे कि साधारणतया अधिकांश बच्चे होते हैं।[1]

सूरसागर में कृष्ण के बाल-वर्णन-प्रसंग पर शुद्ध हास्य के अनेक सुन्दर उदाहरण हैं[2]। माखनचोरी, छाया प्रसंग, चोंद प्रसंग, भाई पर शिकायत, बुद्धि चातुर्य, बालसुलभ भोलापन आदि।

(क) माखन चोरी प्रसंग

बालक्रीडा के सबसे सुन्दर पद हैं माखन चोरी के किशोरावस्था में ही पग धरते चंचल कृष्ण माखन चोरी करने निकलते हैं। अपने घर में अत्यधिक मात्रा में होते हुए भी दूसरों का दही - माखन चुरा कर खाते हैं। इसके पीछे आत्म-कर्तृत्व की भावना है। जो वस्तु अपने हाथ पैरों को हिलाकर कठिनाई से प्राप्त होती है उसमें मिठास है। फिर अज्ञात, अनदेखी अथवा दूसरे की वस्तु में कैसा स्वाद है, यह कुतूहल वृत्ति बच्चे से चोरी और छीना झपटी कराती है। इन माखन पदों में यही विशेषता हास्य सृष्टि का मूल कारण है कि कृष्ण में समयानुसार उत्तर देने की क्षमता है।

पांच - छः वर्ष की आयु में कृष्ण चोरी करने का कार्य आरंभ करते हैं। वे ऐसे वैसे नहीं, खूब पक्के चतुर चोर बन गए। दिन दहाड़े चोरी करते हैं, पर हाथ नहीं

- -

1 सूर के बालकृष्ण - डा. गोपीनाथ तिवारी पृ. 270 सूर की साहित्यसाधना ग्रंथ से)

2 हिन्दी साहित्य में हास्य - व्यंग्य डा. प्रेमनारायण टंडन पृ.25।

आते । उन्होंने अपना एक गिरोह बना लिया है, जिसके वे नायक हैं । सारे ब्रजवासी तंग आ गए । वे चाहे जितने ही सावधान रहते, पर कृष्ण की चतुराई के सामने उनकी सावधानी काम नहीं देती । अंत में गोपियों ने यशोदा मैया से शिकायत करनी आरंभ की । कुछ दिनों तक वे भी सुनी-अनसुनी करती गई, पर जब शिकायतों का तांता सा बंध गया तब उन्होंने गोपियों से कृष्ण की सफाई दी । माता की अपने 'लाल' की होनहारी पर जो गर्व है, वही हास्योत्पत्ति का एक कारण है । मातृहृदय बच्चे का अपराध स्वीकार नहीं करता । बेचारा छोटा सा बच्चा चोरी करना क्या जाने ? क्या नंद बाबा के घर दूध-दही और माखन की कमी है, जो वह दूसरे के घर चोरी करने जाते । गोपियों को इस उत्तर से सन्तोष नहीं होता, वे नटखट कन्हैया से तंग आ गयी हैं ।

सूर के हास्य विधान की कुशलता पर हम उस समय मुग्ध हो उठते हैं जब गोपियों के घर में माखनचोरी करते हुए नटखट कृष्ण पकड़े जाते हैं, तो कृष्ण बड़े गंभीर होकर भांति भांति के बहाने बनाने लगते हैं ।

कृष्ण एक अंधेरे घर में रात्रि का अन्धकार रहते चोरी करने गए । दही के बरतन में हाथ था । पकड़े गए । पूछने पर कैसा उत्तम उत्तर देते हैं जो मन में चुभ जाता है :-

सूने निपट अंधारे मन्दिर दधि भाजन में हाथ ।
अब कहि कहा बनैहो उत्तर कोउ नाहिन साथ ।
मैं जान्यो यह घर अपना है या धोखे में आयो ।
देखतु ही गोरस में चींटी काढ़न को कर नायो ।
सुनि मृदु वचन निरखि मुख शोभा ग्वालिन मन मुसुकानी ।।

कैसा सरस, सौम्य तथा बालसहज उत्तर है कि मुझे अंधेरी रात में अपने घर का धोखा हो गया । मैं ने समझा यह अपना घर है । यहाँ दही के बरतन में चींटी निकालने को

- -

1 मेरो गोपाल तनिक सो, कहा करि जानै दधि की चोरी,
. . . .
अँगुरिन करि कबहूँ नहिं चाखत, घर ही भरी कमोरी ।

सूरसागर - पदसंख्या 99 ।

मटकी मे हाथ डाला । मैं दधि की चोरी थोड़े ही करता हूँ । उत्तर विश्वसनीय कदापि नहीं । पर बालक को तुरंत बुद्धि देख, 'बाल अवस्था का ऐसा उपजाऊ और तर्क' देख गोपी हंस पड़ी । ग्वालिन मन मुसकानी, ग्वालिन ही नहीं प्रत्येक स्त्री को ऐसे उत्तर पर हंसी अवश्य आयेगी । पाठक स्वयं इस प्रसंग पर हंस जाते हैं । कृष्ण का प्रत्युत्पन्नमतित्व, हास्य सृष्टि का एक कारण है । दूसरा कारण यह कि बालकृष्ण की बुद्धि बहुत तीखी है ।[1]

लेकिन एक दिन कई दिनों का यह चोर रंगे हाथों ही पकड़ लिया गया । गोपियां बड़ी बड़ी उत्सुकता से देख रही है और कहती है कि अब यह नटखट सीधा हुआ जाता है । मुख पर लगा दही जल्दी-जल्दी पोंछता और माखन का दोनों हाथ पीछे करके छिपाने का प्रयत्न करता है कृष्ण । यशोदा की पूछताछ पर कृष्ण सिटपिटाकर बड़े भोलेपन से उत्तर देता है ।-

मैया मेरी, मै नहिं माखन खायो,
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो ।[2]

देखा चोर चातुर्य । स्वयं ग्वाल-बालों के नायक बनकर चोरी करते फिरे और चोटे पकड़ने का समय आया तो अपने मित्रों को बदनाम करने लगे । कहीं मित्रगण बुरा न मानें, यह सोचकर'ख्याल परै'कहकर उस ओर से भी अपने को सुरक्षित कर लिया । उसका बहाना देखिए । वह कहता है कि सब लोगों ने मिलकर बलपूर्वक उसके मुख पर माखन लगा दिया, उसने माखन चुरा खाया नहीं । और भी सुनिये ।-

'देखि तुही सीं के पर भाजन, ऊंचे धर लटकायो,
तुही निरखि, नन्हे कर अपने, मै कैसे दधि खायो ।[3]

क्या कमाल है । उसका कहना है 'मां, देख तो मां । कहां तो माखन का पात्र इतना ऊंचा और कहां मेरे नन्हे नन्हे हाथ । मै कैसे दही चुरा सकता हूँ । क्या यह नहीं कहता कि मित्रों के कंधों पर खड़े होते ही उच्च स्थिति सीका भी समीप आ जाता है ।

---

1 सूर की साहित्य-साधना - पृ.269 सूर के बालकृष्ण नामक लेख से - डा.गोपीनाथ तिवारी

2 सूरसागर - वेंकटेश्वर प्रेस पृ.133 पद 46

3 सूर सागर - वेंकटेश्वर प्रेस पृ.139 पद 55

बता, अपने बच्चे के इस भोलेपन को देखकर किस माता का हृदय वात्सल्य और हास्य रस से न भर जायगा । यही तक नही —

मुख दधि पोंछ कहत नन्द नन्दन दोना पीठि दुरायो ।[1]

इस अन्तिम पंक्ति पर पहुँचते पहुँचते पाठक भी यशोदा के साथ हँस उठते है । यशोदा मैया ही क्या, बल्कि शिकायत करने वाली गोपियो ने भी मन ही मन मुस्कुराती इस नटखट की तीखी बुद्धि की प्रशंसा की होगी । इस प्रसंग के बारे मे डा. गोपीनाथ तिवारी की आलोचना यो है । बालकों की चपल मनोवृत्ति तथा अल्पमति के अनुसार कार्य करने का यह बहुत सुन्दर उदाहरण है । बच्चे किस प्रकार तर्कमय उत्तर देते है उसकी भव्य झांकी भी दिखायी गयी है । दोने को पीठ पीछे छिपाकर कृष्ण समझते है कि माँ को यह नही दिखायी पड रहा । तर्क भी कितना सुन्दर है ?[2]

डा. मनमोहन गौतम इस हास्य प्रसंग के बारे मे यो कहते है पद का संदर्भ सर्वथा मौलिक है । कवि की कल्पना की प्रत्युत्पन्न बुद्धि का चमत्कार दिखाया है । माखन चोरी का आधार - मात्र ही कवि ने लिया है । माखनचोरी, पकड़ा जाना और माँ-बेटे की बातें उपादान-मात्र है । पद की प्रथम छः पंक्तियाँ साधन है, जिनका साध्य अन्तिम दो पंक्तियों मे प्रस्तुत किया गया है । कवि कहता है कि -

बाल - विनोद - मोद मन मोह्यो भक्ति प्रताप दिखायो ।

सूरदास जी कृष्ण के बाल - विनोद पर निछावर है । उनका लक्ष्य तो इसी बाल-विनोद से प्राप्त निजी मोद को अभिव्यक्त करना था ।[3]

माखनचोरी के इस पद मे मुख मे चिपटा हुआ दही पोंछना, पीठ पीछे दोनो छिपाना तथा छोटे हाथों की दुहाई देना उद्दीपन विभाव की सामग्री है । स्थायी भाव हास्य है, जो पद मे वर्णित संपूर्ण परिस्थिति के सामने आते ही विकास उठता है ।

- -

1 सूरसागर - वेंकटेश्वर प्रेस पृ. 180

2 सूर के बाल-कृष्ण लेख से उद्धृत - सूर की साहित्य साधना पृ. 269

3 सूर की काव्यकला - पृ. 60-61 डा. मनमोहन गौतम ।

ऐसे पदो के भाव अर्जित होकर आस्वाद्यमान कोटि तक पहुँच जाता है और इसी हेतु उसकी रस संज्ञा होती है। घटना चित्रवत् प्रत्यक्ष हो जाती है। श्रोता या पाठक अनायास ही रसानन्द मे मग्न हो जाता है। उक्ति वैचित्र्य अनोखा है। सूर का उक्ति वैचित्र्य बालक कृष्ण की वचन चातुरी मे देखने को मिलता है अलंकार विहीन ये पंक्तियाँ उक्ति वैचित्र्य के कारण ही इतनी लोकप्रिय हो गयी है।

(ख) छाया प्रसंग

सूरसागर मे दो स्थानो पर छाया प्रसंग द्वारा हास्यसृष्टि हुई है। सूर की मौलिक कल्पना हम यहाँ सुचारु रूप से पाते है।

माखन खाता हुआ बालक कृष्ण हँसता-खेलता घड़े मे झाँकने लगता है। उसमे अपना माखन खाता प्रतिबिंब देखकर वह समझता है कि कोई दूसरा बालक मेरा माखन खा रहा है।[1]

बालक की अज्ञता ही यहाँ हास्यसृष्टि का माध्यम है। वह बेचारा यह नही जानता कि वह उसका ही प्रतिबिंब है।

ईर्ष्यालु बालक की पिता नंद से शिकायत हास्य की पुष्टि करती है।

पिता नंद मन ही मन मुस्काया होगा। लेकिन बालक उसे मुस्काते देखो नही देता। पिता को भी वह साथ ले गया, अपनी कही बात को सही दिखाने।

पिता-पुत्र दोनो जाकर जब घड़े मे झाँकते है तब अपने और पिता के प्रतिबिंब को देखकर बालक अपने को तो पहचान नही पाता, पिता को पहचान लेता है और उनकी गोद से उतर जाता है। बालक अपने को तो पहचान नही पाता, पिता को अवश्य पहचान लेता है। अपनी माता से शिकायत करने के लिए वह पिता की गोद से मचलकर उतरता है। माता से वह यही शिकायत करता है कि आज से मै तेरा ही पुत्र रहूँगा, पिता का नही क्योंकि उन्होने दूसरे पुत्र को गोद मे ले रखा है।[2]

---

1 माखन खात हँसत किलकत हरि पकरि स्वच्छ घट देख्यो।
....
या घट मे काहू के लरिका, मेरौ माखन खायौ। सूरसागर (सभा प.सं 664 पृ.313

2 महर कंठ लावत, मुख मोछत, चूमत तिहिं ठां आयौ।
....
आजु नंद सुत और कियौ, कछु कियौ न आदर मेरौ। सूरसागर (सभा)प.सं.774 पृ.314

बालक की अज्ञता ही यहाँ भी हास्य का आधार है। अपने पिता की छाया को पहचान सकने की क्षमता उसमें है। अपनी छाया को वह समझ भी नहीं सकता। यह वाणिक अज्ञता, पूर्ण अज्ञता से अधिक हास्य जनक है और यही सूर के कलाकार को हम पाते है।

बालक का कोप पहले स्तंभ पर अन्य बालक से था। लेकिन बाद को वह कोप पिता नंद पर खिसक आता है। ऐसा एक प्रसंग और भी है जो माखनचोरी से संबन्धित है।

माखनचोरी के प्रसंग में बालकृष्ण किसी गोपिका के यहाँ पहुँचता है। जब वह माखन से भरी कमोरी उठाकर खाने लगता है तब संयोगवश सामने के मणि स्तंभ पर उसकी दृष्टि पड़ती है। अपने प्रतिबिंब को दूसरा बालक समझकर कृष्ण कहता है आज पहली बार मैं माखन की चोरी करने आया था। मैं अकेला था, तुम साथी मिल गये, चलो, अच्छा हुआ। तदनन्तर कृष्ण उसे भी माखन खिलाना चाहता है और उसके गिर पड़ने पर प्रतिबिंबित बालक से कहता है 'क्यों? खाते क्यों नहीं? कहो तो सारी कमोरी तुम्हें ही दे दूँ। कितना मीठा है यह माखन। तब गिरा क्यों रहे हो? तुम्हें खिलाने में मुझे तो बड़ा सुख मिल रहा है। तुम्हें कैसा लगता है? क्या सोच रहे हो?

अबोध बालक की निरर्थकता का कितना मनोहर दृश्य है? जब प्रतिबिंब का खाया जाता नहीं तब बालकृष्ण की चिन्ता है कहीं वह पूरे माखन से ही तृप्त होगा। प्रतिबिंब को माखन खिलाने का यह दृश्य छिपी छिपी देख रही थी एक गोपी। उसने बालकृष्ण का कथन भी सुना था। अपनी सखी से सारी लीला बखानती हुई वह कहती है —

आजु सखी, मनि खंभ निकट हरि, जहँ गोरस कौ गो री।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौं सिसु, प्रगट करै जनि चोरी।
अरध बिभाग आजु तै हम तुम, भली बनी है जोरी।

. . . .

1 प्रथम आजु मैं चोरी आयो, भलो बन्यो है संग।
. . . .
तुमहिं देति मैं अति सुख पायौ, तुम जिय कहा बिचारत?

सूरसागर - दशमस्कंध - प.सं. 807

माखन खाहु, कतहिं बहरत हौ, छाडि देहु मति चोरी ।
बाट न लेहु, सबै चाहत हौ, छा यहै बात है थोरी ।
मीठी अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देहु कमोरी ।[1]

बालक के लिए चोरी आदि एक साहसी कोशिश है । इसमें साथ एक मित्र भी होता तो मजा दुगुना होता ।

गोपियाँ माखन चोरी की करतूत माता यशोदा को नमक मिर्च लगाकर सुनाती है। माता ने बालक से कैफियत पूछती है । कृष्ण इस प्रकार सफाई देकर सबको हँसा देता है -

सुनु मैया, याके गुन मोसों, इन मोहिं लयौ बुलाई ।
दधि मैं पडी सैंत की मोपै चींटी सबै कढाईं ।
टहल करत मैं याके घर की, यह पति संग मिलि सोई ।[2]

नटखट ने क्या क्या नहीं देख लिया, 'संग मिली सोई' भी ।

(ग) बाल सुलभ मनोभावनाएँ -

बालसुलभ मनोभावनाओं का वर्णन सूर ने इतनी कुशलता के साथ किया है कि अन्य कवि उनके प्रतिद्वन्द्वी नहीं ठहर सकते । बालक की मनोभावनाओं और चेष्टाओं की सुन्दर हास्यात्मक योजना सूर की कविता में विविध स्थलों पर हुई है । एक स्पर्धा के भाव को ही लीजिए । यह बालक की बडी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । सूर ने स्पर्धा के भाव को बडे स्वाभाविक रूप से यों व्यक्त किया है :-

मैया कबहिं बढेगी चोटी ।
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी
तू जो कहति 'बल' की बेनी ज्यों है लाँबी मोटी ।।[3]

इन पंक्तियों में किती बार मोहि दूध पियत भइ यह अजहुँ है छोटी' विशेष रूप से ध्यान देने योग्य पंक्ति है । इसमें बालक की उत्सुकता, स्पर्धा और लालसाओं

1 सूरसागर (सभा) - प.सं.796 पृ.320
2 सूरसागर (सभा) - प.सं.940 पृ.368
3 सूरसागर (सभा) - प.सं.793 पृ.320

का सुन्दर चित्रण हुआ है । इसी प्रकार कवि ने बालक कृष्ण की स्वाभाविक बाल चेष्टाओं का भी वर्णन[1] जितनी कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है, उतनी कलात्मकता के साथ किसी अन्य कवि ने नहीं । सूरसागर में बालक की ईर्ष्या, प्रतिद्वन्द्विता, क्रोध, क्षोभ आदि भावनाओं के उदाहरण कई देखने को मिलते हैं । बालक की स्पर्धा क्या देखिए :-

खेलत मैं को काको गोसैयाँ ।
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस ही कत करत रिसैयाँ ।
जाति पाँति हमतें कछु नाहीं, न बसत तुम्हारी छैयाँ ।
अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारें हैं कछु गैयाँ ।[2]

इन पंक्तियों में क्षोभ और क्रोध की भावनाएँ रोचक रूप से साकार हो उठी हैं ।

(घ) बड़े भाई पर शिकायत

बलदाऊ जी अपने छोटे शरारती भाई से तंग हैं । वे उसे अपने साथ खिलाना नहीं चाहते और उन्हें व्यंग्य पर चिढ़ाते हैं । कृष्ण में भी छोटी बातों से चिढ़ने की आदत है । वे अपने भाई के व्यंग्य को सहन करने में असमर्थ हैं ।

सब खेलों में जीतने की इच्छा मूल का बालक इच्छा है । खेल में जब कृष्ण जीत नहीं पाते तब सखा उन्हें चिढ़ाते हैं । सहायता के लिए जब वे भाई बलराम की ओर देखते हैं तब वे भी सखाओं के स्वर में स्वर मिलाकर चिढ़ाने लगते हैं । क्रोध में लाल होकर अपनी माता के पास जाते हैं और अपने बड़े भाई की शिकायत करते हैं :-

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो,
मोसों कहत मोल को लीन्हो, तोहि जसुमति कब जायो ।
कहा करौं या रिसके मारे, खेलन हौं नहिं जात,
पुनि-पुनि कहत कौन तुव माता, कौन तिहारो तात ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 सूरसागर - (सभा) - प.सं.865 पृ.345
कत हौ आरि करत मैं मोहन यो तुम आँगन लोटी?
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर, यहै बात तेरी खोटी ।
सूरदास को ठाकुर ठाढ़ो हाथ लकुटि लिए छोटी । सूरसागर(सभा प.सं.799 पृ.32

2 सूरसागर - सभा - प.सं.863 पृ.343

गोरे नंद जसोदा गोरी, तुम कत श्याम सरीर,

चुटकी दै-दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बल बीर।

भला ऐसे व्यंग्य को कौन सहन करेगा। बलराम जी की शरारत देखिए, कृष्ण का रंग यशोदा नंद की तरह गोरा न होने के कारण बेचारे को खीझा हुआ करते है और स्वयं ही कहें, यही नहीं, पर अपने ग्वाल-मित्रों को भी उन्हें चिढाने के लिए उत्तेजित करते है। इतना होने पर भी :-

तू मोही को मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।

कितना भोला मनो-भाव और कितनी स्वाभाविक शिकायत है। यशोदाजी इस शिकायत को सुनकर बलराम जी को दंड नहीं देती, पर वे अपने पुत्र के क्रोधपूर्ण चन्द्रमुख को देखकर मन ही मन बड़ी प्रसन्न होती है। सचमुच ही बच्चों का क्रोध भी प्रसन्नता की ही वस्तु है[2]।

(क) चांद का प्रसंग

श्याम सचमुच ही बड़े हठी थे। उन्हें जो सनक एक बार सवार हो गई, उससे उन्हें पृथक् करना कठिन था। एक दिन कहीं महाशय ने देख लिया, बस, समझा कोई माखन का गोली चन्द्र भी होगा। खाने को मांग बैठे, पर जब उन्हें मालूम हुआ कि वह खाने की वस्तु नहीं है, तो बोले खाने को नहीं, तो खेलने के लिए ही ला दो। बेचारी यशोदा बड़ी चिन्तित है। वे गोपियों से कहती है :-

मेरो माई, ऐसो हठी बाल गोविन्दा,

अपने कर गहि गगन बतावत खेलन को मांगै चन्दा।[1]

कृष्ण उसे लेने को मचलने लगा। माता जब उसे बहलाना चाहती है तो वह धमकाता है और धौंस भी देता है यदि नहीं देगी तो मैं धरती पर लेट लेट कर शरीर और वस्त्र गंदे कर लूंगा, तेरी गोद में नहीं आऊंगा, दूध भी नहीं पीऊंगा, चोटी नहीं बढ़ाऊंगा।

---

1 इससे मिलते जुलते और एक पद भी है :- खेलन अब मेरी जाइ बलैया।

....

ऐसी कहि सब मोहिं खिझावत, तब उठि चल्यौ खिसैया।

- सूरसागर (सभा) प.सं.838 पृ.334

2 सूर दर्शन पृ.405 डा.कृष्णलाल हंस।

धौंस की ये बातें तो साधारण है, सबसे बड़ी धमकी बालक की यह है कि चंदा न मिलने पर मैं तेरा पुत्र न रहकर बाबा नंद का पुत्र बन जाऊँगा[1]। छोटे की धमकी सचमुच हास्य सृष्टि करती ही है।

बालक अपना हठ छोड़ता नहीं। माता उसका ध्यान हटाने के लिए इधर उधर की बातें करती है, यहाँ वहाँ की चीज़ें दिखलाती है, लेकिन मचलता हुआ कृष्ण उसकी गोदी से खिसका पड़ता है[2]। मचलता-मचलता बालक जब गोदी से उतर जाता है तब माता एक नया प्रलोभन देती है -

आगे आउ, बात सुनि मेरी, बलदाउहिं न जनैहौं।
हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहौं।

प्रस्ताव बहुत ही आकर्षक है। बालक कृष्ण उसे सुनता है, मन मन विचार करता है। साथ खेलने केलिए एक दुलहिन। कितनी अच्छी बात है? एक बालक के लिए इससे अधिक क्या मिलना चाहिए? अतः विचार करने के बाद तुरंत सहमत होकर कहता है-

तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं।

अब तो नन्हे की अज्ञता हास्य का कारण बन जाती है। विवाह के बारे में उसका बोध सयानों का नहीं। एक विवाह के लिए उसकी व्याकुलता हास्य का वातावरण स सजाती है।

अब माता के आगे एक नयी समस्या उठ खड़ी होती है। कपड़े की गुड़िया तो तत्काल मिल नहीं सकती, नयी दुलहिया कहाँ मिलती? पराजित माँ अब अपना प्रस्ता वापस लेने की कोशिश में है। यह कोशिश भी हास्य सृष्टि में सहायक है।

अचानक पात्र के पानी में चंद्रमा का प्रतिबिंब दिखाकर बालक से कहती है - ले, इसी के लिए तू इतनी देर से मचल रहा था न? मैं ने एक पक्षी भेजकर आकाश से इसे पकड़ मंगाया है। अब तू जो चाहे सो कर इसका।

---

1 मैया, मैं तौ चंद - खिलौना लैहौं।
....
ह्वै हौं पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं। सूरसागर (सभा) प.सं.811 पृ.327

2 आन बतावति, आन दिखावति बालक तौ न पतीजै।
खसि खसि परत कान्ह कनियाँ तैं सुसुकि - सुसुकि मन खीजै।
सूरसागर (सभा) 811 पृ.327

(4) राधा - कृष्ण का प्रथम मिलन

एक नाटकीय रूप मे सूरदास कृष्ण और राधा का प्रथम मिलन प्रस्तुत करते है । सूर ने वचन विदग्धता का सहारा लेकर इसे हास्य पूर्ण बनाया है ।

चकडोरी हाथ मे लिये कृष्ण ने 'औचक ही' एक विशालनयनी बाला को देखा तो 'नैन नैन मिलि परी ठगोरी' । पूछा, गोरी तू कौन है, ब्रज मे तो कभी नही दीख पडी । बाला बोली हम ब्रज मे क्यो आये भला । सुनती है, वहा नन्दकुमार माखन और दधि की चोरी करता फिरता है । कृष्ण बोले तुम्हारा हम क्या चुरा लेगे, आओ इकट्ठे मिल के खेले[1] ।

भोली राधिका उस रसिक की बातो मे आ गयी । उसे क्या मालुम था कि कृष्ण उसका क्या नही चुराएगे ?

कृष्ण और राधा के उपर्युक्त कथन ऐसा मर्मभेदी प्रभाव डालते है कि दोनो आजीवन प्रेम पाश मे बंध जाते है । कटु वचनो के इस सुधाल्व का रहस्य उक्ति की वक्रता है ।

राधा कृष्णा के प्रथम मिलन मे भाव प्रेरित वचन विदग्धता के दर्शन होते है । अति सूक्ष्म-बातो मे उक्ति की वक्रता दोनो ओर परस्पर प्रीति का आमंत्रण देती है ।[2]

(5) राधा-यशोदा संवाद

बडे होने पर यशोदा मैया का माखनचोर लडकियो का शिकार करने निकलता है । वृषभानु सुता राधा से उसका मिलन होता है । कृष्ण के साथ राधा यशोदा के पास आती है । यशोदा और राधा का निम्न लिखित प्रश्नोत्तर कितना विनोद पूर्ण है, जरा देखे । यशोदा का सवाल देखिए :-

नाम कहा तेरौ री प्यारी ।

बेटी कौन महर की है तू? को तेरी महतारी ?[3]

इसका ठीक उत्तर राधा कैसे देती है, वह भी देखे । निम्नांकित पद मे राधा का

- -

1 काहे कौ हम ब्रज तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी ।
तुम्हारी कहा चोरि हम लैहै, खेलन चलौ संग मिलि गोरी । सूरसागर - 673

2 सूर की काव्यकला - पृ.183 डा.मनमोहन गौतम ।

3 सूर सागर पदसंख्या 1380

भोलेपन देखिए । उसके इस भोलेपन से भरी बातों में सौन्दर्य की एक निराली छटा दृष्टि गोचर होती है –

मैं बेटी वृषभानु महर की, मैया तुम को जानति ।
जमुना तट बहु बार मिलन भयौ, तुम नाहिन पहचानति ।
ऐसी कहि वाकौ मैं जानति, वह तो बडी छिनारी ।
महर बडौ लंगर सब दिनकौ, हँसति देति कुछ गारी ।।
राधा बोल उठी, बाबा कछु, तुमसी ढीठो कीन्हौ,
ऐसे समरथ कब मैं देखौ, हँसि प्यारहि उर लीन्हौ[1] ।

कितना सुन्दर और मुँहतोड उत्तर है राधा का यशोदा को । राधा के इस भोलेपन पर कौन नहीं रीझ जायगा । कृष्ण और राधा का 'जमुना तट बहु बार मिलन गुप्त रूप में हो गया है । इस रहस्य की घोषणा राधा करती है, वह भी माता के आगे ? तुम नाहिन पहचानति का विशेष अर्थ है । पिछले कुछ दिनों के गुप्त मिलन से राधा ने कृष्ण का असली रंग समझा है । बाबा, बडी छिनारी, बडी लंगर आदि विशेषणों का प्रयोग कितना उचित बन गया है ? ऐसे समरथ कब मैं देखे ? यह उक्ति और किसी प्रसंग पर और किसी के मुँह से सुनेगी तो माता बुरा जरूर होती । एक ही वाक्य का दो प्रसंगो पर भिन्न अर्थ होता है । इसलिए माता यशोदा आपसे बाहर हो गयी । उसने राधा के पिता को दोष लगाया । बेटियों के बुरे हो जाने पर लालन पालन करनेवाले माता पिता को ही कोस मिलती है । राधा ने उसका जो उत्तर दिया उससे उसने दाँव ले लिया । घर आकर सारी बात उसने दाँव ले लिया । घर आकर सारी बात उसने माता को कह सुनायी ।

(6) राधा - माता संवाद

यशोदाजी राधा का शृंगार अपने हाथों कर देती है । वह शृंगार कर घर जाती है । उसकी माता उससे पूछती है कि तेरा शृंगार किसने किया ? वह सोचती है कि किसी दूसरे के घर से शृंगार करके आना भी अपराध है । अतएव वह अपराध को छिपाने के लिए ठीक बात न बतलाकर चतुराई से दूसरी बात कह देती है :-

---

1 सूरसागर पद संख्या 1381

मैं आगे बढ़ि यशोदा, माता री मोहि मारो दीन्ही ।
वाकी बात सबै मैं जानति, वे जैसी तैसी मैं चीन्ही ।।
तोको कोह पुनि कह्यो बबा को, बड़ो धूर्त वृषभान ।[1]
तब मैं कह्यो ठग्यो कब तुमको, हँसि लागा लपटान ।
इस प्रकार की प्यार भरी भोली बातों पर हँसते हुए माता ने कहा :-
भली कही तै मेरी बेटी, लयो आपुनो दाउ ।
जो मुख कह्यो सबै उनके गुन, हँसि हँसि कहति सुभाउ ।।
फेरि-फेरि बूझती राधा सौ, सुनति हँसति सब नारि ।
सूरदास वृषभानु-घरनि, यसुमति को गावत गारि ।।
देखिए, वात्सल्ययुक्त हास्य रस का यह कितना सुन्दर उदाहरण है ।

(7) पनघट की छेड़छाड़

पनघट - लीला सूर की अपनी मौलिक सूझ है ।

कृष्ण का अधिकतर समय छेड़छाड़ में बीतता था, अब पनघट को भी उन्होंने अपनी गति-विधियों का केन्द्र बना लिया । कृष्ण कभी किसी की गागर ढरका देते है या किसी की गेंडुरि को फेंक देते हैं ।

पनघट-लीला वर्णन के बीच कृष्ण और एक गोपी की नोक झोक का वर्णन सूर हास्य पूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं जहाँ वचन - चातुरी में सूर की कुशलता का आभास प्राप्त होता है ।

कृष्ण एक गोपी की गागरी ढरका देते हैं । वह उनकी लकुटी छीनकर खड़ी हो जाती है और एक वक्रभंगिमा से कहती है :-

एक गाँव एक ठाँव बास, तुम कैहौ क्यों मैं सैहौ ?
सूर स्याम मैं तुम न डरैहौ ज्वाब बात को दैहौ ।[2]

---

1 सूरसागर (सभा) प.सं. 1327

2 सूरसागर (टीका), दशम स्कंध, पद 1405

इसी क्रम मे गोपिया फिर भी कहती है –

'ठगत फिरत हो नारि पराई' इसपर उत्तर प्रत्युत्तर कितना चमत्कारजनक है ?

'कहा ठग्यौ तुम्हरौ ठगि लीन्हो'। प्रत्युत्तर देखिए -

क्यो नही ठग्यौ, और कह ठगिहौ, औरहि के ठग चीन्हो ।

फिर भी प्रश्न है –

कहौ नाम धरि कहा ठगायौ, सुनि राखौ यह बात ।
ठग के लछन मोहि बतावहु कैसे ठग के घात ॥

उत्तर भी कितना मनोरंजक है, जरा देखे :-

ठग के लछन हम पै सुनियै, मृदु मुसकानि चित चोरत ।
नैन सैन दै चलत सूर प्रभु तन त्रिभंगकरि मोरत[1] ।

गोपी ने कृष्ण की ठगी का विश्लेषण वचन - चातुरी द्वारा ऐसा किया कि कृष्ण निरुत्तर हो गए ।

पर कौतुकी को हर समय कौतुक ही दीखता है । कृष्ण कभी गेडुरी यमुना मे फेक देते है कभी मटकी तोडते है । गोपिया शैतानी के आधिक्य से परेशान होकर यशोदा के पास शिकायत करने की सोच मे है तो कृष्ण कदम्ब पर चढकर बैठ गये, नंद की दुहाई दी, बदन सिकोड कर भौहो को मोडा, शरारत की स्वाभाविक मुद्रा मे कहने लगे, अच्छा है, जाकर शिकायत करो –

ऐसे कहि मो को तुम पायो
मनु इनकी करी चेराई ।

ग्वालिनें भी कम नही, कृष्ण को वे दिन याद दिलाने लगी जब उलाहना देने पर माँ ने उन्हे ऊखल से बाधा था । गोपियो ने शिकायत की, माता ने कृष्ण को सजा देने का निश्चय भी किया । पूछ ताछ होने पर कृष्ण बोले तू मुझे ही तो भला जानती है । उनकी शरारत नही समझती । वे मुझे ही बुलाती है और बात गढ - गढकर तुझे कुछ भी कह जाती है और तू मान लेती है । उनके झटकने से उनकी गागर गिर गयी ।

---

1 सूरसागर (सभा) दशम स्कंध, पद 1414

इसमे मेरा क्या दोष ?

पहले ही इतनी उम्र मे एक लडके का मुह देखा था, ऊपर से लोगो की झूठी शिकायतो पर यशोदा को कृष्ण पर नाराज होना पडता है । वे गोपियो पर ही नाराज होती हुई कहती है कि वे सब खुद यौवन मद की मतवारी है ।

फिर भी ब्रज के घर घर मे यह बात चल पडी है कि कृष्ण की शैतानियो के कारण यमुना मे जल भरना मुश्किल हो गया है । गागर का पानी पृथ्वी पर डालता है । माता-पिता ही उसे ऐसे ढंग सिखा रहे है । यमुनातट पर सखाओ को लिए वह बैठा रहता है । लोग रास्ता चलने से डरते है –

आपुन बैठ्या कदम डार चढि ग्वारी दै दै सखनि बुलावै

किसी को इशारे करके उसका चित्त चुराते है, कही पर सिर की गगरी का पानी ढरका कर इसे भिगा देते है और किसी के हाथ नही आते ।

(8) दान लीला

भागवत, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त आदि जिन ग्रन्थो मे गोपाल कृष्ण की लीलाओ का वर्णन है उनमे दानलीला का प्रसंग नही । अतः पनघट लीला के समान यह भी सूर की मौलिक कल्पना है ।

पनघट पर पानी भरती युवतियो की मटकियां तोड तोड कर कृष्ण ढीठ हो गए । चोरी का वह उम्र कुछ बीत गया, चोरी के अपराध का दंड तो मिल चुका था ही। चोरी नही करेगे तो डाका तो डालेगे ही । लुकछिप कर माखन उडाना लोगो को अच्छा नही लगा तो अब खुले आम माखन खायेगे । घर मे तो ढेरो माखन भरा है, पर बिना हाथ पैर चलाए मिली वस्तु मे क्या स्वाद? चोरी छोडकर नया काम चालू करना पडा । एक दल बनाया कान्ह दल । सब चंचल प्रकृति के ग्वाल बाल इकट्ठे किए गए । इस दल का उद्देश्य था मथुरा जाती हुई स्त्रियो को लूटना एवं लूट को आपस मे बांट खाना । लूट रुपए पैसे की नही, माखन की होती । लूट मे माल के स्वामी न मारे जाते, मारे भी जाते तो नयन बाणो से । इस लूट से दो लाभ अवश्य थे । कृष्ण-कही गांव के बाहर न जाता । जाता भी तो ग्वालको के भी घर आने के बाद । तथा नागरि के दर्शन भी हो जाते ।

श्रीकृष्ण ने आवश्यक निर्देश सखाओं को दिया और उन्होंने दानलीला शुरु करने का समय भी निश्चय किया ।

ब्रज युवतियाँ रोज के जैसे दधि बेचने निकली । रास्ते मे कृष्ण को पूर्ण सज्जा मे खड़ा देखकर उनका विचार लौटने का हुआ । लेकिन उनमे कुछ साहसपूर्वक आगे बढ़ने लगे यह कहते हुए कि इससे डरना कैसे ?

ये क्या करेंगे हमारा ? - कोउ कहति कहा करि है हरि

बन सो कहा परैये -- इतने मे कृष्ण ने संकेत दिया । सभी बालकों ने वेणु विषाण बजाना आरंभ किया । सारे कुंजों पर ग्वालों को देख ब्रजनारियाँ घबरा कर रतीभित सी, घबराई सी खड़ी हो गयी । इतने मे सब गोप बालक कुंजों पर से कूद पड़े । एक क्षण के लिए गोपियाँ यह समझ परेशान हो गयी कि ये सब डाकू तो नहीं, पर कुछ ही देर मे रहस्य खुल गया । गोपियों ने समझा कि सब श्याम की शैतानी है ।

अब ग्वालों ने दान मांगा और कहा कि बिना दान दिये तुम श्यामराज की सीमा के बाहर नहीं जा सकोगी । एक गोपी ने हंसकर कहा कि क्या चोरी से काम चला नहीं था जो अब दान भी मांगने की नौबत आयी । गोपियाँ इतनी तार्किक हो जाती है और उनका तर्क इतना अकाट्य होता है कि कृष्ण को भी सोचना पड़ता है ।

कृष्ण को एक बात जो सबसे अधिक बुरी लगती है वह यह कि ग्रामीण बालक गउएँ चराएँ, गौउओं की रक्षा करे, दिन रात गउओं के पीछे मेहनत करे और उपभोग करे मथुरा के लोग ।

पर गोपियाँ कृष्ण की बातों मे नहीं आती । उनका पूछना है राज्य कंस का है, फिर तुम राह क्यों रोकते फिरते हो ? जब कृष्ण गोवर्द्धन उठाने की बात याद दिलाकर अपने महत्व का प्रदर्शन करते है, गोपियाँ हंसी मे बातों को उड़ाकर कहती है - किधर का गोवर्द्धन उठाकर तुम शान बघार रहे हो ? ये सब बातें ऐसे लोगों से कहो जो तुम्हें न जानते हो । हम तो नित्य तुम्हें कांधे पर कमरी डाले हाथ मे लकुटि लिए गौओं को चराने जाते देखती रहती है । कृष्ण अपनी कमरी की अलौकिक महत्ता बताकर एक एक रोम पर कोटि पद्म वारने की बात करते हैं । पर गोपियाँ तो उपहास करने पर तुली हुई है । बहस यहाँ तक पहुंचती है कि वे अपने अव्यक्त अविनाशी होने का उल्लेख करते है । लौकिक माता यशोदा

एवं पिता नंद को अस्वीकार कर देते हैं लेकिन गोपियां एक मुसकान से उनकी बातें उड़ा देती है एवं व्यंग्य से कहती हैं कि तुम तो अब और भी बढ़ गए कि अपने माता-पिता का भी निरादर करने लगे। माता के गर्भ से नहीं पैदा हुए तो आये कहां से ? तुम कौन हो, हम जानती हैं, तुम वही होना, जिसे हम प्रतिदिन देखती हैं –

धेनु दुहत तुमको हम देखति, जबहिं जाति खरिक हिंडत
चोरी करत रहो पुनि जानति, घर-घर ढूंढत भांडे
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढंग कब ते छांडे।

कृष्ण फिर भी मार्ग रोके खड़े रहते हैं, तब वे अपने घरवालों को बुला लाने की धमकी देती हैं। उत्तर मिलता है कि घरवालों को ही क्यों, कंस को भी बुला लो। कृष्ण अपने राजा होने की बात कहते हैं और टैक्स मांगते हैं।

अन्त में गोपियां दान देने के लिए तैयार हो जाती हैं। लेकिन अब कृष्ण कुछ और ही दान मांगते हैं। उसका मर्म समझकर वे गोपियां कृष्ण को मर्यादा भंग करने का दोषी ठहराती हैं। कृष्ण 'लरिकाई की माखन चोरी और उलूखल बंधन से अनभिज्ञता प्रकट कर, चरित्र का स्मरण दिला, उनके नग्न होने की और जग हंसाई की बात कहते हैं। बेहयी बात सुनकर वे एक क्षण के लिए सकुच जाती हैं, फिर कृष्ण को धिक्कारती हैं कि हयाशर्म खोकर ऐसी बातें कहने में भी तुम्हें संकोच नहीं है क्या? तुमने तो इस का ग्वालों के सामने ऐसी बात कह दी, पर हमारी तो बदनामी और भी बढ़ गयी।

यों रसिकेश्वर कृष्ण की बातों का हास्यपूर्ण वर्णन सूर प्रस्तुत करते हैं।

(9) गोपिकाओं की व्याकुलता

वेणु गोपाल की मुरली की नाद धारा के विस्मय आनन्द में तन्मय हो जाने वाली गोपिकाओं का वर्णन करने में भी रसिक सूर ने हास्य सृष्टि की है।

प्रेम-बावरी गोपियों का कितना सुन्दर चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है।[1] कृष्ण के रूप सौन्दर्य ने उनकी बुद्धि हर ली है। वे अपने प्यारे के आगे आकर्षक रूप में खड़ी होने के लिए शृंगार कर रही हैं, पर यह भी नहीं देख पाती कि कौन सी वस्तु कहां पहिनी

1 सूरसागर (सभा) - पद सं 1512

जाय । वे कण्ठ में धारण करने का हार पैर में बांध लेती, वक्ष पर धारण करने की कंचुकी कमर से बांध लेती और कमर में पहिनने का लहंगा वक्षस्थल पर धारण कर लेती है ।[1]

रसिक शिरोमणि सूर की इन पंक्तियों में हास्य-मिश्रित सौन्दर्य-भावना वर्णनीय है ।

मुरली की धुन सुनकर गोपियाँ सब कुछ भूलकर कृष्ण प्रेम में लीन हो जाती है । कोई दूध दुहाना छोड़कर दौड़ी, किसी ने उफनते दूध को ज्यों का त्यों रहने दिया । आग से दूध उतारने की सुधि भी उन्हें न रही । किसी ने चूल्हे पर चढ़ी दाल को वैसे का वैसा छोड़ वन का रास्ता लिया । श्याम-प्रेम में पगी युवतियों ने वेणी के स्थान पर बालों पर ही फूलों के हार लपेट लिये । करना कुछ चाहती है, किन्तु मन - प्राण कहीं और ही रहने के कारण कुछ और ही कर डालती है ।[2]

(10) मुरली प्रसंग

गोपी - मुरली - संवाद नामक प्रकरण का कृष्ण - कथा से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है, किन्तु अपने उक्तिवैचित्र्य के कारण सबसे अधिक सरस प्रसंगों में इनकी गणना है । मुरली के सम्बन्ध में सपत्नीत्व की कल्पना का मूल कवि की लिंग-वैचित्र्य कथा की मनोवृत्ति है । मुरली एक स्त्रीलिंग शब्द है । अतएव लिंग के आधार पर कवि की कल्पना मुरली को कृष्ण-अधरों का पान करती हुई तथा कृष्ण को उसमें अनुरक्त देखती है । मुरली जड़ से मानवी बनकर गोपियों की सपत्नी बन जाती है ।

मुरली प्रसंग में भी वचन-चातुरी के अनेक स्थल है । मुरली को कृष्ण के अधरामृत का पान करते हुए देखकर गोपियाँ कह उठती है -

अधर मधु कत मूई हम राखि संचित किए रही स्वांग की सकी न सकुचन चाखि ।

- -

1 मुरली-श्रवण सुनि ब्रजनारी । करत अंग सिंगार भूली, काम गयो तनु मारि ।।
बदन सौ कटि हार बांध्यो, नैन देखत नाहिं । कंचुकी कटि साजि, लहंगा धरति हिरदय माहिं ।
सूरसागर प.सं. 1619

2 कोउ बसी बसन हार लिपटाई, काहु चौकी भुजन बनाई
अंगिया कटि, लहंगा उर लाइ, यह शोभा बरनि न जाय ।
सूरसागर - 1624

सोई अब अमृत पिवति है मुरली सबहिन के सिर नाखि ।[1]

'अधर मधु' और 'कलमुँही' शब्दों में सूर का अभिव्यंजना कौशल स्पष्ट है। इन शब्दों में गोपियों की अधर-रस की प्राप्ति के लिए उत्कट अभिलाषा की व्यंजना है। जिस अधर-रस का आस्वादन गोपियों ने नहीं किया, उसके प्रति उनमें इतनी ममता है कि अधरों पर मुरली को देख सकना ही उनके लिए असह्य है। मुरली के प्रति गोपियों का ईर्ष्या-भाव वास्तव में व्यंजना का वैभव ही है।

मुरली के बस श्याम[2] में गोपियों के प्रेम के एकाधिकार की ध्वनि ही मिलती है। गोपियों के वश में होते हुए वे मुरली वादन में मग्न हों, यह उन्हें सह्य नहीं। इसी भाव की व्यंजना 'अधरनि तें नहिं करति निनारी' की पंक्ति करती है। 'वाके' शब्द ईर्ष्या की कटुता और मुरली के प्रति तुच्छ भावना का द्योतक है। 'रहत सदा सुधि तन बिसराए' में कृष्ण अपने को भूले हुए हैं, जितने कष्ट उन्हें हो रहे हैं, उन सबको वे सह रहे हैं। 'कहा कहन धौं चाहति' में तो अनागत कितनी शंकाओं की व्यंजना है? 'हरि को मुँह पाएँ' में मुरली के प्रति गोपियों की डाह वाली भावना व्यंजित है।

मुरली को गोपियाँ सौत[3] मानती हैं। वे समझती हैं कि वह कृष्ण में निठुरता[4] उत्पन्न करती है। गोपियाँ मुरली के कुल पर भी प्रकाश डालती हैं। उसका पिता जलधर है और माता है धरती। उनकी रीति कितनी निराली है। जलधर सारे संसार को जल देता है, किन्तु अपने चाहनेवाले चातक की एक बूँद की चाह भी पूरी नहीं करता। पृथ्वी

- -

1 सूरसागर (सभा) 1232

2 मुरली के बस श्याम भए री।
अधरनि तें नहिं करत निनारी, वाके रंग रए री।
रहत सदा तन-सुधि बिसराए, कहा कहन धौं चाहति।
देखि, सुनि न भइ आजु लौं बाँस बँसुरिया दाहति।
श्यामहिं निदरि, निदरि हमहू को अबहीं तें यह रूप।
सुनहु सूर हरि को मुँह पाएँ बोलति बचन अनूप। सूरसागर (सभा) 1231

3 मुरली हम पै सौत भई। सूरसागर - दशम स्कन्ध पद 1240

4 तुम तें निठुर भए वह बोलत, तिनतें मन उचटावति है। वही 1239

सबको जन्म देकर भी कुमारी रही है । ऐसी माता पिता की कन्या मुरली कितनी बुरी न होगी[1]

उपर्युक्त सभी उक्तियाँ व्यंजना के उदाहरण है । सौत सपत्नी का पर्याय नहीं । यह शब्द तो स्थानमन्य में विघ्नकारी तथा कष्टदायक का द्योतक है ।

गोपियाँ मुरली को बुरा भला कहती है कि नीच कुल धर्मवाली वह सब प्रकार से पतित है, तभी तो उसने कृष्ण को भी अपने वश में कर लिया, इसमें कृष्ण का क्या दोष आखिर पुरुष ठहरे —

यह छिनारि लंपट अन्यायिनि, कुल डाइत नहिं बार ।
मधुर-मधुर बानी कहि लिन्ह, साजि सानि सिंगार
ऐसी बनि ठनि मिली आइके, द्वै गए श्याम अजान ।
पुरुष भेंवर उन कहँ का लागै नारि भजै जब आई ।
सूरज प्रभु सब कहा करें री, ऐसी मिली बलाई[2] ।

गोपियाँ मुरली की इन सब करतूतों से झुंझलाती है । जब मुरली कृष्ण अधरामृत को तृण तरु शैल, सरिता आदि में बाँटती है तब उनसे सहा नहीं जाता । जिस रस केलिए उन्होंने कालिन्दी तट पर इतनी तपस्याएँ की, उसे हृदयहीन मुरली ने अपनाया[3] । बाँसी पोली है । उसी पोलेपन को लेकर वक्रता उपस्थित की गयी है । मुरली का हृदय तो छूछा है वह भला अधरामृत के मूल्य को क्या जाने ?

इस प्रकार मुरली के प्रति गोपियों की अनेक वक्र उक्तियाँ है और प्रत्येक अपने आप में चमत्कृत है ।

---

1 सुनहु सखि याके कुल धर्म ।
....
सूर सुनत मुख छोड़ तुरहाई, मैं कहि के सुख पाऊँ । सूरसागर (सभा) दशम स्कन्ध

2 सूर सागर प.सं. 1294 पद 125

3 राहि मुरली कछु भली न कीन्ही
अधर सुधा रस अंस हमारो बाँटि-बाँटि सबहिन को दीनी ।
बसुध, तृन, द्रुम, सैल सरित तट सींचति है बसुधा भुम भीनी ।
जानै स्वाद कहा श्री मुख को, छूछी हियौ सार बिन हीनी ।
सूरसागर प.सं. 2306

मुरली उत्तर में गोपियों से कहती है कि उसके सौभाग्य का कारण उसकी तपस्या है। उसने कृष्ण को प्राप्त करने के लिए षट्-ऋतुओं में एक पैर पर खड़ी रहकर तपस्या की, अग्नि में तपी, सुलाक लगते समय तनिक भी न हिली। उससे गोपियों की ईर्ष्या ठीक नहीं, जब वे भी तपस्या करके आयेंगी, यह छूट जायगी।[1] गोपियों को इससे सन्तोष होता है और वे मुरली से ईर्ष्या भाव छोड़कर उसे बहन मान लेती हैं -

यह कुलीन अकुलिन नहीं री, धनि याके पितु मात।
सुनहु सूर नाते की बैनी, कहति बात हरषात।।[2]

हरषात शब्द का प्रयोग देखिए। गोपियों को यह मुरली राधा-कृष्ण-प्रणय का साधन प्रतीत होने लगी होगी क्योंकि मुरली के ही माध्यम से कृष्ण राधा का नाम उच्चारण करते हैं।

गोपी-मुरलि संवाद सूर की निजी उद्भावना का परिणाम है, काव्य को अभिव्यक्ति सरस बनाने की एक सफल कोशिश मात्र है।

इस प्रसंग के काव्य पर डा. मनमोहन गौतम के मत का उल्लेख करते हुए हम इस प्रकरण पर टिप्पणी का अंत यों करेंगे। सम्पूर्ण मुरली प्रसंग सूर की उक्ति-वैचित्र्य का सुन्दर स्थल है। गोपियों की वचन-चातुरी के कारण इस प्रकरण के सभी पद बड़े सरस हो गए हैं।[3]

(11) कुब्जा-प्रसंग

भ्रमरगीत में कुब्जा का नाम भी बार बार आया है। इसके कारण असूया की बड़ी वक्रतापूर्ण व्यंजनाएँ मिलती हैं।[4] यह रही तुलसी के कुब्जा प्रसंग और काव्य की आलोचना। डा. विश्वनाथ उपाध्याय के शब्दों में सूर की वाग्विदग्धता में कुब्जा प्रसंग अत्यधिक सहायक हुआ है। कहाँ कृष्ण का लोकोत्तर रूप और कहाँ कुबड़ी दासी ? अत

1 सूरसागर - दशम स्कन्ध प.सं. 1330
2 सूरसागर (सभा) दशम स्कन्ध प.सं. 1294
3 सूर की काव्यकला पृ. 185 डा. मनमोहन गौतम
4 सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 211

सूर ने इस प्रसंग को लेकर कई व्यंजनपद्धतियों का आविष्कार किया है । डा. मनमोहन गौतम के मतानुसार कुब्जा के प्रति गोपियों से जो कटूक्तियाँ निकली हैं उनमें लाक्षणिक विशेष अनेक हैं ..... कुब्जा के प्रति कहे हुए अनेक पदों में व्यंजना का मनोहारी स्वरूप मिलता है[2]।

दासी और शठ कृष्ण को किसी भी प्रकार नीचा देखना पड़े, गोपियों के लिए यह हर्ष का विषय है, प्रेममयी गोपियों के साथ विश्वासघात करने के कुकर्म के परिणाम स्वरूप कृष्ण को कुब्जा मिली । अच्छा ही हुआ । जिस कृष्ण ने सबका हृदय चुरा लिया था, उसी चालाक कृष्ण का हृदय कुब्जा ने चुरा लिया । कितना मूर्ख बनाया कृष्ण को? यह सुनकर गोपियों को कुछ कुछ सान्त्वना भी मिल जाती है ।

बहु वै कुब्जा बलौ कियौ ।
सुनि सुनि समाचार ऊधौ मो कछुक सिरातहियो ।
जाको गुन, गति, नाम, रूप, हरि हार्यो, फिरि न दियो ।
तिन अपनो मन हरत न जान्यो, हँसि हँसि लोग जिया ।
सूर तनिक चंदन चढ़ाय तन ब्रजपति बस्य कियौ ।
और सकल नागरि नारिन को, दासि दाँव लियौ[3] ।।

गोपियाँ 'कुब्जा' से वस्तुतः प्रसन्न नहीं थी, परन्तु शठ कृष्ण का वश में देखकर उन्हें प्रसन्नता हुई । प्रतिद्वन्द्वियों में मुख्य प्रतिपक्षी को नीचा दिखाने/यदि किसी अन्य प्रतिपक्षी की प्रशंसा भी करनी पड़े तो कोई हानि नहीं । और एक पद देखिए :-

कुब्जा श्याम सुहागिनि कीन्ही । रूप अपार जातनहिं चीन्ही ।
आप भए पति वह अरधंगी । गोपिन नाउँ धर्यो नवरंगी ।।
दै बहु-वचन नगर की सौउ । तैसोई संग बन्यो अब दोउ[4] ।

सुहागिनी का रूढ़ि लक्ष्यार्थ पति के साथ सुख भोगनेवाली विवाहिता पत्नी है, कुब्जा विवाहिता पत्नी न थी, किन्तु कृष्ण के साथ सुख भोगनेवाली थी । गोपियों ने १ शब्द के द्वारा अपने अन्तस्तल के ईर्ष्याभाव को व्यक्त किया है । इसी प्रकार रूप अपार में उसकी कुरूपता, अरधंगी में उनके कुबड़ेपन के लक्ष्यार्थ हैं । बहु रचन शब्द में व्यभिचारी और

- -

1 सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ.21 ।

2 सूर का भ्रमरगीत - एक अन्वेषण पृ.135 डा. विश्वनाथ उपाध्याय

3 सूर की काव्यकला - डा. मनमोहन गौतम पृ.121

4 सूरसागर, 3638

4 सूरसागर, 3144

जार तथा नगर की शब्द में वेश्या का अर्थ लेने पर व्यंग्य आकर्षक है ।

कुब्जा के प्रति गोपियों का रोष स्वाभाविक है । दाम्पत्य भाव से कृष्ण से प्रेम करने वाली गोपियों कुब्जा के साथ दाम्पत्य रति की कल्पना करती हैं और मर्यादा का उल्लंघन करके स्त्री-सुलभ उपहास करती हैं । उनकी प्रथम दृष्टि कृष्ण और कुब्जा के रूप वैषम्य पर जाती है :-

सूधी यह अचरज की बात ।
आपु कहाँ ब्रजराज मनोहर, कहाँ कूबरी गात ।
जिहिं छन करत कलोल संग रति, गिरिधर अपनी चाह ।
काटत है परजंक ताहि छिन, कैधौं बीचक बाह ।
किधौं सदा विपरीत रचत है, गहि गहि आसन गाह ।
सूर सयान करि हरि बाँधत, मौस धार गलबाह ।[1]

इस उपहास में कुब्जा के प्रति घृणा स्पष्ट है । 'ह' का तुकान्त असूया और उपहास के भद्देपन को बढ़ानेवाला है । सुरति-कर्म की भीषण विडम्बना से ग्राम्य उपहास उभारा गया है ।

व्याजनिन्दा का मूल उक्ति-वैचित्र्य है । गोपियों ने कृष्ण, कुब्जा और उद्धव तीनों की मनोरंजक सराहना की है । कृष्ण के त्याग-भाव की प्रशंसा में वे कहती हैं :-

मथि मथि सिन्धु सुरन को पोखे, सम्भु भए विष आसी ।
इन हति कंस राज औरहिं दै, चाहि लई इक दासी ।[2]

कंस जैसे भयंकर राक्षस का निपात कर उग्रसेन को राज्य दे देना और केवल एक दासी (कुब्जा) को ले लेना ठीक वैसा ही है जैसा सिन्धु मन्थन के उपरान्त शिव का अमृत के स्थान पर विष ले लेना । कुब्जा का आधार लेकर कृष्ण के बड़प्पन पर कैसी मीठी चोट है यहाँ ।

कुब्जा की भी प्रशंसा किए बिना वे नहीं रहतीं :-

- -

1 सूरसागर (सभा) दशमस्कंध, पद 3965

2 सूरसागर (सभा) दशम स्कंध, पद 3675

कुब्जा बड़ी अच्छी है कि उसने हम नारियों का बदला ले लिया। कृष्ण ने दूसरी का मन हर लिया था तो कुब्जा जैसी निकृष्ट स्त्री ने उनका भी मन हर लिया, वे समझ न सके और सारे जग के उपहास के पात्र बने।[1] यों इस प्रकार कुब्जा की प्रशंसा में उसी की निन्दा है।

कृष्ण ने गोपियों को वंचित किया इसका जो क्षोभ उन्हें है, उसकी व्यंजना कुब्जा की प्रशंसा द्वारा करती है। कुब्जा ने कृष्ण को अपने वश में करके उन्हें ठग लिया। इस प्रकार मानो नारी जाति के प्रति किए हुए दुर्व्यवहार का सुन्दर बदला उसने ले लिया। कुब्जा को पटरानी समझकर उनमें जो रोष हुआ उसे बड़ी चतुराई से वे यों प्रकट करती हैं :-

कहियौ ठकुराइति हम जानी।
अब दिन चारि चलहु गोकुल में, सेवहु आइ बहुरि रजधानी।।
हमकौं हौंस बहुत देखन की, संग लिए कुबजा पटरानी।
पहुनाई ब्रज की दधि माखन, बड़ी पलंग अरु ताती पानी।।
x x x x x x x x x x x x x x x x x x
सूर नंद जू के पालोगो, देखहु आइ राधिका स्यानी।।[2]

ठकुराइति शब्द कृष्ण की निरंकुशता और अभिमान पर संकेत है। कृष्ण अब ग्वाल बाल नहीं राजा बने हैं। गोपियाँ भी तो देखें कि नई पटरानी के संग वे कैसे शोभित होते हैं। उनके आने पर दधि-माखन से स्वागत करेंगी, पलंग पर दम्पति को सुलायेंगी भी राधा का निखरा हुआ यौवन भी देख लेना कि यह पटरानी उसके समक्ष कैसी जँचती है। पहु बड़ी पलंग, और स्यानी शब्दों में व्यंग्य फूट फूट पड़ा है।

जब उद्धव कृष्ण का सन्देश कहकर अपनी ज्ञानचर्चा छेड़ते हैं तभी गोपियाँ कहती हैं कि यह कृष्ण का सन्देश नहीं जान पड़ता, यह तो उसी कुबड़ी पीठवाली की कारस्तानी मालूम पड़ती है :-

---

1 करु उन कुबिजा भलौ कियौ।
सुनि सुनि समाचार ये मधुकर, अधिक जुड़ात हियौ।
जिनके तन मन प्रान रूप गुन हर्यौ, सु फिरि न दियौ।
तिन अपनी मन हरत न जान्यौ, हँसि हँसि लोग जियौ।
सूरसागर (सभा) दशम स्कन्ध पद 3638

2 सूरसागर (सभा) दशम स्कन्ध, पद 3359

मधुकर ! कान्ह कही नहिं होही ।
यह तौ नई सखी सिखई है निज अनुराग बरोही ।
सचि राखी कूबरी पीठ पै ये बातैं चकचोही ।।

फिर वे असूया का भाव इन साफ शब्दों में प्रकट करती है कि इस समय कुब्जा का ही जीवन सफल है -

जीवन मुँहचाही को नीको ।
दरस परस दिन रात करति है कान्ह पियारे पी को ।।

वे उद्धव से कहती हैं कि तुम अपनी ज्ञानकथा वहीं करो जहाँ इस समय खूब आनन्द-मंगल हो रहा है, यहाँ जगह नहीं है -

या कहँ यहाँ ठौर नाहीं, लै राखौ जहाँ सुचैन ।
हम सब सखि गोपाल - उपासिनि हम सों बातैं छाँड़ि ।
सूर, मधुप ! लै राखु मधु पुरी कुबजा के घर गाड़ि ।।

वहीं कुब्जा के घर गाड़ आओ स्त्रियों के कैसे जले कटे स्वाभाविक शब्द हैं सन्देश का उत्तर थोड़े ही में वे यह देती हैं कि यदि यह ज्ञानयोग ऐसी उत्तम वस्तु है तो इसे उस कूबड़ी को दो यहाँ की चुटकी कितनी मीठी है ।

गोपियाँ कुब्जा को आलम्बन बनाकर उपहास करती हैं और उसी के द्वारा योग-सन्देश की निरर्थकता भी सिद्ध करती हैं । वे कहती हैं कि उद्धव जी आपको सारहीन वस्तु देकर छला गया है, सच तो यह है कि कृष्ण को कुब्जा के साथ रमना था और आपको कुछ बहाना देकर बाहर करना था ।

सूधी भूलि चले भटके ।
कहत कही कछु बात सबै तें, तुम ताही अटके ।।
देख्यौ सकल सयान तिहारो, लीन्हे छरी फटके ।
तुमहिं दियौ बहराइ रतहिं कौ, वे कुब्जा अटके ।।

---

1 सूरसागर (सभा), दशम स्कन्ध, पद 3667

कछु बात में रहस्य है जिसको ऊधौ जी नहीं समझ सके । उनकी सारी चतुराई की परख हो गई । इस प्रकार योग - सन्देश के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक खंडन प्रस्तुत न करते हुए सूर ने व्यंजना के बल पर उसका तथा उद्धव का उपहास किया है ।

(12) भ्रमरगीत प्रसंग में हास्य

भ्रमर गीत प्रसंग को लेकर उसमें भौंरे के माध्यम से सूर ने व्यंग्य एवं उपालम्भ की परम्परा का उद्घाटन किया, वह आज तक अनेकों कवियों के द्वारा स्वीकृत होने पर भी नितांत नवीन ही बनी हुई है ।

सूरदास की काव्यभूमि में कहीं बसन्त रूपी सरसता का पूर्ण विकास दृष्टिगोचर होता है तो, वह भ्रमरगीत ही है । सूरसागर की दुरूह यात्रा में भ्रमरगीत एक सुन्दर उपवन है जहां सरसता रूपी विश्राम हम पा सकते हैं ।

भ्रमर गीत सूर के शब्दचातुर्य का अक्षय भण्डार है । इष्टदेवता के मधुर क्रीडाशील रूप के वर्णन का सुअवसर प्राप्त कर सकने के कारण सूर ने जो वाग्वैदग्ध्य विकसित किया था, उसका भरपूर प्रयोग उन्होंने भ्रमरगीत में ही किया है ।

वचन चातुरी का सर्वश्रेष्ठ स्थान भ्रमरगीत है । यहां कभी शब्द, कभी अर्थ और कभी उपादान को लेकर सूर ने अनेक भाव प्रेरित काकोक्तियां प्रस्तुत की हैं।[1]

भ्रमरगीत के व्यापक वचन-चातुर्य को हम चार वर्गों में बांट सकते हैं । वे निम्नलिखित हैं ।-

(क) विनोद

(ख) उपहास

(ग) व्याज-निन्दा और

(घ) कटूक्ति

(क) विनोद

विरोध का शिष्ट रूप है विनोद, मीठी होते हुए भी इसकी चोट मर्मस्थल पर बड़ी गहरी और अचूक पड़ती है । अन्तस्तल के विरोध को गोपियां दबा जाती हैं और

---

1 सूर की काव्यकला - पृ. 185 डा. मनमोहन गौतम

रोचक ढंग से उक्ति की फुलझड़ियाँ उछालती है । इनसे कथन में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है और उनके मन की वेदना अधिक तीव्रता के साथ व्यक्त हो जाती है । वे बड़ी मिठास से उद्धव पर फब्तियाँ यों कसती है -

ऊधौ श्याम सखा तुम साँचे ।
की करि लियौ स्वांग बीचहि मैं वैसेहि लागत काँचे ।
जैसी कही हमहिं आवत ही औरनि कहि पछिताते ।
अपनौ पति तजि और बतावत, महिमानी कछु खाते[1] ।

गोपियों का शंकाभिव्यक्त करना है कि ऊधौ सच्चे सखा हैं या कच्चे और फिर यह कहना कि लगते तो कच्चे ही हैं - विनोद और व्यंग्य से युक्त है । कथन में घनिष्ठता प्रकट की गयी है और कोप भी । कैसा तीखा वार है कि हमें तो कृष्ण-सखा समझकर छोड़ दिया, नहीं तो, जो बात हमारे लिए कही है, औरों के लिए कहते तो थोड़ा मेहमानी अवश्य खाते ।

(ख) उपहास

सूरदासजी सख्य भाव के भक्त थे, अतएव गोपियों के माध्यम से उन्होंने कृष्ण और कृष्ण सखा उद्धव का उपहास[2] प्रस्तुत किया है । उपहास में सख्याभाव की प्रधानता होती है । पुष्टिमार्गी सूर को योग मार्ग की असारता सिद्ध करने के लिए भी सुअवसर उपलब्ध हो गया है गोपियों का उपहास उद्धवजी के योग का स्पर्श करता है :-

ऊधौ जोग बिसरि जनि जाहु ।
बाँधौ गाँठि छूटि परि है कहुँ, फिरि पाछै पछिताहु ।
ऐसी बस्तु अनूपम मधुकर, मरम न जानै और ।
ब्रज बनितनि के नहीं काम की, है तुम्हरेई ठौर[3] ।

---

1 सूरसागर (सभा) दशमस्कन्ध पद 3516

2 विनोद की अपेक्षा उपहास में विपक्षी को तुच्छ सिद्ध करने की भावना अधिक होती है । इसमें हास्य भी अधिक स्पष्ट और विकृत होता है । स्वयं निन्दा न करते हुए भी विपक्षी को निन्दित ठहराना इसका लक्ष्य होता है । सूर की काव्य कला पृ. 187
डा. मनमोहन गौतम

3 सूरसागर (सभा) 3809

उनका असली भाव तो यह था कि योग बहुत निकम्मी वस्तु है और तुम जैसे मूढ़ को छोड़कर कोई इस निकृष्ट वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता । किन्तु इसी को वे व्यंग्य से कहती हैं कि यह अनुपम है, इसके मर्म को कोई जान नहीं सकता ।

गोपियाँ ऊधो की बात सुनकर ओठों को चबाती हैं और कहती हैं कि उद्धव जी बड़े सुन्दर सीख दे रहे हैं । वस्त्र, आभूषण, गेह, नेह, सुत आदि छोड़ने को कहते हैं ।

देन आये ऊधो मत नीको । री मिलि सुनहु सयानी, लेहु सुजस को टीको ।।
तजन कहत अम्बर आभूषन, गेह नेह सुत ही को ।
अंग भस्म करि सीस जटा धारि, सिखवत निरगुन फीको[1] ।।

नीको, सयानी, सुजस, अम्बर आदि शब्द विशेष रूप से साभिप्राय हैं और विनोद के आधार हैं ।

गोपियाँ शंका करती हैं कि उद्धव जी कहीं भटक तो नहीं गये । फिर वे कृष्ण की विनोदी प्रकृति जानकर अनुमान लगाती हैं कि कहीं कृष्ण ने जान बूझ कर उद्धव को मूर्ख तो नहीं बनाया :-

ऊधो जाहु तुम्हें हम जाने ।
स्याम तुम्हें ह्याँ नाहिं पठाये तुम हो बीच भुलाने ।
× × × × × × × × × ×
साँच कहौ तुमको अपनी सौं, बूझति बात निदाने ।
सूर स्याम जब तुम्हें पठायौ, तब नैकहु मुसुकाने[2] ।।

यहाँ गोपियों की नारी - सुलभ वक्रता द्रष्टव्य है । वे सौगंध देकर पूछती हैं कि क्या कृष्ण तुम्हें भेजते समय कुछ मुस्कुराए थे - उनका भाव यह है कि या तो कृष्ण ने तुम्हें कहीं और भेजा था, तुम अपनी मूढ़ता से यहाँ भटक कर आ गये हो या कृष्ण ने जान-बूझकर तुम्हारे साथ हँसी की है ।

योग के बाहरी आडम्बर, लौकिक माहात्म्य और शास्त्रीय आचरण आदि के लिए सूर बड़ी चतुराई से उपहास प्रस्तुत करते हैं :-

- -

1 सूर सागर 3514

2 सूरसागर 3531

आए जोग सिखावन पांडे ।

परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँडे ।[1]

पांडे, परमारथी और पुराननि लादे ये तीनों शब्द उपहासात्मक है । पांडे और पंडित शब्द तत्वतः एक होते हुए भी व्यवहार में भिन्न है । पंडित में जहां विद्वत्ता और ज्ञान गरिमा की ध्वनि है वहां पांडे में पाण्डित्य का बाहरी दिखावा मात्र है । पांडे शब्द से जो स्वर निकलता है वह उसकी व्यावहारिक ध्वनि से मिलकर उपहासात्मक बन जाता है । परमारथ शब्द भी इसी प्रकार व्यंग्य युक्त है । परमारथ (योग) का ज्ञान देनेवाले और दूसरे का हित करनेवाले दोनों का अर्थ यहां लिया गया है[2]। पुराननि शब्द द्व्यर्थक है - पुराण और पुराना पुराणों का ज्ञान उद्धव की तात्विक बातों में है, पर साथ ही उसमें कोई नई बात नहीं है, पुरानी पिठी पिटाई बातें है । पुराणों का आकार बड़ा है - अठारह पुराणों की बड़ी बड़ी पोथियां है । उन सबका बड़ा बोझ ऐसा है जैसे बनजारे के लदे बैलों का समूह । बनजारा का अर्थ है सम्मानहीन व्यापारी[3]।

व्यावहारिक उपयोगिता की कसौटी पर कसकर जोग की खिल्ली यों उड़ाती है गोपियां :-

ऊधो जोग कहा है कीजतु ।

ओढियतु है या बिछावतु है किधौं खैयतु है किधौं पीजतु ।

किधौ कछू खिलौना सुंदर, की कछ भूषनु नीको ।

हमरे नंद नंदन जो चहियतु, मोहन जीवन जीको ।[4]

- -

1 सूरसागर (सभा) 3604

2 परमारथी का भी स्पष्टीकरण सूर ने अपने ढंग से उसी पद के अगले चरण में किया है ।
हमरे गति पति कमल नयन की, जोग सिखै ते रांडे ।

3 इसी भाव को सूर के एक और पद में हम यों देखते है
आयौ घोष बड़ौ व्योपारी ।
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की ब्रज में आइ उतारी ।

सूरसागर - दशमस्कन्ध पद 3965

4 सूरसागर - दशमस्कन्ध - 3966

योग को इस प्रकार जाँचना उसकी सारी महत्ता को नष्ट करना है । योग ओढा जाता है या बिछाया जाता है । यह कोई सुन्दर खिलौना है या कोई गहना ? यह सब उपहास का ढंग नहीं है तो और क्या ?

कुब्जा के प्रति गोपियों के उपहास में भी हम हास्य देखते हैं ।

(ग) व्याज निन्दा :

उपहास में उपहास करनेवाला स्वयं निन्दा नहीं करता, उपादान मात्र एकत्रित करके रख देता है जिससे अन्य सभी लोग आलोच्य की निन्दा करने लगें । व्याज निन्दा में निन्दा सीधे शब्दों में नहीं स्तुति द्वारा होती है । व्याज निन्दा का मूल उक्ति वैचित्र्य है । गोपियों ने कृष्ण, कुब्जा और उद्धव तीनों की मनोरंजक सराहना की है । कृष्ण के त्याग भाव की प्रशंसा में वे कहती हैं :-

मथि मथि सिन्धु सुधा को पोखे, सम्भु भए विष आसी ।
इन हति कंस राज औरहिं दै, चाहि लई इक दासी ।[1]

कंस जैसे राक्षस राज का निपात कर उग्रसेन को राज्य दे देना और केवल एक दासी (कुब्जा) को ले लेना ठीक वैसा ही है जैसा सिन्धु मन्थन के उपरान्त शिव का अमृत के स्थान पर विषय ले लेना ।

कृष्ण के महाराजपन का भी बखान वे करती हैं :-

कहत आस मथुरा - राजा ।
नैव अक्रूर बदत बन्दी तुम गावत हो नृप साजा ।
× × × × ×
गुन अनुरुप समान देखत, मिले दुआदस बानी ।
मधुबन देस कछक कुब्जा संग, बनी सूर पटरानी ।[2]

कृष्ण मथुरा के राजा हैं, सभी उनके अनुरुप मिले हैं, अक्रूर (या क्रूर ?) जैसे मन्त्री, बकवादी उद्धव जैसे बन्दीजन, उनके त्रिभंगी रुप के अनुरुप कुब्जा पटरानी इन सबसे बढकर एक महाराजा केलिए और क्या आवश्यक है ?

उद्धवजी की स्तुति में गोपियों का निवेदन है :-

- -

1 सूरसागर - दशमस्कन्ध - 3675

2 सूरसागर - सभा) दशमस्कंध पद 3627

मधुबन सब कृतज्ञ धरमीले ।
अति उदार परहित डोलत है, बोलत बचन सुसीले ।
प्रथम आइ गोकुल सुफलक सुत, लै मधु रिपुहिं सिधारे ।
उहाँ कंस ह्याँ हम दीनन कौ, दूनौ काज सँवारे ।
हरि कौ सिखौ सिखावन हमकौ, अब ऊधौ पग धारे ।
ह्वाँ दासी रति की कीरति कै, इहाँ जोग बिस्तारे ।[1]

उद्धवजी के धर्मात्मापन, उपकार और विद्वत्ता की कैसी सुन्दर कहानी है । संकेत से कृष्ण और कुब्जा पर भी छोटे कसे गए है ।

(घ) कटूक्ति

विनोद, उपहास और व्याज निन्दा मे विरोध का साधन ध्वनि है । प्रत्यक्ष रीति से मन्तव्य नही प्रकट किया जाता । कटूक्ति मे सारा विरोध ; कथन सीधे शब्दो मे होता है । हृदय का विषाद और रोष जितना ही गहरा होता है उसका व्यक्तीकरण उतना ही तीव्र और रुक्ष निष्ठ होता है । कटूक्ति के तीर सीधे सीधे जाते है और विषैले तथा अनियारे होने से लगते ही जलन उत्पन्न करते है । कटूक्ति मे भी सुन्दरता होती है क्योकि उसका भी प्रेरकभाव प्रेम है । कटूक्ति के रोष के पीछे पीडा है, इसलिए कटूक्ति यदि उक्ति की वक्रता के साथ है तो काव्य की मनोरम विधा बन जाती है ।

सूर की गोपियाँ जली-कटी खूब सुनाती है किन्तु भाषा मे यहाँ भी संयम है । कृष्ण उनके प्रेमी है, प्रेम प्रतिदान चाहता है, प्रतिदान तो कौन कहे, उनके प्रेमी कृष्ण प्रेम के दो अक्षर भी नही लिखते :-

लिखि नहिं पठवत है द्वै बोल ।
द्वै कौडी के कागद मसि कौ लागत है बहु मोल ?[2]

दो कौडी के कागद मसि मे कृष्ण की निष्ठुरता की स्पष्ट व्यंजना है । प्रतिक्रिया का तीखापन प्रत्यक्ष है ।

---

1 सूरसागर पद 3594

2 सूरसागर पद 3254

कृष्ण के थोथे प्रेम की आलोचना करती हुई एक गोपी उनके चरित्र पर आक्षेप करती हुई सांकेतिक ढंग से कहती है –

श्याम विनोदी रे मधु बनियाँ ।
अब हरि गोकुल काहे को आवत चाहत नव जोबनियाँ ।
× × × × × × ×
सूरदास प्रभु वाके बस परि, अब हरि भए चिकनियाँ ।[1]

(13) सूर के वाग्वैदग्ध्य और वक्रोक्ति

किसी भी कवि के वाग्वैदग्ध्य को समझने के लिए आचार्य कुन्तक के वक्रोक्ति जीवित से पर्याप्त सहायता मिल सकती है । कुंतक के अनुसार वक्रोक्ति का अर्थ है 'विचित्र उक्ति या वैदग्ध्यजन्य चारुता से युक्त । विदग्धता का अर्थ है कवि कर्म-कुशलता । अर्थात् कवि कौशलजन्य चमत्कार ही विदग्धता है । यह जो लोक व शास्त्र से भिन्न उक्ति वैचित्र्य है, उसमें सहृदय जनों को आनन्द दान का भी गुण होना चाहिए, अतः कुंतक की वक्रोक्ति केवल शब्द क्रीडा व अर्थक्रीडा नहीं है, उसमें रस और भाव भी सम्मिलित है क्योंकि कोरी शब्द या अर्थ क्रीडा से सहृदयों को आह्लाद नहीं प्राप्त हो सकता ।[2] अब हम कुंतक के आधार पर भ्रमरगीत की वक्रोक्ति का विवेचन करेंगे ।-

(1) वर्ण विन्यास वक्रता

कुंतक ने अनुप्रास को ही यह नया नाम दिया है । अनुप्रास के अनेकानेक उदाहरण भ्रमरगीत में मिलते हैं । भ्रमरगीत में कोमलावृत्ति की प्रधानता है । ह्वै गई स्याम, स्याम की पाती आदि स्थलों पर कुंतकाचार्य द्वारा वर्णित वर्णविन्यास वक्रता ही मानी जायगी ।

ऊधौ । जानति हौं पति तेरी ।
ह्याँ ते जाहु, दूरे आँग ते, देखत आँखि जरत है मेरी ।
तुम जो कहत गोपाल सत्य है, देखहु जाय न कुब्जा चेरी ।
ते तौ सिसेइ दोउ बने हैं, वे अहीर, वह कंस की चेरी ।
तुम साखि बसीठ पठाए, कहा कही उनकी मति फेरी ।[3]

---

1 सूरसागर 3377

2 हिन्दी वक्रोक्ति जीवित - भूमिका भाग - डा. नगेन्द्र

3 सूरसागर (भाग - 2) दशमस्कन्ध - 4520

अधिक स्नेह मे अवज्ञा के इस प्रदर्शन ने भी भ्रमरगीत की वाक्य - निपुणता मे पर्याप्त वृद्धि की है । पग पग पर मिथ्या मर्यादा का ध्यान रखनेवाला कवि इस वाक्य नैपुण्य को नही पा सकता क्योंकि प्रेमोपालम्भ मे अवज्ञा और तिरस्कार के प्रदर्शन द्वारा ही हृदय पर अधिक प्रभाव पड़ता है । अपने दुख की अपील करने मे वह विदग्धता आ ही नही सकती जो प्रियजन की भर्त्सना करने मे आती है ।

कही कही गोपियाँ मनोरंजक तर्कों से उद्धव को चिढ़ा करते है । ये तर्क काव्योपयुक्त तर्क है, न नीरस शास्त्रीय तर्क :-

मधुकर ! महा प्रवीन सयाने ।

जानत तीनि लोक की बाते, अबलन काज अयाने [1] ।

उद्धव आप तो महाप्रवीन कहलाते है, सारा ज्ञान हस्तामलकवत होने पर भी आप अबलाओं के विषय मे महामूर्ख प्रमाणित हुए, सर्वज्ञता का कितना झूठा दावा है [2] । भ्रमर गीत मे वर्ण विन्यास वक्रता की सारी विशेषताएं सुरक्षित है ।

कहु षट्पद कैसे खैयत है, हाथिन के संग गाँडे ।

काहे को झाला ले मिलवत, कौन चोर तुम डाँडे ।

(2) पदवक्रता

प्रत्येक कवि समानार्थक अनेक संज्ञा शब्दों का प्रयोग करता है किन्तु विशेष परिस्थिति मे कोई विशेष प्रयोग चमत्कारातिशय का कारण बन जाता है, यथा -

गोकुल सबै गोपाल उपासी

यहाँ गोपाल कृष्ण का पर्याय है परन्तु गोपाल - गोपपुत्र मे ही हमारी आसक्ति है, वासुदेव कृष्ण मे नही, यह अर्थ ध्वनित न होता यदि गोपाल शब्द का प्रयोग सूर यहाँ न करते। पर्याय वक्रता मे तो सूर प्रवीण ही ठहरे ।

मधुकर पीतबदन केहि हेत [2] ।

- -

1 सूरसागर (भाग 2) दशमस्कन्ध - 4937

2 दूरी तैकि चतुर पद पावत ।
जे नहिं पीर पराई जानत है सर्वज्ञ कहावत । सूरसागर (भाग-2) 4907

3 सूरसागर - दशम स्कन्ध 4957
(भाग-2)

आये परी जोगपद तिनके कत छपद स्लोक ।

यहाँ पीतवदन और छपद भ्रमर के पर्यायवाची शब्द बनते हैं जो विशेषण के रूप में प्रयुक्त है ।

(3) उपचारवक्रता

किसी अन्य वस्तु के सामान्य धर्म का, लेशमात्र संबन्ध से भी दूरान्तर वस्तु पर आरोप उपचार कहलाता है ।

श्यामगात सरोज आनन ललित अति मृदु हास ।

यहाँ हास को कोमल कहा गया है । मृदुता पदार्थ का गुण होता है । पुष्प की पंखुरी में कोमलता होती है, इसी को हास पर आरोपित कर दिया गया है । मानवीकरण और विशेषण विपर्यय भी उपचार वक्रता के अन्तर्गत आते हैं विशेषणविपर्यय का उदाहरण मृदुहास है । मानवीकरण का उदाहरण जैसे :-

विरही कहौं आप सँवारे ?

जब ते अंग परी हरिपद तें, चढ़यौ नाहिं निवारे[1] ।

अथवा

देखियत कालिंदी अति कारी ।

(4) विशेषण वक्रता

मधुकर श्याम हमारे चोर ।

मन हरि लियो माधुरी मूरति, चितै नयन की कोर[2] ।

इस पद में सारा सौन्दर्य 'चितै नयन की कोर' के कारण है, जो क्रियाविशेषण है, नयन के कोने से देखकर माधुरी मूर्ति से मेरा मन हर लिया । अतः यहाँ विशेषण वक्रता है ।

(5) संवृतिवक्रता

वैचित्र्य कथन की इच्छा से सर्वनाम आदि के द्वारा वस्तु का संवरण (गोपन) किया जाता है, यहाँ संवृति वक्रता होती है ।

---

1 सूरसागर (भाग 2) 3509

2 सूरसागर (भाग 2) 4392

हमारे मारि । मोरउ बैर परे ।

गोपियाँ चाहती तो मयूरों और अपनी तुलना का विस्तार कर सकती थीं, देखो ये मयूर तो पक्षी है, दीन-हीन परन्तु कैसा समय आया है कि ये भी प्रिय के बिना हमारी उपेक्षा पर तुल गए हैं। यह सब वाक्य-विस्तार सूर ने 'उ' के प्रयोग में गुप्त और गर्भित कर दिया गया है। 'अरु ये बदराउ बरस न आए' पद में भी यही कमाल है। हमको सपहू में सोच पद में भी यही विशेषता है। हँसि करि भुजा गही के प्रयोग द्वारा कवि ने अन्य अनेक रवप्नगत रसमय क्रीडाओं की ओर संकेत कर दिया है। इसी प्रकार —

ऐसो सुनियत है द्वै सावन ।

हृदय में उठनेवाली अनेकानेक भावनाओं का नामोल्लेख न करके कवि ने सूक्ष्म इशारा ही की है, इस पंक्ति में कितना अर्थगोपन है ?

(6) वृत्तिवक्रता

सूर ने बड़े बड़े समासों का प्रयोग भ्रमरगीत में भले ही नहीं किया हो लेकिन लघु समासों के कवित्वपूर्ण अनेक प्रयोग किए हैं :-

आछे कमल कोस रस लोभी द्वै अलि सोच करो ।

सूर ने हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल अनेक नए शब्दों का निर्माण भी किया है —

मधुकर ! को मधुबनहिं गयो ।

मधुबन में 'कहने से 'मधुबनहिं' कहने में आकर्षण अधिक है। इसी प्रकार बस से के स्थान पर बसोही, कुहुत के लिए कबोही, स्वामित्व की जगह स्वामित, कुपथ की जगह कुपैंडो आदि अनेक नए शब्दों भ्रमरगीत में मिलते हैं।

(7) कालवैचित्र्य वक्रता

कालवैचित्र्यवक्रता के सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में सुन्दरतम उदाहरण भ्रमरगीत में ही मिलते हैं। कालवैचित्र्यवक्रता के सूर में अनेक उदाहरण हैं।

(क) वर्तमानकाल:-

काम पावक तूलमय तन बिरह स्वास समीर ।
भसम नाहिंन होन पावत, लोचनन के नीर[1] ।

(ख) भूतकाल:-

नीके रहियो जसुमति मैया ।
जा दिन ते हम तुमते बिछुरे, काहु न कह्यो कन्हैया ।
कबहुं प्रात न कियो कलेवा, सांझ न पीन्ही पैया ।
× × × × × × ×
एक बेर खेलत वृन्दावन, कंटक चुभि गयो पांय ।
कंटक सों कंठक ले काढ्यो, अपने हाथ सुभाय[2] ।।

(ग) भविष्यतकाल :-

ऐसी सुनियत है द्वै सावन ।

यहां भविष्यत काल का प्रयोग है, सुना है कि इस वर्ष दो सावन होंगे । यहां भविष्यवाचक वर्तमान है का प्रयोग काल के प्रयोग में चमत्कार उत्पन्न करता है ।

(4) वचन-वक्रता

वचन का आवश्यकतानुसार विपर्यय कर देने से वचन-वक्रता होती है । ऊधो जोग सिखावन आए में ऊधो का आदर के कारण बहुवचनांत प्रयोग है, लेकिन जहां गोपियों का हृदय भाव से अधिक क्षुभित होता है वहां एक वचन का प्रयोग किया गया है -

ऊधो.। राखति हौ पति तेरी
मधुकर छांडि, अटपटी बातें[3] ।

यहां उद्धव का प्रत्यक्ष अनादर है, अतः एकवचन का प्रयोग है जहां व्याजनिन्दा का प्रयोग किया गया है, वहां बहुवचन का प्रयोग मिलता है -

ऐसेई जन दूत कहावत ।

---

1 सूरसागर (भाग 2) 3041
2 सूरसागर (भाग 2) 3506
3 सूरसागर (भाग 2) 4520

(9) वाक्यवक्रता

भ्रमर गीत में जड़ चेतन प्रकृति का सहज व अलंकृत वर्णन किया गया है। मानवीय अनुभूतियों का तो यह सागर ही है, उपदेश के लिए यहां स्थान कहां ? हां, अप्रत्यक्ष रूप से भ्रमरगीत में नैतिक काव्यतत्व की रक्षा की गई है —

उपदेसन आयो हुतो, लाहि कयो उपदेस

(10) प्रकरण-वक्रता

श्लेष के कारण उत्पन्न वाग्वैदग्ध्य कई प्रसंगों में प्रकट है।

सुनहु मधुप ! निर्गुन कंटक तैं, राजपंथ क्यों रूँधौ ?

× × × × ×

मोहन मांग्यौ अपनो रूप या ब्रज बसत उँचै तुम बैठी, ता बिनु तहां निरूप।

यहां निर्गुन तथा निरूप के अर्थ क्रमशः है, गुणरहित तथा रूप रहित, इन्हीं श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से यहां उक्ति की वक्रता रक्षित हुई है।

उधौ, ब्रज में पैठ करी।

या निर्गुन, निर्मूल गाठरी, अब किन करहु खरी।[1]

यहां निर्गुन और निर्मूल शब्दों में श्लेष के कारण ही चमत्कार उत्पन्न किया गया है। काकु वक्रोक्ति के भी अनेक उदाहरण भ्रमरगीत में प्राप्त होते हैं।[2]

---

1 सूरसागर (भाग 2) 4046

2 (क) अटपटि बात तिहारी उधौ सुनै सो ऐसी को है।
(ख) याकी सीख सुनै ब्रज को रे।
(ग) ऐसेई बन बृत कहावत मोको एक अचम्भौ आवत यामें ये कह पावत।
(घ) हरि है राजनीति पढ़ि आए। समुझी बात कहत मधुकर जो समाचार कछु पाए।।
(ङ) ऊधौ। भलागी भले आए। तुम देखे अनु माधव देखे, तुम त्रयताप न सारे।
(च) मधुकर ! को मधुबनहिं गयो। काके फेरि संदेस ले आए, किन लिखि लेखु दयो ।।
को वसुदेव - देवकीनंदन, को जदुकुलहिं उजागर।

सूरसागर (भाग 2) 4477

कृष्ण को प्रेमी कौन कहता है, वे तो विनोद करने वाले है, नित्य नया मन बहलाव खोजते रहते है । मधु बनियाँ श्लिष्ट है । इससे तात्पर्य शहरी या छैला है । कृष्ण छैला बनकर अब नव जोबनियाँ खोजते फिरते है । चिकनियाँ भी श्लिष्ट है । इसमें भी छैला की वेषभूषा का भाव है । नव जोबनियाँ शब्द विपरीत लक्षणा से कुब्जा की असुन्दरता पर भी चोट करता है । यहाँ उक्ति वक्रोक्तियाँ और कटूक्ति में व्यंग्यनिष्ठता का आभास है । कुब्जा के प्रति जो कटूक्तियाँ है उनमें तीव्रता अधिक है, अपने हृदय की घृणा को वे रोक नहीं सकती । यह सुनने पर भी कि कृष्ण ने कुब्जा के कुबड़ेपन को दूर कर दिया है, उनका हृदय उसे वैसा ही देखता है । उनकी असूया शब्दों की वक्रता में अनायास झलकती रहती है :-

मधुकर उनकी बात हम जानी ।
कोउ श्रुति कंस की दासी कुब्जा क्यों भई रानी ।
कुटिल, कुचिल जन्म की टेढ़ी, सुन्दरि करि घर आनी ।
अब वह नवल वधू ह्वै बैठी, ब्रज की कहति कहानी ।[1]

पद में विरोधाभास का वैचित्र्य देखिए :- दासी और रानी, कुटिल कुचील, जन्म की टेढ़ी और सुन्दरी नवल वधू । भाव यह कि लोग भले ही उसे रानी, सुन्दरी और नवल वधू माने पर गोपियाँ उसे दासी, कुटिल कुचील और कुबड़ी से अधिक नहीं मान सकती । उक्ति की वक्रता कितनी मार्मिक बन गयी है ।

वाग्वैदग्ध्य को उसके पीछे के भाव - वैदग्ध्य के बिना नहीं समझा जा सकता, सूर की वक्रोक्ति को पढ़कर गोपी की क्षुभित चेतना स्वतः प्रकट हो जाती है । यही सूर के काव्य के अनूठेपन का मुख्य कारण है । सूर के वाग्वैदग्ध्य की विशेषताओं के अध्ययन में हम उपर्युक्त तथ्य को यदि विस्मृत न करें तो हमारा यह विवेचन अधिक वैज्ञानिक होगा :-

(1) प्रयत्नहीन विदग्धता

उद्धव का उपदेश सुनकर गोपियाँ सर्वप्रथम उपदेश के प्रति अपना अज्ञान और आश्चर्य प्रकट करती है, किसी विशेष मानसिक स्थिति में मन मन के सम्मुख जब उस स्थिति के सर्वथा विपरीत तथ्य उपस्थित होता है तो बरबस मुख से निकल पड़ता है 'यह आप क्या कह रहे है ? ऐसा कहने में प्रयत्न नहीं करना पड़ता भ्रमरगीत में प्रयत्नहीन विदग्धता का

1 सूरसागर (सभा) दशमस्कंध पद 3636

यही प्रमाण है -

इमसों कहत कौन की बातें ?

सुनि ऊधौ । हम समुझत नाहीं, फिरी पूछती है तातें[1] ।।

इसके बाद पुनः इसी पद्धति का प्रयोग किया गया है । यह व्यर्थ की बात आप किन से कह रहे है[2]?

इसी प्रकार उद्धव को दी गयी गालियों को देखिए, यह गालि गलौज किसी किसी गालीशास्त्र के सतत अभ्यासी पुलीस-दारोगा का नहीं, यह प्यार पर प्रहार देखकर उठनेवाला आर्तनाद है, अपनी रुचि और अपनी प्यारी वस्तु के प्रति 'प्रेम' यदि इन गालियों में न भरा जाता तो वे कभी भी काव्योपयुक्त नहीं बन सकती थी -

आयो घोष बड़ो व्योपारी ।

लादि खेप गुन ज्ञान - जोग की, ब्रज में आय उतारो ।

इनके कहे कौन डहकावे, ऐसी कौन अजानी ।

अपनी दूध छाडि को पीवे, खार कूप को पानी[3] ।

दूध के समान अपने प्रिय का प्यार ही इस गाली गलौज को मधुर बनाता है ।

(2) वाग्वैदग्ध्य में वैविध्य

सूर के वाग्वैदग्ध्य की दूसरी विशेषता यह है कि उसमें वैविध्य मिलता है सूर एक ही मानसिक स्थिति को कई प्रकार से व्यक्त करने में सबसे अधिक निपुण कवि है । एक प्रसंग देखिए :-

तेरो बुरो न कोउ माने ।

रस की बात मधुप नीरस, सुन, रसिक होत सो जाने[4] ।

- -

1 सूरसागर (भाग 2) दशम स्कन्ध प.सं.4417

2 तु अति कालो कहत बनाय ?

3 सूरसागर (भाग 2) दशम स्कन्ध 4953

4 सूरसागर (भाग 2) दशम स्कन्ध - 4975

इसका अर्थ यह नहीं है कि गोपियों को उद्धव की बात बुरी नहीं लगती परन्तु उस कटुता को वे छिपा लेती है और उसके हेतु के रूप में यह बतलाती है जो नीरस व्यक्ति है वह 'रस' का विरोध करे तो उसको बुरा मानना व्यर्थ है, प्रतिपक्षी को सर्वथा अयोग्य घोषित करके अपने पक्ष की श्रेष्ठता स्थापन की यह एक अच्छी पद्धति है ।

कहीं कहीं 'चुनौति' के रूप मे गोपियाँ अपने पक्ष की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती है । अपनी वस्तु के प्रति घोर आत्मविश्वास ही चुनौती का कारण बनता है । अडिग और निष्कम्प चित्तवृत्ति चुनौती के रूप में अपनी वस्तु को उपस्थित करने में कभी नहीं घबराती। अतः उक्ति में एक विशेष प्रकार की दृढता उत्पन्न हो जाती है, जिसे देखकर हमें खुशी होतीहै-

वर ही के बड़े रावरे ।
नाहिन मीत वियोग बस परे, अनघउगे अलि बावरे ।
भूख मरि जाय चरे नहिं तिनुका, सिंह को यहै स्वभाव रे[1] ।

कभी कभी सूरदास प्रतिपक्षी के कथन के प्रति अविश्वास या सन्देह प्रकट करके 'उक्ति' को मार्मिक बनाते है –

तुही, हम अजान मति भोरी
कंचन को मृग कौने देख्यौ, कौने बांध्यो डोरी ।
कहुधौ ! मधुप ! बारि मथि माखन, कोने भरी कमोरी ?
बिन ही भीत चित्र किन काढ्यौ, किन नभ बांध्यो झोरी ?
कहो कौन पै कढत कनूकी, जिन हठि भुसी पछोरी[2] ?

(3) तुलनात्मक पद्धति

उक्ति विदग्धता की एक और पद्धति है तुलनात्मक पद्धति । स्वपक्ष और प्रतिपक्ष की तुलना द्वारा स्वपक्ष की रमणीयता और प्रतिपक्ष की हीनता प्रदर्शित करके सूर अपने कथन के वैचित्र्य को और भी अधिक प्रभावयुक्त बना देते है –

र अलि ! कहा जोग मे नीको ?
तजि रसनीति नंद नंदन की, सिखवत निर्गुन फीको ?

- -

1 सूरसागर (भाग 2) दशम स्कन्ध 4234

2 सूरसागर (भाग 2) दशमस्कन्ध 4790

बैठत सुनत नाहिं कछु ब्रजनन ज्योति ज्योति करि ध्यावत ।
सुन्दर श्याम दयालु कृपानिधि, कैसे हो बिसरावत ।
सुनि रसाल मुरली सुर की धुनि, सोई कौतुक रस भूले
अपनी भुजा ग्रीव पर मेलैं गोपिन के सुख फूले ।।
रूप न रेख, बरन, वपु जाके संग न सखा सहाई ।
ता निर्गुन सों प्रीति निरंतर, क्यों निबहै री माई ।।
मन चुभि रही माधुरी मूरति, रोम रोम अरुझाई ।
हौं बलि गई सूर प्रभु ताके, जाके, श्याम सदा सुखदाई[1] ।

इस तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग सूर ने कई प्रसंगों पर किया है, इससे भक्तिपथ की सरसता द्वारा योगपक्ष की जटिलता का परिहास करने में सूर अत्यधिक सफल हुए हैं

(4) दृष्टान्त पद्धति

वाग्वैदग्ध्य के लिए सूर ने दृष्टान्त पद्धति को भी अपनाया है । प्रतिपक्षी के विरुद्ध चुनचुनकर ऐसे दृष्टान्त उपस्थित करना जो लोकानुभव पर आधारित है ।

अटपटि बात तिहारि ऊधो, सुनै सो ऐसी को है ?
हम अहीर अबला सठ, मधुकर ! तिन्हें जोग कैसे सो है ।
बूचिहि खुभी आँधरी काजर नकटी पहिरै बेसरि ।
मुंडली पाटी परन चाहै, कोढ़ी अंगहि के सरि ।

कुब्जा प्रसंग में भी सूर ने दृष्टान्त पद्धति के द्वारा अपनी वाग्विदग्धता प्रकट की है ।

गोपियाँ तरह तरह की बातें गढ़ लेने में बहुत कुशल है । वे कहती है कि कृष्ण से हमारा परिचय नहीं है तब वे गोपीनाथ क्यों कहलाते है? हम पर कलंक लगाना क्या अच्छा है ?

काहे को गोपीनाथ कहावत ?
सपने की पहचानी जानि कै, हमहिं कलंक लगावत[2] ?

1 सूरसागर - दशमस्कन्ध प.सं. 4314

2 सूरसागर (भाग 2) 4269

इसी प्रकार गोपियाँ कहती है कि हे उद्धव ! हमने तुम्हारे जोग का अभ्यास करके भी देखा है, परन्तु कुछ लाभ नही हुआ अतः उसे छोड दिया है, बारम्बार कृष्ण ही हमारे सम्मुख आ उपस्थित होते है तब निर्गुन का ध्यान कैसे हो ?

अपनी सी कठिन करत मन निसिदिन ।

कहि कहि कथा, मधुप, समुझावति, तदपि नरहत नंदनंदन बिन ।[1]

कही कही गोपियो द्वारा मिथ्या का सृजन सम्भावनाओ पर आधारित किया गया है जो काव्य मे नूतन भंगिमा उत्पन्न कर देता है –

ऊधो जाहु तुम्हे हम जाने ।

श्याम तुम्हे ह्याँ नाहि पठाए, तुम ही बीच भुलाने[2] ।

कही सन्देह द्वारा विदग्धता की सृष्टि की गई है –

ऊधो श्याम सखा तुम साँचे ।

कै करि लियो स्वांग बीचहि ते, वैसहि लागत काँचे[3] ।

कुब्जा के साथ काले कृष्ण का सम्बन्ध देखकर सूर ने सर्प और भ्रमर जैसे विश्वासघाती काले जीवो की निष्ठुरता पर खूब व्यंग्य किए है[4]। कोयल, सर्प, भ्रमर सब 'कारे' है और इनके कर्म भी कारे है, मथुरा तो काजल की कोठरी है । जो वहाँ से आता है, काला ही निकलता है, एक भी मथुरावासी भूलकर भी भला नही बनना चाहता ।

(5) उपालम्भ और विद्रूपीकरण की पद्धति

भ्रमरगीत मे वचन वक्रता का और कारण यह है कि गोपियाँ स्वाभाविक रूप से अपने पक्ष की श्रेष्ठता के प्रति आश्वस्त है, अतः वे तर्क का पथ न अपना कर उद्धव को 'विद्रूपित' करने मे अधिक रुचि लेती है ।

---

1 सूरसागर (भाग 2) 4340

2 सूरसागर (भाग 2) 4139

3 सूरसागर (भाग 2) 4134

4 मधुकर ! कह कारे की जाति ।
ज्यों जल मीन, कमल पै अलिकी, त्यो नहिं इनकी प्रीति ।।
कोकिल कुटिल कपट बायस छलि, फिरि नहिं वहि बन जाति ।
[illegible]
सतोहित आग अथ प्रत कोजत, बड़ाभाग नाका बाति ।
कैसहु अहि मन मोहमया तजि, ज्यों जननी जनि खाति । सूरसागर(भाग 2)4371

उद्धव का वाक्य सुनने से दुखी हुई गोपियाँ कभी तो कहती है कि -

ऊधौ । और कछू कहिबे को ?

सोऊ कहि डारौ पालागौं, हम सब सुनि सहिबे को[1] ।

और कभी कभी कहती है -

ऊधौ । भली भई तुम आए ।

ये बातें कहि कहि या दुख मैं ब्रज के लोग हँसाए[2] ।

और कभी कभी वर्जना की पद्धति अपनाती है :-

ऊधौ । कही सो बहुरि न कहियौ

जौ तुम हमहिं जिवायो चाहौ, अनबोले ह्वै रहियै[3] ।

और कभी कभी उद्धव को इस प्रकार समझाती है जैसे वह महामूर्ख हो,

ऊधौ । हम लायक सिख दीजै ।

तुम ही कहौ यहाँ इतनिन मैं सीखनहारी को है[4] ।

और कभी कभी कह उठती है कि यह उपदेश श्याम का सन्देश नहीं हो सकता, लगता है कि उद्धव यहाँ आकर कुछ और ही उपदेश देने लगे है -

ऊधौ जाय बहुरि सुनि आवहु कहा कह्यौ है नंदकुमार ।

यह न होय उपदेश श्याम को, कहत लगावन छार[5] ।।

कभी कभी गोपियाँ खीझ उठती है, यह खीझ कृष्ण के प्रति उनके स्नेह के कारण मनुहार हो जाता है ।

डा. विश्वनाथ उपाध्याय के शब्दों में 'यह कथानक-दृष्टि रस-परिपाक की दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण थी और व्यंग के लिए इतनी उपयुक्त थी कि इस अभिप्राय को लेकर ही काव्य रूप खड़े हुए[6] ।

- -

1 सूरसागर (भाग 2) प.सं.4136
2 सूरसागर (भाग 2) प.सं.4399
3 सूरसागर (भाग 2) प.सं 3709
4 सूरसागर (भाग 2) प.सं.4443
5 सूरसागर (भाग 2) प.सं.4426
6 भ्रमरगीत परंपरा पृ.34 डा.विश्वनाथ उपाध्याय

सूरदास ने 'उद्धव' को परिहास का विषय बनाने केलिए पहले से ही तैयारी कर ली थी । उद्धव के ब्रज में आते ही, भला गोपियों में इतना धैर्य कहाँ कि वे 'कृष्ण की अनुहारि' वाले व्यक्ति को देखकर भी न दौड़ पड़ें । गोपियाँ सब कार्य छोड़ उद्धव को घेर लेती हैं उद्धव से इतने प्रश्न पूछती हैं और मथुरा के यादवों पर व्यंग्य करती हैं कि उद्धव को प्रवचन के पूर्व के ही मौनव्रत होने लगता है । सूरदास ने उद्धव के आते ही अत्यधिक कवित्वपूर्ण परिस्थिति का सृजन किया है जो भागवत में नहीं है । जो विकसता चांचल्य और विद्रूपकारिणी शक्ति गोपियों में है, भागवत में कहाँ ।

भ्रमरगीत प्रसंग के बारे में सूरदास और भागवतकार के दृष्टिकोणों के बीच फरक सूर है । हास्य सृष्टि के लिए ही सूर ने भागवतकार के मार्ग से कुछ हट गए । सूरदास की गोपी उद्धव को बाबा मछिन्दरनाथ और शंकराचार्य के रूप में जब देखती है तो फिर उपहास अनिवार्य हो उठता है । पात्र और परिस्थिति पर विचार किए बिना 'कुंडलीनी और अनहदनाद' के गोरखधंधे की शिक्षा गोपियों केलिए उपहासास्पद ही है और इसलिए सूरदास ने इतनी अधिक सजीव परिस्थिति की कल्पना कर डाली है कि शिष्ट हास्य परिणत हो गया है । भागवत में भ्रमरगीत का शरीर तो कंकालमात्र है, सूर ने उस कंकाल को भी यथावत् नहीं लिया है, उसमें आवश्यक परिवर्तन किया है ।

<u>समीक्षा :-</u>

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'सूर विनोदी रे मधुबनियाँ । उनकी प्रकृति अत्यन्त विनोद पूर्ण थी । बरसानेलाल के शब्दों में वास्तव में देखा जाय तो विशुद्ध हास्य एवं वक्रोक्ति का जितना सफल प्रयोग भावाधिपति सूर ने किया, वह बेजोड़ है[1] । आचार्य शुक्लजी भी इससे सहमत थे[2] । डा. सरोज खन्ना ने इसे और भी श्रेष्ठतर यों बताया 'जैसे सूक्ष्म हास्य के दर्शन सूर में होते हैं, वैसा हास्य विश्वसाहित्य के अच्छे से अच्छे लेखक में भी दुर्लभ है[3] ।

---

1 हिन्दी साहित्य में हास्य - पृ.72 डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी

2 सूरदास जी में जितनी सहृदयता और भावुकता है, प्रायः उतनी ही चतुरता और वाग्विदग्धता भी है । किसी बात को कहने के न जाने कितने टेढ़े सीधे ढंग उन्हें मालुम थे । गोपियों के वचनों में कितनी विदग्धता और वक्रता भरी है ।

सूरदास पृ. 183 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 हिन्दी कविता में हास्यरस पृ.57 डा. सरोजखन्ना

सूर की हास्यपद्धति की एक विशेषता इसमें है कि कृष्ण के प्रति अपार श्रद्धा एवं भक्ति होते हुए भी उनकी खिल्ली उडाने तथा उनपर व्यंग्य बाण छेडने से वे नहीं चुके। वे कृष्ण को हास्यमय धमकी भी दे बैठते हैं :-

अब ही उघरि नयन चाहत हौ ।

तुम्है बिरद बिन करिहौ ।

सूर की हास्यकला की दूसरी विशेषता इसमें है कि उनका हास्य भी मर्यादित है । सूर की भक्ति सख्य भाव की थी, परन्तु सख्यभाव से आराधना करनेवाले कृष्ण - भक्त कवि भी यह नहीं भूल सके कि उनके कन्हैया सखा होते हुए भी सर्वशक्तिमान है, अतः उनका हास्य भी मर्यादित है ।

सूर की हास्यपद्धति की तीसरी विशेषता यह है कि उन्होंने बालक्रीडा वर्णन के अन्तर्गत हास्य की अवतारणा की । विश्वसाहित्य में थोडे ही ऐसे कलाकार है जिन्होंने यह टेक्निक अपनायी ।

सूर ने अपनी हास्यकला की पूर्णता दिखायी है भ्रमरगीतप्रसंग में । भ्रमर के माध्यम से सूर ने व्यंग्य एवं उपालंभ की परंपरा का उद्घाटन किया जो पीछे के कवियों के लिए अनुकरण का एक साधन रहा । डा.प्रेमनारायण टंडन ने ठीक ही कहा कि 'व्यंग्यपूर्ण विदग्धता की योजना में सूर हिन्दी के पुराने और नये, सभी कवियों में बेजोड है'[1] । शुक्लजी ने भी कहा 'सूर में जितनी सहृदयता है, उतनी ही वाग्विदग्धता भी है'[2]।

गोपियों के वचनों में कितनी विदग्धता और वक्रता भरी है? 'किसी बात को कहने के न जाने कितने टेढे सीधे ढंग उन्हें मालूम थे'[3] । गोपियों की वक्रोक्ति में कैसी चपलता, चिडचिडाहट एवं सजीवता है?[4] वैपरीत्य के द्वारा भी सूर ने हास्यसृष्टि की है । बेचारे उद्धव आए तो थे गोपियों को उपदेश देने, पर उलटे उन्हीं पर तानों उलाहनों की बौछार होने लगी । गोपियाँ उन्हें इतना अवसर ही नहीं देती कि वह अपना उपदेश सुना भी सके । कहाँ तो वे महाविद्वान और कहाँ ये भोली भाली ग्रामीण युवतियाँ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हास्यकला के श्रेष्ठ मर्मज्ञ थे ।

- -

1 हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य पृ.65
2 सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ.173
3 वही
4 हिन्दी कविता में हास्य रस पृ.59 डा.सरोज खन्ना

(6) गोस्वामी जी का हास्य

भूमिका :- रसिक शिरोमणि गोस्वामी जी ने नवरसों की मंदाकिनी अपने काव्यक्षेत्र में प्रवाहित की है।[1] तुलसी ने नवरसों का उल्लेख किया है, परन्तु साहित्यक नवरस और भोजन के षट्रस उन्हें रामरस के सम्मुख फीके लगते हैं :-

जो मोहिराम लागत मीठे ।
तौ नवरस षटरस अनरस ह्वै जाते सब सीठे[2] ।।

रामचरितमानस की विस्तीर्ण भूमि में तुलसी की रसप्रसविनी लेखनी सब रसों की धारा बहाने में समर्थ हुई है।[3] तुलसीदास ने तड़ाग में जलचर के रूप में रसों को स्वीकार किया है :-

नवरस जपतप जोग बिरागा ।
ते सब जलचर चारु तड़ागा[4] ।।

आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने रामचरितमानस को नवरसों का रामरसायन[5] पुकारा है।

उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट है कि तुलसी ने अपनी रचनाओं में सब रसों का उल्लेख करके अपनी काव्य पद्धति को आकर्षक बनाया है। तुलसी ने मानवमन की समस्त वृत्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। मानव-जीवन का कोई भी पक्ष उनकी सूक्ष्म दृष्टि से बच नहीं सका। हास्य की सफल सृष्टि में भी उनकी लेखनी ने अपूर्व चमत्कार दिखाया है।

'तुलसी की प्रकृति में हास्य का सुन्दर पुट था। कई अवसरों पर हास्य रसोपयोगी स्थल उन्होंने ढूंढ निकाले हैं और उनसे अपने काव्य को अलंकृत किया है।[6]

- -

1 तुलसी की काव्यकला - डा. भाग्यवती सिंह पृ. 334
2 विनयपत्रिका - 269
3 गोस्वामी तुलसीदास - बाबू श्यामसुन्दरदास पृ. 113
4 रामचरितमानस - बालकाण्ड पृ. 34
5 गोस्वामी तुलसीदास - आचार्य रामचन्द्रशुक्ल पृ. 35
6 तुलसीदास डा. रामरतन भटनागर पृ. 119

कथायें तो और भी कही जाती है, जहाँ सबसे अधिक श्रोता देखिए और उन्हें रोते और हँसते पाइए वहाँ समझिए कि तुलसीकृत रामायण हो रहा है[1]। यों तुलसी के हास्य पर विचार करनेवाले शुक्लजी यह भी बताते हैं कि तुलसी का उद्देश्य हास्यप्रसंग मात्र प्रस्तुत करना न था[2]।

तुलसी के सम्पूर्ण काव्य में हास्य का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। स्मित हास्य, शिष्ट हास्य, मुक्त हास्य, अट्टहास, व्यंग्य हास्य आदि हास्य की अनेक कोटियाँ हैं। अतएव मानस में इस प्रकार के हास्य का अभाव नहीं[3]।

प्रो. रामकुमार 'कुमार' के शब्दों में हम यों कह सकते हैं 'शांत, शृंगार एवं करुण के उपरान्त इस महाकवि का सर्वाधिक प्रिय रस हास्य ही है। वीभत्स, रौद्र एवं वीररस की सृष्टि तो, इनके काव्य में विशेष घटनाचक्रों को सन्निविष्ट से, लगी चलती है, किन्तु 'हास्य' रस तो शान्त, शृंगार एवं करुणा के सदृश ही इनकी रचना में छिटक पड़ा है'[4]।

डा. रामदत्त भरद्वाज ने तुलसी के हास्य के बारे में यों कहा है 'तुलसीजी प्रकृत्या विनोदी थे। उत्सवों पर जब स्त्रियाँ गालियाँ गाती तो उन्हें भी रस मिलता होगा, क्यों कि वे पार्वती-विवाह, जानकी-विवाह आदि के अवसरों पर गाली गाने का उल्लेख करना नहीं भूले हैं[5]।

- -

1 गोस्वामी तुलसीदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ.7।

2 तुलसी की गंभीरवाणी शब्दों की कलाबाजी, उक्तियों की झूठी तड़क-भड़क आदि खेलवाड़ों में भी नहीं उलझी है। वह श्रोताओं या पाठकों को ऐसी भूमियों पर ले जाकर खड़ा करने में ही अग्रसर रही है, जहाँ से जीते जागते जगत् की रूपात्मक और क्रियात्मक सत्ता के बीच भगवान की भावमयी मूर्ति की झाँकी मिल सकती है। गोस्वामी जी का उद्देश्य लोक के बीच प्रतिष्ठित रामत्व में लीन करना है कुतूहल या मनोरंजन की सामग्री एकत्र करना नहीं। पृ.70
गोस्वामी तुलसीदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 तुलसी की काव्यकला - डा. भाग्यवतीसिंह पृ.364

4 तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन - प्रो. कुमार पृ.94

5 तुलसीदास और उनके काव्य - डा. रामदत्त भरद्वाज पृ.100

डा. बलदेवप्रसाद मिश्र का विवेचन यों है 'उन्होंने मनोरंजन के प्रसंग भी एक से एक बढ़कर उपस्थित किये हैं। विशुद्ध विनोद के उदाहरण भी उनकी रचनाओं में अनेक मिल सकते हैं और विशुद्ध व्यंग्य के उदाहरण भी उनकी रचनाओं में अनेक मिल सकते हैं और विशुद्ध व्यंग्य के उदाहरण भी। हाजिर जवाबी के छकानेवाले नमूनों की छटा भी आपको जगह जगह प्रसन्न कर देगी।[1]

डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी इस पर यों बताते हैं 'तुलसीदास जी ने हास्य की परम्पराएँ स्थापित करने में योग दिया। रामचरितमानस तथा कवितावली में अनेक स्थलों पर हास्य, व्यंग्य, वक्रोक्ति, वाक्छल आदि की सुन्दर व्यंजना हुई है।[2]

मानस और कवितावली में आरंभ से लेकर अन्त तक हास्य की झीनी झीनी फुहार प्राप्य है। तुलसी ने श्रीरामचन्द्र के चरित्र-चित्रण में 'मुदित-मन' को स्थायी पद दे दिया है। उनके मुख पर सदा मन्दस्मित खेलता है। ऐसा दीखता है कि तुलसी के मतानुसार पूर्णत्व को प्राप्त मनुष्य में आन्तरिक आनन्द के साथ साथ बाहरी मुस्कुराहट का भी सामंजस्य होता है। प्रसन्नता कभी कभी परिस्थितिवश कुछ समय के लिए मिट क्यों न जाय, परन्तु सदा के लिए उसका सर्वथा लोप नहीं हो सकता। मानस के अनेक प्रसंग कवि की हास्यमयी प्रवृत्ति को प्रकाश में लाते हैं। तुलसी के कुछ प्रमुख हास्यपूर्ण प्रसंगों पर प्रकाश डालकर हम देखें कि उनकी हास्य पद्धति क्या थी।

1) खल-निन्दा - मानस महाकाव्य सदृश है। इसके प्रारंभ में देवनन्दनादि के पश्चात् तुलसीदास महाकाव्य आदि के अनुसार संत प्रशंसा एवं असंत निन्दा पर आते हैं। खल की व्यंग्य प्रशंसा में कवि की हास्यचेतना उमड़ आती है —

तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा।
जो पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हितघृत जिन्हके मन माखी।
उदय केत सम हित सब ही के। कुंभकरन सम सोवत नीके।
पर हित लागि जिन्ह करै। उजरें हरष विषाद बसेरे।
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।[3]

1 हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य पृ. 90
2 हिन्दी साहित्य में हास्य रस - पृ. 72 — डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी
3 रामचरितमानस पृ. 8

परबोध को देखने में सहस्त्रमता एवं परीक्षितवृत को नष्ट करने में मनिकाव्य की कल्पना कितनी व्यंग्यमधुर है । व्यावहारिक जीवन में बुरे या कपटी लोगों के लिए ये अत्यंत उचित विशेषण हैं ।

2) शिव-विवाह का प्रसंग - कौतुक प्रारंभ हो जाता है पार्वती के जन्म से ।

'नारद समाचार सब पाये, कौतुक ही गिरि गेह सिधाये'। नारद ने कन्या की हस्तरेखा देखी और विहँसी गूढ़ मृदु बानी में कन्या के सब गुण एक एक करके गिनाये साथ साथ उसके भाविवर के अवगुणों को भी एक एक कर गिनकर कह सुनाया । इस पर घबरायी गयी माता पति से यों कहने लगी -

जो घरु बरु कुल होइ अनूपा,
करिय बिबाहु सुता अनुरूपा ।
न त कन्या बरु रहउ कुआरी,
कन्त उमा मम प्रान पियारी ।

पति हिमावत को यों कहना पड़ेगा -

नारद बचन सगर्भ सहेतू
सुन्दर सब गुननिधि वृषकेतू ।
अस बिचारि तुम तजहु असंका,
सबहि भाँति संकर अकलंका ।

भगवान शिव के बाह्यवेष का असामंजस्य रह रह कर कवि की विनोदीवृत्ति को उकसाता रहता है। इसीलिए पार्वती की प्रेमपरीक्षा लेने के बहाने कवि ने सप्तर्षियों को अवतरित किया । उन्होंने शिव वेष के अशिव पक्ष की लम्बी तालिका गिनायी और पार्वती के निश्चय पर हास्यात्मक चुटकियाँ लीं । पार्वती ने मुँह तोड़ जवाब यों दिया जो तुम्हारे हठ हृदय विसेषी, रहि न जाय बिनु किये बरेषी । तौ कौतुकि अन्ह आलस नाहीं, बर कन्या अनेक जग माहीं । कौतुकी सप्तर्षियों का तो समाधान मिल गया। लेकिन काम का कौतुक शुरू हो गया - दुई दण्ड भरि ब्रह्माण्ड भीतर काम कृत कौतुक अयं । कामदहन के प्रसंगों पर तो हास्य की झलक है ही नहीं । फिर रति को वरदान मिला और इधर भगवान शिव ने भी विवाह करने का अपना निश्चय प्रकट किया । कौतुकी सप्तर्षि

महात्माओं को विनोद का अनुपोय्य अवसर भी प्राप्त हुआ । बोले मधुर वचन छल सानी । सप्तर्षियों ने पार्वती से कहा 'तुम्हारा प्रण झूठा पड गया, क्योंकि शिवजी ने काम को भस्म कर डाला । मन्दहँसी के साथ पार्वती ने यों उत्तर दिया 'विज्ञानियों का तर्क आप हो को शोभा दे । मेरे सदाशिव को तो कामविकार भस्म करने का कभी कोई प्रसंग ही नहीं आया ।

विनोदी वृत्ति के लोग अपने आदरणीयों को भी हास्यपात्र बनाने में नहीं चूकते । देवताओं की पौराणिक कथाओं के आधार पर हास्य की सामग्री अवश्य मिल सकती है । देवता विषयक आध्यात्मिक विषय क्या ही क्यों न हो, परन्तु भौतिक दृष्टि से उनकी असमंजसता यदि हास्य का उद्रेक कर सकती है तो विनोदी कवियों ने उसका लाभ अवश्य ही उठाया । हास्यरस के देवता प्रमथेश्वर से कवियों ने बेतरह मजाक किया[1] । भगवान शंकर के रूप और उनकी लीलाओं ने हास्य रस का खूब मसाला दिया है । तुलसी ने भी मन खोलकर भगवान शिव पर विनोद किया है[2] । कवियों की यह प्रवृत्ति सहज स्वाभाविक थी । सहस्र शीर्षाः पुरुष का एक भक्त अपनी विनोद वृत्ति की चरमसीमा में इस कल्पना से हँस पड़ा था कि सहस्र सिर वाले पुरुष की सहस्र नासिकाएँ होंगी ही, अतएव उसे यदि कभी जुकाम हो गया तो मुसीबत कितनी हो होती ।

शिव-बारात के प्रसंग में तुलसी ने सीधे सादे महादेव जी की हँसी उड़ायी है । बारात में शान लेने के लिए शृंगार करने वाले शिवजी श्रेष्ठ हास्य के आलम्बन बन गए हैं :-

शिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा ।
जटा मुकुट अहि मौर सँवारा ।।
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला ।
तन विभूति पट केहरि छाला ।
शशि ललाट सुन्दर सिर गंगा ।
नैन तीन उपवीत भुजंगा ।।
कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा ।
चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा[3] ।

---

1 स्वयं पंचमुखः पुत्रौ गजानन षडाननौ । दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद्गृहम् ।

2 गोस्वामी जी ने अदब माना है तो केवल मात्र राम का । इसलिए जब भगवान शंकर के औघड़पन का मनोरंजक चित्र उपस्थित करने का अवसर आया तो उसका उन्होंने भरपूर

खेम बुटना बाजा के श्रृंगार की बलिहारी होना पड़ता है । इस हास्यमय, हास्यप्रद श्रृंगार को देखकर :-

सुनहिंसुन मुसुकाहीं
बर लायक दुलहिन जग नाहीं ?[1]

भगवान विष्णु से भी सहा नहीं जाता । वे भी व्यंग्यबाण छेड़ते हैं :-

बिलग बिलग होई चलहु सब, निज निज सहित समाज
बर अनुहार बरात न भाई ।
हँसी करैहहु पर पुर जाई ।।[2] सभी हँस लेते हैं । स्वयं भगवान शिव में भी इतनी हास्य-प्रियता भरी रहती है कि वे भी हँसे बिना नहीं रह सकते, लेकिन वे कुशल खिलाड़ी हैं न, प्रत्यक्ष रूप में नहीं हँसते हैं लेकिन :-

मन ही मन महेश मुसुकाही ।
हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं ।।[3] और
बिहँसे सिव समाज निज देखी ।

उत्कृष्ट हास्य के उत्तम रूप का उदाहरण है यह । हास्य तो वही है जो हास्य का पात्र बनने वाले व्यक्ति को भी हँसा दे[4] । अतः इस भाग को उत्तम हास्य की दृष्टि से श्रेष्ठ ही मानेंगे । कहाँ 'सुन्दरता मर्याद भवानी ? और कहाँ 'बर बौराह बरद असवारा।' इस बेढंगेपन से हास्योत्पत्ति है ।

वर की साज-सजावट देखिए । 'असिव बेस सिव धाम कृपाला' का श्रृंगार देखते ही बनता है । साँप, चिताभस्म नरमुण्ड और न जाने क्या क्या ? सुन्दरियों की रानी पार्वती के लिए कैसा असमंजस वर मिला है? विकृतवेषी भूत प्रेत भी साथ हैं । किस प्रकार बराती लोग स्वागत सत्कार के लिए आये और कैसे भयभीत होकर पीछे की ओर भागे ।

---

1 रामचरितमानस - गीता प्रेस - गोरखपुर पृ.103
2 रामचरितमानस - गीता प्रेस - गोरखपुर पृ.104
3 रामचरितमानस - गीता प्रेस - गोरखपुर पृ.104
4 रस रत्नाकर पृ.502

सिव समाज जब देखन लागे, बिडरि चले बाहन सब भागे ।

धरि धीरजु तहँ रहे सयाने, बालक सब लै जीव पराने ।

भयभीत होकर दौड़ने वाले बालक वर और बरात का रूप वर्णन जिस रूप से किया है, उसे भी देखें

कहिय कहा कहि जाय न बाता
जम कर धारि किधौं बरिआता ।
वर बौराह बरद असवारा
ब्याल कपाल बिभूषन छारा ।
तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा
संग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा[1] ।

ऐसी बरात देखकर भी भाग न जाने की धीरता जिसमें होगी, वही शायद पार्वती का विवाह देख सकेगा ।

जो जियत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहिकर सही,
देखिहि सो उमा बिबाह घर घर बात असि लरिकन्ह कही ।

लड़कों के इस प्रकार भयभीत होने पर हम क्यों हँसते हैं ? यह हँसी इसलिए है कि 'अशिव वेश शिव-धाम कृपाला । अगर सचमुच बारातियों का भीतर भी उनके बाह्य वेश के समान होता तो 'भयानक' ही होता । बालक इस भेद को नहीं समझे, इसलिए वे डर गए और हम हँसे । लेकिन —

समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं

अतः बच्चों के लिए जो भयजनक प्रसंग था, उनके विज्ञ माता-पिता के लिए वह विनोद का प्रसंग था । मनोरंजक बात इस बात में है कि यह भय बालकों का अतिक्रमण कर मैना तक फैल गया । नारद और साथियों ने बड़ी कोशिश के साथ ही उसे दूर कर सके । मजा यह है कि इस हास्य प्रसंग में भी वर शंकर जी का गौरव अक्षुण्ण रहा है और हास्य नीचे तले का न हो गया ।

---

1 रामचरितमानस - गीता प्रेस, गोरखपुर पृ. 105

आचार्य चन्द्रबली पांडेय के शब्दों में हम यों कहेंगे 'यदि विष्णु और महादेव के हास को साथ साथ देखना हो तो पार्वतीमंगल अथवा शिवविवाह को ले लीजिए। यहाँ शिव बारात को देखकर सुर भी हँसते हैं और मुस्काता विष्णु भी।[1]

प्रो.राजकुमार ने इस हास्यप्रसंग की आलोचना यों प्रस्तुत की है इस प्रसंग में हास्य के दो रूप देख पड़ते हैं। एक तो कथोपकथन के अन्तर्गत ही सूक्ष्मरूप से अवस्थित है और दूसरा घटना - प्रधान होकर काफी स्थूल भी हो गया है। पहले को हम, हास्य का एक बढ़िया छीटा भी कह सकते हैं। दूसरा तो अपने व्यक्त रूप में है ही।[2]

सुन्दर काण्ड में लुक बांधे हुए हनुमान द्वारा जिस हास्य की उत्पत्ति होती है, उसमें एवं शिव की बारात से जन्य परिहास के बीच एक बड़ा अन्तर है। पहले प्रसंग में, बालक गण ही, विशेष रूप से आनन्द पाते हैं लेकिन शिव विवाह प्रसंग में आनन्द का अनुभव बालकों को न होकर बड़े लोगों को हो पाता है।

3) नारद-मोह प्रसंग - नारद मोह प्रसंग में हंसी कूट कूट कर भरी हुई सी दीखती है। यह घटना हास्य की अत्यन्त सूक्ष्म श्रेणियों से बनायी गयी है। देखिए, इसका आरंभ कितना मार्मिक है :-

भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान।[3]

कौतुक शब्द से इस बात का संकेत मिल जाता है कि आगामी पंक्तियों में हंसी का मसाला तैयार होने जा रहा है। भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान से कौतुक का बीज पड़ा। मुनिकर हित मम कौतुक होई, अवसि उपाय करबि मैं सोई' से कौतुक का प्लाट रचा गया उसकी भूमिका पल्लवित हुई। 'मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ' कहकर गोस्वामी जी ने हास्यपात्र का रंगमंच में प्रवेश कराया और 'जप तप कछु न होई एहि काला, हे विधि मिलइ कवन बिधि बाला कहलाकर नारद-मानस की हास्यास्पद स्थिति का आभास दिखलाया। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला' कहकर हरि को और बिप्रबेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ' कहकर शिवगणों को भी उस कौतुक में सम्मिलित कर लिया गया।[4]

---

1 तुलसीदास - आचार्य चन्द्रबली पांडेय पृ.210

2 तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन - प्रो.राजकुमार पृ.98

3 रामचरित मानस - गीता प्रेस - गोरखपुर प्रथम सोपान - पृ.140

एक बार देवर्षि नारद की सहज समाधि लग गई और अपनी सारी शक्तियों एवं कलाओं का प्रयोग करके भी कामदेव उनके मन को विचलित करने में असमर्थ निकले । परिणामस्वरूप यह था कि नारद गर्वित हो गया । नारद देवर्षि थे, भगवान शिव के प्रिय थे, भक्तिशास्त्र के प्रणेता थे, ऐसे नारद को अहंकार हो गया कि वे कामजित है । इस प्रकार नारद जी काम को विजय करने के अहंकार में फूल गए । उन्होंने यह कथा इन्द्रसभा, शिवजी तथा विष्णु भगवान को खूब बढ़ा चढ़ाकर कह सुनायी । भगवान भक्त को पतन के गर्त में गिरने से बचाने के एक उपाय की ताक में रहे ।

नारद मायानगरी की राजकुमारी पर मोहासक्त होकर सब कुछ भूल बैठे । स्वयंवर सभा में सुन्दर मुख के साथ प्रकट होकर राजकुमारी को प्राप्त करने की आशा उसे हुई । शिव के मना करने पर भी उन्होंने अपने मुख से अपनी करनी भगवान विष्णु से कह दी डाली। नारद हरिमुख चाहते थे ताकि वे स्वयंवर में विजयी हो । मजे की बात तो यह है कि कुछ समय पहले जो नारद काम विजय की लंबी चौड़ी डींगे मार रहे थे वे उन्हीं विष्णु भगवान के आगे काम वासना की पूर्ति के लिए सौन्दर्य की भीख मांगते खड़े है । परिस्थितिजन्य यह विपरीतता हास्योत्पत्ति का कारण बन जाती है, लेकिन बात अभी अभी आरंभ ही हुई । भगवान विष्णु ने नारद के परमहित का उपाय करने का निश्चय किया, यह जानकर कि उनका प्रियभक्त गर्व से ग्रस्त हो गया है । भगवान ने नारद से यों कहा 'जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार ।
सोई हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार ।[1]

मदन काम ग्रस्त नारद ने केवल इतना ही मांगा था' करहु कृपा करि होहु सहाई ... जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा, करहु सो बेगि, दास मैं तोरा । नारद ने केवल हित की मांग की थी, भगवान ने परमहित करने का निश्चय किया[2] अर्थात् परमहित करने की ठान ली । यहां हास्य की झलक इस बात में भी पायी जाती है कि

- -

1 रामचरित मानस - गीता प्रेस - गोरखपुर पृ.146

2 बड़े का एक बड़ा हास्य - लेख डा. भोलानाथ शर्मा, डि.फिल.डि.लिट.
(हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य पृ.99

सेवक ने सेव्य को भी अपनी तुच्छ स्वार्थपूर्ति केलिए एक साधन बनाने का परिश्रम किया।

नारद ने 'अति आरत' होकर प्रार्थना की। कौतुकी भगवान 'हित हासी' कहते है कि नारद। मै वही करूंगा जिससे तुम्हारा परमहित हो। लेकिन हरि के इन गूढ वचनों को मोहाविभूत नारद समझ नहीं सके। भगवान उन्हें अपना रूप न देकर बन्दर (हरि का अर्थ बन्दर भी है) का रूप दे देते है। और नारद है इससे बिलकुल बेखबर। सचमुच यहां भी हास्य आकर्षक है। परम कुरूप व्यक्ति अपने को परम रूपवान मानने लगे और सर्वथा अनधिकारी व्यक्ति अपने को अधिकारी समझ कर उपलब्धि के लिए आतुरता दिखाने लगता है। अपने सौन्दर्य के अभिमान में चूर बैठे है, नारद, स्वयंवर सभा में।

कृपालु भगवान ने इतनी दया कर दी कि नारद का यह रूप सभी देख नहीं सकते थे। यदि उस रूप को कन्या के अतिरिक्त और कोई देख ही न पाता तो मजा कहां? अतः शिव के दो गणों की सृष्टि की गयी है। वे इस प्रसंग पर प्रकट होते है और नारद के सौन्दर्य पर चुटकियां लेते है :-

... नीकि दीन्हि हरि सुन्दरताई
रीझिहि राजकुंवरि छबि देखी
इन्हहि बरिहि हरि जान बिसेषी[1]।

ज़रा देखिए कि अन्तिम पंक्ति में श्लेष कैसा काम कर रहा है। सचमुच इसको वाग्वैदग्ध्य पुकार सकते है। नारद की हरि (बन्दर) जैसी आकृति को देखकर शिव-गण कह रहे है, लेकिन नारद समझते है उनका रूप भगवान हरि (विष्णु) के समान, अतएव शिवगण उनकी प्रशंसा कर रहे है। तुलसी ने 'कामजित' को 'काममोहित' बना डाला। करउं स्वयम्बर सो नृप बाला। नारद ने उस सुन्दर स्वयंवर कन्या को देखा और उसको पाने केलिए छटपटा उठा हे विधि, मिलइ कवन विधि बाला। स्मरण रहे कि यह वही नारद था जिन्हें इस बात का अहंकार था कि कामदेव उनसे हार गया। अपनी कामान्धता में नारदमुनि कैसे हास्यास्पद बन गए है, ज़रा देखें :-

जेहि दिसि बैठे नारद फूलि सो दिसि सो न बिलोकेउ भूलि
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुला ही देखि दसा हरगन मुसुकाही[2]।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 रामचरितमानस - गीता प्रेस - गोरखपुर प्रथमसोपान - पृ. 146

2 रामचरित मानस - गीता प्रेस गोरखपुर प्रथम सोपान - पृ. 147

'मर्कट बदन भयंकर देही' लेकर 'पुनि पुनि मुनि उकसाहिं अकुलाहीं' जेहि दिसि बैठे नारद फूलि, सो दिसि तेहि न बिलोकइ भूलि । बस, इतनी सी बात हुई थी । नारदमुनि का बेचैन होकर उचक-उचक कर स्वयंवर कन्या का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश कितनी हास्यास्पद बन गयी है । बेचारे नारद आश्चर्यजन्य जिज्ञासा में है कि 'कुंवरी' ने उन्हें वरण क्यों नहीं किया । यह जिज्ञासा या कौतूहलता सहज स्वाभाविक ही है । इसका समाधान भी कुशल तुलसी हास्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं । शंभु के गण हंसे, कुछ 'अटपटि बानी' बोली (यह अटपटि बानी विदूषक की प्राकृत भाषा के समान ही होगी । हास्य सृष्टि करना ही इस अटपटी बानी का लक्ष्य है, लेकिन मर्यादा को बनाए रखने के लिए ही तुलसी ने इसे स्पष्ट नहीं किया । शिवगण ने उन्हें बताया कि जरा दर्पण में वे अपनी आकृति को देख आयें । शिवगण की अटपट बानी और हंसी नारद की विफलता ग्रस्त हृदय पर चुभ गयी । फल यह हुआ कि वे अंगारे बरसाने लगे और इस प्रकार अपना कोप उतारकर छोटी सी तृप्ति पाने लगे ।

हंसेहु हमहिं सो लेहु फल
बहुरि हंसेहु मुनि कोउ
दहहु सापि कि मरिहहु जाई
जगत मोरि उपहास कराई,
भरेहु भवन अब बायन दीन्हा
पावहुगे फल आपन कीन्हा । आदि ।

मर्यादा तोड़ने वाले को दण्ड देने या दिलाने की आवश्यकता है । नारदमुनि ने अहंभाव में आकर मर्यादा तोड़ डाला था फलतः हरि के हाथों दंड दिया गया । शंकर के गण अटपटी बानी बोलने और हंसने के कारण नारद के आगे मर्यादा का उल्लंघन किया । यदि ये शिवगण 'अटपट बानी' न बोलते या हंसी न उड़ाते बल्कि आयोजन के अन्त में विनम्रता के साथ इशारे से नारद को वास्तविकता का ज्ञान करा देते तो शायद उन्हें शाप न मिलता, यदि मिलता भी तो इतना तीक्ष्ण न मिलता ।

---

1 रामचरित मानस - गीता प्रेस - गोरखपुर

प्रथमसोपान पृ. 150

निराशाजन्य क्रोध में आकर नारद ने भगवान को भी भला - बुरा कहा, 'स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यवहार ।' लेकिन नारद की खिज भी प्रभु के लिए हर्ष ही का विषय रही । साप सीस धरि हरषि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्ह । भगवान के प्रिय थे तो नारद बच गये क्यों कि जब हरि माया दूरि निवारी, नहिं तहँ रमा न राजकुमारी और उनका सारा अहं विगलित हो गया, उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई, वे निरहंकार हो गये । उसके परिणाम स्वरूप उन्हें भगवान का आशीर्वाद मिला' अब न तुम्हहिं माया नियराई । पूरी घटना का परिणाम संशुद्धीकरण और सन्तुष्टीकरण है ।

तुलसी का आदर्श केवल मजाक उड़ाना ही नहीं, प्रत्युत हास्य पात्र का उद्धार करना है[1]। इसलिए ही नारद भी अन्त में मोह से जाग उठते हैं और -

तब मुनि अति सभीत हरिचरना
गई पाही प्रनतारति हरना[2] ।

तथा हास्य का शान्त में अंत हो जाता है ।

किसी को नीचा करना इस हास्य का लक्ष्य नहीं । एक महान पुरुष की कमजोरियाँ, उनके दोष, उनकी विकृतियाँ एवं उनकी उपहासास्पद या दयनीय स्थितियाँ, समाज में अनिष्ट एवं अधर्म व्याप्त करने में सहायक होंगी । इस महान व्यक्ति के दोषों का बुरा फलित फल सिर्फ उस व्यक्ति पर सीमित नहीं, पूरे समाज पर पड़ेगा । अतः हम देखते हैं श्रेष्ठ हास्य के लिए जो प्रवृत्ति आवश्यक है, वह यहाँ भी विद्यमान है।

नारद मोह प्रसंग के हास्य की आलोचना डा. भोलानाथ शर्मा के शब्दों में यों है 'यह है प्रभु की कृपा से संपन्न तुलसीदास का हास्य, पवित्र हास्य समस्त मर्यादाओं की रक्षा करता हुआ हास्य, दण्डपूर्ण हास्य, सुधार समर्थ हास्य बड़े का हास्य, बड़े के लिए हास्य, बड़े प्रकार का हास्य, बड़े के द्वारा किया गया हास्य बड़े के द्वारा चित्रित हास्य । भगवान का प्रिय कौतुक ही यहाँ हास्य का रूप धारण कर बैठा है[3] ।

---

1 हिन्दी कविता में हास्य - रस पृ.64 डा. सरोज खन्ना

2 रामचरितमानस - गीता प्रेस - गोरखपुर प्रथम सोपान पृ.170

3 बड़े का एक बड़ा हास्य - डा. भोलानाथ शर्मा डि.फिल.डि.लिट
(हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य पृ.10[illegible])

यह घटना प्रधान हास्य है। नारद द्वारा प्रयुक्त 'हित' और राम के द्वारा कथित 'परमहित' इन सब पर विचार करते समय हमें यह भी सन्देह होता है कि यह कथोपकथन जन्य व्यंग्य प्रधान हास्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण भी है।

हास का परिणाम प्रायः क्रुद्ध ही है। नारद का इस अवसर पर जो उपहास हुआ। उसका फल यह निकला कि उनके हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ और रमापति के 'मुनि महँ चले विकल की नाई' पर तो वही बरस पड़ा। हास के उपरांत क्रोध का का ऐसा रंग और कहीं नहीं। इसके विभाव भी अनुपम है - रमापति और उनकी लीला।[1]

4) बाललीला प्रसंग : सख्यभाव से श्रीकृष्ण की उपासना करनेवाले सूर ने कृष्ण के बाललीला प्रसंग में खिल खोलकर हास्य सृष्टि की है, लेकिन मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के बचपन की लीलाओं के वर्णन के बीच तुलसी ने अतिशय संयम को ही अपनाया है। फिर भी बीच बीच में तुलसी की हास्य चेतना जाग्रत होती है।

बालक राम अपने विराट रूप की झांकी मां को दिखाने जहाँ बहु रूप धारण करते है वह प्रसंग तुलसी की अपार भक्ति का प्रमाण है। फिर भी इस भक्ति की अंतर्धारा में कवि की सरसता झांकती है। प्रभु की अलौकिकता के विषय में तो शक नहीं है। इससे बढ़कर प्यारी मां को चिढ़ाने, असमंजस में डालने और उसका दुगुना दुलार पाने की इच्छा नन्हे राम की मोहकता को बढ़ाती है।

6) पुष्प-वाटिका में सीता की यांत्रिकता - रामचरितमानस के बालकाण्ड के वाटिका-प्रसंग में सीता की यांत्रिकता हमारी हास्यचेतना को जगाती है। श्याम और गौर बालकों का वर्णन एक सखी से सुनकर सीता यंत्रवत् उन्हें देखने चल पड़ती है। श्रीराम को देखने पर सीता की यांत्रिकता और भी बढ़ती है :-

थके नयन रघुपति छबि देखे।
पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें।।[2]

देखिए तुलसी की वाग्विदग्धता। 'थके नयन' शब्द से सूचना यह है कि श्रीराम को लगातार देखते रहने से शारीरिक थकावट भी उत्पन्न हुई है। नेत्र थक से गए। पलकें भी अपलक इस भय से हो गयी कि पलकों के लगने के बीच का समय शून्य

---

1 आचार्य चन्द्रबली पांडेय - तुलसीदास पृ. 212

2 रामचरितमानस - गीताप्रेस गोरखपुर पृ. 270

(प्रेमीविहीन पिहीन) न हो जाय । 'निमिषे' शब्द द्वारा संकेत राजा निमि की कहानी से है । पलक लग जायेगी तो नयन में निमि रहेगा, पलक न लगेगी तो रामचन्द्र जी । हम जिसे देखते हैं उसका प्रतिबिंब हमारी पुतली में रहेगा जरूर । अतः सीता अपने प्यारे को देखते रहने के लिए निर्निमेष रहती है । पलकों का लगना भी बन्द हो गया है सीता का । विवाह के पहले ही श्रीराम और सीता का मिलन कराकर दोनों के भावावेश देख और दिखा रस पाना चाहते हैं तुलसी जी । यही हम उस खिचड़ी दाढ़ी के बीच मुग्धकर मुसकान की झलक पायेंगे । आगे की उपमा कितनी सरस और उचित है, यह भी देखें :-

अधिक सनेह देह भै भोरी ।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।[1]

शरीर में स्नेह की मात्रा अधिक बढ़ जाने से अब उसे देह की भी सुधि न रही । चन्द्र पर आसक्त चकोरी के समान सीता सुधबुध खो खड़ी रही । एक प्रेमचकोरी के रूप में सीता का वर्णन हृदयहारी है ।

लोचन मग रामहिं उर आनि ।
दीन्हे पलक कपाट सयानी ।।
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी ।
कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ।।[2]

तुलसी का कहना है कि नेत्रों के मार्ग से राम का रूप हृदय में ग्रहण कर जानकी ने पलक रूपी द्वार बन्द कर लिए । पलक रूपी द्वार इसलिए बन्द किए गए कि और कोई छाप अन्दर न पड़े । जब सखियों ने सीता को प्रेमवश देखा तब सखियाँ मन में बहुत सकुचाईं, पर कुछ न कह सकीं । सखियों के हजार प्रयत्न करने पर भी उसकी आँखें नहीं खुलती । तभी एक सखी ने मजाक किया -

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहु
भूप किसोर देखि किन लेहु ।

- -

1 रामचरितमानस - पृ. 280

2 रामचरितमानस - पृ. 270

यहाँ की वाग्विदग्धता दर्शनीय है । एक चतुर सखी ने साहसपूर्वक जानकी का हाथ पकड़कर कहा 'कल फिर से यहाँ आएँगी । कल भी गौरीपूजा होगी और इन राजकुमारों से तब भेंट करना'। यहाँ व्यंग्य है कि सीता, हम तुम्हारा मर्म समझ गईं, मगर अब माँ के पास चलना होगा ।

यह सुनकर सीता "सकुचि सीय तब नयन उघारे ।"

एक दूसरी सखी ने यों चुटकी ली -

'पुनि आउब यहि बिरियाँ काली
अस कहि बिहँसि चली इक आली ।

विवश सीता को यंत्रवत् सखियों के पीछे चलना पड़ा। उस गमन का वर्णन कितना हास्यपूर्ण है, जरा देखिए :-

'देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि'

मृग, पक्षी और वृक्ष को देखने के बहाने सीता बार बार पीछे की ओर मुड़ मुड़कर श्रीराम को देखने लगी । अपने प्रेमी की ओर एक झलक भी पाने की सीता की व्यग्रता शकुन्तला की व्यग्रता से मिलती जुलती है[1]। जिस व्याज का उपयोग शकुन्तला ने अपनाया उसी को सीता भी अपनाती है। कालिदास की 'तन्वी' तुलसी के हाथों में 'सयानी' बन गयी है । 'असक्तमपि' शब्द से कालिदास ने तो कमाल दिखाया है । यहाँ तुलसी ने मिस, बहोरि इन शब्दों से यही दिखाया है । सीता का मन तो राम के वश में है लेकिन पाँव हैं सखियों के वश में । एक ही शरीर के दो अंग विरुद्धात्मक प्रवृत्ति[2] में लगे हैं । यही हास्योत्पत्ति का मूल कारण बन जाता है ।

---

1 दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।
आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्
अभिज्ञान शाकुन्तले द्वितीयो अङ्कः प.सं.12

2 प्रेम की इस यांत्रिकता के बारे में उर्दू में प्रचलित एक पद्य इससे मिलता जुलता है
'आई कहाँ से गर्दिशे पत्थर पाँव में' ।

6) जनकपुर की सखियों से संबन्धित - जनकपुर की सखियाँ व्यंग्य कसने में प्रवीण थी । कई प्रसंगों पर वे अपनी व्यंग्य-बाण-सन्धान-कला दिखाती है ।

एक प्रसंग देखें । विवाह के अनन्तर सखियाँ जानकी से कहती है 'मुग्धा, घूँघट से मुँह क्यों छिपा रही है, क्योंकि तेरे मुख जैसा चन्द्रमा तो आकाश में सुशोभित है' -

कत घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि ।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ।[1]

सीताजी को यह व्यंग्य भेंट करके सखियों ने रामचन्द्र से विनोद किया, बोली 'हे राम, अपनी सुन्दरता का घमंड न करना । तुम्हारी मूर्ति तो जानकी की छायामात्र है' । -

गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह ।।[2]

इस प्रकार वे दुधारा व्यंग्य-बाण चलाते है ।

दूसरा एक प्रसंग देखें । जनकपुर की स्त्रियाँ पुत्रेष्टि यज्ञ की ओर संकेत कर के राम का कैसा मजाक उड़ाती है :-

अति उदार करतूति सार सब अवधपुरी की बामा
खीर खाय सुत पैदा करती, पति का कछु नहिं कामा ।[3]

करारी थी चोट । लेकिन श्रीराम की हाजिर - जवाबी कुछ कम थी क्या ? वह प्रत्युत्पन्नमति तुरन्त बोल उठा :-

कोउ न जनमे माता पिता बिन, यही वेद की नीति
तुम्हरे तो महि ते सब उपजे, अस हमरे नहिं रीति ।[4]

व्यंग्यमय संकेत इस पर था कि सीताजी पृथ्वी से पैदा हुई थी ।

- -

1 बरवै रामायण - 17
2 वही - 18
3 रामचरितमानस - गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 324
4 रामचरितमानस - गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 324

7) परशुराम का प्रसंग - परशुराम का प्रसंग अपने ढंग का अनोखा है । अपने वेष और व्यवहार में बड़े असामंजस्य के साथ परशुराम प्रकट होते हैं ।[1]

शान्त वेस करनी कठिन, बरनि न जाय सरूप ।

यह असामंजस्य स्वयं हास्योत्पत्ति का एक कारण है । जब श्रीराम सविनय कहते हैं ।

नाथ संभु धनु भंजनि हारा,
होइहि कोउ एक दास तुम्हारा,
आयसु काह कहिय किन मोही ।

तब श्रीराम से सीधी बातचीत न करके वे गर्जन यों करने लगे 'सो बिलगाई बिहाइ समाजा न त मारे जइहहिं सब राजा'। लक्ष्मण देखते हैं कि 'बालब्रह्मचारी अति कोही' अकारण के क्रोध में है । अतः वे अपमान की व्यंग्यवाणी द्वारा विनोद का वातावरण सजाने आगे बढ़े ।

लक्ष्मण की चुटकी देखिए 'बहु धनुही तोरी लरिकाईं
कबहुं न असि रिस कीन्ह गोसाईं' ।

लेकिन जब बात बढ़ जाती है तब लक्ष्मण के शब्दों में एक अनोखी वक्रता आ जाती है

लखन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा ।
तुम्हहि अछत को बरनैं पारा ।।
आपन मुंह तुम आपन करनी ।
बार अनेक भांति बहु बरनी ।।
नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहू ।
जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ।[2]

लक्ष्मण - परशुराम संवाद वाग्विदग्धता (wit) का सुन्दर उदाहरण है । लक्ष्मण कोपमूर्ति परशुराम का बालसहज व्यंग्य वाणी द्वारा घाव पहुंचाते हैं । चिढ़नेवाले को और भी चिढ़ाना बालक सहज स्वभाव है । परशुराम का कथन है,

'मुनिहि उतिन होते हूं श्रम थीर ।'

---

1 रामचरितमानस - पृ.221

2 रामचरित मानस - गीता प्रेस, गोरखपुर पृ.230

बस, फिर क्या क्या ? परशुराम के 'उरिन' शब्द को लेकर लक्ष्मण का उत्तर यों है :-

मातहि पितहि उरिन भये नीके ।
गुरु रिन रहा सोच बड़ जी के ।।
सो जनु हमरे माथे काढा ।
दिन बहु गये ब्याज बहु बाढा ।।
अब आनिय ब्यवहरिया बोली ।
तुरत देहु मैं थैली खोली ।[1]

इस प्रसंग को मुस्कुराहट के बिना कौन पढ सकता है क्या ? साधारणतः वाग्वैदग्ध्य में मस्तिष्क की प्रधानता रहती है, लेकिन तुलसी जी के यह शाब्दिक व्यंग्य भावपूर्ण भी है ।

अपनी चुटकियों से लक्ष्मण ने परशुराम के हृदय की गर्व - ग्रंथियों को उखाड़ फेंका । उन्होंने कोपिष्ठ परशुराम को प्रकृतिस्थ करने के लिए एक सीधा उपाय अपनाया । हंसी-हंसी में उसे उसकी वर्तमानकालिक असमर्थता का बोध कराया । लक्ष्मण जी की उक्तियां कटूक्तियां नहीं, प्रियोक्तियां ही हैं । अन्त में परशुराम ने भी बात समझी । इसलिए ही दोनों भाइयों की प्रशंसा करते हुए अन्य विशेषणों के साथ उन्होंने कहा 'जयति बचन-रचना अति नागर' । देखिए बचन रचना की अति नागरता कितनी प्रशंसनीय है ?

स्वभावों का संघर्ष हास्योत्पत्ति का कारण है । परशुराम-लक्ष्मण संवाद में विभिन्न स्वभावों का चित्र बड़ी कुशलता के साथ उपस्थित किया गया है । प्रत्येक पात्रों के मन का चढाव-उतार, हृदय-बुद्धि का खेल, ध्वनि-अलंकार का समन्वय इन सबसे यह संवाद हास्यपूर्ण बन गया है ।

व्यंग्य कसने में परशुराम भी असमर्थ नहीं । परशुराम जी ने आते-आते ही जनक को डांट पिलायी और 'जड' पुकारा । इसपर श्रीराम ने कहा कि इस धनुष का तोडने वाला तो आपका कोई दास होगा । 'दास' शब्द पर व्यंग्य करते हुए परशुराम ने कहा कि सेवक तो वह है जो सेवा करे । शत्रुता का कार्य करना ही युद्ध का कारण है । इस बात को सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कुराए और बोले कि बचपन में तो हमने बहुत सी कमानें तोड डाली थी, तब आपने हम पर कभी क्रोध नहीं किया ।

- -

1 रामचरितमानस - बालकाण्ड दो. 27।

इस धनुष पर ही आपकी ममता क्यों है? व्यंग्यकार परशुराम आ फँसता है अतिव्यंग्यकार लक्ष्मण के हाथ में ।

असामंजस्य इस हास्य प्रसंग में एक रासायनिक (Catalystic agent) का काम कर डालता है । परशुराम का राम और लक्ष्मण के प्रति जो व्यवहार हुआ है वह ऋषि के स्वरूप के अनुरूप नहीं । लक्ष्मणजी का चरित्र भी अहंवादि राजकुमार का है - बिलकुल संयमहीन । गुरु के रोकने पर भी वे नहीं रुके ।

आत्मप्रशंसा और अहंभाव जैसे दोषों के कारण परशुराम भी हास्यास्पद होते हैं । ज्यों ज्यों श्रीराम विनीत होते हैं त्यों त्यों परशुराम गर्वित होते हैं । अपने फरसे को दिखाकर वे गर्जन करते हैं 'मैं बाल-ब्रह्मचारी हूँ, क्षत्रियों का शत्रु हूँ, मैं ने अपनी भुजाओं से क्षत्रियों का राज्य छीनकर ब्राह्मणों को दिया है, मैं ने सहस्रार्जुन की भुजाओं को काटा है, यह मेरा फरसा इतना कठोर है कि वह गर्भ के बालकों को भी काट देता है । प्रत्युत्पन्नमति लक्ष्मण का यह कहना कि 'आप तो फूँक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं', कितनी तीव्रगति से इस आत्मप्रशंसा को रोक डालता है?

वक्रोक्ति भी इस हास्य प्रसंग का एक अंश बन गयी है । पद पद में व्यंजना लाने में प्रवीण तुलसी ने परशुराम-लक्ष्मण संवाद में भी अपनी कुशलता दिखाई है । लक्ष्मण ने परशुराम से व्यंग्य किया कि शिव धनुष तो टूट गया । अब वह टूट कर जुड़ नहीं सकता, यदि इसमें आपका साझा था तो वह मज़ा अब कहाँ रहा ?

सुजस तिहारे भरे भुअन भृगुतिलक,
प्रगट प्रतापु आप कह्यो सो सबै सही ।
टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेसजू को[1]
रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही ।

इस व्यंग्य मिश्रित हास्य की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि चिढ़नेवाला जितना चिढ़ता जाता है, उतना ही चिढ़ानेवाला उसे भी छेड़ता जाता है । क्रोधावेश में अपने सहज स्वरूप को भूले हुए, परशुराम जब अपना दर्पपूर्ण आत्मश्लाघा का विज्ञापन करते हुए नहीं थकते - तब लक्ष्मण उनसे, व्यंग्य की भाषा में विनम्रता का आवरण डालकर

---

1 कवितावली - 1, 19

कहते हैं 'हे महानतम आपके तो वचन ही करोड़ो वज्रों की परुषता के प्रतीक हैं । फिर इस कुठार के प्रदर्शन की आवश्यकता ही क्या । समझ में नहीं आता कि इस सड़े से धनुष के टूट जाने पर, आप इतना क्षुब्ध क्यों हो रहे हैं । टूटा धनुष तो अब जुड़ नहीं सकता । और इधर आप भी खड़े खड़े थक गए होंगे, पैर भी दुखने लगे होंगे । बैठ जाइए, अब तो जो होना था सो हो ही चुका । इस अत्याशित - व्यंग्य कितना तीखा बन गया है? किन्तु मज़े की बात तो यह है कि परशुराम जितना ही अधिक चिढ़ते-चिल्लाते हैं, लक्ष्मण उन्हें उतना ही अधिक चिढ़ाने की कोशिश जारी रखते हैं ।

चिढ़ने-चिढ़ाने वाले ऐसे व्यंग्य-प्रधान हास्य के और दो उदाहरण हैं हनुमान - रावण संवाद तथा अंगद-रावण संवाद ।

8) <u>ग्राम-वधू-प्रसंग</u> - तुलसी ने राम लक्ष्मण और सीता के वन जाते समय ग्राम वधुओं के प्रश्न और सीताजी के उत्तर को बहुत सुन्दर शब्दों में नाटकीय रूप में उपस्थित कर हास्य सृष्टि की है ।

राम सीता और लक्ष्मण को देखकर ग्रामीण स्त्रियाँ उनके सम्बन्ध में परस्पर वार्तालाप करती थी और अपनी-अपनी शंकाएँ प्रकट करती थी । स्त्रियों में खासकर देहात ग्रामीण स्त्रियों में और लोगों के बारे में समझने की उत्सुकता स्वाभाविक ही है । उन ग्रामवधुओं के मन में एक उत्सुकता उत्पन्न हुई, वह थी कि गौर और श्याम में उस युवति का पति कौन सा है । अतः सीता से उनका पूछना है 'तुम्हारे साथ इन दोनों का क्या सम्बन्ध है ? ग्रामवधुओं के प्रेमपूर्ण सुन्दर वचन सुनकर सीता जी भली भाँति समझ गयी कि ये औरतें बहुत चतुर हैं और किस सुन्दर ढंग से पूछ रही हैं कि ये दोनों में पुरुष कौन है । लेकिन सीता जी क्या पीछे हटनेवाली थी? वे राम की ओर तिरछी दृष्टि से देख ग्रामवधुओं को कुछ समझाकर मुस्कुराने लगी । कवितावली में यह प्रसंग यों है:-

- -

1 रामचरितमानस - बालकाण्ड - दो. 271

पूछती ग्राम बधू सिय सों कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं ।[1]
× × × × ×
तिरछे करि नैन, दै सैन, तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ।।[2]

रामचरितमानस में तुलसी ने इस भाव को अधिक स्पष्ट और सुन्दर रूप में यों अंकित किया है -

सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी, बोली मधुर बचन पिक बयनी ।
सहज सुभग तन गोरे, नामु लखनु लघु देवर मोरे ।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी, पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।
खंजन मंजु तिरीछे नैननि निज पति तिन्हहिं कहेउ सिय सैननि ।[3]

'गीतावली' में ग्राम-वधुयें सीता से प्रश्न नहीं करती । उसमें तो इन तीनों के रूप का मधुर वर्णन और उन वधुओं का पारस्परिक संलाप है ।

सीताजी की चतुरता भी हास्योत्पत्ति का कारण है । पुरवधुओं की जिज्ञासा ने सीता को एक बेबसी में डाला । बेबसी यह थी कि पति और देवर के पास रहते वह कैसे उन स्त्रियों को बता सकेगी कि उनमें उसका पति कौन है । यदि कहना चाहती तो भी किस रूप में? इसीलिए सीता ने बातचीत के लिए जीभ का नहीं नयन का उपयोग किया ।

9) <u>केवट-प्रसंग</u> - केवट प्रसंग भी मनोरंजक है । राम-वन-गमन का प्रसंग करुणपूर्ण था, लंबा और गंभीर भी था । पाठकों के मन शोक का बोझ हल्का करने के उद्देश्य से इस बीच केवट का प्रसंग जोड़ दिया गया है । नाटकीय चमत्कार और मनोवैज्ञानिक उतार-चढ़ाव के द्वारा काव्य का कुतूहल बढ़ाना तुलसी की खासियत है । यहाँ परिस्थिति विपर्यय के रूप में यह केवट प्रसंग आकर रस-वैविध्य प्रस्तुत करना ही गोस्वामी जी का लक्ष्य है । केवट प्रसंग पर उन्होंने ऐसे वातावरण संजाए हैं जो मनोरंजक ढंग पर एक सात्विक विनोद की सृष्टि करने में सर्वथा सहायक है ।

जिन श्रीराम का मर्म बड़े बड़े देवता, श्रेष्ठ मुनिगण तथा महान पण्डित तक नहीं जानते (तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा, अउर कहउ को जाननिहारा) और जिन्हें

---

1 कवितावली - 2-21
2 कवितावली - 2-22
3 रामचरितमानस 2, 116, 4-7

किन्हीं विद्वानों ने 'अनन्त अज्ञात अवर्णनीय' कहकर अपनी असमर्थता प्रकट की है। उन्हीं श्रीराम का मर्म जान लेने का दावा करता है एक अशिक्षित केवट,

कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना

एक शेखचिल्ली की भांति तर्क करते हुए ही वह यह कहता भी है। चरण रज जब पत्थर को नारी बनाती है तब लकड़ी की नाव को मुक्त छोड़ेगी क्या ? वह नाव भी एक स्त्री बन जाती तो? शायद एक पत्नी से भी वह तंग आया होगा। वह भी नहीं उसकी उपजीविका चलाने का एक मात्र मार्ग है नाव चलाना। वह नाव भी नष्ट हो जाय तो? उसकी अपनी रोजी-रोटी का क्या होगा ? अतः वह चरणरज जितनी जल्दी दूर हटा दी जाय उतना ही अच्छा। यह था उसका अर्थ।

जिस चरण रज के लिए बड़े बड़े मुनि-मुनि तरसते रहते हैं उसे वह कितनी हानिकर वस्तु समझकर दूर हटाने का निश्चय करता है। यह रही केवट की बात। अब श्रीराम के मानसिक संघर्ष की बात लेंगे। उस पाण्डित्यपूर्ण मूर्ख को रामचन्द्रजी अपने चरण रज का महिमा समझायें क्या ? समझायें भी तो कैसे और किन रूपों में ? यह भी एक बेबसी है। और कोई रास्ता ही न था। मुस्कुराकर केवट की तर्कावली के समक्ष आत्म-समर्पण करने के सिवा और क्या हो सकता है?

'कृपासिंधु बोले मुसुकाई, सोइ करु जेहि तव नाव न जाई'[1]

दो व्यक्तियों के बीच होनेवाले कथोपकथन जन्य हास्य का सर्वोत्तम चित्र है यह नौकारोहण प्रसंग। कवितावली में तुलसी ने यों प्रस्तुत किया है :-

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे केवट की जाति कछु बेद न पढ़ाई हौं
सब परिवार मेरो याही लागि राजा जु हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाई हौं।
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाई हौं[2]

और रामचरित मानस में वे इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :-

---

1 रामचरितमानस - 2, 100, 1, 6

2 कवितावली - 2, 8 (अयोध्याकाण्ड)

छुअत सिला भइ नारि सुहाई, पाहन ते न काठ कठिनाई ।
तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई, बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ।[1]
एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू नहिं जानउँ कछु और कबारू ।।

केवट की विनती कितनी हास्यपूर्ण है? निषाद की यह भाव भरी बानी में जो रस राम को मिलता है वह हंसी में फूटे बिना रह क्या सकता है? जरा देखें :-

रावरे दोष न पायन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन ते बन बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ।।
पावन पाय पखारि के नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ।
तुलसी सुनि केवट के बरबैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है[2] ।

कवितावली में यों अट्टहास में (हहा) परिणत हो गया है । केवट के 'बर बैन' में जो भाव भरा था वह आगे चलकर किसी और ही रूप में व्यक्त हुआ और फलतः राघव को भी हहा की जगह

हेरि हेरि कर हँसना पड़ा ।

प्रभु रुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहि
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि ।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को
धोइ पाय पीयत पुनीतबारि फेरि फेरि
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर ।
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि ।
बिबुध सनेह सानी बानी असयानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी लखन तन हेरि हेरि[3] ।

यह विनोद प्रसंग रामचरितमानस में यों है :-

---

1 रामचरितमानस - 2, 99, 5-7

2 कवितावली - अयोध्याकाण्ड पद सं. 7

3 वही 10

जो प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ।।
पद कोमल धोइ चढाई नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं ।
बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहौं ।।
सुनि केवट के बयन प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहसे करुना अयन चितइ जानकी लखन तन[1] ।।

जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर भगवान राम क्यों हँसे थे ? शायद केवट की मूर्खता पर वे हँसे होंगे । इसमें हम गूढार्थ भी पढ़ सकेंगे । भगवान इस बात पर हँसे होंगे कि निषादराज तो चरण - प्रक्षालन का शुल्क किये बिना ही चरण धोये लेता था, जबकि राजा जनक ने शुल्क स्वरूप जानकी जी का दान किया था ।

श्रीराम की इस हँसी को भूतनाथ की उस हँसी से मिलाकर देखिए तो पता चलेगा कि लोकपालक और लोक संहारक की हँसी में भेद कैसा है ।

केवट भगवान राम का चरणामृत पान करना चाहता है । उसका व्याजतर्क कितना व्यंग्यपूर्ण है :-

तुलसी जिनकी पग धूरि परसि अहल्या तरी गौतम सिधारे गृह गौनोसो लेवार्इ के ।
तेइ पायँ पाइ कै चढाइ नाव धोए बिनु ख्वै हौं न पठावनी कै ह्वै हौं न हँसाइ कै[2]।

रामचन्द्रजी उसकी आपत्ति से कहीं यह समझकर रुष्ट न हो जाएँ कि यह मेरे पैरों को दोष लगा रहा है, अतः केवट अपने वाक्चातुर्य से काम लेता है । इस प्रसंग पर तुलसी अपनी शिकायत भी भगवान को सुनाने का प्रयत्न करते हैं ।

10) विंध्यावास के तपस्वियों के प्रति तुलसी की चुटकी - गोस्वामी जी की कवितावली का निम्नांकित सवैया उनकी सहज विनोदी वृत्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है । इसमें जटिल तपस्वियों की चन्द्रमुखी चाह पर तुलसी ने करारा व्यंग्य कसा है :-

---

1 रामचरितमानस 2, 100

2 कवितावली 2, 9

विंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे ।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे ।
कीन्ही भली रघुनायक जू, करुना करि कानन को पगु धारे ।[1]

भगवान विन्ध्यापर्वत के वन प्रदेश से होकर जा रहे हैं । इस वन में अनेक ऋषि-मुनि तपस्या करते हैं । तुलसी को एक अत्यन्त हास्यव्यंग्य उक्ति तभी सूझी - 'हे भगवान ! आप वन में पधारे, अतः आपने बड़ी कृपा की । आपके चरण कमलों के स्पर्श मात्र से शिलाएँ अहल्या की जैसी सुन्दर स्त्रियाँ बन जायेंगी । कठिन तप करते करते बेचारे मुनियों का जीना दूभर तथा नीरस हो गया है । एकान्त जीवन का भार कब तक सहा जा सकता है । स्त्रियों से शून्य वन में पत्थर को स्त्री बनते देखकर मुनिकुमारों को आशा होना स्वाभाविक ही है ।

विन्ध्याचल के उन तपस्वियों के ऊपर तुलसी ने शिष्टव्यंग्य किया है जो कहने के लिए उदास थे लेकिन नारियों का अभाव उनको खटकता था ।

डा. रामदत्त भारद्वाज इस छन्द में संयत हास्य को देखते हैं 'विंध्य के बासी उदासी महा - इस छन्द में गोस्वामी जी ने तत्कालीन उदासियों की निकृष्ट मनोवृत्ति का उत्कृष्ट खाका खींचा है । उन आश्रमियों में भी नारियों के लिए इच्छा विद्यमान थी, इसी से उन्हें आशा थी कि

ह्वै हैं सिला सब चन्द्र मुखी परसे पग मंजुल कंज तिहारे ।

इस मीठी चुटकी से कवि ने संयत हास्य की अनुपम अभिव्यक्ति की है ।[2] 'गोस्वामीजी ने इस छन्द की रचना अपने युग की पथ-भ्रष्ट-साधुता को कठोर झिड़क देने के लिए की होगी । साधुता और सौम्यता के नाम पर, मस्तक का टीका लगाने वाले गैरिक वस्त्रधारियों की कटु आलोचना का यह हास्य व्यंग्य - मिश्रित चित्र भी निश्चय ही, बाबाजी की सुधारवादी, व्यवहार-पटुता का अच्छा उदाहरण है[3]।

---

1 कवितावली, अयोध्याकाण्ड - 28
2 तुलसीदास और उनके काव्य - डा. रामदत्त भारद्वाज ।
3 तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन - पृ. 101 - प्रो. राजकुमार कुमार ।

सच कहे तो यह हनुमन्नाटक के 'पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाण देहमलभत'[1] हीवे छन्द का भावानुवाद है । तुलसी की विशेषता यही है कि उन्होंने हनुमन्नाटक के अनुकरण पर सीता के मुख से नहीं कहलाया, वरन वीतराग महात्माओं के मुख से उसकी अभिव्यक्ति कराई है ।

11) <u>शूर्पणखा प्रसंग</u> - <u>बेजोड़ विवाह से</u> सम्बन्धित एक हास्यपूर्ण प्रसंग रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में शूर्पणखा के विवाह प्रस्ताव से उत्पन्न होता है । कृत्रिम रूप बनाकर आई हुई शूर्पणखा के इस प्रस्ताव को पढ़कर हमारे ओठ अनजाने विकसित हो जाते हैं ।-

तुम सम पुरुष न मो सम नारी ।
यह संयोग विधि रचा बिचारी ।।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं ।
देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं ।।
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी ।
मन माना कछु तुम्हहि निहारी ।[2]

एक कुमारी की ओर से आए हुए इस विवाह - प्रस्ताव की बात को पढ़कर सहृदय बिना मुसकुराए न रह सकता । कौतुक प्रिय श्रीराम भगवान ने भी इस हास्य प्रसंग से लाभ उठाना चाहा, यह बड़ा रमणीय है । सम्पूर्ण रामचरितमानस में, यही एक ऐसा विचारणीय हास्य - स्थल है, जहाँ अग्रज और अनुज दोनों एक दूसरे से विनोद करते देख पड़ते हैं[3] । राम और लक्ष्मण की सहज हास्य भावना इस अवसर पर प्रकट होती है । शूर्पणखा के इस प्रस्ताव को सुनकर पत्नी सीता की ओर हलकी सी संकेत दृष्टि डाली श्रीराम ने । शायद पत्नी से वे यह कहना चाहते होंगे । 'जरा देखो मैं इस लड़की को कैसी नाच नचानेवाला हूँ । श्रीराम ने कामातुर सुन्दरी से कहा 'हे कुमारि, भाई मेरा अविवाहित है, तुम उसी के पास अपना प्रस्ताव ले जाओ । लक्ष्मण अविवाहित नहीं, यह बात शूर्पणखा को छोड़कर सब जानते हैं - श्रीराम, सीता और हम पाठक भी । यह हास्य के वातावरण को और भी पुष्ट करता है ।

---

1 हनुमन्नाटक छन्द - 3-47

2 रामचरितमानस - अरण्यकाण्ड (26-8, 9, 10

3 तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन पृ. 100 - प्रो. राजकुमार

श्रीराम के कथन को सुनकर कामातुर शूर्पणखा झट लक्ष्मण के पास पहुंचती है। जो अभी एक क्षण पहले राम को ही 'अपना अनुरूप' समझती थी वही दूसरे क्षण लक्ष्मण के निकट भी प्रेम की भीख का नाम करती है। विनोदप्रिय लक्ष्मण हाथ आए सुअवसर का बिना लाभ उठाए छोड़ेगा क्या? परिहास की भाषा में ही लक्ष्मण अपनी बेबसी यों प्रकट करता है।

सुन्दरि सुनु मैं उन कर दासा। पराधीन नहीं मोर सुपासा।
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा।।

अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए लक्ष्मण उससे यह कहना चाहते हैं मैं तो स्वीकार करने के लिए तैयार हूं, लेकिन इसके सुख का ठीक उपभोग मैं न कर सकता। एक नौकर होने के कारण मैं पराधीन हूं। अतः तुम जिन के पास से आये, वहीं लौट जाओ। वे सब प्रकार से समर्थ हैं, संपन्न हैं। वे जो करेंगे, उसी में उनकी शोभा होगी।

इस चौपाई में समर्थ, कोसलपुर राजा (?) उनहिं सब छाजा आदि शब्दों को देखिए। कितनी तीव्र व्यंग्यात्मकता उनमें निहित है?

श्रीराम लक्ष्मण के पास फिर भी शूर्पणखा को भेजता है, लक्ष्मण, श्रीराम के पास ही उसे पुनः भेजता है। कामातुर नारी को इधर उधर दौड़ाकर राम और लक्ष्मण बड़ी नाच नचाते हैं। वाल्मीकि की शूर्पणखा कथन से मानसकार की कल्पना की भिन्नता इस सरसता का और प्रमाण है।

हास्य का यह प्रसंग घटना एवं संवाद दोनों की सम्मिलन भूमि पर खड़ा है। सजधजकर शूर्पणखा का प्रस्तुत होना वह भी अनुरूप पुरुष के शिकार के लिए - एक घटना है।

डा. बलदेव प्रसाद मिश्र इस हास्य प्रसंग की आलोचना करते हुए बताते हैं कि यह क्रूर हास्य का सुन्दर प्रसंग है। 'इसका आरंभ उसके 'बहुत मुसकाने' और अन्त 'खिसियाने' से हुआ है। शूर्पणखा की अनधिकृत कामातुरता, उसकी चंचलावृत्ति, उसकी मर्यादा - निरपेक्षता और सदुपदेशनिरपेक्षता आदि ही हास्य के विषय थे। किन्तु उसे उस समय प्रियोक्ति की अपेक्षा कटूक्ति ही प्रकृतिस्थ कर सकती थी। अतएव कटूक्ति का पुट

छूट मिलते ही वातावरण का रंग एकदम बदल गया[1] ।

13) उमा - शंभु संवाद - यह प्रसंग पूर्णतः देवकथा से संबन्धित है और तुलसी भक्त हैं तथापि कवि दिव्य पात्रों से एकाकार बनकर हर प्रसंग पर मधुर व्यंग्य भी करते हैं । सीतावेषधारिणी सती वनवासी विरही राम के सामने परीक्षार्थ जाती हैं तो प्रभु उन्हें पहचान लेते हैं । वे प्रश्न करते हैं कि प्रभु महादेव कहाँ हैं और आप अकेली क्यों इस तरह घूम रही हैं ?

बोले बिहसि रामु मृदु बानी ।
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामा । पिता समेत लीन्ह निज नामा ।
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ।।

राम के प्रश्न में उनका शिष्यत्व झलकता ज़रूर है । साथ ही उसमें निश्छल हास्य की भावना भी है ।

जिस रत्नावली - प्रसंग को लेकर तुलसी के उन्मद कामातुरता की चर्चा होती है उसके दूसरे पहलू पर विचार करने से उनकी अद्वितीय सरसता ही खुलती है । प्रेयसी रत्नावली के प्रति ऐसी ममता रखना कि उसे आँखों की ओट में भी न होने दें, उनकी सरसता ही प्रमाणित करता है । सुयोग्य युवक रामबोला को रत्नावली के पिता ने अपना दामाद वरण किया था । दामाद अगर हठी या स्वाभिमानी निकला कि पत्नी को पीहर भी न जाने दिया तो उसमें जन्मजात दृढ़ आत्मसम्मान की भावना थी, पत्नी के प्रति अनन्य ममता थी । मानस के सती - शिव संवाद के प्रसंग पर तुलसी ने कदाचित् अपने इसी व्यवहार की सफाई दी है ।

13) लंका-दहन प्रसंग - घटना-प्रधान हास्य का एक अच्छा उदाहरण रामचरितमानस के सुन्दर काण्ड में है जो कुछ अधिक सामान्य धरातल पर अवस्थित होने से आकर्षक बन गया है । वाटिका - विध्वंस और अक्षयकुमार वध के अपराध में हनुमान को प्राणदण्ड देने का निश्चय राजसभा में हो गया था । लेकिन विभीषण की वकालत के फलस्वरूप निर्णय संशोधित कराया गया कि इस बन्दर की पूँछ को, स्नेहाभिसिक्त वस्त्रों से बाँध कर, उसे अग्नि देव के हवाले कर दिया जाए । देर थी सिर्फ राजाज्ञा की । और फिर !

---

1 हिन्दी साहित्य में हास्य - व्यंग्य पृ.97 सं.डा.प्रेमनारायण टंडन

रहा न नगर बसन घृत तेला ।

बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ।

कौतुक कहँ आए पुरबासी ।

मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ।।

बाजहिं ढोल देहिं बहु तारी ।

नगर फेरि पुनि पूँछ पजारी[1] ।

मजेदार कौतुक प्रधान हास्य का चित्र है यह । यह बाल-प्रकृति के अनुकूल ही है । अपनी लंबी पूँछ में लुक बाँधकर नाचने वाले इस बन्दर और ताली बजा - बजाकर उछलते कूदते राक्षस सपूतों को देखकर कोई बड़ा बूढ़ा व्यक्ति भी अनजाने हँस जाता है । यह साधारण कोटि का घटना-प्रधान हास्य है, इस बात में सन्देह नहीं । लेकिन जन साधारण की भावभूमि को स्पर्श करने के एकमात्र कारण से इसकी व्यापकता असंदिग्ध है ।

लंकादहन से भयभीत निशाचर - निशाचरियों की उक्ति भी हास्योत्पादक है :-

प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ तू पराहि बापु ।

बापु तू पराहि, पूत पूत तू पराहि रे ।[2]

लंकादहन के प्रसंग पर जहाँ हनुमानजी अपनी जलती हुई पूँछ इधर से उधर घुमाते हैं, वहाँ भी अपनी उत्प्रेक्षा और सन्देह को वे स्वभावसिद्ध हास्यप्रसंग दिखाते हैं :-

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल माल मानौ

लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।

कैधौं ब्योम - बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,

बीर रस बीर तरवारी सी उघारी है ।।

ध्यान से देखिए तो कई एक व्यापार जो देखने में केवल अलौकिकत्व विधायक प्रतीत होते हैं, हेतूत्प्रेक्षा के व्यंग्य से अपना प्रकृत स्वरूप खोल देंगे[3] ।

- -

1 रामचरितमानस - सुन्दरकाण्ड 24, 5, 6, 7

2 कवितावली - 5, 16

3 गोस्वामी तुलसीदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 104

14) रावण - अंगद - संवाद प्रसंग - व्यंग्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है रावण-अंगद संवाद । यह सचमुच एक वादप्रतिवाद (*Debate*) है । इस तर्क-वितर्क में जो वैदग्ध्य प्रकट है वही हास्योत्पत्ति का मूल कारण है । रावण के मन में बालिपुत्र अंगद से कृपा सहज तथा स्वाभाविक रूप से हुई होगी । वर्षों के पहले की कुछ घण्टों की बेबसी की याद रह रह कर रावण को सताती होगी ।

अंगद, रावण से अपने पिता की मिताई जोड़ते हैं । रावण पर करारा कटाक्ष पड़ने पड़ता इसी में है क्योंकि एक बार बालि ने रावण को अपने कांख में दबा लिया था । रावण पैंतरा बदल कर पूछता है ।-

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई

रावण को जरूर पता लगा होगा कि श्रीराम के हाथों से बालि मारा गया । रावण का व्यंग्य यही कि पितृघातक की सहायता ही अंगद कर रहा है । रावण का यह व्यंग्यबाण ठीक स्थान पर घाव पहुँचता है । लेकिन कुशल अंगद इससे हार माननेवाले थोड़े ही हैं । प्रश्न के उसी 'कुशल' शब्द को पकड़कर अंगद कितना हास्यमय व्यंग्य कसते हैं हम देखें ।

..... बिहसि वचन तब अंगद कहई
दिन दस गए बालि पहिं जाई ।
बूझेहु कुसल सखा उर लाई ।¹

रावण से बालि के कुशल पूछे जाने पर अंगद हँस उठता है और ठीक उत्तर यों देता है 'मुझसे उसका कुशल पूछते हो क्यों? तुम्हारा अंत भी अब निकट आ पहुँचा है । कुछ दिन धीरज धारण करते रहो । फिर स्वयं ही जाकर अपने मित्र को गले लगाकर उसकी कुशल पूछ लेना । 'अंगद यही चेतावनी देना चाहते हैं जहाँ बालि गया है वहीं कुछ ही दिनों के अन्दर रावण भी भेजा जायगा । मृत्युलोक में बालि से जब रावण की भेंट होने वाली है तब रावण अपने पुराने मित्र (?) से कुशल पूछ सकेगा ।

रावण को तिलमिला उठाने के लिए अंगद की यह करारी चोट ही काफी है -

---

1 रामचरितमानस - गीताप्रेस, गोरखपुर पृ.771

कहत दसानन नैन तेरी

खल तव कठिन बचन सब सहऊँ

नीति धर्म सब जानत अहऊँ ।[1]

अंगद का प्रत्युत्पन्नमतित्व प्रशंसनीय ही है । अंगद की हाजिर-जवाबी देखते ही बनती है । आप पर आयी लाठी को लौटा देना एक टेकनिक है और अंगद इस कला के प्रवीण थे । स्वयं रावण के ही शब्दों को लेकर उसी पर व्यंग्य यों कसते हैं

कह कपि धर्मशीलता तोरी

हमहुँ सुनि कृत पर तिय चोरी

नाक कान बिनु भगिनि निहारी

छमा कीन्ह तुम्ह धर्म बिचारी ।।

धर्मशीलता तव जग जागी

पावा दरस हमहुँ बड़ भागी ।।[2]

'जी, मैं धन्य हूँ कि ऐसे जगत-प्रसिद्ध धर्मात्मा के दर्शन हुए जिसने और किसी की पत्नी को चुरा लिया और अपनी सगी बहन के नाक-कान काटनेवाले को धर्म विचारकर क्षमाकर दिया'

जिस प्रकार जूलियस सीसर नामक नाटक में मार्क अन्टनी के भाषण में '   ' शब्द की पुनरावृत्ति करके व्यंग्य कसा गया है उस प्रकार धर्म शब्द की पुनरावृत्ति से अंगद ने राक्षस राजा अहंभावी 'रावणेश्वर' की खिल्ली उड़ायी है । एक एक धर्म शब्द एक एक बार का विषैला बाण है जो मर्मस्थान में चुभ जाता है । रावण जैसे पराक्रमी पर एक वानरकुमार का आक्रमण शारीरिक रूप में होगा तो निम्न हास्य का विषय होगा, लेकिन मानसिक रूप में होने के कारण यह हाज़िर जवाबी का उत्तम उदाहरण बन जाता है ।

---

1 रामचरितमानस - गीता प्रेस - गोरखपुर पृ.663

2 रामचरितमानस - गीता प्रेस - गोरखपुर पृ.663

इस संवाद के विवेचकों का कथन है कि यह बिलकुल देहाती ढंग का हो गया है अतः हास्य निम्नतल का बन गया है।[1] रावण राजा है और अंगद राजकुमार दोनों के कथोपकथन में शिष्टता की मात्रा अधिक होनी चाहिए थी। यह हास्य प्रसंग सचमुच देहातियों के लिए पर्याप्त मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करती है। इसमें उद्दण्डता और ग्रामीणता की झलक है। ऐसा प्रतीत होता है मानों मध्ययुग के कोई अपढ़ और लठैत जमींन्दार आपस में किसी बात पर झगड़ रहे हों। इस हास्यप्रसंग को देहाती लोग जितनी प्रचुरता से समझेंगे, उतना शहर के लोग नहीं समझ सकते क्योंकि देहात में तुलसी के रावण के स्वभाव वाले जमींन्दार प्रायः सर्वत्र मिलते हैं। रावण जैसे परस्त्री चोर को एक वानर से अपमानित कराने में तुलसी को ही मजा नहीं आया, अपितु उनके कई ग्रामीण पाठकों को भी बड़ा मजा मिलता है। रावण और अंगद दोनों ही एक दूसरे को खुली हुई गालियाँ दे रहे हैं और दोनों ही उन्हें सह भी रहे हैं। जब अंगद ने बिना नमस्कार - प्रणाम के राजसभा में प्रवेश किया तो रावण ने पूछा कवन तै बन्दर ? इन सब अनौचित्यों से निम्नतम की हास्य सृष्टि होती है।

चुटकी लेने में रावण भी कुशल है। अंगद की प्रशंसा का अभिनय करता हुआ वह कहता है कि सचमुच ही तुम प्रशंसा के पात्र हो :-

धन्य कीस जो निज प्रभुकाजा।
जहँ तहँ नाचइ परि हरि लाजा।।
नाचि कूदि करि लोग रिझाई।
पतिहित करै धर्म निपुनाई।
अंगद स्वामि भक्ति तव जाती।
प्रभुगुन कस न कहसि एहि भाँती।।[2]

अंगद की वानरजाति की लेकर मखौल करने में भी रावण अपनी कुशलता दिखाता है। परशुराम लक्ष्मण संवाद में जिस प्रकार परशुराम अपनी शक्ति का बड़ा बड़ा वर्णन कर डालता है, उसी प्रकार इस हास्य प्रसंग पर भी रावण अपने बल की बड़ाई कर सुनाता है।

घटना जन्य तथा अन्योक्तियों से जन्य हास्य इस प्रसंग पर हम देखते हैं।

---

1 तुलसी की काव्यकला - डा. भाग्यवती सिंह पृ. 308

2 रामचरितमानस लंका काण्ड - 23ख, 1, 2, 3 पृ. 601

15) भालु और कपि द्वारा हास्य - कपि और भालु को श्रीराम का सहायक बनाकर तुलसीजी ने हास्य प्रसंगों की सृष्टि करायी है । युद्ध क्षेत्र में उनके भिड़ने की भिन्न भिन्न प्रणाली तथा शत्रु के प्रति उनकी अलग अलग प्रतिक्रिया देखकर हम बिना हँसे न रह सकते ।

मारहिं काटहिं धरनि पछारहिं ।
सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं ।
गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं ।।
निसिचर भट महि गाड़हिं भालू ।
ऊपर ढारि देहिं बहु बालू ।।[1]

हमें स्मरण रखना चाहिए कि कपि दो प्रकार के शब्द करते हैं - एक प्रसन्नता में और दूसरा क्रोध में । दोनों - मामूली पाठकों में हास्य उत्पन्न करती है । उनकी कुशलता से किंतु में हम दोनों तरह के शब्दों को सुनते हैं ।-

एतना कपिन्ह सुना जब काना ।
किलकिलाइ धाये बलवाना ।।
लिए उठाइ बिटप अरु भूधर ।
कटकटाइ डारहिं ता ऊपर ।।[2]

हमें यह भी समझना है कि रात में कपि को कुछ सूझता नहीं । यही कारण है कि प्रदोष के आते ही बंदर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं और फिर भालुओं को ही अपना बल दिखाना रह जाता है ।

बन्दरों के उपद्रव को भी तुलसी ने बड़े ठिकाने से लिया है । एक तो बंदर की जाति और दूसरे बन गई उनकी सेना । फिर तो कहना ही क्या ? जहाँ कहीं पहुँचे उपद्रव आरंभ कर दिया ।

- -

1 रामचरितमानस - लंकाकाण्ड 87

2 वही लंकाकाण्ड 65

सुग्रीव तो -

तब मधुबन भीतर सब आये ।

अंगद सम्मत मधु फल खाये ।।

रखवारे जब बरजन लागे ।

मुष्टि प्रहार हनत सब भागे[1] ।।

मे हो गया था और लंका मे पहुँचे तो -

खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं ।

लंका सम्मुख सिखर चलावहिं ।।

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं ।

घेरि सकल बहु नाच नचावहिं ।।

दसनन्हि काटि नासिका काना । कहि प्रभु सुजस देहिं तब जाना[2] ।

विजय मे जो प्रसन्नता होती है वह जैसी वानरो मे दिखलाई देती है वैसी नरो मे नही होगी । हनुमान की प्रथम सफलता पर जो हर्ष वानरो को होता है उसकी कितनी सजीव वर्णना गोस्वामीजी ने प्रस्तुत की है -

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,

हनुमान पहिचानी भये सानंद सचेत है ।

बूडत जहाज बच्यौ पथिक समाज, मानो

आजु जाये जानि सब अंकमाल देत है ।

जै जै जानकीस, जै जै लखन कपीस कहि

कूदै कपि कौतुकि, नचत रेत रेत है ।

अंगद मयंद नल नीलबलसील महा,

बालधी फिरावै, मुख नाना गति लेत है[3] ।

1 रामचरित मानस - सुन्दरकाण्ड - 28

2 वही लंकाकाण्ड 5

3 कवितावली - सुन्दर काण्ड छ.सं.29

हास का यह उज्ज्वल चित्र प्रशंसनीय बन गया है ।

एक स्थान पर लंकाकाण्ड में वीभत्स के अन्तर्गत हास्य संचारी भाव होकर आया है ।-

ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठै
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरिकै[1] ।

हनुमान के युद्ध की भयंकरता से बचने के लिए राक्षस के योद्धा झूठमूठ ही भूमि पर गिरकर कराहने लगते हैं । उन्हें इस अवस्था में देखकर शिव और सिद्ध आदि भी हँस पड़ते हैं ।

16) कलियुग - वर्णन - उत्तरकांड के कलियुग वर्णन में वर्णाश्रम - धर्म के चित्रण में तुलसी की व्यंग्य प्रियता कुछ कुछ झलकती है । यहाँ लोक व्यवहार का कथन है । फिर भी उक्त कथन में काफी सरसता है -

बहु दाम सँवारहिं धामजती ।
विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही ।
कलि कौतुक तात न जात कही ।। ससु आरि पिआरि लगी जबते ।
रिपुरुप कुटुंब भए तब ते ।।

यहाँ शायद तुलसी रत्नावली पर अपनी आसक्ति की कटु आलोचना स्वयं कर रहे होंगे ।

17) बाबा की मजाक - यदि विविध भावों से भरे हुए हास को देखना है तो तुलसी के 'बावरो रावरो नाह भवानी' वाला पद ही देखना चाहिए ।-

बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बड़ो दिन, देत दए बिनु बेद बड़ाई भानी ।।
निज घर की बरबात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी ।
सिव की दई संपदा देखत श्रीसारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी ।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी ।।
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।

- -

1 कवितावली - लंका काण्ड छन्द 42

यह अविचार सीपिए बौराहि, सीख भली में जानी ।।
प्रेम प्रसंसा विनय व्यंग्य जुत सुनि विधि की बर बानी ।।
तुलसी मुदित महेस, मनहिं मन जगत मातुमुसकानी[1] ।।

इस पद में हास्य रस अपनी चरमसीमा पर पहुंच गया है । यह ब्रह्माजी का पार्वतीजी से कथन है । विनय और प्रेम से भरी प्रशंसा को इस प्रकार की व्यंग्यात्मक शैली में प्रकट करने से हास्यरस सृष्टि करने की अपूर्व कुशलता गोस्वामीजी ने दिखाई है । जगदम्बा पातिव्रत्य की प्रतिमूर्ति है । उनका यह कहना कि उनका पति बावला है, वेदमर्यादा का भंजक है, घर फूंक तमाशा दिखानेवाला है, अनधिकारियों को आकाश पर चढाये दे रहा है, कोई सरल बात नहीं । यह एक अनौचित्य ज़रूर है । लेकिन यह एक शाब्दिक व्यंग्य है । बाहर बाहर यह दोषारोपण मात्र है लेकिन भीतर भीतर यह शिव-श्लाघा है । उस शाब्दिक व्यंग्य के पीछे शिव श्लाघा का जो भाव छिपा है, उसी ने सदाशिव को मन ही मन मुदित कर दिया और फलस्वरूप जगदम्बा के अधरों पर स्मित की रेखा दिखाई पडी - तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगतमातु मुसुकानी ।

भोले बाबा की यह मजाक व्याजस्तुति का सुन्दर उदाहरण है । स्मित हास्य का इससे अच्छा उदाहरण मिलना मुश्किल है । आशुतोष शिवजी के दानीपन ने ब्रह्मदेव को इस चिन्ता में डाला कि पापियों को भी वे सदगति दे देते हैं तब भला स्वर्ग इतने लोगों के लिए स्थान कहां से आयेगा ? यह व्यंग्ययुक्त प्रशंसा शिव-पार्वती के होंठों पर मृदुमन्दहसी लायी ही ।

कवितावली की निम्नलिखित पंक्तियों में तुलसी ने शिवजी के प्रति परिहास, परिहासांकुर तथा विरोधोक्ति के द्वारा व्यंग्योक्ति उपस्थित की है :-

बीसी बिश्वनाथ की विषाद बढो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर - सहर की ।
कैसे कहै 'तुलसी' वृषासुर के बरदानि ।
बानि जानि सुधा तजि पीवनि जहर की[2] ।

---

1 विनय पत्रिका - 5

2 कवितावली - 7, 170

काशी को 'शंकर शहर' और शिवजी को वृषासुर के वरदाता तथा उनके द्वारा विषपान की चर्चा सभिप्राय की गयी है ।

ब्रह्माजी को भी पार्वती जी से शिकायत है कि तुम्हारे पतिदेव से तो मेरी नाक में दम आ गया है[1] ।

18) गोपियों के विरहोद्गार में व्यंग्य - कृष्ण-गीतावली में गोपियों के विरहोद्गार व्यंग्य-पूर्ण हैं । तुलसी ने बड़ी कुशलता से अपनी व्यंग्यकुशलता दिखायी है ।

एक गोपिका कहती है 'हमारे नेत्र दोषी हैं, ये न तो सारे सम्बन्धों को त्याग कर उड़कर श्याम के साथ ही लगे और न श्याममय ही हुए हैं । ये वास्तव में क्रूर, कुटिल और श्यामता लिये हुए हैं, ये ऊपर से श्वेत पर भीतर से काले हैं ।

इन नयनन की परतीति गई

उड़ि न लागे हरि संग सहज तजि ।

ह्वैन गये सखि श्याममई ।

सांचेहु क्रूर कुटिल सित मेचक ।।

वृथा मीन छवि छीन लई[1] ।।

कितना व्यंग्यपूर्ण है यह कथन ? दूसरी गोपिका का कथन देखें 'कृष्ण का कोई दोष नहीं, दोष मेरे मन का है, जिसने मेरे शरीर को इस प्रकार घुलना नहीं सिखाया जैसे जल और नमक । खेद है कि मेरे मन और शरीर ऐसे घुले जैसे दुग्ध और जल । अक्रूर हंस मेरे मन-दुग्ध को तो ले गया और शरीर जल को छोड़ गया ।

आपु मिलयो यहि बालि तजि

तनु मिलयो जलपय की नाई

ह्वै मराल आयो सुफलक सुत

लै गयो छीर नीर बिलगाई[2] ।।

एक अन्य व्याकुल गोपी की पीड़ा :-

देख्यो सुन्यो न कबहुं काहू कहुं मीन वियोगी वारि[3] ।।

- -

1 कृष्ण गीतावली - 24, 1-2

2 कृष्ण गीतावली - 25, 5

3 कृष्ण गीतावली - 27, 2

श्यामसुन्दर हमारे वियोग में क्यों तड़पने लगे मछली तो समुद्र से अलग होकर तड़पती है, पर क्या समुद्र भी मछली के अलग होने से तड़पता है ?

गोपिकाओं तथा उद्धव के संवाद के बीच एक गोपी ने व्यंग्यपूर्वक प्रस्ताव किया कि मेरी समझ में कुब्जारमण श्री कृष्ण ने प्रेम से जो कहा है, उस पर ही ध्यान देना चाहिए ।

कूबरी - रवन कान्ह कही जो मधुपसों
सोई सिख सजनी सुचित है सुनिए[1] ।

दूसरी ने व्यंग्य यों कहा :-

भली कही, आली हमहूं पहिचाने,
हरि निर्गुन, निलप निरपने,
निपट निठुर निज काज सयाने[2] ।

व्यंग्य ने तीव्रता यों ग्रहण की -

ब्रज को बिरह अरु संग महर को
कुबरिहि बरत न नेकु लजाने ।
समुझि सो प्रीति की रीति श्यामकी
सोइ बावरी जो परेखो उर आने[3] ।

एक और गोपी ने तीव्र व्यंग्य किया कि कृष्ण ने ये उपदेश कुब्जा से सीखे है, इन्हे उसने अपने कूबड़ रूपी बक्स में बन्द कर रखा था ।

कै ये नई सीख सिखई हरि निज अनुराग बिछोही ।
राखी सचि कूबरी पीठ पर ये बाते बुकचोही ।।
श्याम सो गाहक पाइ सयानी खोलि देखाई है गोही[4] ।

पर कुबरी के बक्स की यह निर्गुण - साड़ी बड़ी बारीक है, यह हमारे लायक नहीं, नगर की रमणियों के ही योग्य है, अतएव उसे लड़ सबके आ तो ।

---

1 कृष्णगीतावली - 37, 1
2 वही 37, 2
3 वही 38, 2
4 वही 41, 1-2

सुनते हैं कि कुब्जा ने वशी-करानी जड़ी सुंघाकर कृष्ण को वश में कर लिया है। बात बुरी हुई, क्यों कि ब्रज में रहे तो गोपियों से रास-विलास किया था और अब मथुरा में एक दासी से प्रेम जोड़ लिया है।

ब्रज में बसि रास विलास मधुपुरी चेरी सों रति मानी[1]।

सूर की गोपिकाओं के समान तुलसी की गोपिकायें भी व्यंग्य कसने में प्रवीण हैं।

इन प्रसंगों के अलावा भी कई हास्य प्रसंग हैं। जिन्हें हास्य से सब जोड़े नहीं जा सकते। मृदु-हास्य के प्रसंग तो वाल्मीकि-मिलन, सुती मिलन आदि के अवसर पर देखे जा सकते हैं। यह भी नहीं, तुलसी के आराध्य रामचन्द्र जी ने होली के हुड़दंग में आनन्द पूर्वक रस लिया है। देखिए ज़रा तो :-

चढ़े खरनि विदूषक - स्वांग-साजि की छूटि, निपट गई लाज भाजि।

नर-नारि परस्पर गारि देत सुनि हँसत राम भाइन समेत। गालियों की सृष्टि तो तुलसी ने अनेक स्थलों पर अनेक लोगों को करवाई है। शिव-विवाह प्रसंग पर वे लिखते हैं:-

नारि वृन्द सुर जेंवत जानी, लगीं देन गारी मृदु बानी।
गारी मधुर सुर देहिं सुन्दरि, व्यंग वचन सुनावहीं।
भोजन करहिं सुर अति विलम्ब, विनोद सुनि सचु पावहीं।।

राम विवाह प्रसंग में भी ऐसा है :-

जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी,
लै लै नाम पुरुष अरु नारी।
समय सुहावनि गारि विराजा,
हँसत राउ सुनि सहित समाजा।।

सुन्दरियों ने तो सुनाये व्यंग्य के वचन, लेकिन बारातियों ने पाये उनमें सिर्फ विनोद के भाव।

---

1 कृष्ण - गीतावली - 47, 3

समीक्षा : यहां हमने तुलसी की विनोदवृत्ति का परिचय प्राप्त करने की कोशिश की है। अब हम देखें कि इस हास्य क्षेत्र में उनकी पैठ कहां तक सफल हो सकी है। ऊपर वर्णित हास्य-प्रसंगों के आधार पर हम निर्भीक होकर यह भी कह सकते हैं कि गोस्वामी जी हंसना हंसाना खूब जानते थे। उनकी सूक्ष्मदर्शी प्रकृति, हास्य एवं व्यंग्य प्रसंगों को सूक्ष्म रूपसे, समझ सकने में इतने अधिक कुशल एवं सशक्त थी कि कोई ऐसा प्रसंग छूट न जाय जहां थोड़ी हास्य सृष्टि हो सके।

इस पृष्ठभूमि पर हम तुलसी की हास्य पद्धति निर्धारित करेंगे। इस हास्य पद्धति की तीन विशेषतायें हैं :-

(क) मर्यादित हास्य - स्मित हास्य – तुलसी स्मित हास्य पसंद करते थे न कि अट्टहास्य के। पुरुष और स्त्री दोनों के लिए वे इसी शिष्ट हास्य की अपेक्षा मानते थे। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में भाग लेने वाले आर्य नारी-पुरुष अधिकांश इस स्मित हास्य का ही अवलंबन लेते दिखाई पड़ते हैं। केवट के अटपटे प्रस्ताव जैसे एक दो स्थलों पर भले ही राम ने भी कुछ जोर से हंसने का अभिनय किया हो, किन्तु अन्यत्र वे स्मित में ही हंसते दिखाई देते हैं। उलटे, खलनायक रावण सदैव ही अट्टहास्य करता हुआ दिखाया गया है। सार यह कि तुलसी शिष्ट-स्मित हास्य को ही वांछनीय समझते थे

तुलसी कट्टर मर्यादावादी थे। उनके श्रीराम भी मर्यादापुरुषोत्तम थे। अतः शृंगार की भांति ही। तुलसी का हास्य भी मर्यादित था। वे स्मित हास्य के सफल स्रष्टा थे। उनकी हंसी दार्शनिक को हंसी थी जिसका अन्त 'शान्त' में होता था।

(ख) स्वाभाविक - तुलसी ने एक पृथक हास्य - चरित्र की सृष्टि नहीं कर डाली। किसी भी व्यक्ति का पूरा पूरा जीवन विदूषक की भांति हास्यपूर्ण नहीं रहता। अवसर विशेष पर प्रत्येक मनुष्य हास्य का आलम्बन बन सकता है। मानव प्रकृति के सफल ज्ञाता थे तुलसी। अतः उनका हास्य स्वाभाविक बन पड़ा है। यह, विदूषक के हास्य की भांति कृत्रिम नहीं।

- -

। तुलसी के शृंगार एवं हास्य रस में सात्त्विक आनन्द है, परन्तु कालिदास या उर्दू कवियों की तरह तुलसी जी ने नैतिक सीमाओं का उल्लंघन नहीं होने दिया।

- विश्वसाहित्य में रामचरितमानस की भूमिका से – श्रीराजबहादुर लामगोड़ा

(घ) करुण रस के कलाकार तुलसी की हास्य कला - सामान्यतः ऐसा ही देखा जाता है कि करुणरस के रस-सिद्ध कलाकार हास्य की सफल अवतारणा में पराजित होते हैं । कारण यह कि ये दोनों शत्रु रस माने जाते हैं । लेकिन बहुमुखी प्रतिभा के कलाविद तुलसीदासजी के सम्बन्ध में यह सिद्धांत लागू न हो पाता ।

व्यंग्य की लपेट में उत्तम विनोद और विनोद की लपेट में उत्तम व्यंग्य देने की कला में भी तुलसी सुदक्ष थे ।

-

चतुर्थ अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी कविता में हास्य (भाग-2)

चतुर्थ अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी कविता में हास्य (भाग - 2)

भूमिका :- पिछले अध्याय में पूर्व मध्यकालीन (भक्तिकालीन) हिन्दी के प्रतिनिधि कवियों के हास्य - व्यंग्य पर हमने प्रकाश डाला । अब हम उत्तर मध्यकालीन (रीतिकालीन) हिन्दी के प्रतिनिधि कवियों की हास्य-प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करेंगे :-

(1) केशव का हास्य - 'केशव रसिक व्यक्तित्व के कवि थे । खुश रहना, संसार के सुख भोग की धारा में तिरना और मन ही मन परमात्मा को न भुलाना - यही उनका धार्मिक सिद्धांत था'[1] ।

'केशव बड़े रसिक कवि थे । उनके विषय में एक बड़ी रोचक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वे वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर एक कुएँ पर बैठे थे । इतने में वहाँ कुछ स्त्रियाँ आयीं । उन्होंने उनके सफेद बाल देखकर बाबा कह कर सम्बोधित किया । इस पर कवि ने कहा :-

केसव केसनि असि करी जस अरिहु न कराहिं ।
चन्द्र वदनि मृगलोचनी 'बाबा' कहि कहि जाहिं[2] ।।

- -

1 प्राचीन कवि केशवदास - डा. एन. ई. विश्वनाथय्यर पृ. 22

2 (क) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 213

(ख) यही भाव संस्कृत में भी है :-

पाण्डुत्व शिरसिजास्तिलकं कपोले
दन्तावलिर्विगलिता न च मे विषादः ।
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य
तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः ।।

एक रसिक वृद्ध कहता है :- क्या करें । सिर के बाल सफेद हो गये, गालों पर झुर्रियाँ, दाँत टूट गए पर इन सब बातों का मुझे कोई कष्ट नहीं । हाँ, जब रास्ते में चलते समय मृगनयनी स्त्रियाँ मुझे देखकर पूछती हैं 'बाबा किधर चले?' तो उनका यह पूछना मेरे सिर पर वज्र की तरह गिरता है - रामचन्द्र वर्मा - हास्यरस पृ. 93

यद्यपि केशव ने अपने लक्षण ग्रन्थों से भिन्न काव्यों में रसाभिव्यक्ति को काव्य का परम ध्येय नहीं माना है और उन्हें रससिद्ध कवीश्वर कहना संभव नहीं है; तो भी यह मानना पड़ेगा कि रसाभिव्यंजना की कुशलता केशव में अवश्य थी ।

यद्यपि केशव में पग पग पर छन्द परिवर्तन एवं चमत्कार प्रदर्शन के कारण बहुत से स्थलों पर रसव्याघात हुआ है तथापि कुछ ऐसे स्थल भी देखने में आते हैं जहां वे प्रसंगानुकूल रसों एवं भावों की व्यंजना करने में सफल हुए हैं ।

'केशव ने 'रसिक प्रिया' में काव्य केलिए रस को सर्वोपरि महत्व को भी तो माना है'[1] ।

'कविप्र-रसिकों की प्रिया रसिक प्रिया रसिक कवि केशव की अत्यन्त प्रिय प्रिय - रतिका है'[2] ।

केशवदास उचित ही कहते हैं कि 'रसिकन को रसिक प्रिया कीनी' । केशव ने रसाल बानी के बिना कवियों को जड़ माना । रसिकप्रिया के प्रारंभ में एक ही राधाकृष्ण के विविध रस युक्त वर्णन करने की चर्चा मिलती है; अतएव रसिक प्रिया की संपूर्णता के लिए वे अन्य रसों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय देते हैं[3] ।

'आचार्य केशव का रसों पर पूर्ण अधिकार था । उनकी कृतियों में रसों का पूर्ण परिपाक पाया जाता है । हिन्दी के कुछ गण्य - मान्य कवियों की भांति उन्होंने किसी रस-विशेष को लेकर कविता नहीं की अपितु अपनी रचनाओं में सभी रसों का समावेश किया है ।

---

1 केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व पृ.178

2 प्राचीन कवि केशवदास - विमल चन्द्र शर्मा - डा.एन.ई.विश्वनाथय्यर पृ.22

3 केशवदास - जीवन और कृतित्व - डा.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर पृ 21

तथापि सर्वाधिक अवसर शृंगार को मिला है । रस - व्यंजन में उन्होंने स्वाभाविक, सजीव एवं आकर्षक चित्र अंकित किए हैं । शृंगार रस के रसराजत्व को दिखाते हुए अन्य रसों का शृंगार में सुन्दर रूप से अंतर्भाव किया है । उदाहरणों में जो सरसता एवं हृदयहारिता है वह कवि के सरस हृदय की पूर्ण परिचायिका है[1] ।

केशव हास्यकवि कभी नहीं थे । लेकिन कुछ प्रसंगों पर उन्होंने हास्यसृष्टि की है[2] । संवादों में उन्होंने अपनी वाग्विदग्धता प्रकट की है । '~~केशव की वचन विदग्धता प्रकट की है~~ । 'केशव की वचन विदग्धता व्यंग्य पूर्ण तथा वाक्छलाश्रित दिखाई पड़ती है । ..... संवादों में उत्तर-प्रत्युत्तर की रोचकता में व्यंग्यपूर्ण चटुल शब्दों का प्रयोग विशेष सौन्दर्य लाता है'[3] । अब केशव के हास्य पर हम प्रकाश डालेंगे :-

(1) बाण-रावण-संवाद :

रामचन्द्रिका के चौथे प्रकाश में राजा जनक की सभा में सीतास्वयंवर के लिए सम्मिलित राजाओं का परिचय केशव ने सुमति - विमति के संवाद द्वारा दिया है । सब राजाओं का परिचय समाप्त हो जाने पर रावण और बाणासुर प्रवेश करते हैं । दोनों एक दूसरे से सुपरिचित हैं, दोनों को अहंकार से भरा गर्व भी है । अतः दोनों की नोकझोंक दिखाकर केशवदासजी हास्यसृष्टि करते हैं । 'दैनिक बोलचाल की भाषा में दोनों एक दूसरे पर बड़े ही अनूठे ढंग से व्यंग्य प्रहार करते हैं'[4] ।

- - ---- - - - - - - - - - - - - - - - - - -- ------- - - ---- - - - - - -

1 केशव और उनका साहित्य - डा. विजयपाल सिंह पृ. 265

2 रामचन्द्रिका के प्रत्येक प्रकाश में हास्य - व्यंग्य संबन्धी छुट-पुट प्रयोग मिलते हैं । संबन्धी हिन्दी साहित्य में हास्य - व्यंग्य - डा. प्रेमनारायण टंडन पृ. 117

3 प्राचीन कवि केशवदास - डा. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर पृ. 95

4 आचार्य केशवदास - डा. हीरालाल दीक्षित पृ. 179

रावण रंगशाला में प्रवेश कर अपनी वीरता के अनुरूप घोषणा करता है ।

शम्भुकोदण्ड है । राजपुत्री किते ।
टूक द्वै तीन के । जाडु लंकाहि ते[1] ।।

यह सुनकर बाण व्यंग्य करता है ।

जुपै जिय जोर । तजौ सब सोर ।
सरासन तोरि । लहौ सुख कोरि[2] ।।

अहंवादि रावण के उत्तर पर बाण और भी व्यंग्य कसता है ।

'बहुत बदन जाके । विविध बचन ताके[3]' ।

व्यंग्य यह कि रावण के दस मुख है और जिसके इतने मुख होंगे, वह बातें भी उतनी तरह की बनायेगा; वह असत्य भी बोलेगा और छल कपटयुक्त वचन कहने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं करेगा । व्यंग्य तो तीखा जरूर है । लेकिन रावण भी उसी प्रकार व्यंग्य-मिश्रित स्वर में उत्तर देता है ।

'बहु भुज युत जोई । सबल कहिय सोई[4]' ।

अथवा

'अति असार भुज भार ही बली होहुगे बाण[5]' ।

तात्पर्य यह कि जिसके बहुत सी भुजाएं होती हैं, वही संसार में बली कहलाता है । व्यंग्य यह कि अनेक भुजाओंवाला व्यक्ति वीर कहलाता या समझा तो जाता है, परंतु वस्तुतः

---

1 रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, छं.सं.4, पृ.सं.54

2 रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, छं.सं.8, पृ.55

3 रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ.सं.57

4 रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ.सं.57

5 रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ.सं.57

होता नहीं । सच कहे तो बलहीन भुजाएँ तुम्हारे लिए बस भार-स्वरूप है । इन्ही बलहीन भुजाओं के बल पर बली कहलाना चाहना कितनी बेवकूफी है ?

बाण के बढ़ बढ़ कर बातें करने पर रावण एक बार फिर बाण के मर्मस्थल पर प्रहार करता है जो बाण के लिए असह्य हो जाता है :

तुम प्रबल जो हुते । भुज बलनि संयुते ।
पितहि भुव ल्यावते । जगत यश पावते[1] ।

बाणासुर, राजा बलि का पुत्र है । इस महाबलि को वामन ने छला था और पाताल का राज्य दिया था । अतः बाणासुर अपनी भुजाओं का बल जब बखानता है तब रावण व्यंग्य करता है कि यदि तुम्हारी भुजाओं में वैसी ही शक्ति है जैसी तुम बता रहे हो तो पिता को पाताल के कारागार से उद्धार करके उन्हें इस पृथ्वी पर लाते क्यों नहीं ?

लेकिन चतुर बाणासुर उसका मुँहतोड़ जवाब देता है :

पितु आनिए केहि ओक । विषयविलासबलोक ।
यह जानु रावण दीन । पितु ब्रह्म के रस लीन[2] ।।

रावण ब्राह्मण है । अतः बाणासुर का व्यंग्य है कि अपने पिता को पृथ्वी पर का तो मैं कभी ला सकता हूँ, परंतु लाकर उन्हें बैठाऊँ कहाँ ? वे तो तुम जैसे दीन ब्राह्मणों को सारी पृथ्वी का दान कर चुके हैं, तब क्या उसी दान की हुई पृथ्वी का फिर उपभोग करने के लिए उन्हें यहाँ लाऊँ ? और एक बात भी है । वे ब्रह्मानंद में लीन रहनेवाले वीतरागी पुरुष हैं, तुम्हारी तरह विषयानंद के पीछे दौड़नेवाले कामिनी प्रिय नहीं । अतएव उस ब्रह्मलीन पुरुष को इस पृथ्वी पर लाना क्या उचित होगा जहाँ तुम्हारे जैसे विषय लोलुप जीते है ।

रावण ने अब अधिक बात बढ़ाना उचित न समझा । उसने सीता को देखकर धनुष पर अपना बल-प्रयोग करने का प्रस्ताव किया । रावण के अनुचित प्रस्ताव किया ।

1 रामचन्द्रिका - पूर्वोद्धृत, छ सं 13 पृ.18
2 रामचन्द्रिका - पूर्वोद्धृत, छ सं 14 पृ.18

रावण के अनुचित प्रस्ताव को सुनकर बाण मुंह तोड़ जवाब देता है।

रावण का कहना है :

'बाण न बात तुम्हैं कहि आवै'[1]।

बाण का व्यंग्य पूर्ण उत्तर देखिए :

'सोई कही जिय तोहि जो भावै'[2]।

जब रावण गंभीर होकर कहता है कि-

'काकरिहौं हम योंही बैरें ?'[3]

तब बाण भी गंभीरता के साथ रावण को उसके प्रति सहस्रार्जुन द्वारा किए गए व्यवहार की याद दिलाता है।

'हैहयराज करी सो करैं'[4]

जिस रावण को महापराक्रमी राम से लोहा लेना था, उसके लिए धनुष तक उठा न सकना अच्छा न लगेगा। अतः रावण, धनुष के पास जाकर उसकी परीक्षा करता है। फिर बुद्धिमानी से हटकर बाण से कहता है।

'हौ बालक मोहि लेहो बढाय। कहु तुमहुँ लै देखौ उठाया'[5]।
लेकिन चतुर बाण यह कहकर चला जाता है कि

'मेरे गुरु को धनुष, यह सीता मेरी माय'[6]।

---

1 रामचन्द्रिका - पूर्वोद्धृत पृ.62

2 रामचन्द्रिका - पूर्वोद्धृत पृ.62

3 रामचन्द्रिका - पूर्वोद्धृत पृ.62

4 रामचन्द्रिका - पूर्वोद्धृत पृ.62

5 रामचन्द्रिका - पूर्वोद्धृत पृ.65

6 रामचन्द्रिका - पूर्वोद्धृत पृ.65

रावण और बाण के इन बहानों पर भी पाठक मन ही मन हँस जाता है।

'बाण के पास यदि कोई प्रबल तर्क है तो रावण के पास उसका मुँह तोड़ उत्तर तुरन्त हाजिर है'[1]।

(2) राम-परशुराम भेंट प्रसंग।

राम-परशुराम भेंट प्रसंग में जहाँ तुलसी ने पर्याप्त हास्य की सृष्टि की है वहाँ केशव केवल एक - दो स्थलों पर इसका आभास मात्र ही दे सके हैं। परशुराम को देखते ही आतंकित शूरवीरों का अस्त्र - शस्त्र फेंककर भागना और नारी-वेष धारण करना कुछ हास्यास्पद लगता है। हास्य की एक झलक उस समय दिखाई देती है जब परशुराम जी कुठार को सम्बोधित कर कहते हैं कि लक्ष्मण के पूर्वजों (अर्थात् क्षत्रियों) ने जो पुरुषार्थ किया है वह अवर्णनीय है। उन्होंने नारीरूप धारण करके दया - प्रार्थना द्वारा ही अपने प्राण बचाए थे[2]।

मानस में तो राम के साथ केवल लक्ष्मण है; लेकिन चन्द्रिका में चारों भाई साथ हैं। चन्द्रिका में पहला व्यंग्यबाण भरत ने छोड़ा है। राम के द्वारा शिव-धनु तोड़ा जाना जानकर जब परशुराम अपने कुठार से राम की रक्त-सुधा का पान करने को कहते हैं तब भरत यों कहता है 'हे भृगुपति। जरा सोच समझकर बोलो। तुम्हें उतनी ही बात कहनी चाहिए जितनी तन-मन से पूरी कर सकोगे। तुम ब्राह्मण हो अतः अपने यश की रक्षा कर सकने वाली बात ही कहो। एक बार राम का रक्त पान करने की बात तुमने कह दी, और हम उसको भूलेंगे। लेकिन एक बात; ऐसी बात आगे जबान से मत निकालना। शीतल चन्दन भी रगड़े जाने पर आग निकलता है। तुमने हैहयराज आदि क्षत्रियों को मारकर जो यश पाया है, उसे युग युग तक बनाये रखना ही अच्छा हो[3]। संकेत यह कि अगर हमसे

- -

1 प्राचीन कवि केशवदास - डा.एन.ई.विश्वनाथय्यर पृ.94

2 लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई।
वेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्यो हरई।। रा.च.प्र.7 छ.36

3 बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिए तन मन बनि आवै।
....
हैहय मारे, नृपति संहारे, यह जस लेकिन जुग जुग जीजै।
रामचन्द्रिका - पूर्वार्ध - छ.22 पृ.23।

भिड़ोगे तो पराजित हो जाओगे तथा पूर्वार्जित यश भी गवा बैठोगे ।

परशुराम ने भरत का व्यंग्य समझा, लेकिन अपने क्रोध को भीतर दबाकर यों बोले 'ठीक है, तू अपने को चन्दन सा कह रहा है । अच्छा तो, देखूँ तुममें कैसी और कितनी आग है'[1]। राम ने भरत को किसी न किसी प्रकार शान्त किया । लेकिन शत्रुघ्न ने परशुराम से व्यंग्यपूर्वक यों कहा " हो भृगुनंद बली जग माहीं"। इसका अभिधार्थ तो यह है कि सचमुच आप संसार में बड़े बली हैं । लेकिन इसका व्यंग्यार्थ है कि संसार के साधारण जीवों पर ही आपका बल चल सकता है, न कि हम जैसे अलौकिक वीरों पर ।

परशुराम शत्रुघ्न का व्यंग्य तो समझते हैं, इसलिए ही वे कहते हैं 'तुम लोग तो राम को लेकर घर चलो । मैं ज़रा इस शत्रुघ्न से समझ लूँ । अपने को ये महाप्राय सांसारिक वीरों में न गिनकर असाधारण बता रहे हैं, अतः पहले इनसे निबट लूँ और अगर जीता बचा तो तुम लोगों से युद्ध करूँ[2]।

अब लक्ष्मण की बारी आयी है । वे बोले 'आप ब्राह्मण हैं । आपके आशीर्वाद से मंगल होता है । अतः आपको दण्ड देने की बात हम कैसे सोचेंगे ? भला आपही बताइए कि जिनकी अक्षत, पुष्प आदि से पूजा की जाती है, उनको सक्षत या घायल करने की बात हम कैसे सोच सकते हैं[3] । लक्ष्मण का व्यंग्य है कि आपको दंड देने तथा आपके शरीर को सक्षत करने में हम सहज ही समर्थ हैं । लेकिन ब्राह्मण होने के कारण आप संसार में पूजनीय हैं । अतः हम क्षमा से काम लेते हैं । आपकी भलाई यह है कि आप भी बुद्धि से काम करें और हमें अधिक उत्तेजित न करें ।

- -

1 बली कही आपने तैं, उठाय आगि अंग तैं । रामचंद्रिका छ. 23 पृ.232

2 यह बात सुनी भृगुनाथ जबै । कहि रामहिं लै घर जाहु अबै ।
इनपै जग जीवत जो बचि हौ । रन हौ तुम सौं फिर कै रचिहौ ।
रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध छं. 30 पृ.132

3 जिनको सु अनुग्रह वृद्धि करै । तिनको किमि निग्रह चित्त धरै ।
जिनके जग अक्षत सीस धरै । तिनको तन सक्षत कौन करै ?
रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध छं 32 पृ.135

लक्ष्मण की इस बात का समर्थन रामने भी यों किया 'शत्रु के ललकारने पर उससे यदि युद्ध न किया जाय तो वीर को अपयश ही मिलता है। आप हमें बार बार चुनौती दे रहे हैं, लेकिन आपको ब्राह्मण जानकर हम युद्ध करने को प्रस्तुत नहीं। इससे हमें अपयश हो तो हो जाय। सूर्यवंश का कोई भी ब्राह्मण से युद्ध नहीं करेगा'।[1]

इसके दो व्यंग्यार्थ हैं। हम आपसे लड़ने में असमर्थ नहीं, लेकिन अवध्य वर्ग होने के कारण हम आपको छोड़ रहे हैं। इसमें कोई हमें भीरु समझे तो भी हम उसकी परवाह नहीं करते। यही पहला व्यंग्यार्थ है। दूसरा व्यंग्यार्थ गूढ़ है। अब तक आप क्षत्रिय-विनाश सफल रूप से करते रहे क्योंकि आप में विष्णु का अंश था। अब आप कोरे ब्राह्मण मात्र बन गए हैं। अतः आपकी शक्ति कम हो गयी है। लेकिन परशुराम इतने पर भी राम का व्यंग्य नहीं समझे। जब परशुराम उनको मार डालने के लिए उतारू हो जाता है तब लक्ष्मण तीखा व्यंग्य कसता है 'जिस गुरु या ब्राह्मण वर्ग का प्रतिपालन और रक्षा करने को हम लोग शस्त्र धारण करते हैं, उसके गुण-अवगुण का ध्यान न करके उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व निभाते रहते हैं। लेकिन मातृवध और स्त्रीवध करके भी आनन्दित होनेवाले आपको देखकर हम यही कहते हैं कि गुरु या विप्र-वध कर डालने से हमें कोई पाप न लगेगा।

श्रीराम भी व्यंग्य कसने लगते हैं सारे संसार को जीतकर जो यश आपने प्राप्त किया है, वह इन बालकों के लिए भार स्वरूप होगा। ये बेचारे इसे ढो भी कैसे सकेंगे?[2] व्यंग्य यह कि अब भी अपनी भूल समझ जाइए और इन बालकों को ज्यादा न छेड़िए। जिन्हें आप साधारण बालक समझ रहे हैं, उनमें आपको जीत लेने की शक्ति है। यदि आप इनके मुंह में जाकर कूदेंगे तो अपना विश्वविजयी यश खो बैठेंगे।

---

1 लोक में लोक बड़ो अपलोक,
 सु केसवदास जु होउ सु होउ।
 विप्रन के कुल को भृगुनन्दन।
 सूर न सूरज के कुल कोउ। रामचन्द्रिका पृ.137

2 भृगुकुल-कमल-दिनेस सुनि,
 जीति सकल संसार।
 क्यों चलिहै इन सिसुन पै,
 डारत हो जस-भार।। रामचन्द्रिका प्र.7 छ 38

इस हास्य प्रसंग की श्रेष्ठता के बारे में डा. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर के शब्दों को उधार लेकर हम यों कहेंगे' परशुराम-संवाद में क्रोधी परशुराम की हर एक चुनौती का उत्तर उसी ढंग से जो लक्ष्मण, भरत आदि देते हैं, वह बड़ा ही रोचक और भावोद्दीपक है । .... परशुराम की धमकी जितनी तेज है उतना ही तेज राम का प्रत्युत्तर है । ऐसे ही संवाद रचना को वाग्विदग्धता कहते हैं[1] ।

(3) अंगद-हनुमान संवाद -

रामचन्द्रिका के तेरहवें प्रकाश में केशवदास ने व्यंग्य-योजना का एक मौलिक प्रयास किया है । सीता की खोज में अंगद के नेतृत्व में हनुमान आदि दक्षिण की ओर जाते हैं । अवधि बीत जाती है, लेकिन सीता का कुछ पता चलता नहीं । इस अवसर पर अंगद कहता है कि बर लौटने पर तो सुग्रीव मुझे जीता न छोड़ेगा, अतः यहीं कहीं पर बनाकर रह जाने में ही अपनी कुशल है । इस पर हनुमान उसे यों समझाते हैं ।

अंगद ! रछा रघुपति कीन्हो ।
सोध न सीता जल, थल लीन्हो ।
आलस छांडौ कृत उर आनौ ।
होहु कृतघ्नी जीत, सिख मानौ[2] ।

हनुमान की बात तो सीधी-सादी है । अंगद पर व्यंग्य कसना उसका ध्येय नहीं। लेकिन बात तो उलटी बन जाती है । हनुमान यों ही कहता है -अंगद । तुम्हारे पिता बालि को मारकर भी राम ने तुम्हारी तो सुग्रीव से रक्षा ही की है । साथ ही तुम्हें युवराजपद भी दिलाया है । उनका यह उपकार तुमको नहीं भुलना चाहिए । इसका बदला तुम सीता की खोज करके चुका सकते हो । थल की खोज में सीता को न पाकर

---

1 प्राचीनकवि केशवदास - डा. एन. ई. विश्वनाथय्यर पृ. 96
2 रामचन्द्रिका पृ. 180

निराश न होना चाहिए । अभी समय बाकी है । उपकार्य का कार्य न करना कृतघ्नता है । अतः आलस्य छोड़ कर प्रयत्न करना चाहिए । हनुमान के इस उपदेश में अन्य लोग कुछ नहीं देखेंगे, लेकिन कृतघ्नी शब्द का प्रयोग अंगद को खटका देता है । वह खीजकर यों कहता है । 'वह बूढ़ा जटायु धन्य है जिसने दूर से सीता की करुण पुकार सुनकर अकेले होने पर भी रावण को विरथ कर दिया और वीरगति प्राप्त की । और हनुमंत ! तुम्हें धिक्कार है कि तुम पांच जन होते हुए भी सीता द्वारा तुम्हारे नक्षत्र रूप को देखकर कुछ आभूषण गिरा जाने और इस प्रकार प्रत्येक सहायता की भीख मांगने पर भी, 'राम-राम' पुकारती बिलखती उस अबला का हरण करनेवाले रावण का जरा भी विरोध न करके शांत बैठे रहे । आज तुम मुझे आलसी और कृतघ्न बताकर उपदेश दे रहे हो । क्या यह नीति की बहुत प्रसिद्ध बात उस समय तुमने नहीं सुनी थी कि जो विपदासन्न गाय, विप्र, राजा और स्त्री की आर्त्त वाणी सुनकर - सहायता की याचना न करने पर भी - स्वयं बचाने को न दौड़े और चोर आदि को दंड न दे, वह घोर नरक का भागी होता है[1] ।

अंगद का यह व्यंग्यपूर्ण उत्तर हनुमान को निरुत्तर कर देता है ।

(4) अंगद-रावण-संवाद -

'रावण-अंगद-संवाद केशव के वचनविलास का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । इस संवाद में रावण और अंगद दोनों ही बड़े चातुर्य के साथ एक दूसरे पर व्यंग्य करते हुए प्रतिपक्षी की हीनता और अपनी महत्ता प्रदर्शित करते चलते हैं[2] ।

- -

1 धीरन जटायु गीध धन्य एक जिन रोकि
 रावन विरथ कीन्हो सहि निज प्रानहानि ।

 ....
 गाइ द्विजराज तिय काज न पुकार लागि
 भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि ।। रामचन्द्रिका प.सं. 330

2 केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व - किरणचन्द्र शर्मा पृ. 125

रामचन्द्रिका के सोलहवें प्रकाश में रावण अंगद संवाद वर्णित है । रावण के कुछ विषैले प्रश्न और अंगद के व्यंग्यपूर्ण उत्तर ज़रा देखें :-

कौन के सुत? बालि के । वह कौन ? बालि न जानिए ?
कांख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये ।
है कहां वह वीर ? अंगद देवलोक बताइयो ।
क्यों गयो ? रघुनाथ - बान - विमान बैठि सिधाइयो ।

जब रावण समझता है कि जो आया है वह बालि का पुत्र है तब बालि की सारहीनता दिखाने के लिए वह पूछता है कि वह बालि कौन है । ऐसा बहाना है कि रावण ने बालि का नाम तक न सुना है । इस पर अंगद विषैले व्यंग्य बाण ही छोड़ता है जो रावण के लिए एक दुखद घटना है। अंगद का प्रश्न है 'क्या तुम उस बालि को नहीं' जानते जो तुम्हें कांख में दबाकर सात समुद्रों में स्नान करता फिरता था'। लेकिन रावण हिम्मत हार बैठने वाला नहीं । वह पूछता है 'तुम्हारा पिता इतना सक्त था तो अब वह कहां है ? सूचना यह कि इसलिए ही उसे असामयिक मृत्यु पानी पड़ी । रावण का मत है बालि को उचित सजा ही मिली । लेकिन अंगद पीछे हटनेवाला योद्धा ही है । वह उत्तर देता है कि पिता अब राम के बाण रूपी विमान पर चढ़कर स्वर्ग चला गया है । व्यंग्य यह कि जिस बालि में इतनी शक्ति थी कि तुझे कांख में दबाकर इतना निश्चिंत हो जाय कि अपना स्नानादि का दैनिक कार्यक्रम यथावत् करता रहता था, वही जब राम के बाण से मारा गया तब रावण / तेरी तो शक्ति ही कितनी है ? तुझे तो मारने के लिए राम को उतना भी श्रम नहीं करना पड़ेगा ।

आगे राम का परिचय भी इसी प्रकार व्यंग्यपूर्ण प्रश्नोत्तर में है -

- -

1 रामचन्द्रिका - पूर्वार्द्ध - प.सं. 338 (पृ. 13)

राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं । कौन कबै रिपु जीत्यो कहा ?
बालि बली । छ लसो । भृगुनंदन गर्ब हर्यो । द्विज दीन महा ।
दीन सु क्यौं, छिति छत्र हत्यो, बिन प्रानिन हैहयराज कियो ?
हैहय कौन ? वहै बिसर्यो जिन खेलत ही तुम्हें बाँधि लियो[1] ।।

जब रावण - अंगद संवाद चल रहा था तब मेघनाद भी बोल उठता है कि राम ने समुद्र बाँधा तो कौन कमाल किया । मैं ने तो पल भर में देवराज को बाँध लिया था । इसके उत्तर में अंगद कहता है -

चेटक सो धनु भंग कियो प्रभु रावरे को अति जीर्ण हो ।
बान समेत रहे पचिकै तुम जा सह पै न तच्यो पल हो ।
बान सु कौन ? बली बलिको सुत । वे बलि बावन बाँधि लियो ?
वोई सु तो जिनको घिर चेरिनि नाच नचाइकै छाँड़ि दियो[2] ।।

देखिए इस पद की पहली पंक्ति का व्यंग्य कितना सुन्दर है । तु कहता है कि राम में कोई शक्ति नहीं है और रावण बहुत शक्तिशाली है । तब जनक की सभा में जिस धनुष को राम ने तोड़ा था उसे तोड़ने का प्रथम अवसर पाकर भी रावण क्यों नहीं तोड़ पाया था । पूर्वोत्तम पंक्ति में बलि का परिचय जानने के लिए रावण व्यंग्य करता है कि वही राजा बलि जिसे वामन जैसे बौने ने बाँध लिया था ? अंगद का उत्तर है 'हाँ, हाँ, वही बलि जिसकी बूढ़ी दासियों ने तुझे नाच नचाकर छोड़ा था ।

रावण जब अपनी शक्ति की बड़ी प्रशंसा करता है तब अंगद उसे चेतावनी देता है कि अब भी चेतजा, नहीं तो तेरा अंत समय निकट ही है -

1 रामचन्द्रिका - पूर्वार्द्ध - छ.सं.11 पृ.सं.382
2 वही 13

पैट चढ्यो पलना पलिका चढि पालकिहू चढि मोह मढ्यो रे ।
चौक चढ्यो चित्रसारी चढ्यो गज-बाजि चढ्यो गढ़गर्व चढ्यो रे ।
व्योम-विमान चढ्योई रह्यो कहि केसव सो कबहूं न पढ्यो रे ।
चेतत नाहि रह्यो चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिता हू चढ्यो रे ।।[1]

रावण यह सुनकर राम की स्थिति पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि जो घर से निर्वासित है, जिससे भाई (छोटे भरत) बिना सेना की सहायता के ही राज्य छीन लिया, जिसके पास वानरों की ही सेना है, वह मुझसे युद्ध क्या करेगा ? व्यंग्य यह कि अयोध्या का राज्य तो राम को प्राप्य था, जब उसे छोटे भाई ने छीन कर देश से निकाल दिया, तब वह राम मेरा राज्य क्या छीन सकेगा ? उसके पास योद्धाओं की सेना भी नहीं, अतः उसकी विजय संभव ही नहीं । सेना है असभ्य वानरों की ।

रावण को तीन बातों का गर्व है । वे हैं (1) कैलास उठाने का (2) सिर काट काटकर चढाने का और (3) इन्द्र को हराने का । अंगद कहता है कि पर्वत तो वानरों के बच्चे बराबर उठाया करते हैं; क्या वे वीर पुकारे जाते हैं ? बाजीगर तो रोज सिर काटने का खेल किया करते हैं । क्या वे वीर कहलाते हैं ? कबड्डी के खेल में दूसरे पक्ष के खिलाड़ियों को मारनेवाला सुभट पुकारा जाता है क्या ? रही बात इन्द्र को हराने की सो वह तो हारा था अहल्या के शाप से, उसको हराने का यश तू कैसे ले रहा है[2] ?

उत्तर प्रत्युत्तर के क्रम से बातों की धारा को मोड़कर अपनी प्रत्युत्पन्न-मति का परिचय देते हुए अंगद चतुराई से राम की महत्ता और रावण की हीनता के लिए वचन-विदग्धता का आश्रय लेता है ।

---

1 रामचन्द्रिका - छ.सं. 15

2 जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर ऐसे कोटि कपिन के बालक उठा वही
काटे जो कहत सीस काटत घनेरे घाघ मागर के खेले वहा भट-भाट पावही ।
जीत्यो जु सुरेस रन साप रिपुनारि ही को समझहु हम दि्वजन्नाते सकुचा वही ।।
- रामचन्द्रिका छ. सं. 17

(5) रावण - हनुमान संवाद

रावण - हनुमान संवाद केशव के वाग्वैदग्ध्य एवं व्यंग्य का सुन्दर उदाहरण है । समस्त संवाद हास्यपूर्ण है ।

रे कपि कौन तु ? अक्ष को घातक, दूत बली रघुनन्दन जू को ।
को रघुनन्दन रे ? त्रिशिरा-खर-दूषण दूषण भूषण भू को ।।
सागर कैसे तर्यो ? जस गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखौ ।
कैसे बँधायो ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखौ[1] ।।

इसमें केशव ने युक्ति - पूर्वक राम की महिमा उनके रूप और बल का तथा रामभक्तों के आचरण का वर्णन किया है ।

रावण का प्रश्न है 'रे कपि कौन तु ?' । अक्षकुमार की स्मरणा दिलाता हुआ हनुमान अपने को अक्षयकुमारघातक के रूप में परिचय देते हैं । पुत्रघातक पिता के आगे प्रकट होकर ठीक ठीक अपने को परिचित कराता है । 'बली रघुनन्दन' के बारे में सुनकर रावण जब उस राम के बारे में अज्ञता प्रकट कर यही दिखाना चाहता है कि उसके जैसे एक चक्रवर्ति को ऐसे सारहीन व्यक्तियों को समझने की आवश्यकता नहीं । देखिए कितना अच्छा उत्तर हनुमान देता है । हनुमान ने पहले अपना परिचय दिया था, अब अपने मालिक का परिचय देता है त्रिशिरा खर-दूषण आदि के अंतक के रूप में । रावण ने हनुमान से पूछा कि 'तू ने समुद्र किस प्रकार पार किया ?' उन्होंने उत्तर में कहा 'जैसे गोपद । पुनः प्रश्न हुआ 'तु किस काम से यहां आया है ?' उत्तर मिला 'मैं सीताजी के चोर को ढूंढना चाहता हूँ । 'तु बन्धन में कैसे पड़ा ?' इस प्रश्न के पूछे जाने पर उत्तर मिला 'मैं ने तेरी पत्नी को सोते समय आँख से देखा था,

---

1 रामचन्द्रिका प्र. 14 छं. 1

उसी पाप के कारण बन्धन में पड़ना पड़ा । यहाँ व्यंजना यह निकलती है कि परस्त्री को केवल नेत्रों से छूने मात्र से मेरी यह दुर्दशा हुई है कि मुझे बन्धन में पड़ना पड़ा तो समझ ले कि तू जो पर स्त्री अपहरण करनेवाला है किस दशा को प्राप्त होगा । यह भाव, व्यंजना के द्वारा बहुत अच्छे ढंग से व्यंजित है । लाला भगवानदीन के अनुसार इससे व्यंजना यह निकली कि रामभक्त पराई स्त्री को आँख से देखने को भी पाप समझते है और उसके दण्ड को यहीं भोग लेते है[1] । इस हास्य प्रसंग को गूढ़ार्थ साधारण पाठक समझ नहीं सकता । चाहे व्यंग्यार्थ कुछ भी हो, इस प्रकार का कथन सूझ का विषय है । यह मस्तिष्क की उपज है, हृदय की नहीं[2] । उक्त प्रसंग का आधार हनुमन्नाटक है[3] ।

(6) रानियों तथा वानरों का लुका छिपी खेल

राम चन्द्रिका के उन्नीसवें 'प्रकाश' में केशवदास को एक मौलिक विनोद सूझा है । रावण यज्ञ कर रहा है और वानर पहुँचते है उसको विध्वंस करने । अनेक प्रकार के उपक्रम किए उन्होंने, लेकिन रावण का ध्यान टूटा नहीं । अंत में अंगद ने अन्य वानरों को साथ लेकर मंदोदरी आदि रानियों को पकड़ने की बात सोची । जब वानर उन्हें पकड़ने दौड़े तो रानियाँ चित्रशाला में जा छिपी । वहाँ भी वानर पहुँचते है, लेकिन वहाँ के चित्रों को देखकर चकित से रह जाते है, समझ ही नहीं पाते कि ये निर्जीव है या सजीव ।

- -

1 रामचन्द्रिका प्र.14, छं.1 की टीका, पृ.239

2 केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व पृ.125

किरणचन्द्र शर्मा

3 रे रे वानर को भवानहम रे त्वत्सून् हन्ताहवै,

दूतो ई [illegible]नस्य जयतो कोदण्डदीक्षागुरोः ।

हनुमन्नाटक अंक 6 श्लोक 22

वानरों की इस अज्ञानता के बारे में रानियाँ जानती हैं । वानरों का नेता अंगद है और रानियों की नेत्री है मंदोदरी । दोनों में लुकाछिपी का खेल चलता है । अंगद जिस ओर किसी पुतली को रावण की रानी समझकर दौड़ता है, मंदोदरी उस ओर से बचकर दूसरी ओर निकल जाती है । इस प्रकार सारी चित्रशाला में बहुत देर तक दौड़ धूप करने के बाद भी अंगद और उसके साथी किसी को पकड़ नहीं पाते । वानरों की इस असफलता पर कवि भी व्यंग्य करने से नहीं चूकते । वे कहते हैं कि पर्वत की गुफाओं में बसनेवाले ये बन्दर भला सुन्दरियों को पहचान भी कैसे सकते ? उसी समय अंगद एक पुतली को सजीव स्त्री समझकर जा पकड़ता है, परंतु वह एक पुतली थी, अतः उनकी अच्छी तरह परख करने के पश्चात् खीझकर छोड़ देता है । उसकी खिसियाहट देखकर एक देवकन्या हँस पड़ती है और यह हँसना ही सारा खेल खतम करता है । अंगद हँसनेवाली देवकन्या को जा पकड़ता है । बेचारी भयभीत होकर मंदोदरी का स्थान बताकर छूट पाती है[1] ।

(7) लव - शत्रुघ्न संवाद

'रामचन्द्रिका' में पैंतीसवें और सैंतीसवें प्रकाश में अयोध्या की सेना से लव-कुश के युद्ध का वर्णन है । सबसे पहले आता है शत्रुघ्न जो कहता है कि लव के बालरूप को देखकर उसे करुणा आ रही है । इस पर लव का व्यंग्य है 'छोटे मुँह बड़ी बात मत करो । मुझे लवणासुर मत समझो, जिसको मारने में तुम्हारी कोई वीरता नहीं थी । वह तो ब्राह्मणों से द्वेष करने के कारण पहले ही मृतक था । जो तुमने और को मारा तो क्या मारा ?'[2]

- -

1 भगी देखिकै संकि लंकेसबाला । दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला ।
तजे दृष्टि के चित्र की सृष्टि कन्या । हँसी एक ताकी तहीं देवकन्या ।।
रामचन्द्रिका, तेरहवाँ प्रकाश - छन्द 87

2 कछू बात बड़ी न कही मुख थोरे ।
मर ही जु रह्यो सु कहा तुम मारयो ।।
रामचन्द्रिका - प्र. 37

शत्रुघ्न ने त्रिशूल के समान भयंकर तीन तीर छोड़े जो लव के गात में फूल जैसे लगे। वह इस पर पुनः व्यंग्य करता है 'ये तुमने तीर मारे हैं या मेरे शरीर का पूजन किया है ? जरा यह तो बताओ कि आज तक तुमने कौन सा शत्रु मारा है जो शत्रुघ्न कहलाते हो'[1]।

(७) लव - विभीषण संवाद

रामपक्षियों से युद्ध करते समय विभीषण लव से युद्ध करने आता है। लव का व्यंग्य यों कसा जाता है 'हे विभीषण ! तू अपने को वीर और कुल-भूषण समझता है, परंतु कार्य तो तेरे सर्वथा कायरों और कुल को कलंकित करनेवाले हैं। तभी तो तू लंका का युद्ध आरंभ होते ही अपने प्राणों के भय से, भाई का पक्ष छोड़कर स्वदेश के शत्रु से जा मिला था'[2]। देखिए हास्य कितना तीखा बन गया है ? लव इतना कहकर ही शांत नहीं होता। आगे भी उसका व्यंग्य है। 'यदि तू बड़ा धर्मात्मा था और रावण का सीता - हरण - कार्य तुझे अनुचित लगता था, तब तू उसी समय उसका पक्ष छोड़कर क्यों न चला आया जब उसने वह कार्य किया था ? सीताहरण के दिन से युद्धारंभ के पूर्व तक तेरी धर्म - बुद्धि कहाँ सो रही थी ? युद्ध छिड़ने पर तू ने भाई का साथ छोड़ा, तो स्पष्ट है कि प्राणों के भय से ही तू ने वैसा किया। और उसपर घोर कृतघ्नता यह दिखायी कि स्वदेश और सहोदर का सर्वनाश कराने के सब रहस्य भी शत्रु को बताकर कुल का नाश करा दिया[3]। आगे भी लव कहता है 'ज़रा यह तो सोच कि रावण के सीता हरण से भी नीच कार्य है या नहीं तेरा जो उसके मरते ही तू ने उसकी पत्नी मंदोदरी को अपनी पत्नी बना लिया।

- -

1 बात कीन्ह राजतात, गात तै कि पूजिए।
कौन शत्रु तै हत्यो जु नाम शत्रुहा लिए। रामचंद्रिका - प्र.37

2 आउ विभीषण तू रनदूषन। एक तुही कुल को निज भूषन।
जूझ जुरे, जो भगे भय जी के। सत्रुही आनि मिले तुम नीके। (प्र.37)

3 देवबधू जबहीं हरि ल्यायो। क्यों तबहीं तजि न आयो।
यों अपने जिय के डर आयो। छुद्र सबै कुल छिद्र बतायो। प्र. 37

जेठो भैया अन्नदा, राजा पिता समान ।
ताकि पत्नी तू करी पत्नी, मातु समान ।
को जाने के बार तू कही न ह्वै है माय ।
सोई तेपत्नी करी, सुनु पापिन के राय ।[1]

कितना तीखा है यह व्यंग्य । तू ब्राह्मण है, तो शास्त्रों का ज्ञाता भी होगा । क्या तू ने यह शास्त्र वचन न पढ़ा - सुना कि ज्येष्ठभ्राता की पत्नि माता के समान है । अतएव मातावत् मंदोदरी को जब तू ने अपनी पत्नी बना लिया तब बता कि रावण के कार्य से अधिकतर नीचता का था न तेरा ? मंदोदरी को 'माता' कह कर न जाने कितनी बार तू ने संबोधित किया होगा । सीताहरण से यदि रावण पापी हुआ तो ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी को स्वपत्नी बनाकर तू पापियों का राजा बना ।

देखिए, व्यंग्य कितना तीखा बन गया है ।

(9) लवकुश - लक्ष्मण संवाद

युद्ध में लक्ष्मण के लव - कुश से भिड़ने पर कुश लक्ष्मण से कहते हैं कि न तो मैं मकराक्ष हूं, न मेघनाद हूं । मैं तुम्हें युद्ध में देखकर भयभीत न हो जाऊंगा । हे लक्ष्मण, अब तक तुम सदैव यशी रहे हो किन्तु तुम मुझसे भिड़कर अपनी माता को अनाथ मत बनाओ ।[2]

यहाँ व्यंजना यह है कि यदि तुम इस युद्ध में लड़ोगे तो तुम्हें मारे बिना नहीं छोड़ूंगा । इसी प्रकार युद्ध होने पर लव विभीषण से कहते हैं 'हे कायर ! आ तू ही तो एक अपने कुल का भूषण है[3] । यहाँ व्यंग्यार्थ यह कि राम - रावण युद्ध में

1 रामचन्द्रिका - प्र. 37
2 न हो मकराक्ष न हौ इन्द्रजीत । विलोकि तुम्हें रन होड न भीत ।
सदा तुम लक्ष्मन उत्तम-गाथ । करौ जनि आपनि मातु अनाथ । रा.चं.प्र. 36 छं. 27
3 आउ विभीषण तू रनदूषन । एक तू ही कुल को निज भूषन ।।
रा.चं.प्र. 37 छं. 26

जब लड़ने का अवसर आया तब तो अपने भाई को छोड़ भागा था और शत्रु से जा मिला था, तो से बढ़कर नीच कौन है ? 'भूषण' शब्द मे विपरीत लक्षणा का कितना सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

(10) राज्यश्री निंदा का प्रसंग

लंका - विजय करके राम अयोध्या लौटते है । राज्याभिषेक के उपरांत एक दिन अगस्त्य मुनि महाराज राम को निरानंद देखकर उसका कारण पूछते है । उत्तर मे राम राज्यश्री की निंदा करते हुए कहते है 'सहस्त्र मुखवाले शेषनाग से लक्ष्मी ने अनेक प्रकार की बाते बनाना और सब ओर दृष्टि रखना सीखा है एवं चंचला होकर अन्य पुरुषो के पास जाना सीखा है अप्सराओ से[1] । व्यंग यह कि लक्ष्मी का स्नेह-भाजन वही बन सकता है जो शेषनाग की तरह बहुजिह्व हो, तरह-तरह की छल-कपट भरी बाते बनाने मे कुशल हो, सदैव सजग और चौकन्ना रहे एवं अप्सरा या वेश्या के समान किसी एक से स्थायी प्रेम या संबन्ध न करके प्रत्येक नवागंतुक (शासक) को मनोरंजन और विलास के लिए अपना शरीर अर्पण करने के लिए तत्पर रहे ।

राम आगे भी कहता है 'राजलक्ष्मी गुणवानो को अपवित्र वस्तु के समान त्यागने मे कभी संकोच नही करती, वीरपराक्रमियो को उसी प्रकार लांघ जाती है जैसे मार्ग मे पड़े सर्प से बच जाते है । साधु पुरुषो को वह अपना कंटक समझती है एवं सुधा की सहोदरा होने पर भी सभी बहनो मे इसका प्रताप ही श्रेष्ठ है । लक्ष्मी पुरुषोत्तम की पत्नी क्यो न ठहरी, लेकिन इसका स्वभाव दुष्टो के समान है । यह शुभचिंतको को शत्रु समझती है और अहितैषियो को खोज खोजकर मित्र बनाती है[2] ।

- -

1 शेषदई बहुजिह्वता, चकुलोचनता चारु ।
अप्सरान तै सीखियो, अपर पुरुष संचारु । रामचन्द्रिका पृ. 42

2 गुनवंतनि आलिंगति नही । अपवित्रनि ज्यो छाड़ति तही ।
....
हितकारिन की आहि द्वेषिनी । अहित लोगन की अन्वेषिनी ।

श्रीराम के इन दोनों कथनों में व्यंग्य भरा हुआ है । पहले पद में दो व्यंग्य हैं । एक तो यह कि लक्ष्मी के कृपापात्र गुणवंत, शूर-वीर, साधु सज्जन आदि नहीं हो सकते । दूसरा यह कि जो इसका कृपापात्र हो जायगा, वह भी उसके कटु प्रताप के फलस्वरूप गुणियों आदि की उपेक्षा करने लगेगा । दूसरे पद में व्यंग्य है कि कितना भी कुलीनवंशी हो, धन-मद से वह अपने हितैषियों को शत्रु समझने और अहितैषियों को ढूंढ ढूंढकर मित्र बनाने का आचरण करता है ।

(11) गागर में सागर भरने की कला

कवि प्रायः थोड़े ही शब्दों में गहरा भाव छिपा जाते हैं । ऐसे प्रयोगों में अग्रगण्य थे तुलसी । लेकिन केशव का ऐसी युक्तियों पर पूर्ण स्वामित्व नहीं था । जहाँ वे आन्तरिक भाव को शब्दों में बाँधने में असमर्थ रहते हैं, वहाँ वे कुछ चुने हुए शब्दों द्वारा संकेतमात्र देकर मौन हो जाते हैं । केशव की मूक व्यंजना की युक्ति अनूठी है और उनके काव्यवैशिष्ट्य का एक भाग है । विश्वामित्र के साथ राम के विदा होते समय दशरथ की मार्मिक वेदना को निम्न लिखित पंक्तियों—

राम चलत नृप के युग लोचन ।
वारि भरित भए वारिद लोचन ।।
पायनि परि ऋषि के सजि मौनहिं ।
केशव उठि गए भीतर भौनहिं[1] ।। —

में तथा चित्रकूट दशरथ की रानियों की व्यथा को -

तब पूछियो रघुराई । सुख है पिता तनमाई ।
तब पुत्र को मुख जोह । क्रम से उठी सब रोह[2] ।। —

में कवि ने थोड़े ही शब्दों द्वारा सफलतापूर्वक व्यंजित किया है ।

1 रामचन्द्रिका प्र. 2, छं. 27

2 वही प्र. 20, छं. 30

(12) श्रृंगार के सहायक के रूप में हास्य

हास्यरस, श्रृंगार का सहायक माना गया है । केशव ने श्रृंगार की लपेट में स्फुट रूप से 'रसिकप्रिया' के दो एक उदाहरणों में हास्य रस की बड़ी ही मधुर व्यंजना की है । एक बार कृष्ण स्त्री के वेश में आये । गोपियों ने जाकर राधा से कहा कि महावन से रति के समान एक सुन्दरी आयी है, जो इस प्रकार गाती है मानो स्वयं वीणापाणी सरस्वती पधारी हो । राधा ने उसे बुला लाने को कहा । उसके आने पर राधा सादर उससे मिली । यह देख कर वहाँ उपस्थित अन्य गोपियाँ खिलखिलाकर हँसने लगी[1] ।

अब कृष्ण के उपहासास्पद बनने की बारी थी । एक गोपी खाली मटकी सर पर रख, कुछ छाछ की छींटे मटकी पर डाले हुए उस ओर निकली जहाँ कृष्ण थे । कृष्ण ने उसे देख, आगे बढ़कर दही के लालच में उस मटकी को उतारा । जब कृष्ण ने उसे खाली देखा तो खिसिया गये । उधर गोपी अंचल की ओट में हंस दी[2] ।

समीक्षा -

केशवदास के कवि और काव्य के विषय में अनेक उक्तियाँ मौखिक रूप में प्रचलित है । उन उक्तियों में कहीं तो उनके काव्य को अत्यन्त कठिन और नीरस कहा गया है । 'कवि को देन न चहै बिदाई- पूछे केशव की कविताई' और 'कठिन काव्य का प्रेत,' कथनों में केशव की सरसताके प्रति अनुदार धारणाएं प्रकट हुई है । लेकिन केशव के हास्य प्रसंगों को देखने पर हम यही कह सकते है कि केशव ने ऊंचे दर्जे के हास्य स्रष्टा न होने पर भी अच्छे हास्य प्रसंगों की सृष्टि की है और अपने संवादों में वाग्वैदग्ध्य का उत्तम दृष्टान्त उन्होंने प्रस्तुत किया है ।

- -

1 आई है एक महावन ते तिय गावन मानो गिरा पगुधारी ।
....
केशव देखत ही मरि अंक हँसी सब कौक दै गोपकुमारी ।। रसिकप्रिया छं.सं.16 पृ.सं.236-237

2 सखि बात सुनो इक मोहन की निकसी मटुकीसिरी हलके ।
....
पलुकी वरी स्याम खिसाई रहे उत ग्वार हँसी मुख आंचल के । रसिकप्रिया,छं.सं.17

हास्य के शास्त्रीय अध्ययन में केशव का योगदान

शृंगारेतर रसों के बारे में केशव ने कहा :-

कह्यो हास्य रस वर्नियो अरु रस अगमकवित्त ।
अनुनायक सिंगार भय वरने समझहु चित्त[1] ।।

हास्य का लक्षण उन्होंने यों बताया :-

नयन बयन कछु करत जब मन को मोद उदोत ।
चतुर चित्त पहिचानिये, तहाँ हास्यरस होत[2] ।।

'नेत्र, वाणी आदि अनुभाव जब मानसिक उल्लास का प्रकाशन करते हैं तब हास्य रस का वर्णन समझना चाहिए । यह सामान्य हास्य का लक्षण है । मम्मट ने हास्यादि के लक्षण नहीं किए, उदाहरण मात्र दिया । विश्वनाथ एवं धनंजय ने हास्य का सीधे नहीं किन्तु हास स्थायी के माध्यम से लक्षण दिया है । विश्वनाथ के अनुसार विकृत आकार, वाणी, वेश, चेष्टादि से हास्यरस के स्थायी हास की उत्पत्ति होती है[3] । धनंजय के अनुसार भी विकृत आकृति, वाणी, वेशादि के द्वारा हास उत्पन्न होता है । उसीका परिपोष हास्य कहलाता है[4] । वास्तव में इन लक्षणों में भरत के लक्षण की प्रतिध्वनि है । हास्य की हास्यात्मक चित्तवृत्ति का विश्लेषण इन आचार्यों ने नहीं किया, मनोवैज्ञानिक अध्ययन शायद उस समय कालानुकूल भी नहीं था । भरत, धनंजय का पूरा तथा विश्वनाथ का मिला जुला दृष्टिकोण अभिनयपरक है । भरत इतना ही विवेचन करते है कि किन विभावों से इसका जन्म होता है, किन अनुभावों से इसका

1 केशव ग्रन्थावली, पृ.83
2 रसिकप्रिया, चौदहवाँ प्रभाव, छन्द ।
3 विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत् ।
हासो हास्यरसस्थायिभावः श्वेतः प्रथमदैवतः । साहित्यदर्पण, 3/126
4 विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनो यपरस्य वा ।
हासः स्यात्परितोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः ।।
दशरूपकम् 4/75

प्रकाशन होता है और कौन कौन से उसमें संचारी आते हैं[1]। जगन्नाथ के अनुसार वाणी तथा अंगादि के विकारों को देखने से चित्त की जो विकासात्मक दशा होती है, वही हास है[2]।

जगन्नाथ की भांति केशव ने भी हास को 'मन का मोद' कहा है। लेकिन केशव विभाव के माध्यम से नहीं अनुभाव के माध्यम से उस पर विचार करते हैं। भाव सामान्य के लक्षण में भी उन्होंने अनुभावों का ही सहारा लिया है[3]। जिस रस को वे शृंगार में अन्तर्भूत करने जा रहे हैं, उसके स्वरूप, परिचय तथा चित्रण केलिए इतना ही बहुत था। अतः केशव का लक्षण आचार्य परंपरा से दूर नहीं हटा, वह मनोवैज्ञानिक धरातल की ओर झुका नहीं।

भेदों के विषय में केशव ने मौलिकता दिखायी। संस्कृत आचार्यों ने हास्य छः प्रकार का माना है। आचार्यों के इस विवेचन में केशव को दो बातें रुचिकर न लगी - (1) मात्रा के आधार पर एक एक प्रकृति के दो दो भेद रचना (2) यथानाम तथागुण नहीं। मानव प्रकृति को तीन भागों में (उत्तम, मध्यम, अधम) बांटा गया तो हास को भी तीन भागों में बांटना है। स्मित एवं अतिहसित को छोड़ उस वर्गीकरण के चार नाम हसित, विहसित, अवहसित तथा अपहसित नितांत पारिभाषिक बन गए हैं।

- -

1 अथ हास्यो नाम हासस्थायिभावात्मक .....
व्यभिचारिणश्चास्यालस्यावहित्थतन्द्रानिद्रा स्वप्न प्रबोधासूयादयः ॥
हासो नाम परचेष्टानुकरण कुहका सद्भिर्.....   ......
....   ईर्षितादिविकारान्नु भावे। ॥ नाट्यशास्त्र 7/108

2 परचेष्टानुकरणाद्धासः समुपजायते। स्मित हासातिहसितैरभिनेय। स पण्डितैः ॥
नाट्यशास्त्र 7/10
वागंगादिविकारदर्शनजन्मा विकासाख्यो हासः ॥ रसगंगाधर, पृ. 32

3 आनन लोचनलोचन वचन मग, प्रकटत मन की बात ॥ रसिकप्रिया, छठा प्रभाव
छन्द।

उनके उपसर्ग उनकी मात्रा का बोध कराने में सर्वथा उपसमर्थ है । केशव इसी कारण अपना नूतन वर्गीकरण और नामकरण प्रस्तुत करते हैं[1] । प्रथम कोटि का मन्दहास, मध्यम कोटि का कुछ शब्द मिश्रित कलहास एवं अन्तिम का अतिहास ।

हास्य के भेद हंसनेवाले के दृष्टिकोण से भी केशव ने किए है, जैसे परिहास एवं उपहास[2] । केशव का लक्ष्य, भेदोपभेदों की संख्या बढाना नहीं था, दृष्टिकोण मात्र देना था । उन्होंने केवल नायक और नायिका गत हास विस्तारकर छोड दिया है ।

(2) बिहारी के हास्य - व्यंग्य

'कविवर बिहारीलाल बड़े ही रसिक व्यक्ति थे । उनकी रसिकता का मतलब विलासिता नहीं कलाप्रियता है[3] ।' उनका स्पष्ट मत है कि जो संगीत, काव्य और रतिरंग में नहीं डूबा, वह डूब गया । उनका जीवन व्यर्थ है और जो इनका रसास्वादन करता है उसका जन्म सफल होता है[4] । उनका यह मत भर्तृहरि के साहित्य संगीत कलाविहीन साक्षात पशुः पुच्छविषाणहीनः' से मिलता है । बिहारी भी अरसिक लोगों को, जिनके मानस में प्रेम का अजस्र स्रोत नहीं उमड़ता, पशु ही मानते हैं[5] । अपनी रसिकता के कारण

- -

1 (क) मंदहास कलहास पुनि, कहि केसव अतिहास ।
कोविद कवि बरनत सबै अरु चौथो परिहास । रसिकप्रिया चौदहवां प्रभाव

(ख) विगसहिं नयन, कपोल कछु दसन, दसन के वास ।
मंदहास ताको कहत कोविद केसवदास ।।

(ग) जहं सुनियै ध्वनि कछु कोमल विमल विलास ।
केसव तन मन मोहिये, बरनहु कवि कलहास ।।

(घ) जहां हंसहिं निरसंक ह्वै प्रकटहिं सुख मुख बास ।
आधे आधे बरन पद, उपजि परत अतिहास ।। रसिकप्रिया, चौदहवां प्रभाव ।

2 जहं परिजन सब हंस उठें तजि दम्पति की कानि ।
केसव कीनहु बुद्धिबल सो परिहास बखानि । रसिकप्रिया, चौदहवां प्रभाव छन्द 15

3 बिहारी और उनका साहित्य - पृ. 27 डा. हरवंशलाल शर्मा तथा डा. परमानन्द शास्त्री

4 तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रतिरंग । अनबूड़े बूड़े तिरे जो बूड़े सब अंग ।।
बिहारी सतसई - 91

5 गिरि तें ऊंचे रसिक मन बूड़े जहांजहांकहजार वा वहै सदा नर पसुन को प्रेमपयोधि पगार ।।
बिहारी सतसई - 24

ही बिहारी इतने लोक प्रसिद्ध हुए । डा. ग्रियर्सन ने बिहारी को 'Thompson of Ind पुकारा है[1]। इम्पीरियल गजटियर में भी बिहारी की महत्ता का मूल्यांकन हुआ है[2]।

'बिहारी सतसई में मुख्यतः श्रृंगार रस है । हास्य तथा शान्त रस की रचनाएँ भी कुछ संख्या में है । हास्य का प्रयोग अन्योक्तियों में विशेष रूप से किया गया है । हास्य के अंग उपहास तथा व्यंग्य का जितना पुष्ट रूप इनके दोहों में परिलक्षित होता है उतना अन्यत्र कहीं भी नहीं । 'यहौ दमामोजात कहुं कहुं बूड़े को चाम' का तीक्ष्ण आघात चिरकाल तक उन्हीं पर होगा जो इस प्रकार का उपहासास्पद प्र यत्न करते होंगे[3] ।

बिहारी सतसई में प्राप्त हास्य - व्यंग्य के उदाहरणों को स्थूल रूप से चार वर्गों में हम विभाजित कर सकते है ।- (क) ईश्वर के प्रति (ख) नीति संबंधी (ग) श्रृंगार विषयक (घ) अन्य सरस व्यंग्य विनोदोक्तियाँ -

इसी के कई उपविभाग भी हम कर सकते है ।-

- -

1. Bihari Lal has been called the Thompson of India; but I do not think that he or any his brother poets of Hindustan can be usefully compared with any western poet; I know nothing like his verses in any European language.

ग्रियर्सन - लालचन्द्रिका की भूमिका

2. Soordas had many successors. The most famous of whom was Biharilal of Jaipur, whose satsaiya or collection of seven hundred detached verses is one of the daintiest pieces of art in any Indian language. Bound by the rules of metre each verse had a limit of forty six syllables and generally contained less. Neverthless each was a complete picture in itself, aminiature description of a mood or a phrase of nature in which every touch of the brush is exactly the needed one and not one is superfluous. The successive compression necessitated renders the poems extremely difficult and he has been aptly named 'The mine of the commentators'.

इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया जिल्द 2 पृ.423

3. बिहारी वैभव - पृ.22 कमला देवी गर्ग ।

बिहार के हास्य - व्यंग

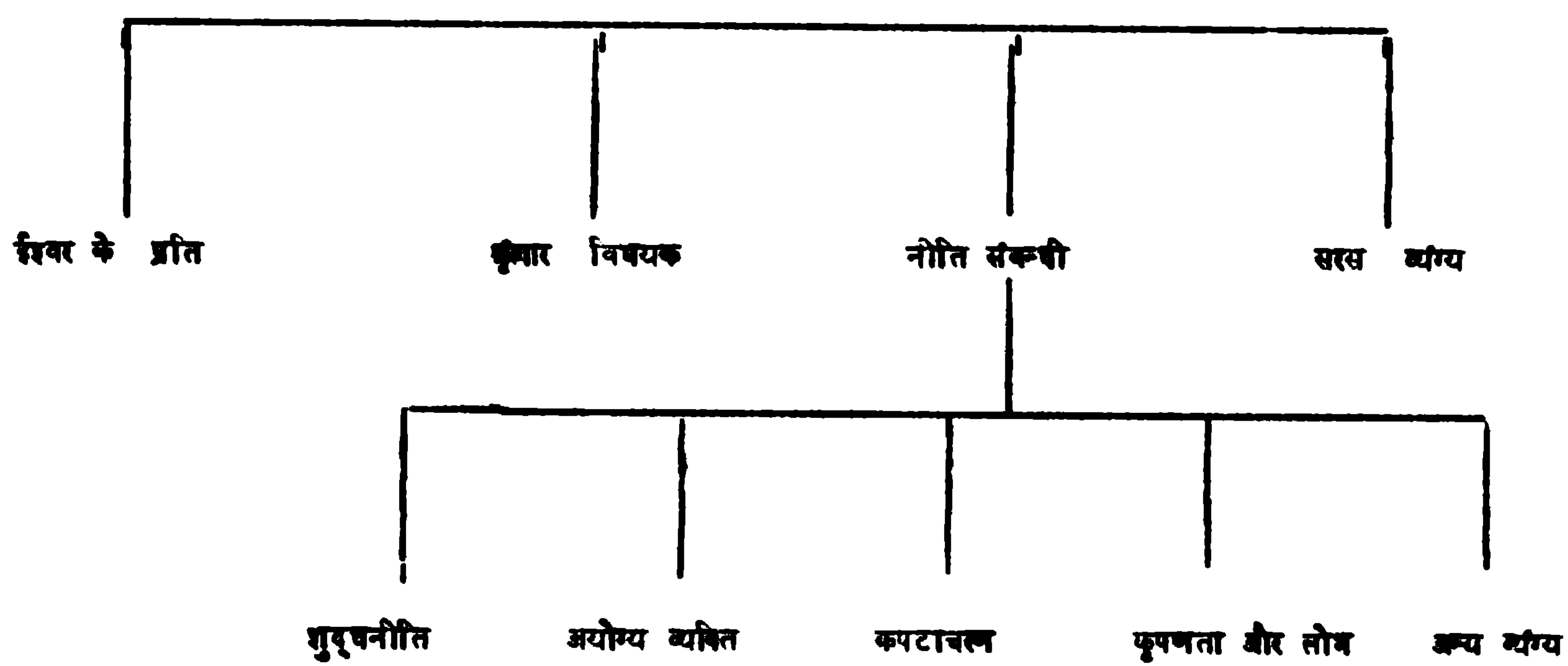
ईश्वर के प्रति
शृंगार विषयक
नीति संबंधी
सरस व्यंग्य
शुद्धनीति
अयोग्य व्यक्ति
कपटाचरण
कृपणता और लोभ
अन्य व्यंग्य

(क) ईश्वर के प्रति व्यंग्य

रीतिकाल के सभी श्रृंगारिक कवियों की भक्ति-विषयक उक्तियाँ भी मिलती है। लौकिक वासनावायु में श्वास लेनेवाले इन कवियों को कभी कभी भक्ति-रस-मिश्रित मन्द समीरण छूता हुआ निकल जाता तो वे भक्ति - विषयक भावनायें करते थे। ऐसी दशा में उनके मुख से निकलनेवाली उक्तियाँ भगवद्विषयक रति के सामान्य स्तर पर रहती थी। अपनी भूल की क्षमा माँगकर भगवान के सामने अनुनय - विनय, भगवान को चुनौती, भगवान से उपालंभ ये सब प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक थी। डा.नगेन्द्र के शब्दों में 'वास्तव में यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते होंगे तो राधाकृष्ण का यही अनुराग उनके धर्म भीरु मनको आश्वासन देता होगा। ...... रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति - भावना से हीन नहीं है - हो ही नहीं सकता क्योंकि भक्ति उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी।[1] श्रृंगारी कवि भक्ति विषयक उक्तियों में भी कवि कौशल का पूरा ध्यान रखते थे। भक्त अपनी बात को कबीर की तरह दो - टूक शब्दों में कहना पसन्द करते है, लेकिन बिहारी जैसे श्रृंगारी कवि भक्ति - पक्ष में भी वक्रता नहीं छोडते। वे इतने भावुक थे कि वे न राम-कृष्ण का भेद भाव मानते थे और न सगुण - निर्गुण का।[2] यथार्थता तो यह है कि वे अन्य कुछ भी होने से पहले कवि थे। यही कारण है कि उनकी भक्ति - विषयक उक्तियों में निराली वक्रता और वाग्विदग्धता दीख पडती है -

> करौ कुबत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
> दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल ॥[3]

---

1 रीतिकाव्य की भूमिका - पृ.180 डा.नगेन्द्र

2 'वास्तविक बात यह थी कि राम और कृष्ण में ये लोग कोई भेद नहीं समझते थे।. .... बिहारी ने भी कहा -

कौन भांति रहिहै बिरदु अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसों आइकै गीधे गीधहि तारि ॥ 32 ॥

गीध को तारने वाले राम थे मुरारि नहीं। बिहारी की वाग्विभूति पृ.131
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

3 बिहारी सतसई 428

मुरलीधर के तीन जगह से वक्र होने के कारण बिहारी भी हृदय की वक्रता नहीं छोड़ते, इसलिए नहीं कि इससे उनका कुछ स्वार्थ सिद्ध होता है, बल्कि इसलिए कि सरल चित्त में त्रिभंगी कृष्ण समा न सकेंगे[1]। 'प्रभु हौ सब पतितन को टीको' और 'मोसों कौन खोटो' कहकर सूर और तुलसी भक्ति क्षेत्र की दैन्य - भूमिका पर पहुँचे थे, वहीं बिहारी भी पहुँचते हैं। अपनी दीनता, क्षुद्रता और निरीहता का बढ़ा चढ़ा वर्णन बिहारी भी करते हैं[2]। वह दीनता धन्य है जो दीनबन्धु से नाता जोड़ती है[3]। ये उक्तियाँ अधिकांश वक्रतापूर्ण भी हैं।

बिहारी ने प्रेमवश भगवान को उपालम्भ कई जगहों में दिया है। भगवान द्वारा गज का उद्धार किया जाना मशहूर है। ग्राह से प्राणरक्षा पाने के लिए उसने 'त्राहि, त्राहि' पुकारा था। लेकिन गज की केवल एक पुकार पर आधी दौड़ आनेवाला वह प्रभु आज कवि का दीनरोदन नहीं सुन रहा है। अतः कवि का व्यंग्य है 'मेरी दीन पुकार को आप बार बार जो अनसुना कर देते हैं, मुझे तारने में टाला - टूली कर रहे हैं, उससे मैं यही समझता हूँ कि एक बार गजेन्द्रमोक्ष देकर मानो आपने सदा सर्वदा के लिए दीन दुखियों के उद्धारण का व्रत ही भुला दिया है - उद्धारक कहलाना छोड़ दिया है'[4]।

- -

1 और एक उदाहरण भी यों है :-

मैं तपाई त्रयताप सौं राख्यौ हियौ हमाम ।
मति कबहुँक आएँ यहाँ पुलकि पसीजै स्याम ।

बिहारी की वाग्विभूति पृ.28। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

2 'अपने पापों की पूरी सूचना यों देने से जी का बोझ ही नहीं सिर का बोझ भी कुछ हल्का हो जाता है। उसके सुधार का भार उसी पर न रहकर बँट सा जाता है।'

विनयपत्रिका की भूमिका (सं.वियोगी हरि) पृ.3 - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 धन्य दीनता के रसहि का जाने जग अंधु । भली बिचारी दीनबन्धु से बन्धु ॥ रहीम

4 नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि । तज्यौ मनौ तारन - बिरदु बारक बारनु तारि

बिहारी सतसई - 30

इसी प्रसंग पर कवि की दूसरी विनोदोक्ति भी काफी मशहूर है 'हे मुरारि ! रामावतार में आप ने एक गिद्ध का उद्धार किया था । तबसे आपको गर्व हो गया कि आप जगदोद्धारक हैं । लेकिन सावधान ! एक गिद्ध को तारकर आप धोखे में न रहें । वह गिद्ध तो मामूली पापी रहा होगा लेकिन मैं घोर पापी हूँ । 'तारन - बिरद' त्यागने में ही आपकी भलाई है । मेरे उद्धार का प्रयत्न करना लोहे का चना चबाना है अतः आपके 'बिरद' की रक्षा न हो सकेगी । मुझे यही देखना है कि आप अपने प्रण की रक्षा करना या उसे त्याग देना उचित समझते हैं[1] ।

बिहारी की इस उक्ति की तुलना सूर के समानार्थक पद[2] से करने पर बिहारी के वाग्वैदग्ध्य की श्रेष्ठता प्रकट होगी । सूर अनेक पतितों का नाम गिना गिनाकर उनके सिर मौर बनते हैं । इतने बडे झमेले का अन्तर्भाव बिहारी ने एक ही पंक्ति -

'बीधे मोसौ आइकै गीधे गीधहि तार'

में कर दिया । सूर ने अभिधा से काम लिया तो बिहारी ने व्यंजना से । सूर ने बहुत कुछ कहा, लेकिन बिहारी ने केवल संकेत कर दिया । सूर को अंत में 'तेजी विरद के मोहि उबारो' कहना पडा और बडी सारी कलई खुल गयी ।

भगवान को 'दीन-बंधु' पुकारने में भी कवि आपत्ति देखते हैं । नाम तो दीन बन्धु है परन्तु पता नहीं कौन से दीन तारे हैं । योतो पुराने ज़माने से ही उन दीनों की एक लम्बी सूची चली आ रही है जिनका उद्धार कभी किया था, पर किया होगा । कवि का उद्धार अब करें तो वे मानेंगे । उनको तो सब धोखा ही प्रतीत होता है । जिनकी सहायता भगवान ने की वे दीन कब थे ? जिनका उद्धार उन्होंने किया वे पापी कब थे ? वास्तविक दीन और घोर पापी तो कवि ही हैं[3] ।

- -

1 कौन भांति रहिहै बिरदु अब देखिबी मुरारि । बीधे मोसौ आइ कै, गीधे गीधहि तारि ।।
बिहारी सतसई - 61

2 जानिहौ अब बाने की बात । .... सूर पतित सौ काम ।।
सूरसागर 179

3 बंधु भए का दीन के, को तारयौ रघुराइ ।
तूठे तूठे फिरत हो झूठे बिरद कहाइ ।। बिहारी सतसई - 427

कवि ने भगवान के प्रति एक और उलाहना दिया है कि संसार के बुरे प्रभावों से बचने की शक्ति भगवान में नहीं । इस जमाने में गरीबों की सुनता ही कौन है ? जग की हवा जगदीश्वर को भी लग गयी । अतः भक्तों की दीन पुकार उनके कानों तक पहुँच नहीं पाती । क्यों नहीं ? जगनायक और जगद्गुरु जो ठहरे । इस हवा का उद्गम वही तो है । उन्होंने ही गुरु - मंत्र के साथ इसे संसार में फूंका । कवि का यह व्यंग्य बहुत चुटीला है ।

भक्त कभी कभी अपने इष्टदेव को चुनौती देने से भी चूकता नहीं । बिहारी कहते हैं 'हे यदुराज ! पतित-पावन आपका विरुद है । अब तक आपने जिन पापियों का उद्धार किया, वे साधारण पतित थे, लेकिन मैं पतितराज हूँ । अतः यहाँ यदुराज और पतितराज दोनों का संघर्ष है ।[2]

'यदुराज' संबोधन के द्वारा बिहारी ने कमाल दिखाया है । दरबारी कवि बिहारी राजाओं की प्रकृति के बारे में पूर्णतः परिचित थे । चुनौती पाने पर आत्मसम्मानी राजा स्वस्थ बैठ नहीं सकता । इस प्रकृति - ज्ञान के बल पर यदुराज को उत्तेजित करके अपना उद्धार करा लेने की कवि की कूटनीतिज्ञता हास्यपूर्ण है । समानार्थक दो पद हम भारतेन्दु के देख सकते हैं ।[3] सूर और भारतेन्दु के इन पदों के देखते समय हम समझ सकते हैं बिहारी ने गागर में सागर कैसे भर दिया है ।

अपनी दुष्ट प्रकृति से पूर्णतया परिचित भक्त ईश्वर को समझाता है कि अपना उद्धारण कितना कष्टदायक तथा कठिन है । उनका कहना है 'हे गोपाल, आप तो सुकुमार हैं । वन वन घूम फिर कर मन बहलाव के साथ गायें चराना जैसे साधारण कार्य

- -

1 कबका टेरत दीन रट होत न स्याम सहाई ।
तुमहू लागी जगद्गुरु जगनायक जगबाई ।। बिहारी सतसई 7।

2 मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज । अपनैं अपनैं बिरद की दुहू निबाहन लाज।
बिहारी सतसई 427

3 (क) आजहौं एक एक करि टरिहौं । .... सूर पतित तबहीं उठिहै, जब हँसि देहौ बीरा । सूरसागर - 134

(ख) आजु हम देखत हैं को हारत ।

हरिश्चन्द्र अब जात नरक मैं के तुम धाय उबारत । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
(बिहारी और उनका साहित्य - पृ.210 से उद्धृत)

ही आपसे हो सकता है । इससे अधिक आपसे हो भी नहीं सकता । अतः मैं कर्मफल भोगूंगा, आपसे रक्षा करने की भीख नहीं मांगूंगा । कारण यह है मेरी रक्षा करना कठिन है । हठ करके आप मेरी रक्षा के लिए प्रयत्नशील बनेंगे तो भी आप सफल नहीं होंगे । मैं तो मुसीबत में हूं, आपको भी इसमें ढकेल देना मैं नहीं चाहता[1] ।

'गोपाल' और 'हरि' संबोधनों में कवि-कुशलता झलकती है । गो का एक अर्थ है इन्द्रिय । 'गोपाल' का अर्थ है इन्द्रियों को अपने वश में कर रखने वाला । 'हरि' का एक अर्थ है कष्टों को हरने वाला । इन दोनों गूढार्थों को भी समझने पर बिहारी की वाग्विदग्धता प्रकट होगी । हठु शब्द का प्रयोग करने से भक्त की भगवान् के प्रति जो आत्मीयता स्पष्ट है, यह अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है ।

ईश्वर के प्रति बिहारी का और एक व्यंग्य - विनोद भी प्रसिद्ध है । वे कहते हैं 'बड़े व्यक्ति द्वारा की गयी किसी बड़ी भूल को देखकर भी कोई भी कुछ नहीं कह सकता । उदाहरण यह है कि विधाता ने गुलाब जैसे सुन्दर पुष्प की इन डालों पर भी कांटे लगा दिए हैं । बड़ों की गलती की चर्चा करने का साहस किसी में भी नहीं । अतः बड़ों में भी बड़े ईश्वर की असंगतियों और भूलों को बताने की हिम्मत किसी में भी नहीं[2] ।

'कहि सकै' प्रयोग में व्यंग्य है । सब लोगों की भूलें देखने और समझने के लिए कई लोग हैं, लेकिन चर्चा होती है सिर्फ छोटे आदमियों की भूल की । ~~बड़ों की भूल की~~ । बड़ों की भूलों को भूल जानते हुए भी लोग चुप रहते हैं । भवभूति के उत्तर-रामचरितम में समर्थित 'वृद्धास्तेन विचारणीयचरिताः' में इसी का समर्थन है ।

- -

1 ज्यौं ह्वैहौं, त्यौं होउंगो हौं, हरि, अपनी चाल ।
हठु न करौ, अति कठिन है मो तारिबो गोपाल । बिहारी सतसई - 42

2 को कहि सकै बड़ेनु, सौं लखें बड़े हू भूल ।
दीन दई गुलाब की, इनु डारनु ये फूल ।।

बिहारी सतसई - 148

बिहारी ने कृष्ण और राधा दोनों को नहीं छोड़ा है । इनके निम्न लिखित प्रसिद्ध दोहे में श्लेष का सहारा बड़ी विदग्धता से लिया गया है,

चिर जीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गंभीर ।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर[1] ।।

इस दोहे में अभिधार्थ के अतिरिक्त दो व्यंग्यार्थ भी हैं[2] । इसमें वृष भानुजा और हलधर के बीर दोनों पदों के तीन तीन अर्थ हैं -

(1) यहां पर राधा और कृष्ण दोनों के तुल्यानुराग के स्थायित्व के प्रति विचार प्रकट किए गए हैं । यह जोड़ी चिरंजीवी हो, इनका पारस्परिक स्नेह गंभीर होगा क्यों नहीं ? इनमें कौन किस से कम है ? यदि राधा वृषभानु की पुत्री है तो कृष्ण हलधर बलराम के भाई हैं । वृषभानु और बलराम दोनों ही राजा थे, अतः राधाकृष्ण दोनों राज्यवंशी हैं - दोनों समान पद-मान के अधिकारी हैं, अतएव दोनों में गहरा स्नेह जुड़ना स्वाभाविक ही है । इस अर्थ के द्वारा सखियों का व्यंग्य यही है कि किसी अप्रमुख कारण विशेष से ये दोनों एक दूसरे से रूठ गए हैं, परन्तु यथाशीघ्र ही उनका पुनः मिलन हो जायगा ।

---

1 (क) बिहारी सतसई - 43
(ख) एक दिन कृष्ण और राधा किसी कारणवश आपस में रूठ गए । दोनों एक ही स्थान पर विपरीत दिशाओं की ओर देखते हुए मुंह फुलाकर बैठ गए । सखियों वहाँ सम्मिलित हैं और दोनों को मिलाना चाहती हैं । तब का प्रसंग है । उनमें एक चतुर सखी उक्त श्लेषार्थक वाक्य कहती है ।

2 'यह विशुद्ध, शिष्ट तथा स्वच्छ स्मित का उदाहरण है'
बिहारी और उनका साहित्य - पृ. 180

(2) वृष-भानुजा और हलधर के बीर का दूसरा अर्थ है - वृष के भानु की बेटी अर्थात् अत्यन्त प्रचण्ड तेजोमय वृषराशि के सूर्य की पुत्री है राधा। शेषनाग के अवतार हलधर (बलराम) के भाई है कृष्ण। दोनो ही क्रोधी स्वभाव के है जो प्रेम के स्थायित्व मे बाधक होता है। राधा और कृष्ण मे चिरस्थायी प्रेम जुड़ ही कैसे सकता है इनका प्रेम स्थायी क्यो न होगा ? अर्थात् तनिक भी न होगा।

दोनो एक दूसरे से बढ़कर है। स्वभाव की इस समानता के कारण दोनो के स्नेह की गंभीरता भी समान है और शीघ्र ही दोनो का मेल हो जायगा, इसका मुझे विश्वास है, यह भी सखी का व्यंग्य हो सकता है।

(3) तीसरा अर्थ उक्त दोनो अर्थो से भी अधिक हास्योद्रेक मे समर्थ है। कवि यहा पर स्वयं ही श्लेष द्वारा राधाकृष्ण के साथ परिहास कर रहा है। यह जोड़ी चिरस्थायी हो। इनका प्रेम गंभीर बना रहे। इन दोनो मे से कोई भी तुलना मे कम नही। दोनो ही एक जैसी पशुवृत्ति रखते है। यदि राधा वृषभ की अनुजा गाय है तो कृष्ण हल धारण करनेवाले किसानो के वीर अर्थात् प्रिय बैल है। दूसरे शब्दो मे दोनो गाय-बैल है।

'व्यंग्य यह है कि पशु जैसे एक बार क्षण भर कारण वश उत्तेजित हो कर शीघ्र ही उसे भूलकर हिल मिल जाते है, वैसे ही ये दोनो भी, जो विपरीत दिशाओ मे मुंह किये बैठे है, पुनः सहज प्रकृतिवश मिलकर एक हो जायेगे। गाय को बैल और बैल को गाय के बिना चैन हो कैसे पड़ सकती है ?'[1]

श्रृंगार तथा हास्य रस का एकत्र समन्वय यहा द्रष्टव्य है। श्लेष और वक्रोक्ति के द्वारा हास्य विधान प्रकट है।

- -

1 हिन्दी साहित्य मे हास्य - व्यंग्य - पृ. 143

डा. प्रेमनारायण टंडन

दोनो मे पशु आसक्त है । पशु समयकाल परिस्थिति को बिना देखे सुरत मे लग जाते है । उसी प्रकार लग जाने वाले है ये कृष्ण बैलतथा राधा गाय । ऐसे ये अब हुक बैठे है । यह सिर्फ बहाना मात्र है, यह व्यंग्य भी सखी को सूझा होगा ।

चाहे जो हो पहले से दूसरे को और दूसरे से तीसरे अर्थ को पहुंचते ही राधा-कृष्ण का मान छूट जाता है, वे पहले मुस्कुराकर एक दूसरे की ओर देखते है (शायद यह देखने के लिए कि बैल-गाय तुलना का प्रतिफल कैसा है) और तब सखियो की ओर देखकर खिलखिला कर हँस पड़ते है ।

समानार्थक एक पद है केशवदास का[1] । उसे भी देखने पर ही हम समझेंगे कि बिहारी की वचनविदग्धता कितनी अनूठी है । केशव को आठ पंक्तियो की आवश्यकता थी, लेकिन बिहारी ने दो ही पंक्तियो मे गागर मे सागर भर दिया ।

ये सब रही बिहारी की भगवान के प्रति व्यंग्य विनोदोक्तियाँ । बिहारी की भक्ति मे सख्यभाव की प्रधानता थी । भगवान के साथ सख्यभाव से सम्बन्ध स्थापित करनेवाला भक्त उसे मित्र की भांति उलाहना देता है, उसे डाँट डपट सकता है अथवा उससे होड बदा सकता है ।[2] कृष्ण के सखा भक्तो ने ही ऐसे उपालम्भ दिये हो यह बात नही है । तुलसी जैसे राम के दास भक्तो को भी अपने 'नाथ' की 'निठुराई' देखकर दुख हुआ[3] यहां तक कि वे राम के नाम का 'पुतला' बाँधने के लिए मजबूर हो जाते है[4] ।

- -

1 अनगने औटपाय रावरे गने न जाहि, वे उ आहि तर्मक कैसा अभिमान की ।
तुम जोई सोई कहो वे उ जोई सोई सुने, तुम जीव पातरे वे पातरी है कान की ।
कैसे केसौराय कहि बरजी मनाउ काहि, अपने समय पी कौन सुनत सयान की ।
केउ बड़वानल की है है सोई आहि बीच, तुम वासुदेव वे है बेटी वृषभानु की ।।
केशव

2 बिहारी - पृ.75 , रामरतन भटनागर

3 यद्यपि नाथ । उचित न होत अस प्रभु सो करौ ढिठाई ।
तुलसीदास सीदति निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई ।। विनय पत्रिका

4 ही अब लौ करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेत ।
अब तुलसी पूतरो बांधि है सहि न जात मोपै परिहास ऐसे ।। विनय पत्रिका

(ख) श्रृंगारविषयक व्यंग्य विनोदोक्तियाँ

बिहारी के श्रृंगार विषयक दोहे अनूठे है । श्रृंगार संबन्धी दोहों में बिहारी की परिहास - वृत्ति स्पष्ट है । लेकिन ऐसे अधिकांश दोहों में मर्यादा की सीमा का अतिक्रमण प्रतीत होता है; अतः हम संयमित और मर्यादित श्रृंगार प्रसंग ही लेंगे । नायिका के मान का प्रसंग है । नायक की परस्त्रिय रति पर नायिका का व्यंग्य कई दोहों में हम देखते है । कुछ उदाहरण यों है :-

पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावर, भाल ।
आजु मिले सु भली करी, भले बने हौ लाल ।।[1]

खण्डिता नायिका नायक को पर स्त्री से संयोग कर लौटता हुआ देखकर कहती है कि तुम्हारी पलकें रात भर जागते रहने से अथवा नायिका द्वारा चूमे जाने से लाल हो रही है । तुम्हारे अधरों पर काजल लगा है अर्थात् तुमने उसकी आँखों को चूमा होगा । तुम्हारे माथे का महावर स्पष्ट कह रहा है कि तुमने उसके चरणों में सिर रखकर रतिदान हेतु प्रार्थना की होगी । आज जो तुमसे उसका मिलन हुआ है सो तो ठीक है परन्तु हे लाल । यह तुमने रूप कैसा भला (बुरा) धारण कर रखा है[2] ।

पावक सो नयननु लगै, जावकु लाग्यो भाल ।
मुकुरु होहुगे नेक मैं, मुकुरु बिलोकी, लाल[3] ।।

- -

1 बिहारी सतसई - 425
अमरु शतक में यही भाव हम देखते है । वह अधिक प्रभावयुक्त शायद इसलिए हुआ कि उसका क्षेत्र कुछ विस्तृत था ।

2 लाक्षालक्ष्म ललाटपट्टमभितः केयूरमुद्रा गले वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागो परः ।
दृष्ट्वा कोपविधायिमण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासाः समाप्तिंगताः ।।

3 बिहारी सतसई - 422

खण्डिता नायिका घर लौटे हुए नायक से कहती है 'लाल' परस्त्रिय के पैरों का महावर जो तुम्हारे माथे पर लगा हुआ है वह मेरी इन आँखों में आग की तरह लग रहा है। जल्दी जाकर दर्पण में देखो तथा इस प्रमाण की पुष्टि कर दो, नहीं तो अपनी आदत के अनुसार थोड़ी देर में ही वास्तविकता को भूल जाओगे, इसकी रेखा मिटाकर तुम मुकरने लगोगे कि मेरे भाल पर महावर लगा ही कब था।

और एक दोहे में नायक और नायिका दोनों की वाग्विदग्धता स्पष्ट रूप से प्रकट है :-

बाल, कहा लाली भई, लोइन कोइनु माँह।[1]
लाल, तुम्हारे दृगनु की, परीदृगनु मैं छाँह।।

नायक ने परकीया के साथ पूरी रात जागते जागते बिताया है। रात्रि जागरण से तो उसकी आँखें लाल हो गयी हैं। उधर नायिका की आँखों में भी क्रोध की लालिमा है। नायक प्रातः काल नायिका के पास आते ही सारी परिस्थिति समझ लेता है। अपने अपराध की ओर से उसका ध्यान हटाना उसका लक्ष्य है। उसे यह भय भी है कि कहीं वह कुछ पूछ न बैठे। अतः वह स्वयं प्रश्न करने लगता है 'हे बाले, तुम्हारी आँखों के कोयों में यह लाली कहाँ से आ गयी है ? क्या रात भर तू जागती रही ?

व्यंग्यपूर्वक इसका उत्तर नायिका यों देती है ' लाल। मेरी आँखें अब तक लाल नहीं थी, उनमें तो तुम्हारी लाल लाल आँखों की आभा पड़ने से लालिमा झलकने लगी है। अपनी आँखों की लालिमा तुमने अब तक न देखी है तो मेरी आँखों में उनका प्रतिबिंब कर अपनी करतूत पर जरा लज्जित हो जाओ, मुझे इतनी दुखी होने की बात पर स्वयं लज्जित हो जाओ।

प्रानप्रिया हिय मैं बसै नख - रेखा - ससि बाल।
भलौ दिखायौ आइ यह हरिहर रूप रसाल।[2]

- -

1 बिहारी सतसई - 425

2 वही 402

खण्डिता नायिका नायक से कहती है कि तुम्हारे हृदय में तो प्राणप्रिया बसी हुई है तथा भाल के ऊपर नखरेखा रूपी चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है। नखक्षत की चंद्रकला और हृदयवर्तिनी प्रेयसी के रूप में रमा का वास। लक्ष्मी के समान प्रिया को धारण करने से तुम विष्णु के समान तथा द्वितीया के चन्द्रमा के समान नख रेखा द्वारा तुम मस्तक पर चन्द्रमा धारण करनेवाले शिव के समान हो। हरि और हर दोनों के रूपों का वर्णन क्या दिया है।

पल सोहैं पगि पीकरँग, छल सोहैं सब बैन।
बलसी हैं कत कीजियत ए अलसौहैं नैयन?[1]

खण्डिता नायिका का व्यंग्य है - तुम्हारी पलकें पानपीक से (जो कि नायिका के अधर चुम्बन आदि से आई है) शोभित हो रही है। अटपटे और विरोधी वचनों से तुम्हारा छल प्रकट हो रहा है। इस प्रकार तुम्हारी सारी करतूत प्रकट है। अब उसे छिपाने के लिए रात्रि जागरण के कारण अलसाए हुए अपने ये नयन बलपूर्वक भी सामने क्यों कर रहे हो? ये नयन स्वयं जानते हैं कि वे अपराधी हैं अतः वे भी सामने होना नहीं चाहते।

कत सकुचत निधरक फिरौ, रतियौ खोरि तुम्हैं न।
कहा करौ जो जाइ ए लगैं लगौहैं नैन।[2]

खण्डिता नायिका, नायक को अपने अपराध के लिए सकुचाते हुए देखकर व्यंग्यपूर्वक कहती है 'तुम क्यों संकुचित हो रहे हो? जहां जी चाहे वहां रति के लिए बेधड़क घूमो फिरो, मैं तुम्हें रत्ती भर भी दोष नहीं दे सकती। इन झट से लग जाने वाले नेत्रों के लिए मैं क्या करूं। उसी का दोष है। तुम्हारे नयन हर सुन्दरी पर मुग्ध हो जाते हैं और तुम्हें भी बलात उसके निकट खींच ले जाते हैं। सचमुच तुम्हारी निर्दोषिता और विवशता से मैं भली - भांति परिचित हूं न?

---

1 बिहारी सतसई - 429

2 वही 403

छवै छिगुनी पहुँचो गिलत अति दीनता दिखाई
बलि बावन को ब्योंत सुनि, को, बलि तुम्हें पत्याइ ।[1]

यह सखियों का परिहास है । नायक किसी नायिका की झलक पाकर उसपर रीझ गया है और सखियों से उसका दर्शन मात्र करा देने का निवेदन प्रस्तुत करता है । इस पर सखी नायक से यों परिहास पूर्वक कहती है ।

आज तुम बड़ी दीनता दिखाकर उस नायिका का दर्शन करा देने की प्रार्थना कर रहे हो । तुम लोगों की रीति मैं जानती हूँ । पहले तुम किसी की कनिष्ठिका उंगली पकड़ते हो फिर धीरे धीरे उसका हाथ भी पकड़ लेते हो । हे लाल ! मैं तुम्हारे ऊपर बलिहारी हूँ पर तुम्हारी बलि के लिए वामनावतार ग्रहण करने की घटना को सुनकर भी कौन तुम पर विश्वास करेगा ? वामन ने बलि से तीन डग वसुधा ही तो माँगी थी, लेकिन उसके 'हाँ' कहते ही किस तरह उसको ठग लिया - सो बात जाननेवाले तुम्हारे दर्शन मात्र से सन्तुष्ट होने के कथन का विश्वास भी कैसे कर सकती हूँ ? व्यंग्य यह कि अब तुम दर्शन मात्र कराने के लिए कहोगे, फिर तुम उससे मिलन और फिर संयोग करा देने की प्रार्थना से कब चूकोगे ?

(ग) नीति - संबन्धी हास्य-व्यंग्य

इसके कई प्रकार है :- (1) शुद्ध नीति संबन्धी (2) अयोग्य व्यक्ति संबन्धी (3) कपटाचरण संबन्धी (4) कृपणता और लोभ संबन्धी (5) अन्य व्यंग विनोदोक्तियाँ ।

(1) शुद्ध नीति - संबन्धी व्यंग्य - विनोदोक्तियाँ -

कवि कपूर के माध्यम से उच्च व्यक्ति के गुणों की महत्ता प्रकट करते हुए कहते हैं:-

1 बिहारी सतसई - 589

सीतलता रु सुबासकी घटै न महिमा-मूरु ।
पीनसवारे जौ तज्यौ सोरा जानि कपूरु ।[1]

यदि पीनस का रोगी कपूर को गंध का ज्ञान न हो सकने से, शोरा समझकर त्याग दे तो क्या । उसकी शीतलता और सुगन्ध (उत्कृष्टता) की महत्ता रूपी मूल मे कोई अन्तर नही पड़ता । शीतलता और सुगन्ध कपूर की स्वाभाविक विशेषताएं है जो दूर नही होती क्योंकि 'स्वभावो दुरतिक्रमः' । पीनसवाले की तरफ से सुगंध की उपेक्षा पर व्यंग्य किया गया है ।

कैसे छोटे नरनु तै सरत बड़नु के काम ?
मढ़यौ दमामौ जातु क्यौ, कहि चूहे के चाम ?[2]

बड़े व्यक्तियो के कार्य छोटे व्यक्तियो द्वारा किस प्रकार पूर्ण किए जा सकते है? क्या कभी चूहे के चमड़े से नगाड़े को मढ़ा जा सकता है ? अर्थात् नही ।

चूहे का तात्पर्य है क्षुद्र शक्ति और कम योग्यतावाले मनुष्य जिसकी महत्वाकांक्षा तो बड़ी है । अपनी सारहीन शक्ति के बारे मे बिना सोचे वह महत्वाकांक्षा रखता है । कवि का व्यंग्य है कि चूहा अपने चमड़े से दमामा जैसे नगाड़े के मढ़े जाने का श्रेय प्राप्त करने की कामना करके अपनी शक्ति और योग्यता की तुच्छता का ध्यान छोड़ कर अपनी महत्वाकांक्षा के कारण परिहास का पात्र बनता है, उस प्रकार क्षुद्र शक्ति भी बड़ो के करने योग्य कार्यो के संपादन का भार स्वयं उठाने का दुस्साहस कर अपने को परिहास विषय स्वयं बना डालता है ।

बिहारी यह व्यक्त करना चाहते है कि कोई भी व्यक्ति किसी नाम से नही, गुण और कार्यो से पहचाना जाता है -

- -

1 बिहारी सतसई - 103
2 वही 154

बड़े न हूजे गुननु बिनु बिरद बड़ाई पाई ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यौ न जाई ।[1]

'कनकु' शब्द के दो अर्थ है - धतूरा तथा सोना । धतूरे से गहने नही गढे जा सकते, यद्यपि कहते उसे भी कनक ही है । यही स्थिति समाज मे कुछ लोगो की है । कवि उन गुणहीन लोगो पर व्यंग्य करता है जो नाम रुप की समानता के कारण दूसरो का जैसा सम्मान पाने की आशा करते है । ये अपनी गुणहीनता को सुविधापूर्वक भूलकर योग्यो जैसा सम्मान न पाने पर असन्तुष्ट होते है ।

समान अर्थ का और एक दोहा भी है ।

गुनी गुनी सबकै कहै निगुनी गुनी न होत ।
सुन्यौ कहूं तरु अरकतै अरक - समानु उदोत ।[2]

इस दोहे मे 'अरक' शब्द के नानार्थ को लेकर बिहारी ने कमाल दिखाया है । अर्क के दो अर्थ है अकौआ (मंदार) का वृक्ष तथा सूरज ।

'कनक' की मादकता पर बिहारी का कथन प्रसिद्ध है ।

कनक कनक तै सौ गुनी मादकता अधिकाई ।
उहिं खाए बौराइ जगु, इहिं पाएं बौराई ।।[3]

बिहारी ने यमक के माध्यम से धनिक व्यक्ति की मनोदशा का वर्णन किया है । कनक (सोना - सम्पत्ति) मे कनक (धतूरे) से सौ गुनी अधिक मादकता होती है । उस कनक को ले खाने पर ही दुनिया पगली होती है लेकिन इस कनक पाने पर ही

---

1 बिहारी सतसई - 105

2 वही 117

3 वही 106

उन्मत्तता आ जाती है । यहाँ कनक के लिए सोना और धतूरा शब्दों का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है ।

व्यंग्य यह कि समाज में मदिरा पान करने वालों को तो नशा तब चढ़ता है जब वे उसका पान करते हैं और वह नशा थोड़ी देर बाद उतर भी जाता है, परन्तु धनिक वैभव संपन्न तथा उच्च पदाधिकारी बिना शराब पिए ही नशे में रहते हैं । उनका नशा कभी उतरता नहीं ।

बिहारी संगति के प्रभाव का वर्णन यों प्रस्तुत करते हैं -

संगति दोषु लगै सबनु, कहे ति साचे बैन ।
कुटिल बंक - भ्रुव संग भए कुटिल बंक गति नैन ।।[1]

सत्संग और कुसंग को लेकर बिहारी ने व्यंग्य यहाँ प्रस्तुत किया है । भौंहें धनुषाकार होने के कारण कुटिल कही गयी हैं और बंक का तात्पर्य है टेढ़ या छल कपट भरे स्वभाववाली । भौंहों एवं नेत्रों का साथ है । भौंहें हैं कुटिल या बंक । उनके कुसंग से नेत्रों में भी बड़ी दुर्गुण आ गया है, वे भी कुटिल और बंक गतिवाले हो गये हैं । व्यंग्य यह कि यही कारण है कि मन ने मुख से निकले शब्दों का तो संग्रह नहीं किया, नहीं स्वीकार किया, अपितु नेत्रों द्वारा संकेतित भाषा पर ही भरोसा कर लिया ।[2]

1 बिहारी सतसई ।।3

2 'झूठ' शब्द के दोनों अर्थों के प्रयोग से कवि का तात्पर्य है कि झूठे या मिथ्या वचन उस उगले हुए या उच्छिष्ट भोजन के समान होते हैं जो सर्वथा त्याज्य है । कवि का व्यंग्य है कि आज संसार में मिथ्या का प्रचार इतना बढ़ गया है कि मुख से कहे हुए अधिकांश वचन उगले हुए अथवा उच्छिष्ट भोजन के समान त्याज्य हो गए हैं और उन पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए । नेत्रों के द्वारा जो मनोभाव व्यक्त किए जाते हैं, वे सर्वथा सच्चे और विश्वासयोग्य होते हैं ।

गुणहीन व्यक्ति सम्मान पाकर भी उस पद का अधिकारी नहीं हो पाता जिसका अधिकारी गुणी व्यक्ति सम्मान न पाने पर भी अनायास हो जाता है - यह व्यंग्य बिहारी यों प्रस्तुत करते है -

मूड़ चढाए ऊ रहै परयौ पीठि कच भारु ।
रहै गरै परि, राखिबौ तऊ हियै पर हारु ।।

यहाँ चार लाक्षणिक प्रयोग है :- (1) मूड़ चढाए (2) परयौ पीठि (3) गरै परि (4) हियै पर ।

'मूड़ चढाए' का अभिधार्थ है 'सिर पर रखना या धारण करना' और लक्ष्यार्थ है किसी का इतना दुलार या आदर सत्कार करना कि वह धृष्ट जैसा व्यवहार करने लगे । 'परयौ पीठि' का अभिधार्थ है पीठ पर या पीछे रहना और लक्ष्यार्थ है आदर सत्कार न होने पर भी कहीं पड़े या बने रहना । 'गरै परि' का अभिधार्थ है - गले मे पड़ा होना या पहना जाना और लक्ष्यार्थ है किसी को इच्छा न होने पर भी उसके समीप रहना या उसको प्राप्त हो जाना । हियै पर का अभिधार्थ है 'हृदयपर' और लक्ष्यार्थ है ससम्मान रहना - बसना । कच का अर्थ बाल - समूह है परन्तु संकेत कच से और अयोग्य मनुष्य की ओर भी है । हार का सामान्यार्थ है माला लेकिन - संकेत है सब कार्यो मे चतुर सुयोग्य व्यक्ति की ओर । व्यंग्य यह कि अयोग्य व्यक्ति को कितना भी सिर पर क्यों न चढाया जाय, कितना भी आदर - सत्कार उससे क्यों न किया जाय, अपनी अयोग्यता के कारण वह पीठ पीछे ही रहेगा । ठीक उलटे, योग्य व्यक्ति चाहे गले पड़कर अनिच्छापूर्वक ही वह क्यों न रहे, फिर भी अपने सद्‌गुणों के कारण वह श्रेष्ठ पद का अधिकारी बनकर हृदय मे ही बसता है ।

दुर्जनों के दुष्ट स्वभाव को लेकर बिहारी ने और एक दोहे मे भी व्यंग्य किया है ।

- -

1 बिहारी सतसई - 136

नए बिससि यहि लखि नर दुरजन दुसह - सुभाई ।
आटे परि प्रानन् हरत काटे लौ लगि पाई[1] ।

दुष्ट प्रकृतिवाले दुर्जन यदि नम्र हो और विनय का व्यवहार करें तो उन पर सहसा विश्वास नहीं करना चाहिए । विनम्रता उनका केवल बाहरी आवरण है । दुर्जन किसी स्वार्थ सिद्धि केलिए ही विनय भाव दिखाते हैं । उदाहरण है कांटे की बात । मार्ग में कांटे का सीधा पडा होना उसकी नम्रता का प्रतीक है । अवसर पाते ही कांटा अपनी सरलता या विनम्रता का अभिनय छोडकर पैरों में चुभकर प्राण तक कभी कभी हर सकता है ।

इस प्रसंग पर कबीर का एक दोहा स्मरण में आता है -

नमन-नमन बहु अंतरा, नमन नमन बहुवान ।
ये तीनों बहुते नमें चीता चोर कमान[2] ।

दुष्ट प्रकृतिवाले का स्वभाव किसी भी प्रकार नहीं बदलता । दुष्टता को सहज स्वभाव बतानेवाला बिहारी का और एक दोहा यों है -

कोटि जतन कोउ करौ, परै न प्रकृति हि बीचु ।
नल-बल जलु ऊँचै चढै, अंत नीच को नीचु[3] ।।

---

1 बिहारी सतसई - 98

2 वही

3 करोडों प्रयत्न करने पर भी व्यक्तियों की प्रकृति नहीं बदल पाती । जल का स्वभाव सदा नीचे की ओर जाने का रहता है । यह नीचता का प्रतीक है । नल की सहायता से, फुहारे के रूप में जल को ऊपर उठाने का कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय उसमें असफलता ही मिलेगी, जल की प्रकृति नहीं बदलती ।

व्यंग्य यह कि दुष्टता या नीचता जिसकी जन्मजात प्रकृति है उसको ऊपर उठाने केलिए, उसका उद्धार करने के लिए किए जानेवाले सारे प्रयत्न सफल नहीं होते ।

मुख का अधिकार छीनकर ईश्वर ने नेत्रों के द्वारा भी उसका कार्य संपन्न कराना क्यों आरंभ किया, इसका कारण बिहारी यों बताते हैं -

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह निकसे बैन ।
याही ते मानहु किये बातनु कौ बिधि नैन ।।[1]

कवि की नेत्रों के विषय में प्रौढोक्ति है कि मुँह से निकली हुई कोई भी वस्तु झूठी (जूठन या मिथ्या) हो जाती है । अतः शायद विधाता ने विश्वासपूर्ण बातें करने के लिए नेत्रों का निर्माण किया है ।

राजाओं से कुछ पाने के लिए अपने मानापमान के भाव को किस प्रकार त्यागना पड़ता है उसकी ओर बिहारी का व्यंग्य यों है -

नहिं पावसु, रितुराज यह, तजि तरुवर, चित भूल ।
अपतु भए बिनु पाइहै क्यों नवदल, फल फूल ?[2]

यहाँ 'अपतु भए' का तरुवर के पक्ष में अर्थ है पतझड़ में वृक्षों के पत्तों से रहित होना और मनुष्य के पक्ष में संकेतार्थ है निर्लज्ज होना या मानापमान की भावना का त्याग करना । नव दल फल फूल का वृक्षों के पक्ष में सामान्य अर्थ है, मनुष्य के पक्ष में इनका संकेत है धन-वैभव तथा तरह तरह के भोगसाधन ।

वृक्ष से कवि का कथन है हे तरुवर । यह वर्षाकाल नहीं, यह तो ऋतुओं का राजा वसन्त है । तुझे बिना अपत्र (अमर्यादित होते हुए) अर्थात् पुराने पीले पत्तों को गिराए बिना कैसे नवीन पल्लव, पुष्प और फल मिल सकते हैं ?

- -

1 बिहारी सतसई 20।

2 वही 79

अन्योक्ति द्वारा कवि का व्यंग्य है कि सामान्य व्यक्ति से किसी वस्तु की प्राप्ति सहज संभाव्य होती है लेकिन राजा महाराजा जैसे असाधारण व्यक्तियों से कुछ पाने के लिए अवश्य ही मर्यादाओं का त्याग करना पड़ता है । स्वाभिमानी व्यक्ति राजाओं का कृपापात्र नहीं बन पाता, उनके यहाँ वही कुछ बन पाता है जो मानापमान छोड़ निर्लज्ज रहता है ।

नीच या क्षुद्र प्रकृतिवाले व्यक्ति पर बिहारी का व्यंग्य यों है ।-

नीच हियैं हुलसे रहैं, गहे गेंद के पोत ।
ज्यौं ज्यौं माथे मारियत, त्यौं त्यौं ऊँचे होत ।

माथे मारियत का अभिधार्थ है 'गेंद के सिर पर ठोकर पड़ना और लक्ष्यार्थ है निरादर करना । 'ऊँचे होत' का अभिधार्थ है गेंद का ठोकर खाकर ऊपर उठना और लक्ष्यार्थ है अपने को श्रेष्ठ समझना ।

कवि का तात्पर्य है - नीच स्वभाव के क्षुद्र मनुष्यों का स्वभाव गेंद जैसा है । गेंद को जिस प्रकार सदैव ठोकरें मिलती है, फिर भी वह अपने अपमान का जरा भी ध्यान न करके प्रत्येक ठोकर पर ऊपर उठता है । उसी प्रकार नीच या क्षुद्र प्रकृति के मनुष्य दूसरों के द्वारा तिरस्कृत तथा निरादित होने पर भी मन में अपनी श्रेष्ठता का अनुमान करके हुलसते ही रहते हैं ।

(2) <u>अयोग्य व्यक्ति संबन्धी व्यंग्य - विनोदोक्तियाँ -</u>

कवि किसी ऐसे व्यक्ति की ओर संकेत कर रहा है जो अपात्र होने पर भी समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है । यहाँ कौए के माध्यम से उसे सम्बोधित करते हुए वह कहता है कि थोड़े दिन का आराम पाकर तू चाहे जैसी आत्मश्लाघा कर ले किन्तु यह तेरा सम्मान तभी

- -

1 बिहारी सतसई - 98

तक रहेगा जब तक कि श्राद्धपक्ष नहीं बीतता । श्राद्धपक्ष समाप्त हो जाने पर कौए को कोई भी नहीं पूछता बल्कि उसका अनादर ही होता है । काक पर अन्योक्ति के रूप मे यह कहा गया है । व्यंग्य यह कि तुम मे वास्तव मे कोई सम्मान के योग्य गुण नहीं पर इस समय ऐसा अवसर ही उपस्थित है कि तेरा आदर करना पड़ता है, अतः तुमको इस आदर पर गर्व नहीं करना चाहिए[1] ।

यही बात और पूर्णता के साथ और एक दोहे मे कही गयी है । शुक तथा काक पर अन्योक्ति करके यो कहा गया है 'श्राद्ध पक्ष मे कौए को तो बहुत आदर दे - देकर बलि खाने के लिए बुलाया जाता है, परन्तु शुक को कार्य पूरा न होने तक पानी को भी नहीं पूछा जाता । श्राद्धपक्ष वर्ष मे केवल दो सप्ताह का ही होता है । अतएव उसमे होनेवाला कौए का सम्मान और शुक का असम्मान सिर्फ एक या दो पक्ष तक निश्चित है'[2] । व्यंग्य यह कि गुणहीन व्यक्ति अवसरविशेष पर अपना आदर देखकर यदि फूल जाता है तो यह उसका ओछापन है और गुणी यदि इस बीच अपनी उपेक्षा देख खिन्न होता है, तो उसकी भूल है । समय का फेर दूर होने पर गुणहीन का सम्मान और गुणी की उपेक्षा दोनो समाप्त होगी ।

अयोग्य व्यक्ति को अवसर विशेष पर प्राप्त सम्मान के लिए अभिमान करते देखकर बिहारी व्यंग्य किए बिना रह नहीं सकते । कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन गोवर्द्धन पूजा की स्मृति मे किसान लोग अपने अपने द्वारो पर गोबर से गोवर्द्धन की प्रतिमा बनाकर बड़े समारोह से उसकी पूजा करते और उत्सव मनाते है । पूजा कर चुकने के पश्चात वे अपने गाय बैलो को उसी प्रतिमा पर खड़ा करके पूजते है जिससे वह प्रतिमा रौंद उठती है ।

- -

1 दिन दस आदर, पाइ कै करि लै आपु बखान ।
जौ लौं काग ! सराधपखु तौ लौं तौ सनमान । बिहारी सतसई - 142

2 मरतु प्यास पिंजरा - परयौ सुआ समै कै फेर ।
आदरु, दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर । बिहारी सतसई - 142

कवि यहाँ किसी ऐसे अपात्र व्यक्ति के विषय में अपने विचार प्रकट कर रहा है जो कि समाज में प्रतिष्ठित हो गया है 'ओ गोवर्धन ! तू घड़ी भर के लिए पूजनीय बनकर भले ही मन में हर्षित हो ले, परन्तु कुछ समय पश्चात् जब पशुओं के पैर तेरे ऊपर पड़ेंगे तब तू अपनी वास्तविकता से परिचित हो जायगा। व्यंग्य यह कि क्षुद्र व्यक्तियों को जो अवसर विशेष पर थोड़ा सम्मान लाद दिया जायगा तब वे अपने को सम्मानयोग्य समझकर घमंडी होते हैं।

(3) कपटाचरण संबन्धी व्यंग्य -

समाज में सबसे अधिक कपट, आडम्बर और प्रदर्शन धर्म के क्षेत्र में दिखाई देता है। भक्ति के आडम्बर पर बिहारी का व्यंग्य इस प्रकार है -

जपमाला, छापै, तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु।।[1]

भक्ति के बाह्याडंबर पर बिहारी की करारी चोट यहाँ है। किसी मंत्र - विशेष की माला लेकर स्मरण करने तथा मस्तक एवं शरीर के अन्य अंगों पर तिलक छापे लगाने से तो एक भी काम सिद्ध नहीं हो पाता। ऐसे भक्त का मन कच्चा तथा चंचल होता है। राम तो केवल सच्चे मन में निवास करके प्रसन्न होते हैं। कच्चा मन तो काँच है जो कभी भी टूट सकता है अर्थात् जिसमें नाना नामरूपात्मक सृष्टि प्रतिबिंबित होती रहती है। सच्ची भक्ति का रूपक कवि साँचे से देता है जिसमें ढलने पर मन दृढ हो जाता है।

तात्पर्य यह कि जिन्होंने धर्म को आडंबर समझा है वे ईश्वर की सच्ची भक्ति के अधिकारी कभी नहीं हो सकते। काँचै के दो अर्थ हैं कच्चा और काँच का। साँचै के दो अर्थ हैं सच्चा और साँचा। श्लेष यहाँ कमाल दिखाता है।

---

1 बिहारी सतसई - 7

कपटी भक्तों के लिए कवि की एक दूसरी उक्ति भी है –

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट ।
विकट जटे जौ लगै निपट खुलै न कपट-कपाट[1] ।

भक्त कवि कहता है कि मैं इस मन रूपी घर में तब तक भगवान् किस मार्ग से आ सकते हैं जब तक इसके द्वार पर पूरी तरह से जड़े हुए विशाल कपट रूपी कपाट नहीं खुलते । ईश्वर उसी भक्त के मन में आवास करता है जो कि निश्छल होता है - 'मोहि कपट छल छिद्र न भावा' । भक्ति के लिए श्रद्धा का होना परम आवश्यक है जो कपटी मन में नहीं रह पाता ।

मन की नीरसता, सकपटता और जड़ता के अर्थों को व्यक्त करने के लिए कवि ने उचित शब्दों का प्रयोग किया है ।

व्यंग्य यह कि छल-कपट से ईश्वर बहुत दूर रहता है और उसे दूर करने का दायित्व भी स्वयं छली कपटी ही पर रहता है, किसी अन्य पर नहीं ।

और एक दोहे में भक्त के अज्ञान या उसकी हठ की खबर ली गयी है -

भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ न एकौ बार ।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ गँवार[2] ।

परंपराओं का निराकरण मानव का सहज स्वभाव है । जो उससे करने को कहा जाता है उसे वह नहीं करेगा, जो न करने को कहा जाता है उसे वह करेगा । कवि यहां कहता है कि धर्म शास्त्रों में जिसका भजन करने को कहा गया, जिन आचारों का अनुष्ठान करने के लिए कहा गया, उनकी तू ने सतत उपेक्षा की - एक बार भी उनकी ओर ध्यान नहीं

---

1 बिहारी सतसई - 13

2 वही 14

दिया[1]।

और एक दोहे में अपनी ही मूर्खता से शांति खोकर भी उसे न पाने की शिकायत करनेवाली बिहारी का उत्तर है -

ब्रज बासिनु को उचित धनु, जो धन रुचित न कोई ।
सुचित न आयौ, सुचितई, कहौ, कहाँ तें होई ?[2]

श्रीकृष्ण ही जिन ब्रज निवासियों के उचित प्राप्य धन है, वे धन्य है। उन्हें और कुछ भी नहीं अच्छा लगता। यदि कोई आत्मशान्ति की कामना करे लेकिन श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम न हो तब उसकी इच्छा पूरी नहीं हो सकती है। व्यंग्य यह कि आत्मिक शान्ति उन अभागों को कदापि नहीं मिलती जो कृष्णभक्ति न कर सकर सुखवासनाओं में डूबे है।

कपटाचरण के उक्त उदाहरणों से भिन्न दो प्रसंग भी है।

'परम्परा से बंधे रहकर भी बिहारी ने कुछ प्रसंगों को नये ढंग से प्रस्तुत कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। पुराणवाचक पण्डितजी की 'परकीया' को प्रस्तुत करने के साथ साथ उनकी बगुला भक्ति और समाज की कमजोरी की ओर कितने मार्मिक ढंग से संकेत किया है[3]।

परतिय-दोषु पुरान सुनि लखि मुलकी सुखदानि ।
कसु करि राखी मिश्रहू, मुँह आई मुसकानि[4] ।।

- -

1 उलटे, सांसारिक सुख भोग की जिन बातों से दूर भागने को कहा गया, तू ने अतीव रुचि से उनका आस्वादन किया। विपरीत आचरण करके यदि तू मोक्ष चाहता है तो उस पर तरस ही खाया जा सकता है।

2 बिहारी सतसई - 20

3 बिहारी और उनका साहित्य पृ.112 - डा.हरवंशलाल शर्मा तथा डा.परमानन्द शास्त्री

4 बिहारी सतसई - 327

विनोदी बिहारी इस दोहे में एक मिश्रजी की चर्चा कर रहे है । उनको किसी परकीया से प्रेम था । पौराणिक मिश्र एक दिन कथा बांच रहे थे । 'परोपदेशे पाण्डित्यम्' के कायल यह महोदय पुराण के अन्तर्गत परस्त्री - प्रेम और परस्त्री - गमन के प्रेम की व्याख्या कर रहे थे, पर खुद इस मर्ज के मरीज थे । मनुष्य का पापी मन ऐसे स्थलों पर सहज ही अटक जाता है। दैवयोग से उनकी प्रेयसी भी वहीं बैठी हुई कथा सुन रही थी । अपने उपदेश का प्रभाव मिश्रजी लोगों के मुखमण्डल पर खोज रहे थे । तभी उनकी नज़रें प्रेमिका की नज़रों से मिल गयी । प्रेमिका की मुस्कुराहट को देखकर पौराणिक जी को भी हंसी आ गयी । परंतु उपयुक्त अवसर न होने के कारण उन्होंने उसे बलपूर्वक दबा लिया । बड़ी कठिनता से हंसी को रोक कर उन्होंने अपनी इज्जत को बचाया । यदि पण्डित भी नायिका के प्रत्युत्तर में मुस्कुरा देता तो सब पर भेद खुल जाता कि दोनों एक दूसरे को प्रेम करते है तथा पण्डितजी का यह उपदेश भी पाखण्ड है ।

बिहारी के उक्त दोहे का व्यंग्य निम्न लिखित पंक्ति का अर्थ समझने पर अधिक हृदयंगम होता है -

'हो छिपाना जानता, जग उसे साधु समझता' । पौराणिकजी तो पुराने पापी है । यदि वे कच्चे होते तो कथा प्रसंग में उल्लिखित दोष फल पढ़ते पढ़ते उनकी जबान एक बार तो लड़खड़ा ही जाती, अंतरात्मा कांप हो उठती । लेकिन वे हंस बैठते है । अतः यह व्यंग्य गहरा है । घटना जन्य हास्य भी यही है, पौराणिकजी का चौर चातुर्य तथा पाखण्ड हास्य सृष्टि करते है । उनकी कथनी और करनी में कितना अन्तर है ? उपदेश देनेवाले पुराणवाचक पण्डितजी आलम्बन है । श्रोताओं में बैठी परकीया का, यह ढोंग देख हंसना उद्दीपन है । इस प्रसंग की हास्य योजना की आलोचना यों हुई है 'बिहारी का यह हास्य कोरा हास्य नहीं । शिष्ट एवं गंभीर होने के अतिरिक्त यह समाज के दम्भी तत्वों की पोल भी खोलता है । झूठे सिद्धांतवादियों के लिए यह एक चुनौती है[1] । 'इसमें मनुष्य की दुर्बलता और उसके प्रकृत एवं सामाजिक व्यवहार के वैषम्य का चित्रण है' ।

---

1 बिहारी और उनका साहित्य - पृ. 180

डा. हरवंशलाल शर्मा तथा डा. परमानन्द शास्त्री

यही नहीं, कहीं - कहीं बिहारी ने नये प्रसंगों की भी उदभावना की है । खुद मरीज होते हुए भी वैद्य दूसरे के मर्ज को जड़ से खो देने का पक्का दावा करता है । उसकी पत्नी इतना व्यारा व्यंग्य करती है कि वैद्य तिलमिलाकर रह जाता है । एक वैद्यजी की चाल देखिए :-

बहु धनु लै, अहसानु कै, पारौदेत सराहि ।
बैदबधू, हँसि भेद सौं, रही नाह-मुँह चाहि ।।[1]

वैद्यराज, जो स्वयं नपुंसक है, बड़ा अहसान लादकर और अपनी औषधि की तारीफ के पुल बांधकर किसी बेचारे नपुंसक को पारद - भस्म दे रहे हैं और उनकी पत्नी उनके इस कारनामे पर उन्हें देखकर मुसका रही है, परन्तु उसका हृदय मानो रोता हुआ कह रहा है - 'धन्य है तुम्हारा ढोंग, यदि यही बात है तो पहले अपना रोग तो दूर कर लिया होता'।

बधू का हँसना वैद्य के लिए मानों एक चुनौती है कि पहले तो अपना ही निदान कर लो फिर औरों को दवा देना । या संभव है इस दवा द्वारा वैद्य स्वयं ठीक हो जाय।

(4) कृपणता और लोभ संबन्धी व्यंग्य - किन्नोक्तियाँ

घर घर डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ ।
दियैं लोभ - चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ।[2]

यह लोभ की निंदा पर बिहारी की उक्ति है । कवि यहाँ भीख मांगने की निंदा करते हुए कहता है कि कोई व्यक्ति दीन - हीन होकर घर - घर डोलता हुआ लोगों से भीख मांगता फिर रहा है । उसके नेत्रों के ऊपर स्वार्थ रूपी चश्मा लगा हुआ है । अतः उसे छोटा व्यक्ति भी अपने से उच्च दिखाई पड़ता है[2] । चश्मे के प्रयोग से छोटी वस्तु

---

1 बिहारी सतसई - 708

2 वही 104

भी बड़े आकार की दीख पड़ती है । साथ ही याचना अथवा स्वार्थ सिद्धि के समय पर भी साधारण से साधारण व्यक्ति को भी बड़ा ही मानना पड़ता है ।

और एक दोहे में बिहारी कृपण पर व्यंग्य यों कसते हैं -

मीत, न नीति, गलीतु ह्वै जो धरियै धनु जोरि ।
खाएँ - खरचे जो जुरै, तो जोरियै करोरि ।।[1]

धन जोड़ना तो बुरी बात नहीं, यदि खाने खर्चने की अवश्यकताओं के पूरे होने के बाद बचने वाला धन जोड़ा जाय, लेकिन खाने पीने की जरूरतों को काट-छाट कर, अपने शरीर को दुखाकर यदि पैसा बचाकर जोड़ा गया तो यह उचित नहीं, नीति नहीं । यही व्यंग्य है कृपणों पर जो न अवश्यक रूप में खाते हैं, पीते हैं और पहनते हैं । केवल धन जोड़ना ही उनका एक मात्र लक्ष्य है ।

और एक दोहे में एक कृपण पर पड़ी अप्रतीक्षित आघात का वर्णन है ।-

कन दैबौ सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि ।
रूप - रहचटै लगि लग्यौ माँगन सबु जगु आनि ।[2]

किसी कृपण के यहां नयी ब्याही बहू आयी । उसके हाथ बहुत छोटे - छोटे थे । कृपण स्वभाव का ससुर यह समझ कर अतीव सन्तुष्ट हुआ । उसकी मुट्ठी में बहुत थोड़ा अन्न आ सकेगा, यह सोचकर उस कृपण ससुर ने भीख देने का काम उस वधु को सौंप दिया। लेकिन नववधु इतनी सुन्दर थी कि उसके रूपदर्शन के लोभ से सारा जगत ही भिखारी बन कर उसके द्वार पर इकट्ठा होने लगा और इस प्रकार कृपण की सारी योजना पर पानी फिर गया कृपण की बुद्धि थी महादानी की उपाधि बिना अधिक पूंजी के पाने की । दानी का नाम भी मिले, खर्च भी कम हो, यही उनकी नीति थी । लेकिन बात उलटी ही हो गयी ।

---

1 बिहारी सतसई । 34

2 वही

(5) अन्य व्यंग्य विनोदोक्तियाँ -

बिहारी ने भक्ति को प्रेम के माध्यम से सज्जन (रसिक) तथा असज्जन (अरसिक) का भेद करते हुए कहा है :-

गिरि ते ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजारु ।
वहै, सदा पसु नरनु कौ प्रेम - पयोधि पगारु ।।[1]

रसिक मन के लिए प्रेम अथाह सागर के समान है । अगणित पर्वत जिस प्रकार अगाध समुद्र में डूब जाते हैं और उसकी थाह नहीं पाते। इसी प्रकार प्रेम का मर्म समझने वाले रसिक मन भी उसमें इस प्रकार निमग्न हो जाते हैं कि न उससे निकल ही पाते हैं और न पूर्ण तृप्त ही होते हैं । पशु-वृत्तिवालियों के लिए यह प्रेम पशुवत् वासना मात्र है, प्रेम उनकेलिए एक अगाध सागर नहीं एक गड्ढा मात्र है । प्रेम के नाम पर वे वासना की तृप्ति मात्र चाहते हैं ।

व्यंग्य यह कि प्रेम का वास्तविक अर्थ तो कोई भावुक ही जान पाता है, नीरस नहीं, इसी प्रकार भक्ति करने के लिए रसिक हृदय होना पहली शर्त है । पशुवृत्तिप्रधान मनुष्य प्रेम सागर को पार नहीं कर लेता, लेकिन पारकर लेने का अहंभाव भी करता रहता है ।

पौष मास के छोटे होते हुए ठंडे ठंडे दिन का वर्णन करते हुए बिहारी का कथन है -

आवत-जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु ।
घरहं जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस-दिन-मानु ।।[2]

पौष मास के दिन का मान (सम्मान, आराम) इतना कम हो गया है कि उसके आने जाने का कुछ भी पता नहीं चल पाता जैसे कि ससुराल में रहनेवाले दामाद का तेज और सम्मान घट जाता है ।

---

1 बिहारी सतसई 344

2 वही 69

व्यंग्य यह कि जिस उग्रता के कारण जामाता को दसवां ग्रह माना जाता है, घर-जमाई बन जाने पर वह सब उसे छोड़ देना पड़ती है। वह पूस के उन छोटे छोटे दिनों जैसा रह जाता है जिनमें न उग्रता होती है न दीर्घता ही।

(घ) सरस व्यंग्य विनोदोक्तियां -

बिहारी सतसई के लगभग पचीसों दोहे इस विभाग में आ सकते हैं। लेकिन विस्तार भय से हम यहां यहीं से कुछ उदाहरणमात्र ही लेंगे।

प्रेमनगर की अनीति पर बिहारी का व्यंग्य है :-

क्यों बसियै क्यों निबाहियै नीति नेह पुर मांहि।
लगा लगी लोयन करैं नाहक मन बंधि जांहि[1]।।

बिहारी का कथन है कि प्रेमनगर में नीति नहीं। जिस नगर में चोरी कोई करे और बांधा दूसरा जाय, वहां कौन बसना चाहेगा और जो बसा हुआ है, उसका निर्वाह कैसे हो सकेगा ? इसी प्रकार की अनीति प्रेमनगर में नित्य प्रति होती है। नेत्र परस्पर एक दूसरे से उलझते हैं, परन्तु बेचारे मन व्यर्थ ही बांध दिए जाते हैं। अपराध करता है एक लेकिन दंड भुगतना पड़ता है और एक को। व्यंग्य तीखा बना है।

बिहारी की एक विनोदपूर्ण मुकरी भी काफी प्रसिद्ध है :-

रही रुकी, क्यों हूं सु चलि, आधिक राति पधारि।
हरति तापु सब द्यौस की उरलगि। यारि ? बयारि[2]।

- -

1 बिहारी सतसई - 123

2 वही 87

नायक का पवन के विषय में कथन है कि जो दिन में किसी कामनी से जुड़ी रही वही पवन रूपी प्रेयसी आधीरात के समय आकर हृदय से लगाकर अर्थात् आलिंगन में बांध कर दिन भर की तपन रूपी पीड़ा को दूरकर रही है[1] ।

विनोदी कवि बिहारी ने ज्योतिषी जी को भी नहीं छोड़ा है । एक दोहे में उनकी खिल्ली उड़ाई गयी है ।

> चित पितमारक - जोगु गनि भयौ, भयैं सुत, सोगु ।
> फिर हुलस्यौ जिय जोइसी, समुझैं जारज-जोगु ।।[2]

पुत्र जन्म पर ज्योतिषी जी उसकी कुंडली बनाने बैठे । पुत्र जन्म पिता के लिए सन्तोष का अवसर है ही, लेकिन यहां प्रसन्नता के स्थान पर उनको दुख ही हुआ । कारण यह था कि ग्रहों पर विचार करने से पता लगा कि पुत्र के ग्रह पितृमारक है, उन ग्रहों के अनुसार शिशु के पिता को शीघ्र ही मरना पड़ता था । उन्होंने फिर एक बार भी कुंडली देखी । ईश्वर को धन्यवाद कि इस बार उनको ग्रहों से पता लगा कि उसमें जारजयोग भी था अर्थात् लड़का उसकी सन्तान नहीं, किसी अन्य पुरुष से उत्पन्न हुआ है । ऐसी वार्ता किसी भी पिता को दुखी और कोपिष्ठ बनायेगा । लेकिन ज्योतिषीजी बहुत सन्तुष्ट हुए कि चलो, जान किसी न किसी प्रकार बची । शोक तथा उल्लास की शबलता में रंगे हुए ज्योतिषजी हास्य के आलम्बन होकर भी कितने दयनीय है[3] ? इस दोहे में भारतीय दाम्पत्य जीवन और विवाह की संस्था पर आघात किया गया है[4] ।

पितृ मारक योग और जारजयोग दोनों का एक साथ दिखाई पड़ना हर्ष और दुख का भाव ज्योतिषीजी में उत्पन्न करता है । हर्षोल्लास के अवसर पर दुख और ~~सुख के अवसर पर सुख और~~ दुख के अवसर हर्षोल्लास करना परिस्थित जन्य हास्य की सृष्टि करता है ।

---

1 इस कथन में नायक ने कर्ता का उल्लेख नहीं किया है । उसका वह तथ्य सुनकर कोई उससे प्रश्न करता है कि वह यारि (प्रेमिका) थी क्या जिसने इस प्रकार तुम्हें सुख पहुंचाया ? नायक सच्ची बात को छिपाकर उत्तर देता है - 'नहीं जी । वह बयारि (वायु) थी ।

2 बिहारी सतसई

3 बिहारी और उनका साहित्य पृ. 180 डा. हरवंशलाल शर्मा तथा डा. परमानन्दशास्त्री

4 बिहारी - पृ.584 रामरतन भटनागर

चाहे जो भी हो अन्त मे ज्योतिषी महाशय प्रसन्न ही होते है और हो भी क्यो नही ? तीन कारणो से वे प्रसन्न हुए होगे - (1) उन्हे एक पुत्र मिल गया (2) उनकी प्रशंसा भी हुई (3) उनके प्रतिद्वन्द्वी (ज्योतिषीजी की पत्नि का प्रेमी) के मर ज का भी विश्वास हो गया ।

बिहारी का वाग्वैदग्ध्य

किसी साधारण बात को भाव एवं अभिव्यक्ति के असाधारण ढंग का प्रतिभोत्पित कल्पना - व्यापार द्वारा कहना ही वाग्वैदग्ध्य कहलाता है । वाग्वैदग्ध्य के लिए भाव एवं कलापक्ष का सन्तुलन आवश्यक है । बिहारी के दोहो की कसावट मे वाग्वैदग्ध्य तथ उक्ति वैचित्र्य का भी महत्वपूर्णयोग रहा है । किसी तथ्य को स्पष्ट करने अथवा किसी मुद्रा का निरीक्षण करने की जो विशिष्ट पद्धति है उसीको उक्तिवैचित्र्य कहते है ।

बिहारी मुक्तककार थे । मुक्तककार मे वाग्विदग्धता आवश्यक भी है । प्रवाह के अभाव के कारण मुक्तको मे नीरसता फौरन खटकने लगेगी । प्रबन्ध के विशाल क्षेत्र मे रस पूरी सामग्री संजोने केलिए स्थान की कमी नही, किन्तु मुक्तक की संकीर्ण परिस्थिति मे उनका समावेश करना लोहे का चना चबाना ही है । प्रबन्धकार को कहने सुनने (अवका की सुविधा है, लेकिन मुक्तककार को संकेत से ही काम लेना है । मुक्तक मे प्रसंग की कल्पना का भार प्रायः पाठक पर छोड दिया जाता है । प्रबन्ध का प्रभाव स्थायी तो मुक्त कम क्षणिक । 'इसमे रस के ऐसे छीटे पडते है जिनसे हृदयकलिका थोडी देर केलिए खिल उठती है'[1] । यदि प्रबन्धकाव्य एक वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता[2] ।

अपनी रचना के लिए बिहारी ने इस 48 मात्राओ के छोटे से छन्द को अपनाने का क्यो किया ? अपनी वाग्विदग्धता पर आत्मविश्वास के कारण । पिंगल नियमो का अक्षरशः निर्वाह करते हुए ही वे गागर मे सागर भर सके । 'जिस कवि मे कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति जितनी अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना मे स होगा । यह क्षमता बिहारी मे पूर्णरूप से वर्तमान थी । इसी से वे दोहे जैसे छोटे से

- -

1 बिहारी साहित्य का इतिहास - पृ.246 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

2 वही पृ.247

छन्द में इतना रस भर सके।[1] पं. रामचन्द्र शुक्ल जी के शब्दों में 'इनके दोहे क्या है, रस की छोटी छोटी पिचकारियां है। वे मुह से छूटते ही श्रोता को सिक्त कर देते है।[2] गिने चुने अक्षरों के संकीर्ण बीच में से पार होकर सहृदय पाठकों के हृदय तक पहुंचने की शक्ति बिहारी के दोहे में है। बिहारी के दोहों के इन्हीं गुणों को देखकर किसी ने उन्हें नतकी में से छोड़े हुए तीरों के समान गहरे पैठने वाला कहा है।[3] किसी भी बड़े से बड़े तथ्य को दोहे की दो पंक्तियों में व्यक्त करने में बिहारी कुशल थे।

बिहारी के दोहों में ठूंस ठूंस कर भरे हुए भाव जैसे परवती कवियों के छन्दों में पानी पर गिरी हुई तेल की बूंद के समान फैले[4] उसी प्रकार पूर्ववती कवियों के लम्बे भाव भी सर्प के समान कुण्डली लगाकर दोहे की छोटी सी पिटारी में घुस बैठे।[5,6]

- -

1 बिहारी और उनका साहित्य पृ.244 डा. हरवंशलाल शर्मा तथा डा. परमानन्दशास्त्री

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.247 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर। देखत में छोटे लगे, घाव करें गंभीर।।

4 दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुरचित प्रीति।
परति गांठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति।। बिहारी सतसई - 362

5 उरझत दृग बंधि जात मन कहौ कौन यह रीति। प्रेम नगर में आइके देखी बड़ी अनीति
अद्भुत गति यह प्रेम की लखौ सनेही आय। जुरै कहूं टूटै कहूं, कहूं गांठि परि जाय
रसनिधि

5 मुग्ध मुग्ध तयैव नेतु मखिलः कालः किमारभ्यते।
मानं धत्स्व धृतिं बधान ऋजुतां दूरेकुरु प्रेयसि।।
सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना।
नीचैः शंस हृदिस्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति।। अमरुशतक
सखी सिखावति मान - विधि, सैननि बरजति बाल।
हरुये कहि मो हिय बसत सदा बिहारी लाल।। लालचन्द्रिका पृ.723

6 शब्द मुक्ताओं को उन्होंने दोहा - सूत्र
में यथास्थान इस ढंग से गूंथा है
कि प्रत्येक का व्यक्तिगत मूल्य सामूहिक
मूल्य में कई गुनी वृद्धि कर देता है। यदि बीच में से एक भी शब्द निकाल दिया
जाय तो सारी माला बिखर जायगी। बिहारी और उनका साहित्य पृ.246

प्राकृत का यह पद्य

'आवकोसविकासं पावइ ईसी मालईकलिआ
मअरन्दपाणलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ।।

बिहारी की लेखनी से यो बाहर आया -

'हिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल ।
अली कली ही सो बंध्यौ, आगे कौन हवाल ।।

बिहारी की इस प्रसिद्ध अन्योक्ति मे बाह्य प्रकृति से अली और कली के मानव जीवन से अनुरक्त सम्बन्ध का एक कोमल दृश्य लेकर उसकी ओट से अपनी बात का कारगर तीर छोड गया है । यदि बिहारी किसी शुष्क उपदेशात्मक उक्ति का आश्रय इस प्रसंग पर लेते तो जरूर विषम परिस्थिति मे पड गए होते, उनका उद्देश सिद्ध होता ही नही, उलटे रसिक राजा की रंगरेलियो मे कुछ रोडा अटकाने का कुछ पुरस्कार भी प्राप्त करना पड जाता तो अचरज न होता । बिहारी की वाग्विभूति ने ही उनकी रक्षा उस समय की ।

- -

1 बिहारी सतसई - 102

2 विलासी जयपुर नरेश अपनी नवविवाहिता रानी के प्रेम मे इतने डूब गए थे कि राज पर तनिक भी ध्यान न देते थे । यहाँ तक कि अन्तपुर से बाहर निकलते तक ना थे । मंत्री, जनता बडी रानी सब परेशान थी । रानी ने बिहारी से प्रार्थना की कि वे कुछ करे । रानी को प्रसन्न करने के लिए तथा कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियो के षड्यन्त्र के कारण शाहजहाँ के कोप से राजा को सचेत करने केलिए बिहारी ने यह दोहा लिख भेजा । इस दोहे का प्रभाव अचूक पड़ा । राजा अन्तपुर से बाहर आये । उन्होने राज्य व्यवस्था संभाली और बिहारी को पुरस्कृत किया । फिर राजा की छत्रछाया मे बिहारी सरस दोहे लिखते रहे ।

अर्थ, शैली, भाषा सब के माध्यम से बिहारी ने अपना वाग्वैदग्ध्य दिखाया । उनकी वाग्विदग्धता में भाषा के स्थान के बारे में आचार्य पद्मसिंह शर्मा ने यों लिखा 'जरा से दोहे में जो अर्थ सिमटा बैठा था वह वहां से निकलते ही इतना फैल गया कि टीकाकारों और कवियों के बड़े मैदानों में नहीं समा सका । मानो गंगा का समुद्र प्रवाह जो शिवजी की जटों में से निकलकर किसी के काबू में नहीं आता । ऐसी वाग्धारा के प्रवाह को किसी बंधे गढ़े में भर कर रखना सामर्थ्य से बाहर है ।[1] मिश्रबन्धुओं ने इसे 'जुही की कली या चमेली के फूल के रूप में देखा ।

श्री वियोगीहरि बिहारी की वाग्विदग्धता में अर्थगांभीर्य की महानता पर यों कहते हैं उनका एक एक दोहा टकसाली रत्न है । इस क्षीरसागर के रत्नों की अनेक जौहरियों ने परख की, किन्तु उनकी ठीक ठीक कीमत कोई भी नहीं आंक सका । कितनी टीकाएं हुई, कितनी युक्तियां पेश गयी, लेकिन सन्तोष किसी को नहीं हुआ ।[2]

बिहारी ने अपने शब्दों के बहुविध प्रयोग से वैचित्र्य सम्पादन किया है । कहीं तो पुनरुक्ति के रूप में और कहीं अनेकार्थक शब्द प्रयोग के रूप में । कहीं श्लेष द्वारा वैचित्र्य है तो कहीं असंगति का चमत्कार है ।[3]

बिहारी का वक्रोक्ति विधान

कुन्तक के मतानुसार विचित्र अभिधा ही वक्रोक्ति है । बिहारी का वक्रोक्ति सिद्धांत के विषय में स्पष्ट मत था कि काव्य - सौन्दर्य का मूलाधार वक्रोक्ति को एक जीवन के रूप में तो नहीं किन्तु सौन्दर्य अधिष्ठान के रूप में वे अवश्य स्वीकार करते थे ।

- -

1 संजीवन भाष्य - टीका - पंडित पद्मसिंहशर्मा

2 वीरसतसई की भूमिका - श्री वियोगी हरि

3 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी की भूमिका - डा. भगीरथ मिश्र

उनका कहना है -

गढ रचना बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान ।
आघु बंकाई ही चढै तरुनि तुरंगम तान ।।[1]

यहाँ पर 'तान' (संगीत) में बंकाई (वक्रता) को मूल्यवर्धक मान कर कवि ने
में वक्रोक्ति को सौन्दर्यवर्धक के रूप में स्वीकार किया है । नेत्र की वक्रता ही मोह
कारण होती है ।- वह चितवनि और कछु जिहि बस होत सुजान ।

केवल इतना ही नहीं, अपितु बिहारी की दृष्टि में भगवदाराधना की परिपूर्णता
लिए भी हृदय की वक्रता ही स्पृहणीय है फिर चाहे कितनी ही इस वक्रता की निन्दा
विश्व में की जाये ।-

करौ कुबतु जगु कुटिलता तजौं न दीन दयाल ।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ।।[2]

बिहारी का कोई भी दोहा इस वक्रता से रहित नहीं । यही कारण है कि
आलोचक जगत में बिहारी चमत्कारोपासक कवि माने जाते हैं । 'बिहारी वक्रोक्ति के
धनी हैं । उनकी सतसई में इस वक्रोक्ति के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं'[3]।

बिहारी में मुख्य रूप से पद वक्रता का अध्ययन ही किया जा सकता है । क्योंकि
प्रकृता शब्दालंकारों और विशेष रूप से अनुप्रास से व्यतिरिक्त नहीं । वाक्य वक्रता में
अर्थालंकार आते हैं । प्रबन्ध वक्रता और प्रकरण वक्रता प्रबन्ध काव्यों से ही संबंधित है
बिहारी में उनके अध्ययन का प्रश्न ही नहीं उठता ।

---

1 बिहारी सतसई - 153
2 वही - 21
3 बिहारी सतसई - समीक्षा - पृ. 112 श्री. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र

बिहारी का प्रत्येक शब्द किसी न किसी व्यंजनार्थ मे प्रयुक्त हुआ है । बिहारी की पद-वक्रता का उदाहरण और विवेचन एक स्वतंत्र प्रबन्ध का विषय हो सकता है क्योंकि बिहारी सतसई मे सब कही यही है । अतः यहा पर दिग्दर्शन मात्र ही साध्य है । पद वक्रता दो प्रकार की है पदपूर्वार्धवक्रता और पद परार्धवक्रता । दोनो विभागो के कई उपविभाग भी होते है ।

(क) पदपूर्वार्धवक्रता -

(1) रूढि वैचित्र्य वक्रता - जब व्यक्ति विशेष के लिए रूढ किसी विशिष्ट शब्द का विशेष व्यंजक के रूप मे प्रयोग होता है वहा रूढि वैचित्र्य वक्रता है । उदाहरण बिहारी से यो लेगे - ज्यो ह्वै हौ त्यो होउगा हौ हरि अपनी चाल ।

हठु न कीजै अति कठिन है मो तारिबो गुपाल ।।[1]

यहा पर 'गुपाल' शब्द का व्यंग्यार्थ है - आप गायो का पालन करना ही जानते है, मुझ जैसे पापियो के उद्धार करने की आप मे शक्ति कहा । यह भाव कृष्ण के पतितोद्धार विरद के प्रतिकूल है । और एक दोहे मे बिहारी ने गोप का प्रयोग भी किया है[2] । इन दोनो उदाहरणो मे हम असंभावित अर्थ का आरोप देखते है । और भी कई दोहे है जहा विद्यमान धर्म की अतिशयता का आरोप भी किसी रूढि के द्वारा किया जाता है । उदाहरण देखे :-

मनमोहन सो मोह करि तू घनश्याम निहारि ।
कुंज बिहारी सो बिहरि गिरधारी उर धारि[3] ।।

यहा पर मनमोहन, घनश्याम इत्यादि शब्दो का प्रयोग भिन्न भिन्न धर्मो की अतिशयता को अभिव्यक्त करता है ।

---

1 बिहारी सतसई - 42
2 नाथ विरद कैसी रहवी अब देखवी मुरारि ।
बीधे मोसन आइके गीधे गीध हि तारि ।। बिहारी सतसई - 464
3 बिहारी सतसई - 36

प्रगट भये द्विजराज कुल सुबस बसे ब्रज आय ।
मेरे हरउ कलेश सब केसव केशव राय[1] ।।

यहां 'केशव केशव राय' का प्रयोग क्लेश हरण की अतिशयता को अभिव्यक्त करने के लिए हुआ है ।

(2) पर्यायवक्रता

अपने प्रयोग सामर्थ्य से शब्द-विशिष्ट अर्थ का पोषक होता है तो वहां पर्यायवक्रता है। कभी कभी शब्द प्रस्तुत अर्थ से भिन्न किसी अन्य अर्थ की छाया को ग्रहण कर प्रस्तुत अर्थ को अलंकृत कर देता है । जैसे –

यह विनसत नग राखिकै जगत बड़ी जसु लेहु ।
जरी विसम जुर ज्याइयै आय सुदरसन देहु[2] ।।

यहां पर 'विसम जुर' और सुदरसन इत्यादि आयर्वेद गत शब्दों का प्रयोग नवीन भंगिमा के साथ प्रस्तुत अर्थ को अलंकृत कर देता है । इसी प्रकार :-

मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परे स्याम हरित दुतिहोइ[3] ।

यहां कृष्ण का पर्याय स्याम शब्द श्याम वर्ण और पाप का भी वाचक है । जिससे दूसरे अर्थ अभिव्यक्त होकर प्रस्तुत वाक्य को अलंकृत कर देता है । और एक उदाहरण दो है :-

मंगल बिन्दु सुरंग मुख ससि केसर आड गुरु ।
एक नारी लहि संगु रसमय किय लोचन जगतु[4] ।।

---

1 बिहारी सतसई - 2
2 वही - 542
3 वही - 1
4 वही

यहाँ पर नारी शब्द की द्व्यर्थकता (नाड़ी और नारी) का संस्कार 'मैमत किन्तु सुरंगु' इत्यादि रूपक के द्वारा होता है ।

(3) उपचार वक्रता -

जहाँ लाक्षणिक एवं काल्पनिक प्रयोगों द्वारा रमणीयता अभिव्यक्ति की जाती है वहाँ उपचार वक्रता होती है । उदाहरण ।-

अंग अंग छवि की लपट उपटति जाति अछेह ।
खरी पातरी ऊतऊ लगै भरी सी देह ॥[1]

उबटन आदि इत्यादि से तो किया जाता है । किन्तु छवि से उबटन करना बाधित है । इससे लक्ष्यार्थ निकलता है सुन्दरता से पूर्ण रूप से भरा हुआ होना । यह लक्ष्यार्थ द्वितीय पंक्ति के विरोधाभास को कृतार्थ करता है । इस प्रकार यहाँ 'उपटना' शब्द के प्रयोग में उपचार वक्रता है ।

(4) विशेषण वक्रता '

क्रिया विशेषण वक्रता के उदाहरण यों है ।-

" अंग अंग छविकी लपट उपटति जाति अछेह । " यहाँ उलटने का विशेषण 'अछेह' दिया गया जो कि विशेषण - वक्रता का प्रयोजक है ।

कारक विशेषण वक्रता का उदाहरण यों है ।-

लाज गही बेकाज कत घेरि रहे घर जाँहि ।
गोरस चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाँहि ।।[2]

- -

1 बिहारी सतसई - 300
2 वही - 669

नायिका का आशय यह है कि यहां तुम्हारी छेड़छाड़ व्यर्थ है। यदि सचमुच तुम रमिज्य - रस चाहते हो तो घर आना। यहां वैकाज क्रियाविशेषण वक्रता के साथ प्रकट हुआ है और काव्य सौन्दर्य का पोषक है।

(5) संवृत्ति वक्रता -

अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान।
वे चितवनि और कछु जिहि बस होत सुजान[1]।।

यहां पर चितवन लोकोत्तरता को सिद्ध करने के लिए 'और कछु' कहकर संवरण किया गया है। और एक उदाहरण :-

जब जब वे सुधि कीजिए तब तब सब सुधि जाहिं।
आंखिन आंखि लगी रहैं आंखैं लागति नाहिं[2]।।

संयोग काल की स्मृतियां अनुभव मात्र संवेद्य है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी बात को व्यंजना वे इस सर्वनाम के द्वारा की गई है।

(6) वृत्ति वक्रता -

झुकि झुकि 'झपकौहैं' पलनि फिरि फिरि जुरि जमुहाइ[3]।
बींदि पियागम नींद मिस दी सब सखी उठाइ।।

यहां झपकौहैं का अर्थ है कुछ कुछ झपकते हुए। यहां अल्पार्थक प्रत्यय से निद्रा के अभिनय में स्वाभाविकता आ गई है।

- -

1 बिहारी सतसई - 131
2 वही - 455
3 वही - 455

(7) वाक्यवक्रता -

अंग अंग छवि की लपट उपटति जाति अछेह ।
खरी पातरी तुतउ लगै भरी सी देह[1] ।।

नायिका यौवन अन्य चमक से भर गयी है । उसका यौवन - सौन्दर्य सिद्ध ही है किन्तु 'उपटती जा रही है ।' इस साध्य प्रयोग द्वारा यह अभिव्यक्त हो रहा है कि नायि का सौन्दर्य बढ़ता ही जा रहा है । जब अभी यह दशा है, तो उसका सौन्दर्य बढ़कर का तक पहुँचेगा, उसे कौन कह सकता है ?

(8) लिंग वैचित्र्य वक्रता

धाम घरीक निवारिये कलित ललित अलिपुंज ।
जमुना तीट तमाल तरु मिलत मालती कुंज[2] ।।

यहाँ पर 'तमाल तरु' से पुल्लिंग और 'मालतीकुंज' में स्त्रीलिंग का प्रयोग विशेष मन्तव्य से किया गया है और नायिका का उद्दाम कामवासना और आलिंगन की उत्कट अभिलाषा को अभिव्यक्त करता है ।

(9) क्रियावैचित्र्यवक्रता -

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात ।
भरे भौन में करत हैं नैननु ही सब बात[3] ।।

यहाँ नैनों का प्रयोग वाक्य रचना के कारण, करण कारक में हुआ है । किन्तु क्रियाशीलता इन्हीं में है ।

---

1 बिहारी सतसई - 300

2 वही 514

3 वही 185

(ख) पदपरार्धवक्रता -

(1) कालवैचित्र्य वक्रता

किसी भी कार्य के लिए नियत समय से भिन्न समय का जब काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उपादान किया जाता है तब उसे काल वैचित्र्य वक्रता कहते हैं, जैसे :-

कहा कहौ वाकी दसा हरि प्रानन् के ईस ।
बिरह ज्वाल जरि बोलबो मरिबो भई असीस ।।[1]

यहाँ प्रसंगोपात्त कथन यह है कि आप शीघ्र नहीं चलेंगे तो उसकी दशा मरण से बदतर हो जायगी । किन्तु भविष्यकाल के स्थान पर 'भई' इस भूतकाल को किया गया है । जिसमें यह अभिव्यक्त होता है कि उसकी ऐसी दशा हो चुकी है कि अब अधिक विलम्ब सहन नहीं किया जा सकता ।

(2) कारक वक्रता

किसी भी व्यापार में जो वास्तविक कारक है, उसके स्थान में उसे किसी अन्य कारक में रखा जाय और उससे रमणीयता की अभिवृद्धि हो उसे कारक वक्रता कहते हैं । जैसे :-

चितवत बचत न हरत हठि लालन दृग बरजोर ।
सावधान के बटपरा ये जागत के चोर ।।[2]

वस्तुतः चित्त का अपहरण नायक ने किया है और उसका साधन है सुन्दर नेत्र । अतः नेत्र में करण कारक होना चाहिए । किन्तु यहाँ नेत्र को कर्ताकारक में रखा गया है । जिससे अनायास ही नायिका के हृदयाकर्षण की अभिव्यक्ति होती है और इससे काव्यसौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है ।

- -

1 बिहारी सतसई - 597

2 वही - 692

(3) संख्या - वक्रता -

मोहूँ दीनै मोषु ज्यों अनेक अधमनि दियो ।
जौ बाँधे ही तोषु तौ बाँधिय अपने गुननु ।।[2]

यहाँ पर 'अधमनि' में बहुवचन अनेक पापियों की व्यंजना करता है और मोहूँ के एक वचन से अभिव्यक्त होता है कि आपने जहाँ इतनों को तारा है, वहाँ मैं एक और सही'। इससे तारने का औचित्य और अधिक बढ जाता है । इसी प्रकार 'गुननु' का बहुवचन भगवद्गुणों की अनेकतापरक है जिससे सिद्ध होता है कि आपके पास असंख्य गुण है । इसलिए मुझे बाँधने में आपके कठिनाई भी नहीं होगी ।

(4) पुरुषवक्रता -

जहाँ काव्य सौन्दर्य केलिए पुरुष व्यत्यास किया जाता है, वहाँ पुरुष वक्रता होती है । जैसे -

मार सुमार करी खरी अरी मरीहिन मारि ।
सींचि गुलाब घरी घरी अरी बरीहिन बारि ।।[2]

यहाँ नायिका को कहना यह है कि मुझे मत मारो, मुझे मत जलाओ । किन्तु वह उत्तम पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष को प्रयोग करती है कि 'मरी को मत मारो, जली को मत जलाओ' ।

(5) उपग्रहवक्रता -

मोर चन्द्रिका स्याम सिर चढिकत करति गुमान ।
लखिबी पायन पर लुटति सुनियत राधा मान ।।[3]

---

1 बिहारी सतसई ।।
2 वही 553
3 वही 672

यहाँ पर 'सुनियत' के कर्मवाच्य से व्यक्त होता है कि यह समाचार असत्य नहीं, अपितु प्रायः लोगों की चर्चा का विषय बन गया है ।

(6) प्रत्यय वक्रता -

जहाँ कृदन्त या तद्धित प्रत्यय के प्रयोग से रमणीयता का सम्पादन किया जाय वहाँ प्रत्यय वक्रता होती है । जैसे :-

रहि कन्हो कर जोरि ये सुनत श्याम के बैन ।[1]
भये हसी है सबनु के अति अनखीहे नैन ।।

यहाँ अनखीहे में अल्पार्थक प्रत्यय है जिसकी व्यंजना यह है कि कृष्ण के चीर हरण कर लेने से बालिकाओं में क्रोध तो उत्पन्न हुआ, यह दिखावटी तथा स्वल्प ही थी । वस्तुतः कृष्ण की शरारत उन्हें अच्छी लगी । इस प्रकार 'हसीहे' का अल्पार्थक प्रत्यय उनकी लज्जाशीलता की स्वाभाविकता को व्यक्त करता है ।

(7) उपसर्ग वक्रता -

यह विनसत नगु राखिके जगतु बड़ी जसु लेहु ।
जरी विषम जुर जाइए आइ सुदरसन देहु ।।[2]

यहाँ 'विनसत' में विशेषार्थक 'वि' उपसर्ग से नायिका की अधिकाधिक वियोगजन्य क्षीणता, मरण की अतितीव्र अवश्यंभाविता और नायक के तत्काल अभिगमन की आवश्यकता व्यक्त होती है ।

- -

1 बिहारी सतसई - 11

2 वही - 542

(8) निपात वक्रता -

जहाँ विस्मयादि बोधक अव्यय अथवा 'और' इत्यादि निपात का प्रयोग सौन्दर्य के निमित्त होता है, वहाँ निपात वक्रता है । उदाहरण -

ज्यों ज्यों पटु झटकति हठति हँसति नचावति नैन ।

यहाँ ज्यों ज्यों और त्यों त्यों ये अव्यय रागाभिव्यक्ति को व्यक्त करते है ।

समीक्षा -

कहीं कहीं कई प्रकार की वक्रताएँ एक साथ मिलकर काव्यसौन्दर्याभिवृद्धि मे कारण होती है ।

ऊपर के विवेचन से व्यक्त होता है कि बिहारी मे सभी प्रकार की वक्रताओं के दर्शन होते है । प्रासंगिकवश, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद द्वारा बिहारी पर आरोपित 'स्वभाव की वक्रता' के दोष पर एक झलक डाले बिना आगे बढ़े तो यहाँ अपूर्णता जरूर खटकेगी । मिश्रजी का कथन है 'भगवान से न तारने के लिए अड़ने की शक्ति से यह भी लक्षित होता है कि ये बड़े मस्त जीव थे । कहने की यह वक्रता उनके स्वभाव की वक्रता का भी संकेत करती है[1] । बिहारी की विनोदी प्रवृत्ति से तो इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन किस कारण से मिश्रजी ने एक कार्य को आये है, यह विचारणीय अवश्य है । विनोदी और व्यंग्यप्रिय होना और बात है तथा वक्र स्वभाव का होना और एक बात है । प्रायः विनोदी व्यक्ति हृदय के सरल ही होते है, यही मनोविज्ञान बतलाता है ।

- -

1 बिहारी की वाग्विभूति - पृ.62
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।

ध्वनि तत्व द्वारा बिहारी का व्यंग्य

ध्वनिवादियों के अनुसार ध्वनिकाव्य का सौंदर्य उस रत्न युग्म के समान है जो आधा आवृत और आधा अनावृत हो (Beauty half revealed and half concealed). इस विषय में किसी कवि का यह श्लोक स्मरणीय है जिसका अर्थ यों है 'आन्ध्र प्रदेश की स्त्री के रत्न मण्डलों के सदृश्य जो काव्यार्थ स्पष्ट होता है वह सुन्दर नहीं लगता। गुर्जर प्रदेश की नायिका के आवृत कुचों के समान नितान्त छिपा अर्थ भी सुन्दर नहीं। महाराष्ट्र प्रदेश की नायिका के ईषदावृत तथा ईषदनावृत कुचों के समान वही अर्थ सुन्दर होता है जो कुछ प्रकट और कुछ अप्रकट है[1]।

इससे मिलती जुलती बातों को बिहारी ने भी एक दोहे में संजोया है[2]। बिहारी की कविता में रस और ध्वनि दोनों का सम्मिश्रित रूप मिलता है। अतः ध्वनि तत्व द्वारा प्रकट या अप्रकट हास्य व्यंग्य का भी पता हमें लेना है :-

(क) अविवक्षित वाच्य द्वारा व्यंग्य -

शब्दगत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि का उदाहरण बिहारी सतसई में हम पाते हैं :-

> कोहरु सी एडीनु की लाली देखि सुभाई ।
> पाइ महावरु देइ को आपु भई बेपाई[3] ।।

---

1 नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशः
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः
अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चित्
प्रकाशयेति महाराष्ट्र वधू कुचाभः ।

2 दुरत न कुच बिच कंचुकी, चुपरी सारी सेत ।
कवि आंकनु के अरथ लौं प्रगटि दिखाई देत ।। बिहारी सतसई - 246

3 बिहारी सतसई - 44

यहां बेपाई का शाब्दिक अर्थ है पैर रहित । लेकिन नाइन का पैर रहित हो जाना प्रत्यक्षतः बाधित है । अतः बेपाई का अर्थ हो जाता है 'गतिहीन' अथवा सुधबुधहीन । यहां व्यंग्यार्थ यह होगा कि नाइन ने जब अत्यन्त बढ़ी हुई पैरों की लाली देखी तब ऐसी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई कि उसे यह ज्ञान ही नहीं रहा कि वह कहां है, क्या है, और उसे क्या करना चाहिए । उसे आश्चर्य हुआ कि बिना ही महावर के उसके पैर इतने अधिक लाल थे मानो उनमें बहुत गाढा महावर पहले से ही लगा दिया गया है । पैरों की लाली की उत्कटता और नाइन के आश्चर्य की अधिकता को व्यक्त करने केलिए 'बेपाई' शब्द का प्रयोग किया गया है । अपने प्रयोग-सामर्थ्य से दूसरे अर्थ को अभिव्यक्त कर स्वयं अपने अर्थ का सर्वथा परित्याग कर देता है ।

और एक उदाहरण लेंगे :-

हाहा बदनु उघारि दृग सफल करैं सबु कोई ।
रोज सरोजनु कैं परै हँसी ससी की होई[1] ।।

यहां पर 'रोज पड़ना' शब्द के विद्वानों ने दो अर्थ किये हैं 'रोना पड़ना' और 'दिन पड़ना' दिन पड़ने का अर्थ है दिन का आना । मुहावरे के अर्थ में लेंगे तो किसी मनुष्य पर ही दिन पड़ता है । दिन का आना कमलों के लिए अच्छी बात है, विकास का द्योतक है - यह यहां संगत नहीं होता । अतः यह शब्द बाधित होकर कमलों के संकोच को लक्ष्य कर कमलों की अपेक्षा नायिका के नेत्रों के सौन्दर्याधिक्य को व्यक्त करता है । यहां सरोज और ससी के अर्थ के बारे में मतभेद है । सरोज का अर्थ 'सरोज के समान नेत्र' और ससी का अर्थ 'ससी के समान मुख' माना गया है ।

और एक उदाहरण देखें :-

होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की लाल ।
ज्वालमुखी सी जरति लखि लगनि अगनि की ज्वाल[2] ।।

---

1 बिहारी सतसई - 53

2 वही 54

इस का लक्ष्यार्थ है 'यह नायिका तुम्हारे वियोग में दुखी रहती है'। इसका व्यंग्यार्थ है 'नायिका के सारे सुख उसी प्रकार समाप्त हो गए हैं जिस प्रकार अग्नि में आहुति डालने पर वह तत्क्षण भस्म हो जाती है। अतः तुम चलकर शीघ्र ही उसे कृतार्थ करो और उसकी साधना पूरी करने की चेष्टा करो। यहां पर 'सुख' शब्द का 'होमति' के साथ प्रयोग एक विशेष चमत्कार उत्पन्न करने केलिए किया गया है।

(ख) विवक्षितान्यपरवाच्य द्वारा हास्य-व्यंग्य

जिस अर्थ से दूसरे अर्थ की अवगति होती है वह वाच्य, लक्ष्य या व्यंग्य इन तीनों अर्थों में कोई भी हो सकता है। बिहारी ने उक्त सभी आधारों का प्रयोग किया है :-

(1) वक्ता की विशेषता से -

उदाहरणस्वरूप यह दोहा लेंगे :-

बैठि रही अति सघन बन, पैठी सदन तन मोह।
देखि दुपहरी जेठ की छाहीं चाहति छांह॥[1]

यहां पर व्यंजना यह निकलती है कि इस समय दुपहरी का आतप अत्यन्त असह्य है, कोई भी व्यक्ति इस समय बाहर नहीं निकलना चाहता। इससे दूसरी व्यंजना यह निकलती है कि 'हे प्रियतम। यह समय बाहर जाने का नहीं। आओ, हम लोग घर के अन्दर ही बैठकर सुरत क्रीडा का आनन्द लें'। यह व्यंजना तभी निकल सकती है जब हमें यह ज्ञात हो जावे कि कहनेवाली कोई कामिनी है। यहां पर वक्ता की विशेषता से व्यंजना निकलती है। नायिका नायक से न कहकर और किसी से कहती तो भी यह अर्थ हम ले सकते थे।

---

1 बिहारी सतसई - 49

(2) श्रोतृव्य की विशेषता से -

द्वैज-सुधादीधिति-कला वह लखि, दीठि लगाई।
मनौ अकास-अगस्तिया एकै कली लखाई ।।[1]

इसका साधारण अर्थ यों है 'कोई दूती चन्द्रोदय के समय नायक के निकट आकर नायिका के रूप की प्रशंसा में कहती है कि तुम इस चन्द्रमा को ओर क्यों देख रहे हो ? यह चन्द्रमा तो मानो आकाश रूपी अगस्त्य वृक्ष को एक कली ही है। तुम नायिका के उस मुख की ओर दृष्टि गढ़ाकर देखो जो द्वितीया के चन्द्रमा की अमृतमयी किरणों से शोभित हो रहा है।

अब हम व्यंग्यार्थ पर प्रकाश डालेंगे। नायिका ने नायक से आश्विन शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन अगस्त के पेड़ के नीचे सन्ध्याकाल में मिलने का वादा किया था। वही समय आ गया है, पर नायिका सखियों के बीच में बैठी है। मध्यस्थ सखी उसे अपने संकेत का स्मरण कराना चाहती है। अतएव वह इन शब्दों का प्रयोग करती है। इसका व्यंग्यार्थ है - तुमने इसी समय अगस्त के पेड़के नीचे नायक से मिलेने का वादा किया था। द्वितीया का चन्द्रमा निकल आया है। तुम इन सखियों को किसी न किसी प्रकार यहां से हटा दो और चलने की शीघ्रता करो। न तो नायक निराश होकर चला जायगा और तुम को फिर पछताना पड़ेगा। यहां पर यह व्यंग्यार्थ इसलिए निकलता है कि जिससे कहा जा रहा है वह अपने प्रियतम को गुप्त रूप से अगस्त के पेड़ के नीचे मिलने का संकेत दे चुकी है। श्रोतृव्य की विशेषता के कारण ही यह हुआ है।

(3) काकु अथवा ध्वनि से -

याकै उर औरै कछू लगी विरह की लाय।
पजै नीर गुलाब कै, पिय की बात बुझाय ।।[2]

---

1 बिहारी सतसई - 42

2 वही - 534

यहाँ, 'और कछु' शब्द का उच्चारण विशेष प्रकार की भंगिमा से किया गया है। इससे यह व्यंग्यार्थ निकलता है 'सखियो! तुम जो इसकी व्याधि की चिकित्सा करती हो वह व्यर्थ है। यदि तुम उसका सन्ताप शान्त करना चाहती हो तो उसे उसके प्रियतम से मिलाओ। यही उसका एकमात्र उपचार है अन्यथा वह ठीक नहीं हो सकती। यह व्यंग्य 'और कछु' शब्द की काकु ध्वनि से ही प्राप्त है।

(4) वाक्य से -

लखि-परब सौतिनु सजे भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे - मुँह करी इही मरगजै चीर।।[1]

इसमें विशेष ध्यान देना है 'इही' शब्द पर। यहाँ व्यंग्यार्थ यह कि नायक ने नायिका के साथ रात में सुरतक्रीडा की है जिससे उसका चीर अत्यन्त दलमल और मसल गया है। नायिका सौभाग्य के गर्व से उसे ही पहने घूम रही है। वह उस चीर को अलग नहीं करना चाहती, जिससे भूषण वस्त्र धारण करके भी सपत्नियों के मुख ईर्ष्या के कारण मलिन पड गए हैं। इसका और एक अर्थ है 'नायिका इतनी रूपवती है कि चाहे जैसा मलिन वस्त्र धारण कर ले किन्तु उसके सामने अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण धारण करनेवाली सुन्दरियों की मुख कान्ति मलिन पड जाती है।' इस प्रकार नायक से रात्रि में संयोग और उससे उत्पन्न सौभाग्य गर्व ये दोनों अतिरिक्त ही रह जाते हैं।

(5) वाच्यार्थ की शक्ति से -

चलत करीक निवारियै, कलित ललित अलि पुंज।
जमुना तीर तमाल - तरु - मिलित मालती कुंज।।[2]

---

1 बिहारी सतसई - 253

2 वही - 524

ये शब्द नायिका ने नायक से सुरत की प्रेरणा देने के लिए कहे है कि इस कुंज मे हम लोगों की सुरत क्रीडा बडी स्वच्छन्दता और आनन्द के साथ संपन्न हो सकती है । इसमे 'भिन्न भिन्न वाक्यार्थों' से ध्वनि इस प्रकार निकलती है –

(क) 'मालती कुंज भौंरो के समूह से भरा हुआ है'

(1) मालती पूर्ण रूप से फूली हुई है, उसकी सुगन्ध चारो ओर उड रही है, दूर दूर से भ्रमर उस पर आकर्षित होकर आते है । ऐसे सुन्दर वातावरण मे रति सुख का परित्याग करना बेवकूफी होगी ।

(2) कुंज के चारो ओर भौंरे लपटे हुए हैं, इससे ज्ञात होता है कि अभी तक वहां कोई गया ही नही । यदि कोई गया होता तो ये भौंरे उड गए होते ।

(3) तीसरी बात यह है कि इन भौंरो के भय से किसी का शीघ्र ही यहां आ सकना संभव नही । अतः निर्बाध रूप से आनन्द केलि हो सकती है ।

(ख) 'ललित'

अलि पुंजो के लिए ललित विशेषण से यह ध्वनित होता है कि वहां पर भौंरे उद्वेग-कारक नही है । वे किसी को बाधा नही पहुंचायेंगे, प्रत्युत उनका वहां पर होना उद्दीपक ही है ।

(ग) यमुनातीर -

'यमुनातीर' कहने का आशय यह है कि यह कुंज ऊंचे स्थान पर स्थित है, मार्ग नीचे से होकर जाता है । अतएव न तो यही आशंका की जा सकती है कि निकलते व्यक्तियों मे कोई हम लोगों की सुरत-क्रीडा को सर उठाकर देख लेगा और न यही भय है कि कोई व्यक्ति हम लोगों की बातचित सुन लेगा । पानी लेने का बहाना कर मै वहां आ भी सकती हूं ।

(च) तमाल तरु मिलत मालती कुंज

(1) यह स्थान उपभोग के लिए सर्वथा उपयुक्त है । जड़ जगत में भी प्रेमलीला के दर्शन होते हैं । मालती भी आनन्द - विभोर होकर तमाल से चिपट रही है । इससे हमें भी ऐसा करने की प्रेरणा प्राप्त हो रही है ।

(2) मालती चिपट रही है से ध्वनित होती है 'मैं तुम्हारे रमणीय मुख कमल को देखकर कामोन्मत्त हो गयी हूं । आज मैं तुम्हारे साथ स्वच्छन्दतापूर्वक मन भर आनन्द केलि करूंगी ।

(छ) घाम

(1) घाम का व्यंग्यार्थ है कि यह समय न तो ऐसा ही है कि कहीं जाया जावे और न ऐसा ही कि इस दोपहरी में लोग अधिकतर कहीं जावें - आवें, ऐसी दशा में तुम्हें भी कहीं नहीं जाना चाहिए ।

(2) दूसरी बात यह है कि यह समय सुरत क्रीड़ा के लिए अत्यन्त उपयुक्त है (आयुर्वेद ग्रन्थों में सुरत केलिए उपयुक्त समय के रूप में माघ की रात और जेठ की दोपहरी बताए गए हैं)।

(ज) करीके का व्यंग्यार्थ यह है कि तुम्हें मेरी अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी । तुम चलो, मैं अभी अभी आती हूं ।

(6) प्रस्ताव या प्रकरण से -

लाज गही, बेकाज कत घेरि रहे, घर जाहि ।
गो - रसु चाहत फिरत हौ, गोरसु चाहत नांहि ।।1

- -

1 बिहारी सतसई 669

नायिका का नायक से कथन है 'यहां मार्ग में यह तुम्हारी छेड़छाड़ व्यर्थ है। यदि तुम इन्द्रियों का आनन्द लेना चाहते हो तो मेरे घर पर अभी थोड़ी देर में आ जाना, मैं यहां से अब दूध दही बेचने नहीं जाऊंगी, सीधी घर ही जा रही हूं। वहां एकान्त स्थान प्राप्त होगा अतः हम लोगों का स्वच्छन्द विहार हो सकेगा। यही व्यंग्यार्थ है। लेकिन मामूली अर्थ तो यही है 'तुम्हें दूध दही खरीदना कुछ नहीं है, तुम केवल (गोरस) वाणी का आनन्द लेना चाहते हो। खरीदना हो तो खरीद लो, व्यर्थ मेरा समय बरबाद क्यों कर रहे हो, मुझे शीघ्र ही घर जाना है। लेकिन यहां पर घर जाने के प्रस्ताव से व्यंजना निकलती है कि 'यदि तुम (गोरस) इन्द्रियों का आनन्द लेना चाहते हो तो यहां छेड़छाड़ से क्या लाभ ? घर जायें न ?

(7) काल की विशेषता से -

बाल लाल बेंदी, ललन, आखत तड़े बिराजि।
इन्दुकला कुज में बसी मनौ राहु-भय भाजि ॥[1]

दूती नायक से नायिका की लालवर्ण बिंदी की ओर संकेत करके कहती है 'ललन' उसके मस्तक पर रोचन की लाल - लाल बेंदी पर जो अक्षत-चावल लगे हुए हैं वे ऐसे लगते हैं मानों राहु के भय से भागकर चन्द्रमा की कला मंगल में जाकर छिप गई हो।

मंगल का रंग लाल माना गया है। मंगल क्रूर ग्रह है। इसलिए राहु उसके पास नहीं जाता।

- -

1 बिहारी सतसई - 221

इससे मिलते जुलनेवाला एक दोहा विक्रम सतसई में यों है ।-
बिधु सम सोभा सारि लै ल यौ बाल मुख इन्दु।
दियौ इन्दु मैं अंक मिस राहु हेत मसि बिन्दु ॥

यहाँ पर यह व्यंजना निकलती है कि नायिका से सुरत करने का सबसे उत्तम अवसर यही है और इसी समय सहवास से दाम्पत्यभाव अनेक सुखों की प्राप्ति हो सकती है। यह व्यंजना इसलिए निकलती है कि नायिका ऋतु स्नान करके बैठी है। उसने गणेश, गौरी इत्यादि का पूजन कर मस्तक में सिन्दूर और अक्षत लगा लिये हैं। इसी अवसर की सूचना सखी नायक को देती है। यहाँ पर ऋतुकाल की विशेषता से यहाँ यह व्यंजना निकलती है।

(8) चेष्टाओं द्वारा -

> सखि गुरुजन बिच कमल सौं सीसु छुआयौ स्याम।
> हरि सनमुख करि आरसी, हियैं लगाई बाम[1]।।

इसका सामान्यार्थ यों है 'एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि नायक ने गुरुजनों के संकोच के कारण, प्रेम दर्शन करने कैसिए कमल के फूल से मस्तक छुलाया। नायिका ने भी अपने हृदय पर, नायक के सम्मुख करके, आरसी को लगा लिया'।

नायिका के चरण कमल के समान हैं। नायक कमल के माध्यम से उसके चरणों में प्रणाम करने का संकेत करता है। आरसी से तात्पर्य उसके स्वच्छ हृदय से है जिसमें उसने नायक का प्रतिबिंब बसा रखा है।

'यहाँ पर नायक द्वारा कमल को सिर में छुआये जाने से व्यक्त होता है कि नायक ने चरण कमलों पर सिर रखकर सुरत के लिए प्रार्थना की तथा नायिका द्वारा सूर्य के सम्मुख कर आरसी को छाती में लगाने से यह व्यंजना निकलती है कि मैं अभी नहीं, सूर्य के अस्ताचल पर चले जाने पर तुम्हें मिल सकूँगी।' यह व्यंजना चेष्टाओं से ही निकलती है[2]।

---

1 बिहारी सतसई - 702

2 मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी - 168 डा. रामसागर त्रिपाठी।

और एक उदाहरण यों है ।-

> हरषि न बोली, लखि ललनु, निरखि अमिलु संग साथु ।
> आँखिनु ही मैं हँसि, धरयौ सीस हिये धरि हाथु ।।[1]

नायक, नायिका के पास आया है । उसकी सखी किसी अन्य सखी से कहती है कि वह उससे हर्षित होकर नहीं बोली क्योंकि उसके साथ बेमेल संगी साथी थे । अतः उसने फिर मिलने के लिए संकेत करने को आँखों ही आँखों में मुस्कुरा दिया, फिर हाथ को हृदय पर रखने के बाद सिर पर रख लिया ।

'इस संकेत द्वारा नायिका स्पष्ट करती है कि उसे अपनी प्रतिज्ञा, समय तथा अभिसार का ध्यान स्मरण है, वह अवश्य आएगी । नायिका क्रिया विदग्धा है'[2] ।

यहाँ पर नायिका ने आँखों में हँस कर व्यक्त किया कि 'मैं तुम्हारे दर्शन से प्रसन्न हुई । हृदय पर हाथ रखकर यह व्यक्त किया कि मैं 'तुम्हें अपने हृदय में बिठाती हूँ'। सर पर हाथ रखकर यह व्यक्त किया' मुझे तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है किन्तु उसकी पूर्ति भाग्याधीन है । यहाँ पर नायिका की चेष्टाओं से यह व्यंजना निकलती है ।

(अ) शब्द-शक्ति से वस्तु - ध्वनि द्वारा व्यंग्य

> लग्यो सुमनु ह्वै है सफल, आतप-रोषु निवारि ।
> बारी बारी आपनी सींचि सहृदता वारि ।।[3]

---

1 बिहारी सतसई - 479

2 वही - सं. श्रीदेवेन्द्रशर्मा इन्द्र पृ.208

3 वही - 366

सखियों के साथ उद्यान में टहल रही है नायिका । माली भी वहां उपस्थित है । एक सखी जो नायक के हृदयगत भाव का परिज्ञान करने गई थी, लौटकर उस समय वहां पहुंची है । यह माली को भली - भांति वाटिका सींचने का उपदेश देती हुई कहती है । 'हे माली । तुम अपनी वाटिका को भली भांति अनुकूल जल से सींचो । तुमने जो फूल लगाया है वह ग्रीष्म की भीषणता को दूरकर अवश्य फलवान होगा'।

यहां नायिका को सखी ने कतिपय ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनके दो अर्थ हो सकते हैं :-

(क) सुमन - (1) फूल (2) सु-मन अर्थात् अच्छा मन ।
(ख) आतप तेगु - (1) गरमी की भीषणता (2) क्रोध की भीषणता
(ग) बारी - (1) माली (2) बालिका
(घ) बारी - (1) वाटिका (2) पारी
(च) सुहृदयता वारि - (1) सात्म्य जल (2) मित्रता की बातचीत ।

प्रथम ही अर्थ प्रासंगिक है क्योंकि माली से कहा जा रहा है । अतः प्रथम अर्थ में अभिधा के निर्यन्त्रित हो जाने के बाद एक दूसरा अर्थ व्यंजना - वृत्ति से निकलता है - हे बाले । (मैं नायक के हृदय की परीक्षा कर आई हूं । अतः तुम्हें सुख - संवाद सुनाती हूं तुम्हारा लगा हुआ मन सफल होगा (अर्थात् उसमें सुरत का फल अवश्य प्राप्त होगा) और तुम्हारे क्रोध की सारी तीव्रता समाप्त हो जायगी । (पारी पर नायक तुम्हारे पास अवश्य आयगा तुम अपनी पारी पर प्रेम को सहृदयतापूर्ण बातचीत के द्वारा सरस बनाना'। इस प्रकार यहां पर सखी ने दूसरों पर तो अपना आशय व्यक्त नहीं होने दिया, लेकिन नायिका को जो पता देना था दे डाला भी ।

. . . .

और एक उदाहरण देखे :-

यह विनसतु नगु राखि के जगत बडौ जस लेहु ।
जरी विषम जुर जाइयै आइ सुदरसनु देहु ।।

नायिका का अनुराग एक वैद्य से है । वह वैद्य के वियोग मे दुःख हो गई है । अन्तरंगिणी सखी वैद्य को बुलाने के लिए यह सन्देश भेजती है । इसका आशय यही है कि 'नायिका विषम ज्वर से अत्यन्त जल रही है । तुम आकर उसे सुदर्शन चूर्ण दो । 'लेकिन 'सुदर्शन' शब्द के दो अर्थ है – सुदर्शन चूर्ण तथा सुन्दर दर्शन । इस पृष्ठभूमि मे उसका व्यंग्यार्थ यो ले सकेगे' नायिका तुम्हारे प्रेम मे इतनी अनुरक्त है कि यदि तुम शीघ्र आकर उसे नही मिलोगे तो वह अवश्य मर जायगी । वह इस समय कामाग्नि से संतप्त है । उसकी उग्र कामाग्नि की शान्ति तुम्हारे दर्शनो से ही हो सकती है । अतः शीघ्र आ जाइए ।

विषम जुर के भी दो अर्थ है – (1) विषम ज्वर (2) असाधारण ज्वर जो कामपीडा से उत्पन्न होता है । इसी प्रकार 'नग' शब्द भी व्यंजक है । नग का सामान्यार्थ है रत्न लेकिन वैद्य से सुदर्शन चूर्ण द्वारा रत्न की रक्षा करने की प्रार्थना कुछ कुछ अर्थहीन दीखता है । अतः रत्न का अर्थ स्त्रीयो मे रत्न लेना है । सर्वसाधारण की दृष्टि मे इसका व्यंग्यार्थ होगा 'यह नायिका स्त्रीयो का रत्न है, भुवन सुन्दरी है । इसके स्वास्थ्य की चिन्ता सभी को है । अतएव यदि तुम अच्छा कर दोगे तो तुम्हारी प्रतिष्ठा सर्वसाधारण के बीच बढेगी'।

वैद्य के लिए उसका व्यंग्यार्थ होगा' तुम सचमुच भाग्यशाली हो जो इतनी भुवन-सुन्दरी तुम मे अनुरक्त है । उसकी तृप्ति तुम्हारे दर्शन से ही हो सकती है । तुम शीघ्र नही आते तो विरहपीडा से वह मर जायगी ।

। बिहारी सतसई 542

(आ) शब्द शक्ति से अलंकार ध्वनि द्वारा -

लोभ लगे हरि रूप के, करी साटि जुरि जाइ ।
हौ इन बेची बीच ही, लोइन बड़ी बलाइ ।।[1]

यहाँ पर प्राकरणिक अर्थ यही है कि मेरे ये नेत्र नायक (श्रीकृष्ण) के रूप के लोभ मे जाकर उनसे मिल गये और मुझे भगवान के वश मे कर दिया । किन्तु यहाँ पर रूप, साटि, बेची इन शब्दो के दो दो अर्थ है :-

(क) रूप - (1) सौन्दर्य (2) रूपा या रुपया
(ख) साटि - (1) मेल मेल (2) क्रयविक्रय
(ग) बेची - (1) वश मे कर दिया (2) बेच दिया ।

इन शब्दो की द्वयर्थकता के आधार पर एक दूसरे अर्थ की ओर संकेत होता 'जिस प्रकार कोई दलाल रुपए के लोभ मे किसी सौदागार से मिलकर सौदा तय कर लेता है और स्वामी के बिना पूछे ही किसी वस्तु को बेच देता है उसी प्रकार नेत्र रूपी दलाल ने भगवान के रूप रूपी रुपए के लोभ मे लगकर भगवान से मिलकर मेल-जोल रूपी सट्टा कर लिया और नायिका रूपी वस्तु को बेच दिया । यहाँ शब्द शक्ति मूलक रूपकालंकार ध्वनि है ।

(२) अर्थशक्तिमूलक ध्वनि -

व्यंग्य के भेद से अर्थ शक्तिमूलक ध्वनि दो प्रकार की होती है - वस्तु ध्वनि तथा अलंकार ध्वनि ।

(क) अर्थशक्तिमूलक वस्तु ध्वनि -

कहा लडैते दृग करे परे लाल बेहाल ।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पट, कहूँ मुकुट बनमाल ।।[2]

---

1 बिहारी सतसई 193

2 वही 369

दूती नायक को आकर समझाती है कि हे लाल । तुम इस प्रकार खेल ही खेल में कुपित होकर क्या पाओगे, अतः उन अटपटी बातों को छोड दो । न जाने मैं ने कितनी शपथें खिला खिलाकर उसके नेत्रों तथा भौंहों को हँसता हुआ सा बनाया है ।

ये शब्द सखी ने उस समय कहे है जिस समय नायिका मान किए बैठी है और नायक उसे मनाने की चेष्टा कर रहा है तथा पीछे से नायक के मुख से नायिका की सौत का नाम निकल जाता है । यहाँ पर विभिन्न व्यक्तियों के विभिन्न व्यंग्यार्थ होंगे :-

(1) नायिका के प्रति इसका व्यंग्यार्थ होगा - 'नायक का सपत्नी से प्रेम नही है, यह जो नायक सपत्नी का नाम ले रहा है, यह इसका खिलवाड मात्र है । तुम्हें चिढाने मे इसे कुछ आनन्द ही आता है, तुम बुरा मत मानना ।

(2) नायक के प्रति इसका व्यंग्य होगा - 'देखो सम्हल कर बात करो, तुम्हारे मुख से बार - बार सपत्नी का नाम निकल जाता है । इससे नायिका का क्रोध बढेगा ही'।

(3) अन्य सखियो के प्रति इसका व्यंग्यार्थ होगा - 'देखो मै कितनी निपुण हूँ, मै ने नायक के अपराध को कैसा छिपाया'।

(4) सपत्नी के प्रति इसका व्यंग्यार्थ होगा - 'तुम यह मत समझना कि नायक तुम से प्रेम करता है । यह केवल नायिका से खिलवाड कर रहा है और इसमे इसे आनन्द आता है'।

(ख) <u>अर्थ शक्तिमूलक अलंकार ध्वनि</u> -

अलंकार का व्यंग्य होना प्रायः सभी आचार्यो ने स्वीकार किया है । बिहारी ने इसके द्वारा भी हास्य व्यंग्य सृष्टि की है ।

धनि यह द्वैज, जहाँ लख्यौ तज्यौ दृगनु[2] दुख दंदु ।
तुम भागनु पूरब उयौ अहो । अपूरबु चंदु[1] ।।

यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से व्यतिरेकालंकार ध्वनित होता है । व्यतिरेक का स्वरूप यह होगा :- 'चन्द्र को देखकर विरहिणी पीड़ित होती है किन्तु नायक के मुखरूपी चन्द्र को देखकर विरह व्यथा शान्त होती है । इसी प्रकार प्राकृत चन्द्र पूर्णमासी को ही पूरा निकलता है, किन्तु नायक का मुखरूपी चन्द्र सर्वथा पूर्ण रहता है । प्राकृत चन्द्र के उदय की दिशा निश्चित होती है, द्वितीया का चन्द्र केवल पश्चिम में ही उदित होता किन्तु नायक का मुखरूपी चन्द्र इस प्रकार के किसी बन्धन में बंधा हुआ नहीं है । यद्यपि यहाँ पर अपूरब शब्द का प्रयोग किया गया है तथापि उसका पर्यवसान सौन्दर्यातिशय में ही हो जाता है अतः व्यतिरेक व्यंग्य ही रह जाता है ।

(ग) उभय शक्तिमूलक ध्वनि द्वारा -

जदपि सुन्दर, सुघर, पुनि सगुनौ दीपक - देह ।
तउ प्रकासु करै तितौ, भरियै जितौ सनेह[3] ।।

यहाँ पर यह ध्वनि निकलती है कि - 'तुम्हारा यह कहना असत्य है कि नायिका कुरूपा है । सच कहें तो तुम्हारे प्रेम की कमी के कारण ही वह ऐसी ज्ञात होती है । जिस प्रकार दीपक के प्रकाश में स्नेह की पूर्णता कारण होती है उसी प्रकार यदि तुम उससे पूरा प्रेम करो तो वह भी सुन्दर ही प्रतीत होगी । यहाँ पर मुख्य रूप से व्यंजक शब्द पांच है - सुन्दर, सुघर, प्रकाश और स्नेह । सुन्दर, सुघर और प्रकाश शब्द परिवर्तनाक्षम है । अतएव यहाँ पर उभय शक्ति मूलक ध्वनि है ।

---

1 बिहारी सतसई - 86

2 इसी भाव को पंतजी की ग्रन्थी में यों देख सकते हैं :- इन्दुपर, उस इन्दुमुख पर साथ ही थे पड़े मेरे नयन का साथ ही पूर्ण था वह, पर द्वितीय अपूर्ण था ।

3 बिहारी सतसई - 682

रीतिकाल के अन्य कवियों के हास्य - व्यंग्य -

रीतिकाल के कवियों का हास्य - व्यंग्य अनेक रूपों में प्रकट है । विषय की से उनका वर्गीकरण यों हो सकता है :-

(1) शृंगार - संबन्धी
(2) आश्रयदाता - संबन्धी
(3) पारिवारिक - सामाजिक जीवन संबन्धी
(4) अन्य विषयक

(1) शृंगार - संबन्धी -

रीतिकाल में मुगल राज्य अपने वैभव की चरम सीमा तक पहुँच चुका था । वैभव और विलास का चोली - दामन का साथ होता है । हिन्दु-मुसलमान, राजा-नवाब, सरदार-रईसों में विलासिता बुरी तरह घर कर चुकी थी । 'गुलगुली गिलमें, गलीचे, सुरा सुरा और प्याला का ही साम्राज्य था'[1] । विलास के पंकिल मन एवं जर्जरित शरीरवाले इ आश्रयदाताओं को निर्मल हास्य की अपेक्षा शृंगार की चुहल अधिक हँसा पाती थी । इन्हीं आश्रय दाताओं के मनोरंजनार्थ शृंगार संबन्धी हास्य का सृजन वे करते थे । अतएव प्रेमी-प्रेमिकाओं का हास-परिहास, उलाहने - उपालंभ आदि के व्यंग्य विनोदपूर्ण सहस्रों उदाहरण उसमें मिलते हैं । विस्तार-भय से कुछ उदाहरण ही हम देखेंगे ।

सूर ने उद्धव को उपालम्भ देने की जिस परम्परा का उद्घाटन किया, वह रीति मे भी खूब फली फूली । कविवर मतिराम की ग्वालिनी, अपने अंतर का विनोद दबाकर, होठों से निकलती हँसी को रोककर, किस प्रकार श्रीकृष्ण को फटकार रही है, यह देखें

- -

1 विचार और विवेचन - पृ.37 डा.नगेन्द्र

मानहु पायो है राज कछू, चढि बैठत ऐसे पलका के कोंछे
गुंज गरे, सिर मोरपखा, मतिराम हौ गाय चरावत चोढे ।
मोतिन को मेरो तोरयो हरा, गहि हाथन सौ रहे चूनरी पोढे ।
ऐसे हि डोलत छैल भए, तुम्है लाजन आवत कामरी ओढे[1] ।

पद्माकर की ग्वालिनी भी 'कामरी ओढैया' छैल को फटकारने में मतिराम की ब्रजबाला से पीछे नहीं है[2]। पद्माकर की दूसरी गोपी तो और भी रसज्ञ है। होली के दिनों में अवसर पाकर वह गोविंद को भीतर बंद करके 'मन भाया' करती है और मुस्कुराई नैन नचाकर कहती है - लला फिर आइयो खेलन होरी[2] ।

कविवर देव की गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य करती है जिसमें प्रियतम की लंपटता और उद्धव की हृदयहीनता, दोनों पर मीठी चुटकी ली गयी है, साथ साथ कुब्जा को भी लक्ष्य कर लिया गया है[3]।

---

1 हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - पृ.275 सं.डा.प्रेमनारायण टंडन

2 केसरि - रंग महावरी, सखी रसरंग अनंग-बभूके,
धूम धमारन की 'पद्माकर' जाय अकास अबीर के भूके ।
फाग यों लाडिली की, तिहि में तुम्हें लाज न लागत गोप कहूँ के,
छैल भए छतिया छिरके, फिरौ कामरी ओढे गुलाल के दूके । उपरिवत् - पृ.276

3 फागु की भीर, अभीरन में गहि गोविंद लै गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी ।।
छीनि पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीडि कपोलन रोरी ।
नैन नचाय कही मुसुकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी ।।
हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.310 - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

4 को हमको तुमसे तपसी बिन जोग सिखावन आइहै ऊधो,
कूबरी-सी अति सूधी बधू बधु पायो भलो घनश्याम-सो सूधो ।।
हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - पृ.276 डा.टंडन

देव की गोपियाँ उद्धव के माध्यम से प्रियतम तक चुनौती भेजती है । भिखारीदास जी ने भी उद्धव को सम्बोधित कर कूबरी पर अच्छा व्यंग्य कसा है । अरी सखियो, चलो हम भी कूबरी से प्रेम करने का मंत्र सीख लें और चन्दन एवं रोरी चढाकर कान्ह का प्रेम मोल ले लें ।[1]

कुब्जा के प्रति गोपियों की खीझ का वर्णन अनेक कवियों ने किया है, परन्तु ग्वाल कवि की गोपियाँ वैसा नहीं करती । वे ईमानदारी से स्वीकारती हैं कि कुब्जा की तुलना में हम में और सब बातें भले ही समान या अधिक हों, परन्तु तीन बातों की हममें अवश्य कमी है ।[2]

अपनी जाति बदलना तो गोपियों के हाथ में नहीं था, लेकिन कूबड की कमी दूर करना उनकी दृष्टि में कठिन नहीं था, यदि उन्हें पहले से ज्ञात होता कि श्रीकृष्ण केवल उसी पर रीझते हैं । वे आपस में कहती हैं कि यदि कृष्ण कूबड पर ही प्रसन्न होते हैं तो आओ हम भी किसी बहुरूपिये को बुलाकर कूबड बनना सीख लें । या फिर ऐसा करो कि अपनी - अपनी पीठ पर एक एक हाँडी बाँध कर चलो । उधोजी । आपके यार भी अच्छे रिझवार हैं, सब कुछ छोडकर कूबड पर रीझे हैं ।[3]

(2) आश्रयदाता संबन्धी व्यंग्य

रीतिकाल के अधिकांश कवि राजाश्रित थे । आश्रयदाताओं की प्रशंसा उनके लिए एक मजबूरी थी । यद्यपि उन प्रशंसात्मक उक्तियों में व्यंग्य विनोद केलिए स्थान नहीं होता तो भी आश्रयदाता या काव्य नायक की वीरता के आतंक का जहाँ उन कवि ने वर्णन किया है, उन्हें व्यंग्य विनोद की योजना का अवसर मिल गया है । ऐसे कवियों ।

- -

1 ऊधो । तहाँ ई चलो लै हमें जहँ कूबरि कान्ह बसैं एक ठौरी ।
देखिय दास अघाय अघाय तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी ।।
कूबरी सो कछु पाइए मंत्र, लगाइए कान्ह सो प्रीति की डोरी ।
कूबरि-भक्ति बढाइए बृंद, चढाइए चंदन बंदन रोरी ।।
हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.2{0 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

2 रूप में कसर नाहीं, राग में कसर नाहीं, लाग में कसर नाहीं, लाज हू की चेरी है ।
रंग में कसर न कसर है उमंग हू में प्रन के प्रसंग हू में परम घनेरी है ।
ग्वाल कवि हाव में, न भाव में कसर यहाँ, चाव में कसर न चालाक बहुतेरी है ।
तीन है कसर ऊधो काहू के न कूबर त्यों नाइन न जाती अरु काहू की न चेरी है ।
हिन्दुस्तान - हास्य विशेषांक - 1954 पृ.97

3 ऊधो तेरे यार ऐसे हैं .... सब कूबर बनायबो ।।
रसरत्नाकर - पृ.523 - हरिशंकर शर्मा

श्रेष्ठ है भूषण । उन्होंने शिवाजी के आतंक का वर्णन किया है । एक सूबेदार की पत्नी पति को दरबार से आते ही उदास देखकर, उसके नेत्रों में आंसू उमड़ते पाकर, उसका बार बार कांपना, घबराना आदि पर ख्याल करके पूछती है 'क्या बादशाह ने तुम्हें दक्षिण का सूबेदार बना दिया है ? क्या शिवाजी के आतंक से ही तुम्हारी यह विकलता हो रही है ।[1]

औरंगजेब के वजीरों और सेनानायकों पर शिवाजी का कितना आतंक छाया था, यह निम्न लिखित छंद से व्यंजित है । औरंगजेब का प्रतिनिधि पूरब, पश्चिम और उत्तर के राजाओं के साथ साथ सागर पार करके पुर्तगाल तक की विजय का तो हौसला रखता है, परंतु दक्षिण भेजे जाने पर अपना अंत निश्चित समझकर सम्राट से प्रार्थना करता है कि मेरे प्राण बचा लीजिए । यदि आप शिवाजी के विरुद्ध मुझे नहीं भेजेंगे तो मैं जीवित रह सकूंगा और आपके बहुत काम आ सकूंगा[2] ।

विनोदी कवि भूषण ने केवल सूबेदारों पर ही नहीं, अन्य राजाओं पर भी शिवाजी का अपार आतंक छाना बताया है । शिवाजी से डर कर राजागण भाग भाग कर सुमेरु पर्वत पर जाकर छिपते हैं । वहां जब शंकर के आगमन पर सेवकगण 'शिव आयो' कहते हैं तब शिवाजी का आगमन समझकर सुमेरु पर छिपे हुए राजा भागने का उपक्रम करते हैं । उन भीरुओं की हड़बड़ी दूर करने के लिए यक्षों को कहना पड़ता है 'अरे, शिवाजी नहीं, शिव शंकर या परमेश्वर जी आ रहे हैं जिनसे तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए[3] ।

आश्रय दाता संबन्धी व्यंग्य विनोद के अन्य उदाहरण उनके दिए हुए दान का उपहास करने को लिखे गये छंदों में प्राप्त है । दूसरों की देखा देखी अपने यहां कवि को आश्रय तो सभी देने लगते हैं, लेकिन अधिकांश के पास न उसके काव्य का मर्म समझने की बुद्धि होती है और न उनको संतुष्ट करनेवाला उदार हृदय ही होता है । वे ऐसा दान देते हैं कि कवियों को उसका उपहास करने पर बाध्य हो जाना पड़ता है ।

- -

1 विलख अनवेन आंसू उमगत नैन देखि, बीबी कहै बैन मियां कहियत काहिने ?
.... आनि परत दक्खिन की सूबा क्यों साहि ने

हिन्दी साहित्य में हास्य - व्यंग्य - पृ.278 डा.टंडन

2 पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहू के, ...
.... कछु दिन उबरते तो घने काम करते ।।

रीतिकालीन कवियों का व्यंग्य - विनोद - डा.मायारानी मल्होत्रा

3 साहि - तनै सरजा के भय सो भगाने भूप ....
थोहो उपदेस जच्छ रच्छक से होत है । हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य पृ.278

यों तो कविजन आश्रयदाता नरेशों की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा करके खूब वृत्तियाँ प्राप्त किया करते थे, परन्तु कभी कभी उनकी आशा के अनुकूल पुरस्कार न मिलने पर उनकी प्रतिक्रिया उनके काव्य में फूट पड़ती थी। बस, फिर क्या था। उन कृपण नरेशों एवं रईसों को वे खूब खरी - खोटी सुनाते चले जाते थे। ऐसे काव्य को ब्रज - भाषा में 'भड़ौआ' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। जब कभी कोई कवि किसी से अप्रसन्न हो जाता था तो भड़ौआ लिखकर उसकी धूल उड़ाने में कोई कसर नहीं उठा रखता था। भड़ौआ का अर्थ है उपहासपूर्ण निन्दा। प्रायः सभी देशों के साहित्यों में इसे स्थान प्राप्त है। फारसी एवं उर्दू में 'हजो' और अंग्रेज़ी में पर्सनल भड़ौआ के दूसरे नाम हैं। किसी कवि को औरंगजेब ने एक बहुत बूढ़ी हथिनी दान में दी। बस! उसने उस दान का उपहास करते हुए उस हथिनी का बखान कर डाला।[1] हथिनी के पुरानेपन का क्या ठिकाना है? तैमूरलंग के समय की बूढ़ी हथिनी। औरंगजेब ने तो उस बूढ़ी हथिनी को दान में देकर 'मरी बछिया बाम्हन के सिर' चिपका दी थी। इस पद में हास्य के बहाने यह दिखाया गया है कि जब कोई वस्तु निरर्थक हो जाती है, तब उसे दान में देकर वाह वाही लूटनेवालों की किस प्रकार कवि खबर लेते हैं।

'हिन्दी के व्यंग्य और हास्य लेखकों में बेनी बन्दी जन ने अच्छी ख्याति प्राप्त की। उन्होंने सूमों की खासी धूल उड़ाई है। यद्यपि उन्होंने रस एवं अलंकार संबन्धी ग्रंथों की रचना भी की है, तथापि उन ग्रंथों के कारण उनकी इतनी प्रसिद्धि नहीं जितनी अपने भड़ौवों के लिए।[2]

दयाराम नामक आश्रयदाता ने दया करके अपनी उदारता दिखाते हुए बेनी कवि को कुछ आम भेजे। दानी कहाने के लिए दान तो दिया, लेकिन उनकी चिर सहचरी कृपणता की छाप भी आमों पर लग ही गई। कवि जी भला कब चूकनेवाले थे। छोटे आमों को देखते ही उन्हें लानेवाले के हाथों ही जो कहला भेजा, उसे सुनकर दयाराम जी ने कान पकड़कर तौबा अवश्य की होगी।[3]

- -

1 तिमिर लंग लई मोल चली बाबर के हलके। ....

.... औरंगजेब कीनी सोई लै दीन्ही कवि राज कर।

हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 302 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

2 हिन्दी कविता में हास्य रस - पृ. 74 डा. सरोज खन्ना

3 चींटी की चलावे को? .... जाके आगे सरसों सुमेरु सी लगत है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 302 से उद्धृत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

वाह, वाह । क्या आम भेजे है । जो सुर्दबीन द्वारा भी कठिनता से दिखाई देते है । अधिक क्या कहूं? शायद ब्रह्म के दर्शन हो जाएं, किन्तु आम उससे भी सूक्ष्म है कि उनका दिखाई देना असंभव है । ऐसे आमों का क्या कहना है, जिनके सामने सरसों का दाना भी सुमेरु पर्वत के समान प्रतीत हो । महाकवि शंकर जी ने नायिका की कमर की उपमा ब्रह्म से की थी । लेकिन बेनी कवि ने आम को ब्रह्म से भी सूक्ष्म बना दिया । ठीक भी तो है, रसों मे रस और आम भी तो रस का पूर्णता के कारण रसाल कहलाते है ।

यहां छोटेपन का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन ही हास्य का कारण है, जिसके मूल मे विपरीतता कार्य कर रही है । इसमे छोटी बात को बहुत छोटी, या छोटी को बड़ी और बडी को छोटी करके दिखाना, सभी आ जाता है । व्यंग्यचित्र मे भी साधारणतः छोटी सी बात को बडी करके दिखाया जाता है । हंसी इस बात पर आती है कि कोई वस्तु कैसी होनी चाहिए थी लेकिन सचमुच वह कैसी हो गयी ?

इसी पद्धति के अनुसार बेनी कहीं बासी पेड़े, कहीं बुरी रजाई पाने पर धनी सूम की जी खोलकर बुराई करते है । बात यह है, बेनी कवि को दान मे एक रजाई मिली जिसमे न काफी रुई थी और न जो ठीक सिली ही थी । इस रजाई का वर्णन हास्यपूर्ण रूप मे उन्होंने किया है[1] ।

यहां पेड़ो के बासीपन का अत्युक्ति पूर्ण वर्णन कैसा हास्योत्पादक है । जिन पेड़ो के घर मे आने मात्र से पड़ोसियों को हैजा घेर रहता है, उनके खाने से तो जाने क्या हो ? इन पेड़ो की कहां तक प्रशंसा की जाए । उन्हें चीटी भी नहीं चाटती, चूहे सूंघते तक नहीं और मक्खी तो मारे दुर्गन्ध के पास तक नहीं फटकती ।

रजाई देने वाले रायन की तो बेनी कवि ने गजब की चुटकियाँ ली है । ऐसी अच्छी रजाई मिली कि सांस लेते ही उड गई । न 'उपरला' रहा न 'भितरला' केवल दो दिन के लिए बत्ती बनाने योग्य रह गयी[2] ।

और एक प्रसंग । एक कंजूस की शादी मे केवल आध पाव तेल से ही रोशनी की तैयारी हो गई । अन्य सारी चीज़े भी केवल आध आध पाव मे बन गई । परन्तु सूमराज जी ने घर का हिसाब किया तो बस, चिल्लाने लगे' शादी क्या हुई, मै तो घर की

1 चीटी न चाटत, मूसे न सूंघत ....

.... सी आपु के देखि सराब के पैरे ।

रसरत्नाकर से उद्धृत पृ. 102 हरिशंकर शर्मा

2 सांस लेत उडिगा उपरला औ भितरला सबै, ... रुई रह गई है ।

रस रत्नाकर पृ. 103 से उद्धृत हरिशंकर शर्मा

बरबादी हो गई'[1]। खर्च तो धाक भी नहीं हुआ, उस पर, कंजूस मक्खी चूस बार बार यह कहता है कि मै तो बरबाद हो गया। यही पाठक के हास्य का विषय बन जाता है। इस प्रकार हास्यपूर्ण प्रसंग रीतिकाल की रचनाओं मे कई प्राप्त हो सकते है। कही कही तो अतिशयोक्ति की चरमसीमा है।

एक कृपण के वर्णन के बीच एक कवि बताते है कि वह देने के नाम से ही इतना डरता था कि दकार से आरंभ होने वाले शब्दों का उच्चारण न करके उनके पर्याय वाची शब्दों का ही व्यवहार करता था। वह देवता शब्द के लिए सुर, दानव के लिए असुर, दर्पण के लिए आरसी, देवी के लिए भवानी, दाना के लिए चबेना आदि शब्दों का इस्तेमाल करते है[2]।

और एक कवि कृपण दाउ जी की दानवीरता का सुन्दर व्यंग्यमय चित्र प्रस्तुत करते है[3]। सूम को महादानी बताना एवं मूर्ख को महा पण्डित बनाना व्यंग्य कसने के लिए है। कोई जब कुछ मांगता है तो दाउजी घर के किवाड देकर सो रहते है। घरवालों को गालियां देते है, मांगनेवालों को जवाब देते है, साधुओं को दोष देते है, बात कहते ही तो देते है। ज्यादा कहने की आवश्यकता ही क्या ? आठों पहर दाउजी तो देते ही रहते है। संसार के लोग भी क्या अजीब है कि ऐसे महादानी को भी कहते है कि वह कुछ देते ही नही।

ऐसे कंजूस काव्य रसिकों पर, जो कविता के बदले वाह-वाह के सिवा एक कौडी भी नही देते, देते भी तो खोटे सिक्के ही देते है, अधिकांश रीतिकालीन कवियों ने हाथ साफ किया है। लोगों को धोखे से जब खोटे सिक्के मिल जाते है, तब वह या तो जुए के दांव पर उन्हे लगाने के लिए रख छोडता है या दान देने के लिए। ऐसे ही किसी दानी ने एक चवन्नी किसी कवि को दान मे दी जो चांदी की न होकर तांबे की थी।

- -

1 आध पाव तेल मे तैयारी भई रोसनी की, ...

.... सादी कहा भई बरबादी भई घर की ।।

हिन्दुस्तान हास्य विशेषांक से उद्धृत (1974)

2 देवता को सुर और असुर कहे दानव को ....

.... याही विधि वासीराम रीति आचरत है ।।

नवरस (गुलाबराय) से उद्धृत पृ.254

3 पौरि के किवार देत घरै सब गारि देत ....

.... दाउजी तो आठो पहर देत ही रहत है ।

नवरस (गुलाबराय) से उद्धृत पृ.255

कवि महोदय ने चकन्नी और लाला मथुरामल दोनों को इसप्रकार अमर कर दिया :-

देखत सुधि गये मथुरामल, हौ गयो सुधि लख्यो जबै सूकी ।
है के सराफ़ के हाथ परयो, उन देखत मोहि दिखायी भूकी ।
काहू कह्यो दमरी या छदाम की, काहू कह्यो नहीं कौड़ी हू की ।
माखन सो पिघलाय चली जब लाल फुलाय सोनार ने फूकी ।

(3) पारिवारिक - सामाजिक जीवन संबन्धी -

मानव की मुख्य अवश्यकतायें है भोजन, वस्त्र और आवास । आवास में खाट या चारपाई भी शामिल हो तो सुखपूर्ण जीवन होगा । लेकिन चारपाई में अगर खटमल भी हो तो घर तक छोड़ने की आशा उत्पन्न होती है । अलि मुहिब्बी 'प्रीतम' ने 'खटमल बाईसा' में खटमल की लीला का विस्तृत वर्णन किया है । खाट के नगर में खटमल का राज्य होने की बात का वर्णन हास्य पूर्ण है । कवि का पूछना है कि जब खटमलों के डर से ही जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक ने चारपाई पर सोना छोड़ दिया है तब दूसरों का तो कहना ही क्या है ?[2] गृहिणी यदि शांत और सहनशील न होकर कर्कशा हो तो सारे परिवार का जीवन महासंकट में पड़ जाता है, इसका वर्णन एक कवि ने प्रस्तुत किया है[3]।

कुपिता पत्नी सिंहनी, बाघिनी, नागनी, डाकनी आदि रूपों में प्रकट होकर अपना क्रोध अखिल देखी सब पर उतारती है ।

'नीम हकीम खतरे जान' वाली बात का अनुभव कभी कभी सबको हो जाता है । एक कवि ने ऐसे एक वैद्य की प्रशंसा में लिखा है :-

चूरन ते किये चूर अनेक गुलाब के जोर ते लाखन मारे ।
दूबार ते देखत बीथिन में मुये आवत है सब लोग पुकारे ।।
बाल जुवा जुवति जन जागत रोवत है परे वृद्ध बिचारे ।
वैद्य भये जब ते हरि जू तब ते मसान रहै दिन कारे ।।

---

1. रीतिकालीन कवियों का व्यंग्य विनोद शीर्षक लेख से उद्धृत - डा. मायारानी मलहोत्रा

2 जगत के कारन करन चारौ वेदन के ....
.... खाट पै न सोवें खटमलन को डरि कै ।
हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.240 - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

3 हिन्दी साहित्य में हास्य - बरसाने - पृ.282 से उद्धृत

4 वही पृ. 283

एक और कवि ने अनाड़ी वैद्यों और वैद्यों की तो बुरी तरह खबर ली है ।-

वैदिक पढो है न पढो है, लोभ लालच मे, मीठा सीठा पनिया पिलावै मठा जुर को ।
बैठि निज द्वार पै बिसाल माला डारि गरे, सो गुनी कसाई ते न माने देव गुर को ।
कविराम नहरी बहती वाके गहरी सुवैद अगर हरी हमारो मन मुर को ।
जाने निज नारि को न वैद धावै नारि हेत धरै जाकी नारि सो सिधारै जमपुर को ।।[1]

कवियों मे इस प्रकार हम देखते है कि रीतिकालीन कवियों ने केवल कंजूसो की ही खिल्ली उडाई हो, सो बात नही, उन्हें जहां कही भी मौका मिला है किसी को भी नही छोडा है । रीतिकालीन कवियों को तंबाकू से चिढ थी । राधा और कृष्ण को भी तंबाकू का शौकीन बताते हुए कहा गया है -

कृष्ण चले बैकुंठ को, राधा पकरी बांह ।
यहां तंबाकू खाय लेयो, वहां तंबाकू नाह ।

और एक कवि ने तंबाकू को जर की सास, हलाहल की तुलसी, बीडी की बहिन आदि बना डाला है[2]। रीतिकालीन कवियों को तंबाकू से भले ही चिढ रही हो, परंतु भांग के वे बराबर प्रशंसक रहे है ।

(4) अन्य विषयक व्यंग्य विनोद -

रीतिकालीन कवि देवताओं की हंसी उडाने मे भक्ति कालीन कवियों से किसी भांति भी पीछे नही रहे । भारतीय देवताओं मे शिव भोलानाथ माने गए है । अतः कवियों को उनसे डर नही और वे जब तब उनके साथ विनोद कर लिया करते है । पद्माकर ने हास्य रस मे भोलानाथजी को ही माध्यम बनाया है । उन्होंने शिव के विवाह का वर्णन हास्यपूर्ण ढंग से किया है[3]।

---

1 हिन्दी कविता मे हास्य रस से उद्धृत - पृ.70 - डा.सरोजा खन्ना ।

2 जर की है सासु दुष्ट तुलसी हलाहल की
बीडी की बहिन परपंच रूप साजी है ।

3 हंसि हंसि भजै देखि दूलह दिगम्बर को ....
.... हास ही को दंगा भयो, नंगा के विवाह मे ।
रस-रत्नाकर (हरिशंकर शर्मा) से उद्धृत

नंगा के विवाह का हास्यमय वर्णन है। बेचारे सीधे-सादे वाले बाबा को देखकर सभी हँस रहे हैं। गंगा, भुजंगा जिसे देखो, वही हँस रहा है, हँसी का हड़दंग मचा हुआ है। यही नहीं कि पद्माकर ने वृद्ध वेषधारी महादेवजी का ही वर्णन किया है, वरन वैसे भी वे उनकी हँसी उड़ाने में नहीं चूके हैं।-

लोचन असम अंग वसन चिता को लाइ
तीनों लोक नायक सो कैसे के ठहरती।
कहै पद्माकर विलोकि चमि हँग जाके,
वेदहु पुरान गान कैसे अनुसारती।।
बाँधे जटाजूट बैठे परवत कूट माहि,
महा कालकूट कही कैसे के ठहरती।
पीवे नित भंगे रहे प्रेतन के संगे ऐसे,
पूछतो को नंगे जो न गंगे सीस धरती[1]।।

यहाँ पद्माकर की हास्ययोजना प्रशंसनीय है। इस पद में तीन नेत्रों वाले, शरीर में विभूति रमाये, विकृत वेश भूषा वाले महादेवजी हास्य के आलम्बन हैं। शिवजी का भंग पीना और प्रेतों के साथ रहना आदि हास्य के उद्दीपन हैं, क्योंकि इनसे इनके विकृत वेश-भूषा की धारणा और भी दृढ़ होती है। यदि इन्होंने गंगा को धारण न किया होता तो ऐसे 'नंगे' को कौन पूछता, वेदपुराणों में उनकी चर्चा कैसे होती। ये सब अनुभाव हैं। हर्ष संचारी भाव है।

भोलानाथ की मजाक उड़ाने का अवसर कवि भूधर भी नहीं छोड़ते। वे शिवजी तथा उनके परिवार के विभिन्न वाहनों को परस्पर लड़वाते हैं। शिवजी के वाहन नन्दी को भवानी वाहन सिंह भक्षण कर जाना चाहती है। उधर भुजंग-भूषण का सर्प क्षुधातुर होकर गणेशवाहन मूषकराज को खा जाना चाहता है, उस पर तुर्रा यह कि उस सर्प को भी भक्षण करने को षडानन का मयूर आतुर है। शिवजी के तबेले के इस कोलाहल का वर्णन[2] सुनकर बरबस होठों पर मुस्कान खिंच आती है। यद्यपि इस वैपरीत्य को कोई सचमुच स्वीकार नहीं करेगा, परन्तु हास्यरस ने उसमें सार्थकता सी उत्पन्न कर दी है।

---

1 हिन्दुस्तान हास्य विशेषांक (1974) से उद्धृत।

2 बार बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि,
....
हारि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में।
नवरस - पृ.417 से उद्धृत -- गुलाब राय।

कवि की हास्यपूर्ण कल्पना प्रशंसनीय है । तबेले में सभी वाहन एक दूसरे को हड़प लेने को आतुर हो रहे हैं तो उस हलचल का विचार आते ही हँसी छूट जाती है ।

कवियों ने भगवान शिव के साथ ही उनके प्रिय पेय भंग को भी नहीं छोड़ा है । एक कवि भंग की प्रशंसा (व्याजस्तुति) यों करते हैं :-

'कुत्ता जो पीवे तो पछारे मृगराज को'

शिवपत्नी पार्वती को भी खूब खरीखोटी सुनाने का प्रयत्न कवियों ने किया है । सूदन कवि ने जगन्माता की परेशानी का अच्छा वर्णन किया है[1]। ग्वाल कवि ने भी चतुरानन की चूक को हास्यास्पद शैली में प्रस्तुत किया है[2]।

भगवान शिव की भाँति ही कृष्ण भी रीतिकाल में हास्य के आलम्बन रहे हैं । पद्माकर ने कृष्ण के अद्भुत वेष का सुन्दर लेकिन हास्यपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है[3]।

- -

1 बाप विष चाखै, भैया षट्मुख राखै देखि,
आसन में राखै बस बास जाको अचले ।
भूतन के छैया आस पास के रखैया
और काली के नथैया हू के ध्यान हू ते न चले ।।
बैल बाघ वाहन वसन को गयन्द खाल
भांग को धतूरे को पसार देत अँचले ।
घर को हवाल यह संकर की बात को
~~बालको ख्याल कह संकर की बात को~~
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचले । माधुरी, जुलाई 1943 - पृ.633 से उद्धृत

2 गुनिन सराहि, गृह त्यागिन विभूति दीन्ही,
पापिन प्रमोद पुण्यवन्तन छला गयो ।
सनि को सुचित रवि - ससि को कलेस,
लघु व्यालन आनन्द सेस भारते चलो गयो ।।
फैलत फिरावत गुनिन गृह द्वार द्वार,
गनते विहीन ताहि बैठक भलो भयो ।
कौन कौन चूक कही तेरी एक आनन सों,
नाम चतुरानन पै चूकतो चलो गयो ।। माधुरी, जुलाई 1943 पृ.636 से उद्धृत

3 चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु .... अँचरा मुख दै वृषभानु किसोरी ।।
रस रत्नाकर (हरिशंकर शर्मा) पृ.447 से उद्धृत

कन्हैया को पकड़कर गोपियों ने अच्छी गति बनाई। चन्द्रकला ने चूनरी उढ़ा दी, विशाखा ने माथे पर बिन्दी लगाकर आँखों में अंजन आँज दिया; लेकिन जब ललिता ने उन्हें कंचुकि पहनाने के लिए हाथ बढ़ाया तो राधा मुँह पर आँचल डालकर मुस्कुराने लगी। यहाँ स्मित हास्य है।

बिहारी के पुत्र कृष्ण कवि ने तो कन्हा को तत्कालीन धूम धानी की उपाधि से विभूषित किया है[1]।

पद्माकर ने गंगा की महिमा का वर्णन हास्यपूर्ण ढंग से किया है[2]। गंगा जीवों का उद्धार करनेवाली है। पृथ्वी पर उसका अवतरण होते ही जिसने उसका नाम लिया, दर्शन किया, उसके जल का पान किया अथवा उसमें स्नान किया, वह कितना ही महापापी क्यों न हो, तर गया। गंगा के इस कार्य से यमराज के लिए अपना कारखाना ही बंद कर देने की नौबत आ गयी।

इन सबके अलावा रीतिकालीन कवियों की अन्योक्तियाँ एवं नीति कथनों में भी कहीं कहीं हास्य का पुट है, यद्यपि बहुत ही स्थूल हास्य ही प्रकट है। कवि व बेताल का यह कुण्डलिया इसका उदाहरण है :-

मैं बैल गरियार, मैं वह अड़ियल टट्टू।
मैं कर्कसा नारि, मैं वह खसम निखट्टू।।
....
अनु बैनियाव राजा मैं, तबै नींद भर सोइए।
बेताल कहै विक्रम सुनौ, एते मैं न टोइए[3]।।

'कर्कशा नारि' एवं 'निखट्टू खसम' का अड़ियल टट्टू तथा 'गरियार बैल' के साथ ही वर्णन होने के कारण थोड़ा बहुत हँसी का मसाला मिल जाता है।

---

1 धौरई गुन रीझते बिसराई वह बानि। ....
.... भये आजुकालि के दानि।।
हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.274 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

2 गंगा के चरित्र लखि भाष्यो जमराज यह ....
.... खाता खत जान दै बही को बहि जान दै।।
हिन्दी साहित्य में हास्य - व्यंग्य पृ.286 से उद्धृत

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.329 से उद्धृत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

निष्कर्ष -

केशव और बिहारी को छोड़कर रीतिकाल के अन्य कवियों के हास्य व्यंग्य पर यों प्रकाश डालने पर हम कुछ निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं।

रीतिकाल में हास्य कुछ बंधी हुई प्रणालियों ही सीमित रहा। स्वतः बढ़ने केलिए उसे स्वच्छन्द भूमि मिली नहीं। रीतिकाल में तो हास्य सृष्टि केलिए कंजूसों की हँसी उड़ायी गयी, देवताओं को खरी खोटी सुनाई गयी, पर उसमें वैविध्य नहीं था। एक ही शैली, एक ही भाव, अतः कृत्रिमता का ही साम्राज्य था। स्वाभाविकता का नितान्त अभाव था। रूढ़ि एवं परंपरा के बंधनों से मुक्त करने का प्रयत्न अली मुहिब खाँ प्रीतम ने किया। हास्य को एक नयी दिशा को मोड़ने का उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है। इनकी श्रेष्ठता तथा मौलिकता इस बात में है कि जब सब कहीं श्रृंगार का ही बोलबाला था तब खाँ साहब अकेले हास्य को लेकर मैदान में उतरे। उन्होंने कंजूसों एवं विदूषकों को छोड़कर खटमल को पकड़ा और खटमल बाईसी लिखी। हास्य के पृथक ग्रंथ के रूप यह हिन्दी की पहली रचना है।

-

पंचम अध्याय

मध्यकालीन मलयालम कविता में हास्य (भाग - 1)

पंचम अध्याय

मध्यकालीन मलयालम कविता में हास्य (भाग - 1)

मध्यकालीन हिन्दी काव्य की चर्चा के प्रसंग पर हमने हिन्दी साहित्य के काल विभाजन पर दृष्टिपात किया है । इस अध्याय में हमें उसी ढंग से मध्यकालीन मलयालम काव्य के ऐतिहासिक तत्वों पर विचार करना है ।

मध्यकालीन मलयालम - साहित्य के इतिहास को भिन्न कालों में या शाखाओं में विभाजित कर लाने की एक प्रथा सब भाषाओं में मान्य बन गयी है । किसी भी बात का आदि, मध्य और अंत देखने की उत्कण्ठा मानवसहज है । खासकर साहित्य के प्रामाणिक इतिहासों को प्राचीनकाल, मध्यकाल, आधुनिककाल - इस प्रकार तीन कालों को देखते समय उसी का अनुसरण करना उचित देखेगा भी । अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहास को पढ़ते पढ़ते इस प्रकार तीन कालों में बाँट लाने का श्रेय ग्रिम का है[1] । इसमें कोई शक नहीं कि यह अन्य इतिहासकारों केलिए एक अनुकरणीय तथ्य भी रहा । जहाँ तक मलयालम की बात है श्री.पी.गोविन्दपिल्लै जैसे सारे के सारे इतिहासकारों ने मोटे तौर पर तीन कालों में यों विभाजन करने की नीति अपनायी, फिर भी उनके बीच कुछ कुछ फरक ज़रूर रहा ।

अपने 'मलयालम भाषा के इतिहास' में श्री.पी.गोविन्द पिल्लै ने यों काल-विभाजन किया है[2] ।

आदिकाल - ईस्वीपूर्व 600 से ई 800 तक
मध्यकाल - ई. 800 से ई 1500 तक
आधुनिककाल - ई. 1500 से ---

---

1 History of English Language and Literature - p.56
Lounsbury

2 मलयालम भाषा चरित्रम् - भाग - 1 - पृ.11

सौ या एक सौ पचास वर्षों को एक मात्रा (unit) में लाकर उस समय के साहित्यकारों तथा रचनाओं पर आलोचना करने की एक नीति को ही उन्होंने स्वीकार किया है ।

श्री.पी.शंकरन नंपियार ने भी कुछ कुछ इसी प्रकार का कालविभाजन भले ही क्यों न किया हो, पर उनके मूल्यांकन के अनुसार मध्यकाल बहुत ह्रस्व बन गया है। उनका विभाजन यों है[1]:-

प्राचीन काल - तेरहवीं शताब्दी तक ।

मध्यकाल - तेरहवीं शताब्दी से सोलहवीं तक ।

आधुनिककाल - सोलहवीं शताब्दी से ।

प्रसिद्ध वैयाकरण राजराजवर्मा ने भी यों कालविभाजन किया है[2]:-

पहला स्तर - ई.425 से ई.1325 तक

मध्य स्तर - ई.1325 से ई.1625 तक

आधुनिक स्तर- ई.1625 से

श्री.आर.नारायण पणिक्कर के मतानुसार इतिहास का स्तर यों पलटता है[3]:-

अति प्राचीन काल - इस्वी आठवीं शतक तक

द्राविड़ प्रभाव काल - आठवीं सदी से चौदहवीं सदी तक

संस्कृत प्रभाव काल - चौदहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक

आधुनिक काल - सत्रहवीं सदी से

मध्यकाल के अन्तिम सूत्र के बारे में बताते समय श्री राजराजवर्मा और श्री.आर.नारायणपणिक्कर एक राय के हैं ।

- -

1 मलयाल साहित्य चरित्र संग्रहम् - पृ.103 पी.शंकरन नम्पियार ।

2 केरल पाणिनीयम् - पृ.51। ए.आर.राजराजवर्मा ।

3 केरल भाषा साहित्य चरित्रम् - पृ.42 आर.नारायण पणिक्कर

श्री. उल्लूर परमेश्वरय्यर ने भी कालविभाजन यों प्रस्तुत किया है[1] :-

प्राचीन साहित्यकाल ई. 1525 तक

नवीन साहित्यकाल ई. 1525 से ई. 1825 तक

अद्यतन साहित्यकाल ई. 1825 से ...

श्री. आट्टूर कृष्णपिषारोटि ने भी दूसरों में कालविभाजन प्रस्तुत किया है :

(1) 'भाषा स्वरूप के अनुसार मलयाल साहित्य को प्राचीन मलयालम और नवीन मलयालम अर्थात् पुरानी भाषा, नयी भाषा यों दो प्रकार बांट रखना ही उचित होगा'[2]।

(2) 'भाषा रूप भेद प्रधानता के आधार पर मलयाल साहित्य को समग्र भेद के अनुसार आदि साहित्यकाल, मणिप्रवालकाल, शुद्धभाषाकाल (भाषामृतकाल) - यों तीन रूपों में विभक्त कर सकते हैं'[3]।

भाषा स्वभाव को लेकर कालविभाजन तथा नामकरण यद्यपि श्री नारायण पणिक्कर ने ही किया तो भी अन्य सब इतिहासकारों ने मान लिया है कि आदि काल में तमिल और मध्यकाल में संस्कृत का प्रभाव मलयाल भाषा में प्रकट है[4]।

'ऐतिहासिक काल-विभाजन' पर अपना दृष्टिकोण प्रकट करते हुए श्री. पी. के. परमेश्वरन नायर का कथन भी इस प्रसंग पर स्मरणीय है 'कितने ही पण्डितों ने भाषारूप की स्थिति का दृष्टि में रखते हुए प्राचीन, मध्यम, नवीन जैसे तीन कालों में साहित्य के इतिहास का विभाजन करने का प्रयत्न किया है। लेकिन चूंकि उन कालों की प्रवृत्ति के अनुरूप न लगनेवाले भाषारूप में लिखी गयी रचनायें प्रत्येक काल में काफी मात्रा में मिलती हैं, इसलिए उक्त काल विभाजन व्यवस्था स्वीकरणीय नहीं लग रही है। अतः प्रतिपादन की सुविधा को लक्ष्य में रखते हुए और मोटे तौर पर साहित्य की क्रमानुगत

- -

1 केरल साहित्य चरित्रम् - भाग - 1 - पृ. 76 उल्लूर एस. परमेश्वरय्यर

2 भाषा साहित्य चरित्रम् - पृ. 164 आट्टूर कृष्णपिषारटी

3 वही पृ. 167

4 साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ. 71 डा. के. एम. जॉर्ज ।

एक वेस गति की परिकल्पना करते हुए हम मलयालम साहित्य का प्राचीन, नवीन और अधुनातन कालों में विभाजन करेंगे[1]। उनका कालविभाजन यों है :-

प्राचीनकाल - दसवीं सदी से पन्द्रहवीं सदी तक।

नवीनकाल - पन्द्रहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक।

अधुनातनकाल- उन्नीसवीं सदी से ....

श्री पी. के. परमेश्वरन नायर ने जिस नवीनकाल का जिक्र किया है वह सचमुच वह मध्यकाल ही है जिसके बारे में अन्य लोगों ने भी कहा है।

उपर्युक्त सर्वेक्षण की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि युग-विभाजन की कसौटियाँ भिन्न हैं और मत भी भिन्न हैं। हम इस प्रबन्ध में भाषा स्वरूप और मलयालम भाषा के ऐतिहासिक विकास को ध्यान में रखते हुए मलयालम साहित्य को आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजन करेंगे।

आदिकाल वह है, जब मलयालम मूल द्राविड़ भाषा से अलग होकर चेन्तमिल के प्रभाव में रहती है। यह काल तेरहवीं सदी तक माना जाता है।

मध्यकाल शब्द से मेरा मतलब चौदहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं सदी तक के पाँच सौ वर्षों को है - और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करूँ तो पुनम से लेकर कुंचन तक के काल को। इस काल में तत्कालीन भाषा संस्कृत से प्रभावित होकर साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई। 'मलयालम के मध्यकालिक भाषाधाराओं एवं साहित्यधाराओं का मिलनकाल था[2]। मध्यकाल कुंचन के साथ समाप्त होता है।

जब से अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा, तभी से मलयालम में आधुनिक काल का आरंभ हुआ उन्नीसवीं सदी में पश्चिमी शासन का यहाँ आरंभ हुआ। इसके साथ साथ पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति की ओर मलयालम भाषी जनता आकृष्ट हुई और इसके फलस्वरूप उसमें नूतन प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ, ये सब इस काल

- -

1 मलयालम साहित्य का इतिहास - पृ. 18 पी. के. परमेश्वरन नायर

2 साहित्य और जीवन शीर्षक लेख से - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयि।

के प्रधान लक्षण है । नवीन से नवीन पाश्चात्य प्रणालियों को मलयालम ने अपनाया । मुद्रण, पुस्तक-प्रकाशन, समाचार आदि अनेक लाभ मलयालम को उपलब्ध हुए ।

मध्यकाल के इन पांच सौ वर्षों के अन्तराल में मलयालम वाङ्मय ने अनेक प्रतिभाशाली कवियों की सेवायें पायी है । परन्तु अन्य भाषाओं की तरह मलयालम साहित्य का इतिहास भी इन प्रतिभाशाली कवियों का पर्याप्त प्रस्तव नहीं कर सका है । चुने हुए कवियों के थोड़े थोड़े विवरण ही दिए गए है । इसमें तर्क वितर्क है । अतः इस अवधि में प्रवाहित प्रमुख काव्यधाराओं की रूपरेखा संक्षेप में समझाने के प्रयत्न करेंगे । 'कवि के हृदय की वाणी में उसके सम - सामयिक और विविध विषयक विचारों एवं अनुभूतियों की झलक सहज की पायी जाती है । उस पर पड़ने वाले अनेक प्रभावों का परिचय उसकी कविचेतना को समझने में सहायता पहुंचायेंगे ही'[1]। अतः इस अन्तराल में देश की सामान्य परिस्थितियों की जानकारी थोड़ी बहुत अवश्यक है ।

आलोच्यकाल में देश की सामान्य परिस्थिति - मध्यकालीन केरल की स्थितियों का परिचय विभिन्न लेखकों से रचित केरल का इतिहास, ट्रावनकोर स्टेट मानुवल, कोचिन स्टेट मानुवल, विभिन्न शिलालेख, बर्बोसा[2] जैसे यात्रियों की स्मृतियां, इलमकुलम् के अनुसन्धानात्मक ग्रंथ - इन सबसे हमें प्राप्त है । उण्णुनीलि सन्देशम् जैसी इस अन्तराल की रचनाएं भी काफी जानकारी प्रस्तुत करती है ।

(1) राजनीतिक परिस्थिति :- उदय मार्तण्डवर्मा (1314 - 1344), रवि रविवर्मन (1350 - 1383), आदित्य वर्मा (1376 - 1383), चेर उदय मार्तण्डवर्मा (1383 - 1444), रवि रवि वर्मा (1484 - 1512) कुलशेखर वीर मार्तण्ड वर्मा (1516 - 1535) उण्णि केरल वर्मा, मार्तण्ड वर्मा (1729 - 58) रामवर्मा अर्थात् धर्मराजा (1758-1798) आदि प्रमुख[3] राजाओं का शासन आलोच्यकाल में हुआ । पेरुमाल शासन के समाप्त होने पर

1 साहित्य और जीवन शीर्षक लेख से - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयि ।

2 पन्द्रहवी शताब्दी में तिरुवितांकूर में पर्यटन के लिए पहुंचे एक विदेशी ।

3 A survey of Kerala History. p.236 - A. Sreedhara Menon.

केरल कई छोटे बड़े शासकों के हाथों में विभक्त हो गया था । सामन्त वादी शासन - व्यवस्था केरल भर में फैली । राजाओं ने तो राजनीति का शतरंज का खेल कई बार खेला । राजनीति का क्रम बदलता गया । केरल के छोटे राजाओं में तो कोलत्तिरी के राजा, कोषिक्कोड के सामूतिरि नरेश तथा वेणाड के राजा ही पूरे अर्थ में शासक थे । मत्स्य-मत्स्य न्याय से बड़े शासक छोटे शासकों को अपने कब्जे में करते थे । पुर्तगाली तथा डच सैनिकों ने पन्द्रहवीं सदी में आपस में झगड़ा करनेवाले राजाओं की सहायता करने के बहाने अपना थोड़ा बहुत उल्लू सीधा कर लिया । डच व्यापारियों का सर्वप्रथम केरलीय सम्बन्ध सन 1604 ई. से सामूतिरि के माध्यम से था । नयन्वतन डच, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज व्यापारी बारी बारी से देशी नरेशों की सहायता करते करते अपना अधिकार अधिक व्यापक बनाया । वेणाड के वीर मार्ताण्ड वर्मा ने विस्तृत तिरुविताकूर राज्य की स्थापना की । अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में केरल में मैसूर के हैदर और टिपू का आक्रमण सर्वनाशकारी था, अंग्रेजों की सहायता से केरल नरेशों ने उनको भगा दिया । धीरे धीरे अंग्रेजों की सहायता से केरल नरेशों ने उनको भगा दिया । धीरे धीरे अंग्रेजों की व्यापारी संस्था शासक संस्था बन गयी ।

(2) सामाजिक परिस्थिति - रईस व्यवस्था कायम थी । राजालोग भूदेवों को दान देकर अनुग्रह तथा आशीर्वाद पाया करते थे । अर्थात् मलयाल ब्राह्मणों का भूदेवत्व राजाओं से भी मान्य था । ब्राह्मणों का अधिकारत्व अपनी सारी शक्तियों के साथ जन जीवन पर प्रभाव डाल रहा था । नम्बूतिरियों के पास संस्कृत काव्यों से प्राप्त ज्ञान था, वे तो सुखपूर्ण जीवन बिता रहे थे, इच्छानुसार शादियाँ करने की स्वतंत्रता भी इन्हें थी - इन सबके कारण अधिकांश

---

1 (क) The political and social structure of the land was feudal in character in 16th and 17th centuries.
A survey of Kerala History. p.26 - A.Sreedhara Menon.

(ख) स्वतंत्र होनेवाले कई रईसों के या छोटे राजाओं के अधीन में था केरल का शासन।
मध्यकालमलयालम मलयालम पृ.64 डा.पी.वी.वेलायुधन पिल्लै

(ग) 'धन और शक्ति प्राप्त कुलीन परिवार के लोग ही पहले उच्च जाति के हुए होंगे । कालान्तर में रईस व्यवस्था जब मजबूत बनी, एक एक जाति दूसरी जातियों से दूर ही रही' । केरलचरित्रम् - पृ.162 के.दामोदरन ।

विषयी थे । 'नायर स्त्रियों से सहवास करने का तथा जिम्मेदारी और बन्धनों के बिना ही विवाह सुख प्राप्त करने का भाग्य इन मलयाल ब्राह्मणों को मिला था।[1]

मलयालम ब्राह्मणों तथा तमिल ब्राह्मणों का शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा सम्मान था, लेकिन इन ब्राह्मणों का अशिक्षित विभाग, दान दक्षिणा और भोजन की खोज में चला करते थे । उन दिनों में उच्च शिक्षा का मतलब संस्कृत शिक्षा से था । ये ब्राह्मण ही इसके पण्डित थे । अधिकांश तमिल ब्राह्मण या तो अध्यापक थे, या कपड़ों का व्यापार करते थे, या बड़ी सूद पर पैसा कर्ज पर देते थे ।

उन दिनों में हिन्दु समाज जाति व्यवस्था पर आधारित थी । हिन्दुओं में मज़बूत नायर और 'तिय्य' जातिवाले थे।[2] नायर लोगों में जिनके पास धन था, वे रईस थे, जिनके पास धन नहीं था, वे सैनिक बनते थे । नायर लोगों का पारिवारिक धन्धा युद्ध और सैनिक सेवा थी, अतः नायर जाति के पुरुषों को शिथिल दाम्पत्य जीवन ही प्राप्त होता था, असली रूप का दृढ़ वैवाहिक जीवन असाध्य था।[3] नम्पूतिरियों का संबंध[4] पाना नायर परिवारों के लिए सम्मान की बात थी ।

नायर के नीचे का स्थान समाज में तीयों का था । पेड़ों से शराब लेना उनका मुख्य धन्धा था, लेकिन कुछ सैनिक शिक्षा भी पाते थे । मछुवारे, पुलय, परय आदि नीचे तले के लोग माने जाते थे ।

- -

1 केरल चरित्रत्तिन्टे इरुलटंज एटुकल - पृ. 206

2. The Hindu society of the age was siganised on the basis of the caste system. The Nairs and the Tiyyas represented the most powerful castes among Hindus. A Survey of Kefala History.p.266
A. Sreedhara Menon.

3. Cochin State Manual - p.332 - C. Achutha Menon.

4. Only the eldest son among the Namboodiris married within the caste and all others had sambandham with women belonging to the Nair or other communities of equal or higher rank.

A Survey of Kerala History. p.216 - A. Sreedhara Menon

मध्यकेरल में ईसाई और उत्तर केरल में मुसलमान रहते थे ।

(3) सामाजिक दुर्गुण :- छूआछूत की पराकाष्ठा हो चुकी थी । जाति व्यवस्था तथा रईस व्यवस्था के कारण लोगों का सदाचारिक स्तर घटने लगा था । समाज में ऊँचे तले के लोग सब तरह की सुखसुविधाएँ यथेष्ट अनुभव कर सकते थे । देश की आर्थिक व्यवस्था भी बहुत बुरी थी । आबादी की अधिकता के कारण निर्धनता की मात्रा काफी बढ़ गयी थी रिश्वतखोरी यहाँ प्रचलित थी । सोलहवीं शताब्दी में तो शराबीपन केरल में एक सामाजिक दुर्गुण नहीं बन गया था । लेकिन उसके बाद लोग मद्यपान की ओर आकृष्ट हुए । सोलहवीं सदी में केरल आए बार्बोसा तथा अठारहवीं सदी के बुकानन के यात्रावर्णन इसकी गवाही देते हैं ।

बहुपत्नीत्व मुसलमानों के बीच में तथा बहुपतीत्व नायर स्त्रियों के बीच में प्रचलित था, यों इन विदेशी यात्रियों का कथन है[2] । केरल के मन्दिरों में भी तमिलनाड की देवदासी प्रथा कायम रही । ये देवदासियाँ सिर्फ देवभक्त नहीं थी, नाचने में तथा पुरुष प्रशंसा में भी कुशल थी । अर्धनग्नता तथा अधःपतित देवदासीत्व ने समाज के सदाचारिक स्तर को बहुत घटा दिया[3] । पन्द्रहवीं सदी में ही नहीं उसके बाद भी देवदासी वेश्याप्रथा केरल में जारी रही । ऐसी हालत उन दिनों में संसार भर में व्याप्त थी[4] । वेश्याओं का समाज में बड़ा सम्मान था[5] ।

- -

1. This period saw a steep decline in the moral character of the people. This was due to the corrupting influence of caste and Janmi system.
   A survey of Kerala History - p.216 - A. Sreedharan Menon.

2. The more lovers a woman has says Barbosa, the greater is her honour. The woman distributed her time among her husbands in the same way as a Muslim distributed his time among his women. A Survey of Kerala History - p.267 A.Sreedhara Menon.

3. 'The period also saw the Janmi and Devadasi systems at their worst and this made the moral degradation of the people complete'. A Survey of the Kerala History.p.231
   A. Sreedhara Menon.

4. There were 6800 registered prostitutes in Rome in 1490 not counting clandestine practitioners, in a population of some 90,000. From the essay Italian civilization - Wildurant
   The story of civilizations Vol.V Chs xx p.567

5. उण्णुनीलि सन्देशम्, पद्यात्मक कविताएँ, चम्पूकाव्य - ये सब केरल की एक अंगनाश्रय सभ्यता सीढ़ी को प्रकट करते हैं'। मध्यकाल मलयालम पृ.85
   डा.पी.वी.वेलायुधन पिल्लै

ज्योतिष, ज्योतिष्म, वैद्य, इन सब पर मामूली जनता बड़ा विश्वास करती थी, इससे फायदा उठानेवाले ज्योतिषी तथा भूत राज वैद्य सब कहीं थे ।

(4) सांस्कृतिक स्थिति - केरल के गांव गांव में ही नहीं बल्कि धनिकों के घर घर में भी मन्दिर बनाने की परंपरा चौदहवीं सदी से शुरू हुई । हिन्दू धर्म मन्दिर धर्म तक बन गए इन मन्दिरों में महाभारत पारायण, पुराणकथा कथन, कूत्तु पाठक, तुल्लल, कथकलि - ये सार्वत्रिक थे । मन्दिरों में ब्राह्मण - भोजन का प्रबन्ध करके राजाओं ने वेदपाठी ब्राह्मणों का सम्मान किया था[1] ।

राजाश्रय में साहित्य और कला पनपने लगे थे । राजदरबारों में कवि तथा कलाकारों का उच्च पद था । तिरुवनन्तपुरम कलाओं का केन्द्र बन गया था । विदेशी व्यापारी तो ईसाई थे, उनके आगमन पर गिर्जाघरों में चविट्टुनाटकम् भी प्रचलित हुआ जो कथकलि से मिलता जुलता है ।

साहित्य संगीत आदि कलाओं में विशेष लगन मलयालम ब्राह्मणों में थी । मन्दिरनिर्माणकला, गृहनिर्माण कला आदि भी प्रगति पा चुकी थी ।

(5) आर्थिक स्थिति - विदेशीयों से व्यापार इस युग में भी चलता रहा । प्रमुख बन्दरगाह थे कोल्लम, कोच्चि और कोषिक्कोड । छोटे बन्दरगाहों में पुरक्काड, तेल्लिचेरी आदि भी प्रमुख थे । अरेबिया, ईजिप्ट, चीन आदि देशों से केवल व्यापार का रहा था, लेकिन पुर्तगालों के आगमन के बाद यह व्यापार सिर्फ यूरोप से रहा । निर्यात की चीज़ों में प्रमुख थे काली मिर्च, इलायची आदि । यहाँ वैज्ञानिक खेती लाने का श्रेय पुर्तगालों का है । वे काश्यूनट, कटहल इन सबकी खेती यहाँ लाए । आलोच्यकाल के आदि में केवल सिर्फ घर की आवश्यकता के हेतु आलोच्यकाल में विदेशियों के प्रभाव से यह व्यापार की दृष्टि से की जाने लगी ।

(6) भाषा की स्थिति - अब हम भाषा की स्थिति पर प्रकाश डालेंगे । चौदहवीं सदी के प्रारंभ में दक्षिण ट्रावनकोर के राजाओं का पूर्वावास दक्षिण में पद्मनाभपुरम था और इसलिए तमिष की ओर इनका स्वाभाविक झुकाव भी था[2] । लेकिन बाद में ट्रावनकोर के

1 उण्णुनीलि सन्देशम पृ. 127

2 मानसी 1976 पृ. 11 डा. मलिक मुहम्मद

पूर्वी देशों में जो तमिल प्रचलित थी उससे संस्कृत तथा पालि के प्रभाव से और देशकाल भेद से मलयालम भाषा अलग बन गयी। इस मलयालम के दो रूप भी प्रस्तुत हुए। इनमें से एक रूप तमिल भाषा एवं शैली के निकट था और दूसरा संस्कृत के। तमिलनिष्ठ भाषा में लिखे गए काव्य पाट्टु नाम से अभिहित हुए और संस्कृत निष्ठ भाषा की रचनाएँ मणि प्रवालम कहलाईं। इसीलिए श्री.पी.के.परमेश्वरन नायर ने यों कहा है कि 'केरल में पहले केरली राजाओं के ज़रिए केन्तमिल साहित्य और बाद में नम्पूतिरियों के द्वारा संस्कृत साहित्य के प्रचार और वृद्धि से मलयालम सामान्य जनता की भाषा के रूप में व्यवहार का साधन मात्र रही थी।[1]

बाहर से आकर केरल को अपनी मातृभूमि बनाने वाली आर्य जनता जब स्वयं केरलीय बनी और उसी प्रकार केरलीयों ने जब आर्य संस्कृति का सामीप्य पाया तो, दोनों की मातृभाषा मलयालम का रूपान्तरित होना अवश्यक हो गया। हो सकता है, इस परिवर्तन का बीज उस पद मिश्रण ने डाला हो, जो कि व्यवहृत भाषा रूप में हुआ। धीरे धीरे धर्म-संबन्धी तत्वों, वैदिक आचार, शास्त्र - इत्यादि समझने के लिए एक ऐसी मिश्र भाषा प्रयोग में आयी, जिसमें संस्कृत शब्द काफी मिले हुए थे। काफी हद तक शिक्षित केरलीयों की भाषा भी यही बनी। फलस्वरूप तमिल प्रभाव क्रमशः कम होता रहा।[2]

लेकिन पन्द्रहवी शताब्दी में चेरुश्शेरी ने शुद्ध मलयालम का उपयोग किया। उनकी शैली में नवीनता के लक्षण दृष्टिगत हुए। फिर भी शुद्ध मलयालम कविता का स्पष्ट प्रारंभ सत्रहवीं सदी में एषुत्तच्छन की कविता में ही दिखाई देता है।

अठारहवी शताब्दी में लोकसाहित्य कुंचन का प्रवेश हुआ। जनकीय लोक-जीवन का आलोडन और अंकन करनेवाले कुंचन ने शुद्ध मलयालम या आम जनता की भाषा का ही उपयोग किया।

- -

1 मलयालम साहित्य का इतिहास पृ.25 पी.के.परमेश्वरन नायर

2 न संस्कृत मिश्रित और न तमिल मिश्रित।

<u>मध्यकालीन मलयालम कविता का सामान्य स्वरूप</u> - चौदहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक के पांच सौ वर्षों के लंबे अंतराल में मलयालम भाषा और साहित्य ने अनेक प्रतिभासंपन्न कवियों की सेवाएं प्राप्त की हैं। इन कवियों की समीक्षा से अधिक लाभदायक है तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों की परीक्षा। विविध धाराओं के रूप में साहित्य के इतिहास का विभाजन करते हुए डा. के. एम. जोर्ज ने सप्रमाण दिखाया है[1] कि मलयालम साहित्य को किन काव्यरूपों को स्वीकार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और किन सीढ़ियों को लांघकर मलयालम साहित्य वर्तमान दशा में पहुंच गया है। प्रस्तुत ग्रंथ के निष्कर्ष और अधिकांश विद्वानों के मतानुसार उक्त अवधि की प्रमुख काव्य धाराएं यों हैं :-

1 संस्कृत मिश्रभाषा

2 गाथा

3 किलिप्पाट्टु

4 चम्पू

5 कथकलि

6 तुल्लल

7 वंचिप्पाट्टु

लोकगीतों के विविध भेद इन वर्षों में अलग प्रचलित थे। लेकिन वे अत्यंत विकसित या व्यापक नहीं रहे।

<u>(1) संस्कृत मिश्र भाषा</u> - भारत की सब प्रमुख भाषाओं में संस्कृत भाषा का प्रभाव अच्छी तरह प्रकट है। कन्नड, तेलुगु, मलयालम आदि द्राविड भाषाओं की सब शाखाओं में संस्कृत साहित्य की प्रेरणाएं स्पष्ट दीखती हैं। लेकिन मलयाल साहित्य में संस्कृत के प्रभाव की चिन्ता करते समय हम समझेंगे कि एक अलग प्रकार का बन्ध दोनों के बीच है।

- -

1 साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे पृ.

'साहित्यसृष्टि के लिए इन भाषाओं के बीच अनन्य सुलभ एक 'संयोग' पैदा होता है। भाषाओं का लक्ष्य ही व्याकरण है, मानसमुत्तर के इस कथन के आधार पर देखें तो इन दोनों भाषाओं के बीच एक लक्ष्य रूप ही हम देखेंगे। अलग प्रकार का यह मिश्रव्यवहार ही मणि प्रवालम् नाम से प्रसिद्ध हुआ है'[1]।

नम्पूतिरियों के द्वारा नित्य प्रचारित संस्कृत भाषा जब शिक्षित लोगों में फैल गयी, तो विज्ञापनों की भाषा की हैसियत से उसका मलयालम पर गहरा प्रभाव प[illegible] इसका परिणामस्वरूप था मणिप्रवालम्। 'मणिप्रवालम् अर्थात् मणि (माणिक्य) और प्रवालम् व मिलाकर गूँथी गई माला अथवा तदनुरूप साहित्य। यहाँ माणिक्य का मतलब मलयालम से है और प्रवाल संस्कृत के लिए प्रयुक्त है। दोनों यद्यपि दो प्रकार के रत्न हैं, तो भी दोनों के रंग समान स्वभाव के हैं, इसलिए दोनों को अलग अलग करना मुश्किल है। ठीक वैसा संयोजन 'मणिप्रवालम्' में भी रहता है'[2]।

यह मणिप्रवालम सिर्फ मलयालम में उपलब्ध भाषा संगमन नहीं है, अपितु अन्य भाषाओं में भी ऐसा संकलन पाया गया है। केरल में एक अति विशिष्ट साहित्य सरणि के रूप में मणिप्रवालम् परिपुष्ट होता रहा। बाद को निश्चित नियमों तथा व्यवस्था का होना अति आवश्यक हो गया। लीलातिलकम् उस आवश्यकता की पूर्ति करनेवाला शास्त्र ग्रंथ था।

प्रारंभिक मणिप्रवालम रचनाएँ नायिका वर्णन और उनके गुणगान से पूर्ण थी। उस वक्त की सभी नायिकायें उन दिनों जीवित थीं और कवियों के साथ उनका निजी परिचय या प्रेम संबन्ध था। उण्णियच्ची चरितम् (तेरहवीं सदी के उत्तरार्द्ध), उण्णिच्चिरुतेवी चरितम् (तेरहवीं सदी) और उण्णियाटी चरितम् (चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध) ये तीनों इन रचनाओं में आती हैं। इन तीनों कृतियों का विषय एक ही है। तीनों नायिकायें नर्तकियाँ हैं। इस समय की सारी रचनाओं में सुन्दर स्त्रियों के प्रति गन्धर्व, इन्द्र या चन्द्र के अनुरक्त होने की बात और फिर उस सिलसिले में घटित घटना विशेष को कथावस्तु बनाकर वर्णन हुआ है। हो सकता है, तत्कालीन सुन्दरियों के वर्णन के लिए भीषण ढूंढते ढूंढते गान्धर्वकथा को कवि गढ़ लिया करते थे।

- -

1 साहित्य चरित्रम् - प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ.216 डा.के.एम.जार्ज

2 भाषा दीपिका - पृ.26 उल्लूर एस.परमेश्वरय्यर

मणिप्रवाल कृतियों की कविताये यद्यपि यथातथ्य पृष्ठभूमि पर ही आधारित है, तथापि आम तौर पर उनकी रीति कृत्रिम है । अत्युक्तियाँ और आलंकारिकता उनके अनवद्य लक्षण थे ।

अनुमानतः चौदहवीं सदी मे किसी कवि द्वारा लिखी अनन्तपुरवर्णनम् नामक रचना की भी चर्चा इस सिलसिले मे जुड़ी है । कवि ने स्वयं कहा है कि उक्त रचना पुण्डरीकाक्षपूजा के रूप मे रची जानेवाली एक मणिप्रवालम् कविता है । कहा जा सकता है अनन्तपुरवर्णनम् एक सुन्दर रियलिस्टिक काव्य है[1] ।

उन दिनो के तिरुवनन्तपुरम शहर का जब कवि वर्णन करता है तो उसे एक भावनासृष्ट देवनगरी न बनाकर एक ऐसे जनपद के रूप मे चित्रित करता है जहां मानव जीवन हिलोरें मारता रहता है 'लकड़ी के जहाज़ो द्वारा आए तरह तरह के सामान लादकर व्यापारी किसी गली मे चल रहे है, कुछ लोग यह कहते हुए चलते है कि हमारा ध्यान ले लो और हमे चावल दे दो । और कुछ लोग यह कहते फिरते है कि पान लेकर बदले मे नारियल दे दो और आम दे दो । माथे और स्तनों को आगे बढ़ाती, अपने आप को झुलाकर अगले और पिछले अंगो (नितंब और छाती) को हिलाती और हाथों को आगे पीछे उछालती हुई मछुवा स्त्रियां आपस मे बोलती और शोर मचाती चलती है[2] ।

---

1 मलयालम साहित्य का इतिहास - पृ.40 पी.के.परमेश्वरन नायर

2 मलकळतिल्मेल कन्न चक्कु पल आलियु
एट्टेन्नु पप्पळमेयर नटप्पितोरु वीतियिल्
नेल्लिन्नारिन तायेरु चोल्लिटि चुवक्कयु
तेङ्ङन त वेट्टिटल्लोन्नु मालक्का तुवनेन्नयु
तलयु मुलयु तल्लतल्लमेत्तारु मल्नुटन्
मुन्पु पिम्पु तथा कैयु मेय्यु कोट्टि प्पकर्न्नुटन्
कलन्नु पेशि मीन् विलक्कु चेरुमि कूट्टटवु क्वचित्
अनन्तपुरवर्णनम् - पृ.49 यूनिवेर्सीटि मानुस्क्रिप्ट लैब्रेरि संपादन ।

प्राचीन मणिप्रवालम् कृतियों की एक और विशेषता उनके शिवरीय स्तोत्र है । भक्ति के साथ साथ कल्पना शक्ति को भी आकर्षित करनेवाले कई मनोहर मुक्तक पाए जाते है ।

प्राचीन मणिप्रवालम् का एक प्रमुख अंग है सन्देश काव्य । भावात्मक तथा आत्मनिष्ठ गीति काव्य परम्परा के प्रति केरलीय कवि हृदयों में जो असामान्य प्रक्रिया उठ चली थी और उसके प्रति कवियों की जो पक्षपातपूर्ण मनोवृत्ति थी, हो सकता है कि उसी के कारण इस विशेष कविता पद्धति में अभिरुचि हो गयी हो । उण्णुनीलि सन्देशम् कोक सन्देशम्, काक सन्देशम् आदि कई सन्देशों में प्रमुख उण्णुनीलि सन्देशम ही है ।

'न केवल सन्देश काव्यों में बल्कि समूचे मणिप्रवाल काव्य की परिगणना में भी उण्णुनीलि सन्देशम् प्रथम श्रेणी की कविता के स्थान का अधिकारी है'[1] । सन् 1350 ई. तथा 1365 ई. के बीच के समय को सन्देश काव्य का काल माना गया है[2] । स्वयं काव्य से इस बात का अनुमान किया जाता है कि उसका नायक और कवि एक ही व्यक्ति था और नायिका वटक्कमकूर राज परिवार की एक युवती थी । विरह विवश नायक अपने मित्र आदित्य शर्मा के द्वारा दूरस्थित प्रियतमा के पास सन्देश भेजता है, यही कविता का प्रतिपाद्य है । रस स्फूर्ति और रचना सौष्ठव में यह दूसरे किसी काव्य की बराबरी कर सकता है । लेकिन संयोग शृंगार वर्णना उचित सीमा के अन्दर रखना इसके रचयिता जानते नहीं[3] । 'फिर भी' रचना सौष्ठव तथा भावमाधुर्य में उण्णुनीलि सन्देशम् की समानता रखनेवाले काव्य थैली ने थोड़ी ही पाये है[4] ।

कई सरणियों में मणिप्रवाल काव्यों का विकास और फैलाव हुआ है । इनमें संस्कृत काव्यों के ढंग पर लिखे गए काव्यों का उत्तम उदाहरण चन्द्रोत्सव है । यह पाँच खण्डों में पाँच सौ तक श्लोकों की रचना है । इस ग्रंथ रचना का काल 1500 ई. के आसपास है, ऐसा उल्लूर का मत स्वीकरणीय है[5] ।

- -

1 मलयालम साहित्य का इतिहास पृ.42 पी.के.परमेश्वरन नायर

2 संस्कृत मिश्र शाखा - इलमकुलम कुंजन पिल्लै (साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ.286)

3 उपरिवत् पृ.290

4 प्रस्थान सप्तकम् पृ.54 से उद्धृत पी.वी.कृष्णन नयर

5 संस्कृत मिश्र शाखा - इलमकुलम कुंजन पिल्लै ।

भैरवी चन्द्रिका का जन्म, जीवन-विकास, जन्मोत्सव मनाने का निश्चय, उसमें भाग लेने आनेवाली सुन्दरियाँ, ब्राह्मण, वार वनिताएँ और कवि आदि तरह-तरह के प्रसंग इस काव्य में आते हैं। इन वर्णनों में यद्यपि अत्युक्तिपूर्ण वर्णन, असमग्र चित्रण रीति है तो भी तत्कालीन सामाजिक स्थिति का आंशिक दिग्दर्शन अवश्य मिलता है। 'यद्यपि इसमें कुछ अश्लील वर्णनाएँ हैं। तो भी प्रकृतिचित्रण, रस पुष्टि आदि का सन्निवेश अनन्य सामान्य भावना चातुरि से कवि ने निर्वाह किया है। शब्दालंकार प्रयोग तथा अर्थालंकार रचना में जन्मोत्सवकार को हराने वाला कोई अन्य प्रवाल कवि नहीं।'

निष्कर्ष रूप से हम यही कह सकते हैं कि संस्कृत मिश्र शाखा या प्राचीन मणिप्रवालम् कई सरणियों से गतिशील हुई। संस्कृत काव्यों के ढंग पर कुछ काव्य लिखे गए (उदा : जन्मोत्सव), स्तोत्र कृतियों के रूप में कुछ लिखे गए (उदा : वासुदेवस्तव, अनन्तपुर वर्णनम्, दशावतारचरितम्, बालकलीलस्तवम् आदि) विविध विषयों और प्रसंगों के सम्बन्ध में लिखे गए, कुछ सन्देश काव्य भी लिखे गए (उदा : उण्णुनीलि सन्देशम्)।

संस्कृत मिश्र शाखा की चर्चा समाप्त करने के पहले लीलातिलक और कन्नश्श कृतियों पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है।

'मलयालम भाषा के मूल ग्रन्थों में अग्रगण्य है लीलातिलकम्'[2] चार या पाँच सदियों से जब मणिप्रवालम् को खूब प्रचार मिला तब उसके लिए कुछ नियम और व्यवस्थाओं की आवश्यकता पड़ी। इस प्रकार परिस्थितियों की पुकार है लीलातिलकम् की रचना। उस ग्रंथ में दो प्रसंगों पर यों कहा गया है :-

(1) लीलातिलकम् मणिप्रवाललक्षणम्[3]।

(2) इति लीला तिलके मणिप्रवाल लक्षणे प्रथम शिल्पम्[4]।

सूत्र संस्कृत में और उदाहरण मलयालम में देने का क्रम रचयिता ने अपनाया है। नागवर्मविरचित कन्नड के काव्यानुशासन को आधार बनाकर ही इसकी रचना हुई है[5]। हिन्दी के रीतिकालीन लक्षणग्रंथों के समान यह भी भाषा रीति तथा लक्षणग्रंथों

---

1 भाषा चम्पूक्कल - पृ.24 उल्लूर
2 साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे पृ.313 - लीलातिलकम् शीर्ष लेख-इलम्कुलम कुंजनपिळ्ळै
3 लीलातिलकम् पृ.106 - सं.एन.वी.एस - 1955
4 उपरिवत्
5 उपरिवत् पृ.144

प्रकट करता है । श्री. पी. के. परमेश्वरन नायर के शब्दों में 'लीलातिलकम् कई शैलियों और प्रणालियों में विकसित होनेवाली एक विपुल साहित्य परंपरा का साक्षी है । ईश्वरीय स्तोत्र, नायिका वर्णन, उत्सव वर्णन, ज्योतिःतथा स्थल माहात्म्य आदि विभिन्न प्रकार की रचनायें इनमें दिखाई देती हैं'।[1] यह आठ शिल्पों में विभक्त है । लीलातिलकम् की रचना 1385 और 1400 के बीच है[2] ।

संस्कृत साहित्य के प्रभाव में पड़ने से यहाँ मौजूद गानों को काफी प्रभावित किया है, इसके लक्षण पाये जाते हैं । चौदहवीं शताब्दि के उत्तरार्ध में या पन्द्रहवीं शताब्दी के आरंभ में लिखी गई कण्णश्श - कृतियाँ इस बात का दृष्टान्त है । कण्णश्शों ने पुराणों की शरण ली थी । जितनी कण्णश्श कृतियाँ प्राप्त हैं वे तीन कवियों की हैं। इन कवियों का समय चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्ध में माना जाता है । माधवपणिक्कर की भगवद्गीता, शंकर पणिक्कर की भारतमाला तथा राम पणिक्कर की रामायण, भारत भगवत तथा शिवरात्रि माहात्म्य कण्णश्श कृतियों में प्रमुख थी । ये निरणम् कवि भी पुकारे जाते हैं । इन कवियों में प्रमुख राम पणिक्कर ही है ।

(2) गाथा - हिन्दी जगत में प्रसिद्ध 'गाहा' से गाथा का कोई सम्बन्ध नहीं । केरलीय गाथा पूर्ण रूप से द्राविड़ी है । वृत्तमंजरी कार श्री राजराज वर्मा ने उन सभी छन्दों को 'गाथा' नाम दिया है जो वर्णों या मात्राओं की विषमता या नियमों के भंग के कारण प्रसिद्ध छन्दों के अन्तर्गत नहीं होते । व्यवहार में तो मंजरी नामक द्राविड़ छन्द में लिखी गई कवितायें ही गाथा कहलाती हैं । 'जो प्राचीन द्राविड़ गीत थे वे ही बाद में विकसित परिमार्जित हुए और गाथा कहलाए[3] । 'मलयाल भाषा की निजी संपत्ति ही है गाथावृत्त[4] डा. के. एन. शर्मा भाषा के बारे में यों कहते हैं 'तमिळ्निष्ठ भाषा में लिखे गए काव्य 'पाट्टु' नाम से अभिहित हुए और संस्कृतनिष्ठ भाषा की रचनाएँ मणिप्रवालम

---

1 मलयालम साहित्य का इतिहास - पृ. 33 पी. के. परमेश्वरन नायर

2 'लीलातिलकम्' लेख - इलमकुलम् कुंजन पिल्ले साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे पृ. 313

3 आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य पृ. 29 डा. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

4 'गाथा' शीर्ष लेख - डी. पद्मनाभनुण्णि साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे पृ. 336

कहलाई । इन दोनों साहित्यपरीक्षण करके जब पण्डित समूह विजयाहलाद कर रहे थे त शुद्ध मलयालम में मलयालम के ही छंद में एक महाकाव्य एक केरलीय ने रचा । वह है कृष्णगाथा । उसे प्राप्त प्रचार के कारण गाथा एक धारा ही बनी[1] ।

इस धारा के प्रतिनिधि कवि चेरुश्शेरी थे । उन्होंने सरस एवं मधुर भाषा में छोटे छन्दों में कविता का मज़ा पाया । मलयालम की चेतना को एकदम ग्रस्त करने वाले संस्कृत तथा तमिल संकलन उन्होंने नहीं अपनाया । चेरुश्शेरि की कृष्णगाथा में उस अनन्तरकालीन मणिप्रवालम् को असल में ललकारा गया था, जो विभक्त्यन्त संस्कृत पदों की बहुलता - मिश्रित चम्पू प्रबन्धों आदि के ज़रिए प्रचार में आया था । 'एषुत्तच्छन के पहले पौराणिक कथाओं के आधार पर रचना करने वाले कवियों में सबसे ज़्यादा व्यक्तित्व वैभव प्रकट करनेवाले कवि चेरुश्शेरी नम्पूतिरी ही थे[2] । लौकिक शृंगार, वात्सल्य एवं हास्य के चित्रण में कृष्णगाथा बड़ी सफल कृति रही है । यह मलयालम का प्रतिनिधि मध्यकालीन काव्य कहलाती है ।

भारतगाथा या चेरुश्शेरी भारतम् नामक एक रचना भी इस धारा में प्रमुख है ।

(3) किलिप्पाट्ट (शुकगीत) - यह पद्यात्मक मलयालम वाङ्मय की अत्यंत विस्तृत शाखा है[3] । 'किलि' तोते को कहते हैं औ तोते की गाथा या गीत किलिप्पाट्टु कहलाता है । मलयालम के मध्यकालीन युग की पद्य रचना में तोते के अलावा हंस, कोकिल, भ्रमर आदि से भी गवाने की परंपरा थी । किलिप्पाट्टु धारा की कुछ प्रमुख कृतियों में कवि तोते से कथा गायन की प्रार्थना करता है और तोते के मुंह से कविता सुनाता है । कुछ रचनाओं में तो तोते का उल्लेख तक नहीं । फिर भी किलिप्पाट्टु नाम इनको इसलिए मिला है कि उनके छंद किलिप्पाट्टु के छंद हैं ।

- -

1 साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ. 335 डा. के. एम. जार्ज
2 मलयालम साहित्य का इतिहास पृ. पी. के. परमेश्वरन नायर
3 सोलहवीं सदी से करीब तीन शताब्दियों के लिए मलयालम पद्यसाहित्य के शासन इसके हाथ में था ।

उत्तर भारत के शुक-शुकी संवाद की परम्परा हिन्दी-भाषी को इस प्रसंग पर स्मरण आ सकती है। तमिल साहित्य में भी शैव-वैष्णव कविगण ने तोते को माध्यम बनाकर काव्य रचे हैं। लेकिन मलयालम का किलिप्पाट्टु, तमिष या हिन्दी के ऐसे कार्यक्रम से एकदम अलग का है। शुक को माध्यम बनाने के कारण विभिन्न समीक्षकों ने विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है :-

(1) कवि ने काव्य के पाप-बोध से अपने को बचाने के लिए शुक को माध्यम बना

(2) महर्षि शुकब्रह्म या सरस्वती के करकमल पर विराजमान शुक की प्रशंसा की गयी है।

(3) वेद-वेदान्त के अनधिकारी शूद्र होने के कारण एषुत्तच्छन ने आध्यात्मिक बातें तो से सुनवाई है।

(4) तोते के मधुर कण्ठ के कारण कविता में माधुर्य लाना कवि का एक उपाय होगा।

किलिप्पाट्टु द्वारा अधिकतर आध्यात्मिक विषयों के काव्य ही लिखे गए। अतः किलिप्पाट्टु शब्द का आध्यात्मिक काव्य' अर्थ तक कहीं कहीं माना गया है।

किलिप्पाट्टु धारा के कवियों में सर्वप्रथम स्व. तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन थे।[1] आलोचकों ने उनको नवीन शिक्षा का विधाता पुकारा है। कविकुलगुरु, रामायण गान गन्धर्व आदि विशेषण भी उनके नाम से जोड़ दिया गया है।[2]

'मलयालम साहित्य के इतिहास का महत्वपूर्ण काल किलिप्पाट्टु धारा के आविर्भाव से होता है। इस धारा का ही नहीं सम्पूर्ण मलयाल साहित्य का घन केन्द्र तुंचत्तु एषुत्तच्छन है, यह निर्विवाद है'।[3] उनकी काव्यकला की कसौटी से

- -

1 'सोलहवीं शताब्दी के लगभग उत्तरार्द्ध साहित्य के नभो मंडल में एक नवोदय हुआ। यह था एषुत्तच्छन का आविर्भाव।
मलयालम साहित्य का इतिहास - पृ.73 पी.के.परमेश्वरन नायर

2 कृतपरीक्षा पृ.1 तायाट्टु शंकरन

3 साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ.395

क्रांतिकारी प्रमाणित हुई[1]। शास्त्र - पुराण का अध्ययन करके उनके आधार पर मलयालम में मधुर काव्य लिखना कठिनतर कार्य था। यही कार्य बड़ी सफलता से तुंचन ने किया। उनकी सारी रचनायें केरल के घर घर में उतने ही प्रेम से पढ़ी गयी जितना प्रेम तुलसी की कृतियों के प्रति उत्तर भारत के लोगों ने दिखाया[2]। गंभीर संस्कृत निष्ठ मलयालम में लिखे हुए तुंचन के काव्य काव्यगुणों के विषय में अनुपम सिद्ध हुए। इनके क्रांतिकारी छन्द विधान की उत्तमता और लयमधुरता के कारण काव्य प्रेमियों के अत्यधिक प्रिय बने हैं और अतः वे भाषा साहित्य कुलपति समझे जाते हैं। किलिप्पाट्टु धारा के काव्यों में प्रमुख ग्रंथ हैं अध्यात्म रामायणम्, भागवतम्, महाभारतम् आदि।

एषुत्तच्छन के किलिप्पाट्टु वर्ग के काव्यों की चर्चा के प्रसंग पर मलयालम की भक्ति काव्यधारा का सामान्य उल्लेख संगत ही होगा। एषुत्तच्छन युग को भक्तिकाव्य युग कहना गलत नहीं होगा। हिन्दी के भक्तिकाल के साथ इसकी तुलना हो सकती है[3]। पी.के.परमेश्वरन नायर जी का भी यही मत है 'एषुत्तच्छन का युग आम तौर पर भक्ति व दर्शन का युग था'[4]। तायाट्टु शंकरन जी के शब्दों में 'पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं सदी में भारत भर जो भक्ति का उत्थान हुआ उसके केरल का प्रतिनिधि था एषुत्तच्छन'[5]।

---

1 एषुत्तच्छन साहित्य के क्षेत्र में एक नूतन सन्देश को अपने साथ लेकर आए। वह सन्देश बहुत अंशों में परिवर्तनात्मक था और साथ ही साथ रचनात्मक भी। बाह्य और आन्तरिक दृष्टि से वह साहित्य के स्वरूप को नवीन बनानेवाला था।

मलयालम साहित्य का इतिहास पृ.73 पी.के.परमेश्वरन नायर

2 डा.रामचन्द्रदेव ने तुलसी और तुंचन की तुलना पर शोध ग्रंथ प्रस्तुत किया है।

3 कुन्नु भाषा कविकल - पृ.- 1 - पी.के.नारायण पिल्लै

4 वह युग ग्रंथों की अपनी भक्तिपूर्णता एवं आध्यात्मिकता की वजह से भक्तिकाल कहलाने लायक रहा था। आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य पृ.33 डा.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर

5 मलयालम साहित्य का इतिहास पृ.86

6 कुलपतिकल - पृ.1 - तायाट्टु शंकरन।

'मलयालम में तो रामचरितम्' के समय से ही भक्ति साहित्य का आविर्भाव दिखाई देता है। तो भी एषुत्तच्छन के आगमन के साथ वह उन्नत हो गया था। एक प्रकार से कृष्णगाथाकार भी भक्त कवि तो थे। एषुत्तच्छन के समसामयिक कवि पून्तानम और मेल्पत्तूर नारायण भट्टतिरि भी बड़े भक्त थे। पून्तानम का ज्ञानप्पान और कृष्ण कर्णामृतम् अनुवाद बड़े प्रसिद्ध है। मेल्पत्तूर का नारायणीयम् भी बहुत लोकप्रिय है।

इन भक्तकवियों की सेवा से उत्पन्न भक्ति की धारा केरल में एक शताब्दी से अधिक रहा होगा। इस पर एक आलोचक ने ठीक ही कहा 'एषुत्तच्छन भक्ति में पैदा हो गए, मेल्पत्तूर ने भक्ति कमायी, पून्तानम भक्ति में मग्न हो गए। एषुत्तच्छन ने साहित्य और भक्ति को मिला दिया, मेल्पत्तूर ने कविता में भक्ति को मिला दिया, पून्तानम् की कविता भक्ति में मिल गयी'[1]।

(4) चम्पू - काव्यधारा — मलयालम के चम्पू काव्य संस्कृत साहित्य के चम्पू काव्यों के उत्तराधिकारी है। क्या कथानक, क्या काव्यशैली, सभी प्रवृत्तियों में मलयालम के चम्पू काव्य पुरानी शैली के हैं। यद्यपि आधुनिकतम युग की काव्यधाराओं पर चम्पूकाव्यों का सीधा प्रभाव नहीं पड़ा है, फिर भी प्रवाहमयी भाषा, शब्दाडम्बर और दंडक आदि छन्दों के विधान में चम्पू काव्यों ने मलयालम कवियों को नयी दिशा दिखलायी और नयी प्रेरणा दी।

'चम्पूओं की संख्या लगभग तीन सौ से अधिक होगी', यही प्रसिद्ध अनुसन्धाता कोलत्तेरि शंकर मेनोन का मत है[2]। चम्पू काव्यों का काल मलयाल भाषा रूपी उद्यान के लिए वसन्त काल था, यों प्रसिद्ध पण्डित वटक्कुम्कूर राजराजवर्मा राजा ने कहा है[3]। चाक्यार लोग और पाठकगणों ने चम्पूकाव्यों के प्रचार के लिए बड़ी सेवा प्रस्तुत की। सन् 1325 ई. से 1575 ई. तक ढाई शतक चम्पूकाव्यों का सुवर्णकाल था। मलयालम में

---

1 प्रबन्धम् - पृ. 151 डा. चेलनाट्टु अच्युतमेनन

2 पारिजात हरणम् चम्पू - प्रस्तावना - पृ. 3 कोलत्तेरि शंकर मेनन।

3 भाषा चम्पू शीर्षक लेख - वटक्कुम्कूर राजराजवर्मा राजा साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे पृ. 496

पश्चिमी साहित्य के प्रभाव के सशक्त होने के बाद ही प्राचीन धाराओं का यह स्रोत सूख गया। लेकिन मलयालम के आधुनिक युग के उन्नूर, चंगपुषा आदि कवियों की रचनाओं में भी चम्पूकाव्यों का प्रभाव प्रकट है। चम्पूकारों में प्रमुख पुनम नम्पूतिरि (रामायणम् चम्पू), मषमंगलम् (भाषा नैषधम् चम्पू) और मेलत्तूर (पट्टोर प्रबन्धम् नामक दस चम्पूएँ) हैं।

(5) कथकली या आट्टक्कथाधारा - मध्यकालीन मलयालम के काव्य- विकास में अगली सीढ़ी कथकली या आट्टक्कथाधारा की है। मणिप्रवाल शाखा संस्कृतमिश्रित मलयालम के विकसित रूप और संगीतमय रचनाक्रम के तौर पर कथकलि उल्लेखनीय साहित्यधारा है।

'विदेशी लोग केरल को केकुल का देश या कथकलि का देश पुकारते हैं। कथकली नामक कलारूप की ओट में आट्टक्कथा नामक साहित्यशाखा पनप गयी है।'[1] सत्रहवीं शताब्दी के बीच में ही कथकलि ने वर्तमान रूप को प्राप्त किया था।' कहा जा सकता है कि कथकलि कूडियाट्टम का ही परिष्कृत रूप है।'[2] कूडियाट्टम का कृष्णनाट्टम, रामनाट्टम आदि के रूप में प्रगति और फिर अन्त में कथकलि के रूप में परिवर्तन एक मनोरंजक इतिहास है। कोट्टयम् तम्पुरान को ही कथकलि को साहित्यिक रूप देने का श्रेय है। उन्होंने चार कथाओं की रचना की। बक वध, कल्याण सौगन्धिकम्, धूमीरवधम् और कार्तिवीर्य जयम्। कोट्टयम रचना के बाद कथकलि साहित्य का विकास उण्णायि वारियर से हुआ। उनकी श्रेष्ठ रचना है नलचरितम्। 'एक नलचरितम् मात्र के कारण वे मलयालम के पहली श्रेणी के कवियों में समझे जाते हैं। आट्टक्कथाओं में नलचरितम् के बराबर सार्वभौम स्तर पर जीवन के आयामों का विस्तार करने वाली कोई दूसरी काव्यकृति नहीं है'।[3] डा.एस.के.नायर के शब्दों में नलचरितम् को एक सर्वोत्तम काव्य शिल्प का स्थान मिला है[4]। वारियर के कारण कथकलि अपनी साहित्यकता

1 साहित्य चरित्रम् प्रस्थानंगलिलूटे - पृ.551 डा.के.एम.जार्ज
2 मलयालम साहित्य का इतिहास पृ.97 पी.के.परमेश्वरन नायर
3 उपरिवत् पृ.101
4 आट्टक्कथा शीर्षक लेख - डा.एस.के.नायर
साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्गलिलूटे पृ.584

के उच्च शिखरों तक पहुँच गयी । रचना की दृढता की ते तो नलचरितम् से बढकर मलयालम में दूसरे काव्य अधिक नहीं है । जीवन के निरीक्षण और उसके अवलम्ब पात्र-रचना में वारियर को विशेषता उपलब्ध थी । आट्टकथा साहित्य का पहला स्वर्णयुग उण्णायि वारियर के समक पुरुष कार्तिक तिरुनाल महाराजा के समय में है । कथकलि में अतीव तत्परता तो वे रखते थे, सो बात नहीं, वे स्वयं काव्य रचना भी करते थे । कोट्टारम कथकलि संघ के वे ही संस्थापक थे । इसके बाद स्वाति तिरुनाल के शासन काल में कथकलि का एक और स्वर्णयुग आया । इरयिम्मन तंपि विद्वान कौयितंपुरान आदि इनके राज्य सभा के सदस्य थे । इरयिम्मन तंपि (1789-1856) के कीचक वध, उत्तरा स्वयंवर तथा दक्षयाग अत्यन्त ऊंचे की साहित्यक कृतियाँ मानी जाती है । कौयितंपुरान ने 'रावणविजयम' नामक अपनी प्रशस्त रचना से कथकलि साहित्य की महान सेवा की है । फिर स्वाति तिरुनाल के वारिस उत्रम् तिरुनाल मार्तण्ड वर्मा महाराज से राजकीय प्रोत्साहन पाकर कथकलि अपनी परमोच्च स्थिति को पा गयी ।

जैसा कि नामों से ही स्पष्ट है, आट्टकथा साहित्य रामायण, महाभारत आदि पर अवलंबित है । गीतमय संवाद, श्लोक और दंडक इनके अंग है । माधुर्य, रसानुकूल प्रवाह, शब्द चयन की कुशलता आदि इनकी विशेषतायें है । बिंब - विधान और वर्णनाचातुरी में सफल है । आट्ट कथा साहित्य के मीठे एवं ललित पद आज नये कवियों को नये प्रयोग की दिशा भी दिखा सकते हैं ।

(6) तुल्लल - भक्ति और तत्व-चिंतन की सरणि में रघुत्तलच्छ न की की रीति का अनुकरण करके कई रचनायें तो प्रस्तुत की गयी, लेकिन उनमें अधिकांश उच्च स्तर की नहीं बनी । कथकलि तो किसी विशेष प्रकार की सांकेतिक रीति तथा ढांचे की कला-विधा थी, अतः कविता के स्वाभाविक तथा स्वच्छंद अभिव्यंजन के लिए वह उपयुक्त न थी । यह भी नहीं भक्ति रस प्रधान साहित्य सलगी कथकलि की समकालिक सामाजिक प्रवृत्तियों से सीधा संबन्ध रखने वाला उपदान भी नहीं थे । 'उनमें न तो जीवन दर्शन की कोई अगाध धारा

- -

।

थी और न सामाजिक जीवन का चैतन्य लानेवाले दृश्य ही प्रतिभासित थे ।[1] ऐसे अवसर पर अठारहवी शताब्दी मे नये काव्य रूप (तुल्लल) का सूत्रपात करते हुए कुंचन नंपियार साहित्य क्षेत्र मे प्रवेश हुआ ।

कुंचन लोक-कवि थे । उनके बराबर सामाजिक बोध लानेवाले कवि मलयालम मे ही नही, बल्कि समूचे पूर्वीय साहित्य मे भी शायद कम पाये गए है । जनवादी दृष्टि से काव्य समीक्षा करनेवाले समालोचक नम्पियार के युग को केरल का पहला जनवादी काव्ययुग मानते है । युग प्रवर्तक कुंचन ने तुल्लल काव्य रचकर प्राचीन रूढिबद्ध काव्यो को ललकारा था । इनका लक्ष्य मामूली जनता का मनोरंजन था न कि पण्डितो का । सरस और प्रतिभाशील कवि कुंचन की रचनाओ मे कल्पना और हास्यचतुरता एक साथ मिल सकती है ।

तुल्लल काव्य तीन प्रकार के है - परयन, शीतंकन और ओट्टन । तुल्लल काव्यो की श्रेष्ठतम विशेषता उनकी काव्यचेतना है । उनके हास्य का स्वरूप परिहास या उपहास-व्यंग्य का था । तुल्लल काव्यो की हास्य-मधुर भाषा, द्रुत एवं विलंबित छन्दो की योजना और अन्य विशेषतायें मलयालम के सहृदयो के लिए अविस्मरणीय है।

तुल्लल काव्यो की सूची तो काफी लंबी है । स्वयं नम्पियारजी ने अनेक तुल्लल रचे थे । आधुनिक काल के कुछ कवियो ने केवल कुतूहल से इसका प्रयोग किया है । तुल्लल रूप का आजकल प्रयोग सांस्कृतिक कार्यक्रम मे हास्यानुकरण केलिए ही किया जाता है ।

(7) वंचिप्पाट्टु - 'केरल नदियो - झीलो का देश है । यहाँ के मल्लाह जब करतल मे डाँड पतवार संभाले नाव चलाते है तब उनके कंठो से सहज ही मधुर गीतिमय पंक्तियाँ निकलती है । इस माध्यम को उत्तम काव्य के योग्य समझने और उत्तम काव्य रचने का श्रेय एक ग्रामीण कविवर को मिला ।[2] उनका नाम है श्री रामपुरम वारियर । 'केवल एक लघु काव्य से बडी प्रसिद्धि प्राप्त श्रेष्ठकवि है रामपुरम वारियर ।[3] उनका समय

---

1 मलयालम साहित्य का इतिहास - पृ.109 पी.के.परमेश्वरन नायर

2 आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य - पृ.37 डा.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर

3 रामपुरत्तु वारियरुम वंचिप्पाट्टुम शीर्षक लेख - प्रो.एस.गुप्तन नायर साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्ङलूटे पृ.780

1702 - 1742 है । मल्लाहों की धुन में भी वारियर ने सुदामा की कहानी कुचेल वृत्त वंचिप्पाट्टु (नौका गीत) में लिखी । हिन्दी के सुदामा की कहानी कुचेल-वृत्तम वंचिप्पा (नौका गीत) में लिखी । हिन्दी के सुदामाचरित की टक्कर की यह रचना सरस तथा भाव पूर्ण है । इस लघुकाव्य का बड़ा प्रभाव केरलीयों पर पड़ा है । इसका सफल प्रमाण है मलयालम में वंचिप्पाट्टु छन्द का लोकप्रिय होना । आधुनिक मलयालम कवियों में वल्लत्तोल उल्लूर आदि अनेक कवियों ने इस छन्द को भी अपनाया है ।

मध्यकालीन मलयालम के सामान्य स्वरूप की इस चर्चा का यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मध्यकालीन केरल ऊंचे दर्जे के कला प्रयत्नों का केन्द्र था । यद्यपि इस समय निरंतर के युद्ध और राजनैतिक विस्फोट प्रकट थे, तो भी सांस्कृतिक प्रवृत्तियों की सब शाखाओं में इस अवसर पर गणनीय प्रगति प्रकट हुई । यद्यपि अठारहवीं शताब्दी के मध्य में हैदर अली के आक्रमण तक भारत के दूसरे भागों से केरल अलग ही था तो भी केरल की साहित्य प्रगति तथा कलाओं की प्रगति में केरल ने पूर्णरूप से भाग लिया सो बात नहीं केरल ने अपनी महत्वपूर्ण सेवायें प्रस्तुत भी की ।[1]' सरदार के.एम.पणिक्कर का यह कथन सर्वथा ठीक निकलता है ।

मध्यकालीन मलयालम के सामान्य स्वरूप पर संक्षिप्त सर्वेक्षण करने पर हम इन तथ्यों पर पहुंच जाते हैं :-

(1) भक्ति एक प्रमुख प्रवृत्ति रही - भारत की भक्ति धारा के विकास और परिणाम का विस्तार से वर्णन यहां असंगत ही होगा । फिर भी यहां एक तथ्य का प्रस्ताव अवश्य दीखता है । कई इतिहासकारों ने यह बात बतायी है कि मुसलमानों की शक्ति और हिन्दुओं के दीनता-भाव के कारण ही यहां भक्ति की परम्परा पनप उठी । लेकिन यह पूर्णतः ठीक नहीं माना जा सकता । ऐसा होता तो हिन्दुओं के स्वर्णयुग विजयनगर साम्राज्य के शासनकाल (1336-1565) में दक्षिण भारत में और मराठा शासनकाल में (सत्रहवीं तथा अठारहवीं सदी में) उत्तरभारत में भक्ति की परम्परा क्यों पनप उठी । लेकिन इतिहास बताता है

- -

1 केरल स्वातंत्र्य समरम् - पृ.460

सरदार के.एम.पणिक्कर

कि यही सचमुच हुआ[1]।

भक्ति की भावना सब धर्मों की जड में है। अनादिकाल में सिन्धु नदी तट सभ्यता के समय में ही भारत में भक्ति की परम्परा जड पकड गयी थी। इस अणुयुग में भी यह जारी रहती है। विषयवासनाओं की जाल में बिना फंसे ईश्वरगत एकाग्रबुद्धि से मनःशान्ति पाना ही भक्ति का आधार है न? यह तो मानव की सहज वासना की तृप्ति करनेवाली एक बात है।

मध्यकालीन मलयालम की बात लें तो भक्त कवियों की लंबी सूची हम पाते हैं।

संस्कृत मिश्र भाषा के कवियों से कई देवता स्तुतियों की रचना हुई। उदाहरण है वासुदेवस्तवम्, अनन्तशयनाष्टकम्,, श्रीकण्ठेश्वरस्तवम्, सरस्वतीस्तवम् आदि। 'नम्पूतिरि कवियों की भक्ति तो प्रायः शृंगार से आवृत ही थी'[2]।

मध्यकालीन मलयालम के कृष्ण भक्त कवियों में प्रमुख निरणम कवि, चेरुश्शेरी नम्पूतिरी, एषुत्तच्छन, पून्तानम्, कुंचन नंपियार, मेल्पत्तूर नारायण भट्टतिरि, रामपुरत्तु वारियर आदि हैं।

मध्यकालीन मलयालम के रामभक्त कवियों में प्रमुख हैं अय्यिपिल्ले आशान। कण्णश्शन (रामपणिक्कर) पुनम् नम्पूतिरि, एषुत्तच्छन आदि।

यह तथ्य विशेष रूप से याद करने लायक है कि मलयालम के भक्त कवियों ने भक्ति की धारा तब बहायी जब केरल में हिन्दुधर्म विकासोन्मुख था। यही हिन्दी के भक्त कवियों से मलयालम के भक्तकवियों का फरक है।

- -

1 अकेले एक राजनैतिक परम्परा मराठा में जलबली नहीं मचा सकी। उसके पहले ही एक धार्मिक और सामाजिक बाढ जनता को जाग्रत कर सकी थी।
Rise of the Mahratta power - p.97 - Justice Ranade

2 संस्कृत मिश्र भाषा - इलम्कुलम् कुंजन पिल्ले।
आदित्यचरित्रम् प्रख्यानकीलहूटे - पृ.278

सिर्फ 1756 ई. में टैपू ने केरल पर आक्रमण छेड़ा। उसके पहले ही कोषिक्कोड में प्रतापी सामूतिरि राजाओं के शासन के अधीन हिन्दू धर्म उत्कर्षावस्था में था। सामूतिरि का दरबार पण्डितों और कवियों का विहारस्थल था। इस सांस्कृतिक नवोत्थान की तरंगपरम्परा में एषुत्तच्छन, मेल्पत्तूर और पून्तानम् ऊपर को आ गए।

हिन्दी और मलयालम के भक्तिसाहित्य पर प्रकाश डालने पर हम यह भी समझ सकते हैं पूर्व मध्यकाल को ही हिन्दी में भक्तिकाल पुकारते हैं क्योंकि उसी समय भक्ति साहित्य का स्वर्णयुग था, लेकिन मलयालम में तो बात ऐसी नहीं। मध्यकाल भर, आदि से अंत तक भक्ति की प्रवृत्ति जारी रही।

मध्यकालीन मलयालम की भक्ति भावना की चर्चा प्रो. के. वी. कृष्णय्यर के एक सुचिन्तित मत का उद्धरण करते हुए हम खतम करेंगे 'मध्यकालीन नहीं समूचे केरलीय भक्त कवियों में अग्रगण्य हैं पून्तानम। लीलाशुकों की भक्ति शृंगारप्रधान है, मेल्पत्तूर की भक्ति पाण्डित्यप्रधान है, लेकिन पून्तानम की भक्ति सदा सबको सब प्रकार आनन्द प्रदायक है'[1]।

(2) शृंगार - दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति - अधिकांश नम्पूतिरि कविता शृंगार से ओतप्रोत थी। प्राचीन मणिप्रवाल काव्यों में विलासवति नर्तकियों का विलास शृंगार ही वर्णित था। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शतकों में प्रसारित कई मुक्तकों में शृंगार का प्रतिपादन तथा नायिका वर्णन हम पाते हैं। कई लघुकाव्यों की रचना भी इस समय हुई जिसमें वेश्याओं का ही वर्णन है। उदाहरण है वैशिकतन्त्रम्, मत्तीनिलाव, उत्तराचन्द्रिका मालेखा मलयविलकोल आदि। सन्देशकाव्यों तथा चम्पूसम में भी शृंगार रस ओतप्रोत है। चेरुश्शेरि, पुनम, मषमंगलम आदि कवियों ने भी शृंगार को अच्छा स्थान दिया है। आट्टकथा साहित्य तो शृंगार से सना है। इरयिम्मन तम्पि के 'प्राणनाथनेनिक्कु नलकिय परमानन्द रसत्ते अरुलाल निशि वेत्त तीलचल' आदि गीत कौरे शृंगार के प्रकट नमूने हैं। 'तम्पि के पदों की रतिलीला प्रक्रियायें सीमा के ऊपर ही पहुँच गयी हैं'[2]।

- -

1 साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ. 778

2 स्वातितिरुनालुम केरलीय संगीतवुम शीर्षक लेख से प्रो. एस. गुप्तन नायर साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे पृ. 793

(3) हास्य - तीसरी प्रमुख प्रवृत्ति - 'केरलीय सहज ही हास्यप्रिय है । नम्पूतिरि, चाक्यार आदि जातियों का हास्य व्यंग्य क्षेत्र में जो प्रभाव पड़ा है, वह इसका गवाही है । आर्य द्राविड़ संयोग के फल से ही व्यंग्याभिरुचि और हास्य बोध केरलीयों को मिला होगा । 'आलोचना और हँसी उड़ाने की प्रवृत्ति, विलक्षण नर्म बोध ये सब केरलीयों में है, साथ साथ जीवन रूपी अनन्त विस्तृत सर्कस खेल को आसानी से देखते रहने वाले जोकर की निस्संगता भी'[1] ।

मलयालम के हास साहित्य का मूल स्त्रोत कूटियाट्टम[2] में है । कूटियाट्टम का विदूषक आगे के हास साहित्य का प्रथम पथप्रदर्शक रहा । प्राचीन युग से केरल में प्रचलित दो अभिनय विधायें हैं चाक्यार कूत्तु तथा कूटियाट्टम् । सब विभाग के लोगों को मनोरंजन देने की हास्य की क्षमता समझकर चाक्यार लोगों ने इस रस को अपनी कला में यथेष्ट जोड़ दिया ।

नागानन्दम्, सुभद्रा धनंजयम् तपती संवरणम् आदि चाक्यारों से अभिनीत अनेक संस्कृत नाटकों में विदूषक होता था । इस विदूषक के द्वारा चाक्यार अपनी हास्य चेतना प्रकट करते थे । तत्कालीन सब सामाजिक कुरीतियों पर विदूषक व्यंग्य करते थे । चेट्टियार, चेट्टिच्चियार, इट्याखन, उण्यायखन, अनंग लेखा, उण्णियमंजरि आदि कल्पित कथापात्रों के द्वारा कूटियाट्टम का विदूषक हास्य की ऊँची चोटियों को ले जाता था ।

'कूत्तु कूटियाट्टम' की हास्य प्रवृत्ति का सामान्य परिचय इस प्रसंग पर असंगत नहीं होगा क्योंकि मध्यकालीन मलयालम के हास्य का आधार यही है । इन दोनों में हास्यचेतना के सामान्य परिचय प्राप्त करने केलिए निम्नलिखित प्रसंग पर्याप्त होंगे:-

(1) पेटू लोगों पर हास्य - कूटियाट्टम के अशनपुरुषार्थम् के समान जनप्रिय तथा पेटू लोगों पर हास्य - व्यंग्य कसने की एक रीति और कहीं नहीं होगी ।' अनचीतमंगलं गाव के लोग तिरुवञ्चीम नारायणम्यम के बारहवें महीने की दावत के लिए निकलते हैं । रास्ते में एक बढ़ई का घर देख उन्होंने समझा वहीं ही दावत होगी, तत्वस्थान वही होगा । हीन जाति के उस बढ़ई ने ब्राह्मणों को अपनी कुटी में आते देख 'अटियन

- -

1 मलयालम के हाससाहित्य शीर्षक लेख से - डा.एम.लीलावती मातृभूमि विशेषांक पृ.150 1973

2. This religio - dramatic performances which first came into existance in very early days continued to be the main entertainment of the Malayalis till recent times...... The sarcasms and the scolding practical jokes of the chakyar

तच्चन' अर्थात् 'मै बढई' चिल्लाया । तच्चन और अच्चन (पिता) तो समान शब्द है अतः भूखे ब्राह्मणों ने समझा वह नारायणप्पन का बेटा होगा जो कहता है कि 'मेरे पिता का श्राद्ध ही हो रहा है । सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण आगे बढने लगे तो विह्वल बढई ने बार बार चिल्लाया 'अटियन तच्चन, तच्चन' अर्थात् 'मै बढई हूं बढई' लेकिन भूख के मारे सबकुछ भूल बैठे ब्राह्मणों ने समझा कि यह नारायणप्पन का बेटा नहीं बेटे का बेटा है । अतीव सन्तुष्ट होकर उन्होंने कहा कि 'तुम्हारे बाप के बाप का श्राद्ध होगा तो 'तुम्हारी ~~xxxxxxxxxxxx~~ दावत श्रेष्ठतम ही होगा' । यों कहता हुआ वे फिर भी आगे बढे[1] ।

इस कथा के कथापात्र कुछ ब्राह्मण और एक ग्रामीण है । ब्राह्मण का केन्तामिल प्रेम देशी भाषा पर आक्रमण करने का प्रसंग है यह । वाक्चातुर की इस वाग्विदग्धता के पीछे उन दिनों मे केवल भाषा मे प्रविष्ट एक केन्तामिल व्याकरण नियम पर भी व्यंग्य है । अटियन+तच्चन=अटियन्टच्चन इस केन्तामिल सन्धि पर ही व्यंग्य कसा गया है ।

इन भोजन प्रिय ब्राह्मणों को यात्रा के बीच बाते करने केलिए सिर्फ एक विषय ही है - दावत के विषय । खीर डालनेवाले से एक लालची की प्रार्थना 'यार मै मन से 'बस' नहीं कहूंगा । शायद खीर पी पीकर पेट भर कर कण्ठ तक पहुंचने पर मै शायद 'बस' कह डालूंगा । लेकिन आप उसे मत मान लीजिए । यदि एक बूंद भी मै पी नहीं सकता तो आप कृपया मुझे ऊपर की मुख करते हुए लेटने दीजिए और फिर मुंह को खोलकर लगातार खीर उंडेलते रहिए, यद्यपि अधिक होनेवाली खीर बाहर बह जाये'[2] ।

यद्यपि इस मे अतिशयोक्ति भले ही रहे, तो भी पेटू लोगों पर इससे ज्यादा व्यंग्य हो ही नहीं सकता ।

(2) स्त्रीजितो पर हास्य-व्यंग्य - कूटियाट्टम का विनोद पुरुषार्थम् विषयी लोगों पर व्यंग्य कसता है । उण्णियजी नामक एक वेश्यासुन्दरी से मिलना चाहने वाले श्रीतिक्कोन,

- -

1 कुसुम कूटियाट्टदुम - पृ.78 अम्मावन तम्पुरान ।

2 हास्यदर्शनम् पृ.276 - मैक्कोत्ता

हरिद्वासु आदि बेवकूफों से प्रकट कामचलाता का हास्यपूर्ण वर्णन चाक्यार प्रस्तुत करते उण्णियजी को मन्दिर में प्रवेश करते देखकर पुजारी कैसे असमंजस में पड जाता है इसका भी हास्यपूर्ण वर्णन है ।

(3) पुराणेतिहासों के बारे में अनभिज्ञ होनेवाले पुराण कथा कथन पुरुषों पर व्यंग है 'प्रायेण रामायणम्' । रामायण तथा महाभारत का मिश्रण करके पण्डितराज बन फिरने मूर्खराजाओं की हंसी उडाने के लिए प्रायेण रामायणम् की सृष्टि हुई है 'राजसभा में रावण पांचाली का वस्त्राक्षेप किया । उसकी रक्षा करने केलिए भीम ने चक्रयोगम में सेतुबन्धन किया । उसमें कुपित श्रीराम ने बाणों को चलाकर घटोत्कचन को मार डाला । उसके बाद सुयोधन साकेत लौट गए[1] ।

इसके अलावा लोकतत्त्व के विराट दर्शन देने के बदले देवीदेवताओं का पारिवारिक झगडा बताकर हास्यभाव बढाना चाक्यार लोगों की एक प्रवृत्ति रही । इतिहास प्रसिद्ध कथापात्रों को यथार्थभावना के बिलकुल विरुद्ध रूप से प्रस्तुत कर लोगों को हंसाने की इनकी और एक प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय योग्य है जिसे हास्य सम्राट कुंचन ने उसी रूप में अपनाया ।

इन की हास्यप्रवृत्ति के एक दोष का भी जिक्र हम नहीं करेंगे तो वह उचित नहीं होगा । डा. लीलावती का कथन है 'अनावश्यक प्रसंगों पर भी वर्णन कर विषय को सेक्स में लेकर वहीं उसे बांध रखकर श्रोताओं के दुर्बल विकारों को प्रसन्न करने की इनकी प्रवृत्ति आदरणीय नहीं[2] ।

कुत्तुम कूटियाट्टवुम में कई हास्यश्लोकों को हम पाते हैं । इनमें अधिकांश के रचयिता तोलन थे । श्रेष्ठ आलोचक श्री. ए. पी. पी. नम्पूतिरि का मत है कि 'मलयालम का हास साहित्य तोलन से शुरु होता है[3] । केरल के बादशाह कुलशेखर का एक सदस्य था तोलन जो प्रतिभासंपन्न व्यंग्य कवि थे । वे इतना साहसी थे कि अपने आश्रयदाता सम्राट को भी व्यंग्य बाणों के द्वारा आत्मनिरीक्षण केलिए बाध्य किया ।

---

1 हास्यदर्शनम् पृ. 338

2 मलयालम की हास्य परंपरा - डा. एम. लीलावती - मातृभूमि विशेषांक 1973 पृ. 15

3 कवितापुटे प्रश्नंगल पृ. 48 ए. पी. पी. नम्पूतिरि

एक बार तोलन ने, जिनका मत था सम्राट कुलशेखर का नाटक सुभद्रा धनंजय कालिदास कृत शाकुन्तलम का एक विकृतानुकरण है, भरे हुए दरबार में एक कोमलम की वेषभूषा में रुधिर बहाते और विलाप करते हुए आकर यों कहा 'हाय रे ! मेरा अंग अंग काट काट कर मुझे मार रहे हैं'। उत्कण्ठाकुल सम्राट ने पूछा 'कौन हो तुम ? उत्तर यों आया' मैं कालिदासकृत शाकुन्तलम हूँ । सुभद्रा - धनंजय नाटक लिखकर आप मेरा चित्रवध कर रहे हैं'। यह कथा कहाँ तक प्रामाणिक है हम बता नहीं सकते लेकिन इसमें निहित साहस जरूर आदरणीय है ।

कूटियाट्टम में चाक्यार और नंङ्यार दोनों से प्रस्तुत संस्कृत श्लोकों के 'प्रतिश्लोक' रचते हुए तोलन ने मलयालम हास साहित्य की नींव डाली । मामूली जनता को हँसाना ही इन प्रतिश्लोकों का लक्ष्य था । सचमुच हम तोलन में एक पाखंडी प्रवीण को ही पाते हैं । एक कुलीन चित्र के पास एक अश्लील चित्र का प्रदर्शन करके उस विषमता से प्रेक्षकों तथा पाठकों को हँसाना ही तोलन का लक्ष्य था । तोलन के लक्ष्य यों थे :-

(1) विलक्षण रीतियों से नफरत पैदा करना ।

(2) क्षणिक हास्य की सृष्टि

(3) नायिका वर्णन की एकरूपता की हँसी उड़ाना

(4) समय के वर्णन की भावनाशून्यता की खिल्ली उड़ाना ।

तोलन का एक श्लोक लेकर हास्य प्रवृत्ति का अनुमान हम करेंगे :-

शान्तिद्विजः प्रकुरुते बहुदीपशान्ति
पक्वान्नपायसे मुतिः जठराग्निशान्ति
तत्रस्य बालवनिता मदनाग्निशान्ति
कालक्रमेण परमेश्वरशक्ति त शान्ति

यहाँ 'शान्ति' अधिकतः शृंगार अर्थ बदलने में हास्य निहित है ।

(1) मन्दिर में पूजा (शान्ति) करनेवाला ब्राह्मण 'नम्पूतिरि) दीपों को शान्ति देता है = दीपों को बुझाकर तेल की चोरी करता है ।

(2) फल, घी, खीर, गुड़ इनसे जठराग्नि को शान्ति देता है (शान्त करता है) = इ सबकी चोरी कर खा लेता है ।

(3) यहाँ आ जानेवाली युवतियों की कामाग्नि को भी शान्ति देता है (शान्त करता है)

(4) उस प्रकार क्रमशः मन्दिर की देवता की शक्ति को भी शान्त कर देता है ।

तोलन के हास्यपूर्ण प्रतिश्लोक (Parody) अनेक है जिनका जिक्र विस्तारभय के कारण यहाँ नहीं किया जाता है ।

चौदहवी सदी मे रचित लीलातिलकम, उण्णुनीलि सन्देशम्, चन्द्रोत्सव आदि मणिप्रवाल काव्यो द्वारा हास्यकविता को भाषा साहित्य मे प्रचार मिल गया । चम्पूकवियो के हास्य का चरमोत्कर्ष पुनम मे है । गाथा के प्रतिनिधि कवि चेरुश्शेरी ने भी हास्य को एक प्रमुख स्थान दिया । चम्पूकारो तथा चाक्यार लोगो से पालित तथा पोषित केरलीय हास्यवृक्ष कुंचन नंपियार के समय मे पल्लवित, पुष्पित एवं फलभारनम्र बन गया ।

मध्यकालीन मलयालम मे हास्य - मध्यकालीन मलयालम के हास्य अध्येताओं की सूची इतनी लंबी है कि सबके हास्य - प्रयोग की प्रवृत्तियो का पूर्ण सर्वेक्षण इन सीमित पृष्ठो पर असंभव है । अतः हास्यधाराओं की रूपरेखा संक्षेप मे समझने का प्रयत्न करेंगे । विविध धाराओं के प्रतिनिधियो या प्रतिनिधि काव्यो की हास्य-प्रवृत्ति पर प्रकाश डालने से हमे संतोष करना पड़ता है । प्रस्तुत प्रसंग के साहित्य का सुविधा की दृष्टि से हम यो विभाजन कर सकते है :-

(1) मणिप्रवाल साहित्य मे हास्य (उण्णुनीलि सन्देशम् तथा चन्द्रोत्सव प्रतिनिधि रचनाएँ है)

(2) चेरुश्शेरी का हास्य (गाथा के प्रतिनिधि कवि)

(3) पुनम का हास्य (चम्पुओं के प्रतिनिधि कवि)

(4) कुंचन का हास्य (तुल्लल के प्रतिनिधि कवि)

(1) मणिप्रवाल साहित्य मे हास्य - मणिप्रवाल साहित्य मे हास्य की चर्चा करते समय एक विशेष स्थापना मानकर चलना पड़ता है कि उसमे हास्य अधिकतः श्रृंगार के अंग ही रहा । श्रेष्ठ आलोचक उल्लाट्टिल गोविन्दन नायर का कथन भी यही है 'श्रृंगार-प्र

मणिप्रवाल् साहित्य मे हास्यरस दूध मे चीनी के समान घुला है[1]। डा.लीलावती का ... है 'मणिप्रवाल साहित्य मे एक प्रकार वेश्यापदानपंथ विकसित हुआ। वाक्पटु लोग ... छिपाव-दुराव या संकोच के बिना वेश्याविहित का वर्णन करते समय लोक हिला हिलाकर हंस सकनेवाले एक आस्वादक समूह की सृष्टि वैलीय स्पर्धाख्याति ने की थी[2]।

अब हम प्रमुख हास्य कृतियों को लेंगे :-

(1) मारलेखा मतर्वाण केलि - मारलेखा नामक वेश्यावासी की क्रीडाकुशलता का वर्णन नौ पद्यों मे समेट कर इस लघु काव्य की सृष्टि हुई है। पुनम इस वेश्या पर आसक्त थे। पुनम की शैली से इसकी शैली का कम है। कवि अज्ञात है। उल्लूर का मत है कि यह पन्द्रहवी सदी का होगा[3]। सब पद्यों मे 'मारलेखा मतर्नायिके' नामक संबोधना इस लघु काव्य के बारे मे सिर्फ इतना ज्ञात है।

इसका एक हास्य प्रसंग उल्लेखनीय है। नायिका को पाने केलिए आपस मे लडकर आहत होकर अस्त - व्यस्त और रक्ताभिषिक्त होकर पडे रहनेवालो मे एक और किसी से डींग मारते कहता है कि अपने शरीर का क्षत तथा अपनी थकावट का कारण 'नायिकामदमाविसंक्रमण' है। कहाँ द्वन्द्वयुद्ध मे घायल होकर तडपना और कहाँ नायिका-गरागादि संक्रमण की थकावट ? यहाँ कामी होते हुए भी डपोरशंख बने कामुक का उदाहरण है। ऐसे व्यक्ति वर्तमान युग की लाल गलियों मे अब भी मिल सकते है।

मणिप्रवाल साहित्य के साथ विकसित यह हास्य परम्परा ही उण्णुनीलि सन्देशम् जैसे काव्यों मे अधिक रूप से अनुभव होती है।

(2) उण्णुनीलि सन्देशम् - उण्णुनीलि सन्देशम के हास्य व्यंग्य के बारे मे विभिन्न मत है। कक्तलोम, आर.नारायण पणिक्कर कुट्टिकृष्ण मारार आदि पण्डितो का मत है कि उण्णुनीलि सन्देश एक हास्यानुकरण है। कुट्टिकृष्ण मारारजी का कथन यों है 'कालिदास के पीछे कूद पडे सन्देश काव्यकारो की अनवधानताओ को प्राकृत बनाकर हंसी उडाने केलिए जान बूझकर उपयुक्त हास्यबोध ही इसके प्रणयन का प्रेरणास्रोत है, इसे पढते समझना चाहिए'[4]। लेकिन श्रेष्ठ अनुसन्धाता इलंकुलम् कुंजन पिल्लै जी का मत यों है 'ऐसा

---

1 हास साहित्यम् मलयालत्तिल - उल्लाट्टिल गोविन्दनकुट्टि नायर (हास्यप्रकाशम पृ.3...
2 मलयालम की हास्य परंपरा - डा.एम.लीलावती - मातृभूमि विशेषांक 1973 - पृ.1...
3 केरल साहित्य चरित्रम् - पृ.383 - उल्लूर (भाग - 1)
4 हास्य साहित्यम - पृ.41 कुट्टिकृष्ण मारार।

दीखता है कि काकसन्देश और चन्द्रोत्सव ही हास्य कृतियाँ हैं । काक सन्देश जब की चंपकम् के समान एक हास्य विडंबन है । बात सच है कि उण्णुनीलि सन्देशम में हास्य का अच्छा स्थान है । लेकिन वह तत्कालीन मणिप्रवाल काव्यों का एक स्वभाव है । निगूढ हास्य में भी उनके रचयिता अद्वितीय थे[1] ।

इन तर्कवितर्कों के बीच निष्कर्ष निकालने के बदले हम यही समझेंगे कि महाकवि कालिदास के महान सन्देशकाव्य के आदर्श से अधःपतित होकर कई कुकाव्यों को प्रचरित पाते देखकर सहृदय कवि ने उसे स्थगित करने के लिए यह हास्यानुकरण रचा होगा विकृतावस्था को बढ़ा चढ़ाकर जुगुप्सा उत्पन्न करनेवाली टेकनिकी रीति को ही कवि ने अपनाया है । काकसन्देश की हास्यानुकरण क्षमता के बारे में पण्डितों को शक नहीं है ।

श्री उल्लाट्टिल गोविन्दन कुट्टि नायर जैसे श्रेष्ठ आलोचक के शब्दों में 'इतने हास्य के टुकड़े प्रस्तुत रचना में बिखरे पड़े हैं मानों वह एक हास्यकविता ही हो।

विद्वानों में अब भी इस प्रसिद्ध सन्देश काव्य की चर्चा चलती है कि यह गंभीर है या हास्य प्रधान ।

(3) <u>चन्द्रोत्सव</u> - चन्द्रोत्सव और एक महत्वपूर्ण हास्य काव्य है । प्रसिद्ध समालोचक श्री.ए.पी.पी.नम्पूतिरि चन्द्रोत्सव को मणिप्रवाल शाखा की एकमात्र व्यंग्य रचना मानते हैं । श्री.इलमकुलम कुंजन पिल्लै के शब्दों में 'कल्पना वैभव, भावनाबल, शब्दमाधुर्य इन सबसे चमकनेवाली एक सुन्दर हास्यकविता है चन्द्रोत्सव। तत्कालीन मणिप्रवाल कवियों की कमजोरियों पर प्रकाश डालना ही चन्द्रोत्सवकार का लक्ष्य था । धनी और शृंगारी नम्पूतिरियों के कारण जनसमाज का एक भाग सन्मार्गिक रूप से अधःपतित था, उनके अधःपतन का बढ़ा चढ़ा वर्णन ही चन्द्रोत्सवकार का उद्देश रहा । जितने अधिक विभिन्न पुरुषों से सम्बन्ध था, उतने अधिक मान्य वे समाज में थीं । अधिकांश राजा और धनिक

- -

1 सन्देश काव्यदर्शन - इलंकुलम् कुंजन पिल्लै साहित्यचरित्रम् प्रस्थानङ्गलिलूटे पृ.290

गणिकाओं के चक्रों में डेरा डाले पड़े थे । इन वेश्याओं का अनुगमन कर उनकी प्रशंसा करना कवि अपना कर्तव्य समझते थे । ऐसे समाज के आगे चन्द्रोत्सवकार ने उनके अधः पतन का चित्र खींच रखा ।

पाँच खण्डों में पाँच सौ तक श्लोकों की रचना चन्द्रोत्सव का इतिवृत्त बांधना कल्पित है । मरकत पर्वत सानुओं में प्रियतम गन्धर्व के साथ विहार करनेवाली कोई किन्नर सुन्दरी वहाँ पर कैसे किसी परिमल से आकृष्ट हो जाती है और उस परिमल का उत्पत्ति स्थान कोई दिव्य पुष्प समझ वह अपने पति से उक्त पुष्प को तोड़ लाने की प्रार्थना करती है । गन्धर्व पुष्प की खोज करते करते चिवलप्पलित नामक स्थान पहुँचता है वहाँ मेदिनी वेन्निलाव (वेन्निलाव = शुभ्र चन्द्रिका) नामक वेश्यांगना चन्द्रोत्सव मना रही है । उसमें से उगलित परिमल ने ही उसकी प्रेयसी को आनन्दित किया था । वापस जा कर वह अपनी प्रेमिका को सारी कथा कह सुनाता है ।

चिवलप्पलित में एक सुन्दर और मस्त गणिका थी । कामुक सहस्रों से 'रतिलीलाविनोदों' के करने पर भी उसे सन्तान प्राप्ति नहीं हुई । पाँचवीं विधियों से कुलदेवता कामदेव की पूजा भी उसने की । अंत में तृप्त कामदेव ने प्रत्यक्ष होकर बताया कि चन्द्रिका उसकी पुत्रि होकर जन्म पानेवाली है । उसका भी एक कारण है । स्वर्गलोक में सचीदेवी ने जब चन्द्रोत्सव मनाया तब वहाँ सम्मिलित चन्द्र और मेनका ने इशारे द्वारा निश्चय किया कि अगले दिन रतिलीला के लिए पारिजात वृक्ष की छाया में मिलना है । चन्द्र की पत्नि चन्द्रिका ने इसे समझ लिया और निर्दिष्ट समय में मेनका का रूपधारण कर वह पहुँची । उसने चन्द्र से रतिलीला भी की । जब मेनका वहाँ पहुँची तब चन्द्र की गोद में दूसरी मेनका को बैठे देख चकित रह गयी । चन्द्र भी असमंजस में पड़ गए । सत्यस्थिति समझने पर उसने चन्द्रिका को शाप दिया कि भूमि में वारांगना के रूप में उसका एक जन्म हो जाय ।

गणिका का गर्भवर्णन हास्यपूर्ण है । रोज शिवपूजा के बाद शिव से इस गणिका की प्रार्थना है कि एक सुन्दर बेटी ही उसे मिले । बदले में उस बेटी से रोज पूरा वात्स्यायन नचाने का भार वह स्वीकार करेगी । उसकी आशा के अनुसार एक

सुन्दर बच्ची का जन्म भी हुआ । ज्यों ही बच्चे के जन्म की वार्ता फैली, 'कवीन्द्र सा मंगलश्लोकों के साथ दौड आए । उसका नाम मेदिनी वेण्णिलाव पडा । उस सुन्दर ब के बडे होने की प्रतीक्षा में पडे राजा गण ने उसके यौवनारंभ के बारे में सुनते ही रत्न, धन, क्षौम वस्त्र आदि से उसका अभिषेक किया ।

मेदिनी वेण्णिलाव ने चन्द्रोत्सव मनाने का निश्चय किया । पूर्वेक्षा चर्चा केलिए सारी वेश्यांगनाओं को निमंत्रण दिया गया । देश विदेश से वेश्यायें आ ग मानवी मेनका, उण्णुनीलि पुष्पलेखा सब सम्मिलित हुए । किसी ने कहा कि मनु ने संसार भोग राजाओं को दिया तो मुनि (वात्स्यायन) ने स्त्रीयों को वैशिक भोग कहा । किसी ने कहा कि पार्वति, रति, शचि, मेनक, उर्वशि सब ने चन्द्रोत्सव मनाकर कीर्ति है । साज बाज से चन्द्रोत्सव मनाने का निश्चय किया गया ।

फिर चन्द्रोत्सव में शामिल होने केलिए आनेवाली वेश्याओं का वर्णन है । पहले उर्वशी कुल जात धनी वेश्याओं का आगमन है । वे राजाओं तथा धनी स से घेरे हुए हैं । फिर मामूली वेश्यांगनाओं का आगमन है । फिर कवीन्द्रों से घेर घेर मार वेल्ली तथा राजकुमारों से वलयित पुष्पलेखा का आगमन है । फिर वेश्यांगनाकुलतिलक कनकावलि तथा इट्टि का आगमन है । इन्हें देखने केलिए पथ के दोनों पार्श्वों में जन खडी है जो 'जय जय' ध्वनि करती है । इस समय कुछ दूर में धूल उडते हुए दिखा पडा, शब्दकोलाहल सुनाई पडा । कौन आता होगा, यह उत्कण्ठा से लोग उस ओर पुनम का सारस्वतसुगन्धपूर्ण पद्य सुनाई पडने लगा, रायवारि मधुर कवि भी साथ देववासीरत्न, मारलेखा का आगमन है । उसके पीछे केरल के प्रसिद्ध राजाओं को अनुग कराते हुए कोई आ रही है । श्री शंकर कवि की 'मुकुन्द मुरली मधुर' स्वर माधुरि सुन पडने के कारण हम समझ सकेंगे कि वह और कोई नहीं मानवी मेनका है । 'यह वर्णन पढते समय उत्पन्न हंसी के बीच कितने मणिप्रवाल कवियों का हृदय स्पंदन हुआ होगा' एक आलोचक की यह शंक सहज ही है ।

---

1 चन्द्रोत्सवम् - इलमकुलम कुंजन पिल्लै

साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङिलूटे पृ. 309

अधिक प्रसिद्ध न होनेवाली वारांगनाओं को पालकी में सवार होने का अधिकार नहीं । लेकिन कामुक वृन्द तो उन्हें पैदल चलने न देंगे भी । अतः वे युवजनों की पीठ पर बैठकर आ रही है ।

चन्द्रोत्सव की पूजा के अन्त में सब कवियों का मीठी पदावलियों में उस उत्सव की गाथा गाना भी हास्यपूर्ण बना है । सिर्फ कवियों को नहीं ब्राह्मणों को भी चन्द्रोत्सवकार ने पकड़ा है ।

चन्द्रोत्सव के हास्य - व्यंग्य का पूर्ण रूप पाने केलिए तत्कालीन परिस्थितियों पर प्रकाश डालना सहायक होगा । धनी तथा विषयी नम्पूतिरि लोगों की तथा उनके आज्ञानुवर्ति होकर शासन करनेवाले राजाओं की सुखलिप्सा पातिव्रत्य का खण्डन पाप समझनेवाली देवदासियों की चंचलता, राजाओं से वेश्या प्रथा को दिया गया प्रोत्साहन, रईसों तथा राजाओं की प्यारी दुलारी बनने का सौभाग्य प्राप्त वेश्याओं की सुख समृद्धि, समाज में वेश्याओं का उच्च तथा आदरणीय पद, इन कुत्सित वेश्याओं को आधार बनानेवाले मणिप्रवाल कवियों का कल्पना वैभव - ये सब मिलकर समाज के उच्च वर्ग के सन्मार्गिक जीवन को खतरे में डाल चुके थे - ऐसी सामाजिक स्थिति के कारण ही पेणमलयालम [illegible] (स्त्री मलयालम) नामक कुप्रसिद्धि केरल को मिली थी । पुनम नम्पूतिरि, दामोदर चाक्यार, शंकर वारियर आदि कवि सार्वभौमों ने भी अपने काव्य जीवन के एक बड़े भाग को 'मार लेखा' जैसी वेश्याओं की यशोगाथा रात दिन करने केलिए बिताया था । सोलहवीं शताब्दि से का साहित्य का इतिहास यह बताता है कि चन्द्रोत्सवकार की तीखी वाणी उपर्युक्त दुःस्थिति को कुछ कुछ बदल सकी । जिस कवि ने चन्द्रोत्सव को एक बार पढ़ा, वह राजाज्ञा पाने पर केवल वेश्या नायिका को केन्द्र बनाकर काव्य रचने केलिए तैयार न होगा । नौजवान प्रेमियों की पीठ पर बैठकर चन्द्रोत्सव में पहुँची वेश्याओं को कौन भूल सकता है ? मेदिनी की आज्ञा मानकर पहले ही पहुँच कर स्वागत संघ के अध्यक्षपद पर विराजमान मण्णकुलम् बूढ़े का चित्र कितना दयनीय है ? मणिप्रवाल साहित्य के अच्छे ज्ञाता ही चन्द्रोत्सव के हास्य व्यंग्य को ठीक पकड़ सकते हैं ।

(2) चेरुश्शेरी का हास्य -

प्रस्तावना । 'मलयालम के शुक्र तारा[1] के रूप में चेरुश्शेरी का मूल्यांकन हो गया है । उनकी अमर रचना है कृष्णगाथा । 'कृष्णगाथा एक ऐसी उत्कृष्ट कृति है केवल जिसके बल ही केरल की भाषा दूसरी भाषाओं के समक्ष आने की क्षमता पा सकी है । कालिदास जैसे महान कवियों की श्रेणी में कृष्णगाथाकार का नाम लिया जा सकता है'[2]। प्रसिद्ध समालोचक श्री.पी.के.नारायण पिल्लै ने ठीक ही कहा कि 'केरलीय भाषा-रमणी के पुराने और उज्ज्वल आभूषणों में सर्वप्रथम है कृष्णगाथा'[3]।

ऐसी 'कृष्णगाथा की महानता और सरसता को बढानेवाली बात है उसमें निहित हास्य'[4]। जैसा कि एक अन्य श्रेष्ठ समालोचक ने कहा है 'चेरुश्शेरी की कृष्णगाथा में कल्पना से समुज्ज्वल वर्णनों को प्रधानता दी गयी है, फिर भी बीच बीच में हृदयहारी हास्यरस को भी स्थान दिया गया है'[5]।

'सब रसों का अन्यून रूप में उन्होंने प्रतिपादन किया है, फिर भी शृंगार और हास्य में ही उन्होंने अतिशय चतुरता दिखाई है'[6]। भाषा साहित्य चरित्रकार श्री आर.नारायण पणिक्कर के इस मत से मिलते जुलते मत ही केरल साहित्य चरित्रकार का भी है । कोई भी प्रसंग समान रूप से उदात्त कविधर्म केलिए उनका उपयोगी होता है । शृंगार और हास्य ही उनके लिए अधिक अभिमत रस है[7]।

---

1 मलयाल काव्य रत्नाकरम् - पृ.58 शूरनाटु कुंजन पिल्लै
2 हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य - पृ.15 डा.के.भास्करन नायर
3 तीन भाषा कवियाँ - पृ.175 श्री.पी.के.नारायण पिल्लै ।
4 साहित्य चरित्रम् - प्रस्थानङ्ङलिलूटे - पृ.308 डा.के.एम.जोर्ज ।
5 प्रबन्ध समाहारम् - पृ.25 डा.के.गोदवर्मा ।
6 भाषा साहित्य चरित्रम् - पृ.298
आर.नारायण पणिक्कर
7 केरल साहित्य चरित्रम् - पृ.131
उल्लूर एस.परमेश्वर अय्यर

अन्य कवि हास्य सृष्टि के लिए जहाँ हिचकिचाते हैं वहाँ भी चेरुश्शेरी ने हास्य रस की सृष्टि की है। उनके हास्य के मूल में नम्पूतिरि सहज विनं वृत्ति ही हम पाते हैं। इस प्रसंग पर श्री उल्लूर का कथन रमणीय है 'हास्यरस प्र में केरलीयों की खासकर नम्पूतिरि लोगों की एक नैसर्गिक चातुरी है। कृष्णगाथा में उस चरमसीमा है।'[1] एक दूसरे श्रेष्ठ भाषाचरित्रकार वटककुंकूर राजराजवर्मराजा का भी मत मिलता जुलता है।[2] वे चेरुश्शेरी को हास्यसम्राट कुंचन के मार्गदर्शक के रूप में भी देख केरलीय हास साहित्य के इतिहासकार श्री मेक्कोल्ले के शब्दों में' चेरुश्शेरी नम्पूतिरि की कृष्णगाथा हास्य निर्भर मनोहर काव्य है। अवसर मिलने पर पद जन्य, आशयजन्य और प्रसंग जन्य हास्य की वर्षा करके श्रीकृष्णकथा को इतना सरस बन है कि ऐसा कोई सरस कृष्ण कथा काव्य अन्य किसी भारतीय भाषा में नहीं'।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अद्भुत हास्य रस मिश्रित रूप में कृष्ण गाथा की रचना हुई'[4] 'सरसता और हास्य का जहाँ मौका मिले, वहाँ उसकी चरम सीमा तक फायदा उठाने में चेरुश्शेरी की कुशलता अन्यादृश है। थोड़ी सी मुस्कुराहट के साथ ही उनके काव्य का अधिकांश भाग पढ़ा जा सकेगा'[5]।

चेरुश्शेरी का हास्य किस रस के परिपोषक के रूप में है, इसमें मत है।[6] वह कभी शृंगार का, और कभी वात्सल्य का और अधिकांश शान्त रस के संवर्धक रू प्रयुक्त हो गया है।

---

1 केरल साहित्य चरित्रम् - पृ. 140 उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर

2 'हास्यसम्राट कुंचन को हास्यविषय में कई प्रसंगों पर कृष्णगाथा ने मार्गदर्शन किया निर्मल और आनन्दपूर्ण हृदय से ही हास्यसृष्टि होगी। वह मानसिक भाव केरलीय ब्राह्मणों को सहज रूप से प्राप्त है। गाथाकार के हास्यनिवेशननिपुण होने का का यही है'। केरल साहित्य चरित्रम् - पृ. 246 श्री वटक्कुंकूर राजराजवर्मा

3 हास्यदर्शनम् - पृ. 247 - मेक्कोल्ले परमेश्वरन पिल्ले।

4 कृष्णगाथा का अंगिरस (लेख) विज्ञानकैरलि जून 1976 पृ. 117 डा. टी. भास्करन

5 मलयालम साहित्य का इतिहास - पृ. 62 पी. के. परमेश्वरन नायर

6 कृष्णगाथा में सबका ही प्रकट हास्य और अद्भुत को शृंगार परिपोषक रूप में नहीं स संवर्धक रूप में देखना है।' कृष्णगाथा का अंगिरस (लेख) विज्ञानकैरलि जून 1976 पृ. 116 डा. टी. भास्करन

चेरुश्शेरी एक सरस कवि थे । 'पण्डित और मूर्ख दोनों को उनकी कविता आस्वाद्य है । उस रसिकता की मधुरता सिर्फ उसी को है'[1] । डा. अच्युतमेनोन का यह कथन सर्वथा ठीक निकलता है[2] । सरसता के लिए उनके जानबूझकर का प्रयत्न सर्वत्र प्रकट है ।

कथाविषय में कृष्णगाथा ने भागवत दशम स्कन्ध का आश्रय लिया लेकिन रसभावों में कृष्णगाथा भागवत से बहुत ऊपर है[3] । इस प्रकार भागवत से कृष्णगाथा तक आते आते उन्होंने कई रसविहीन कई बातों को छोड दिया और कई तथ्यों को जोड दिया भी । व्यासविरचित भारत से ही कालिदास ने शाकुन्तलम् का स्रोत लिया । पुरानी कथा को उसी प्रकार लिखने के लिए एक महाकवि की आवश्यकता है क्या ? कथा को पुराण की भक्ति के वातावरण से कलात्मक सुन्दरता के वातावरण में ले आने और विकसित करने का महत्वपूर्ण कार्य चेरुश्शेरी ने किया ।

कृष्णगाथा की अपनी विशेषतायें हैं । ब्रज, वहां की सुन्दरियां, साथ कृष्ण की क्रीडायें इन सब को चेरुश्शेरी एक कवि के रूप में ही देखते हैं, एक धर्म प्रचारक के रूप में नहीं । काव्य में सब कहीं कवि के सौन्दर्य बोध को उन्होंने मुख्य है । वैष्णव धर्म ने उनको प्रेरणा दी है । तो भी ललित कलाओं के प्रति कवि का अनन्य था । अतएव शृंगार अधिक हो गया है । रासक्रीडा के वर्णनके प्रसंग पर भक्ति की अपेक्षा शृंगार अधिक हो गया है । जयदेव कृत गीतागोविन्द से इसकी समानता/अनुभव होती है । डाक्टर चेलनाट्टु अच्युत मेनोन के शब्दों में 'चेरुश्शेरी के भक्त ने उनके के आगे हार मान ली है'[4] । जयदेव में दोनों का सम्मिलन है । कृष्णगाथा का यह

---

1 प्रबन्धम् - पृ. 71 डा. चेलनाट्टु अच्युत मेनोन

2 'संस्कृत शब्दों की विरलता, सरस प्रसंगों की बहुलता शृंगार हास्य भक्ति की रजत पदावलि की कोमलता और अन्य अनेक विशेषतायें कृष्णगाथा को सरस काव्य बना सकी है ।' आधुनिक हिन्दी तथा मलयालम काव्य - पृ. 30 डा. एन. ई. विश्वनाथ

3 यद्यपि भागवत के स्तोत्र और वेदान्त पूरे रूप में कृष्णगाथा में निहित न हुए हों भी रसभावों में भागवत से बढ़कर कृष्णगाथा निखर गयी है ।

कृष्णगाथा की पीठिका पृ. 32 पी. के. नारायण पिल्लै

4 प्रबन्धम् - पृ. 88 डा. चेलनाट्टु अच्युतमेनोन

एकदम आकस्मिक या यादृच्छिक नहीं । जानबूझकर की तैयारी का नतीजा है । नन्दसुत कृष्ण कवित्रय में मामूली जनता क्या मनोवृत्ति रखती है, इसे बीच बीच में कवि याद करते हैं । सिर्फ उन्हीं अवसरों पर कवि अपने नायक का दिव्यत्व प्रकट करते हैं । लेकिन दूसरे ही क्षण वे असली कवि बन जाते हैं और उनका कृष्ण एक रसिक, सरस मान

'केरल के हृदय में आज भी कृष्णगाथा हरी भरी रहती है तो उसं कारणों में प्रमुख यह सरसता ही है[1]। हिन्दी साहित्य में सूरदास तथा बंगभाषा में रा प्रसाद ने जो किया, वही मलयालम में चेरुश्शेरी ने भी कर डाला । श्रीकृष्ण की मुरली से निकले उस दिव्यप्रेम की सुन्दरता और मोह, मीरा की उन्मत्तता का नितान्त अभाव उसं क्यों न हो, सूरदास की सी तन्मयता के साथ केरलीयों को परिचित कराने में सरस चेरुश्शेरी सफल निकले । यद्यपि वैष्णव धर्म केरल में एक पंथ नहीं बना, तो भी केरल सभ्यता की राग राशि में एक भावोज्ज्वल अंश मिला देने में इस रसिक कवि ने सफलता

काव्यवस्तु को सरस तथा आकर्षक बनाने केलिए ही संस्कृतचित्त सारा चेरुश्शेरी ने श्रीकृष्ण कथा को चुन लिया । भक्ति साहित्य शिल्पी के उस प्रादुर्भाव में ऐसा एक काव्य ही आवश्यक है, यों उस प्रतिभासंपन्न ने सोचा होगा । चेरुश्शेरी की आशा कदापि यह नहीं थी कि लोग भक्ति में लीन होकर ध्यान मग्न तथा भगवन्नामोच्चा कुशल ही रहें । ऐसा उनका लक्ष्य होता तो वे केवल स्तव तथा स्तोत्र ही लिखते । मनोविज्ञान का वह पारखी यह जानता था कि मानव रक्त में हास्य और शृंगार लीन सा पड़ा है और कलारसिकता रूपी वैद्युति ही उनको जाग्रत करती है । सारांश यह कि भ तथा वेदान्त चिन्तन के साथ साथ तत्वविचार तथा हास्य को अवसर देनेवाला था चेरुश्शे का भक्तिभाव ।

यद्यपि कृष्ण गाथा की रचना के लिए उपयुक्त मुख्य सामग्री भाग ही है । तथापि संस्कृत भाषा तथा साहित्य से परिचित एक कवि होने के कारण संस्कृ साहित्य में श्रेष्ठता प्राप्त अनेक ग्रन्थों से अनेक आशयों का ग्रहण चेरुश्शेरी ने किया है[2]।

- -

1 कुलपतिकल - पृ. 104 — तायाट्टु शंकरन

2 'भागवत ही क्यों न हो जिस मार्ग में सरसता नहीं उस मार्ग को छोड़कर एक स्व मार्ग को अपनाने में वे हिचकिचाते नहीं ।

कृष्णु गाथा कविकल - पृ. 207 — पी.के.नारायण पिल्ले

काव्यों में सरसता लाने के ध्येय से ही वेंकोरी ने किया । इसकेलिए कुछ उदाहरण हम हम यों दे सकते हैं ।-

(1) कृष्णगाथा में कात्यायनी के केशादिपाद वर्णन केलिए सौन्दर्य लहरी के एक श्लोक[1] का आशय ले लिया है ।

(2) रासक्रीडा वर्णन में वृन्दावन में मन्मथ के प्रवेश के वर्णन के लिए कालिदासकृत कुमारसंभवम् के शिव के तपोवन में मन्मथ के प्रवेश के प्रसंग से आशय स्वीकार किया है ।

)3) रुक्मिणी के अंगवर्णन के लिए विक्रमोर्वशीयम् के उर्वशी के वर्णन से वेंकोरी ने काफी तत्व स्वीकार किया है ।

(4) रासक्रीडा के भाग में कालिन्दी वर्णन केलिए मेघसन्देश के निर्विन्ध्या नदि के वर्णन से चेंकोरी ने आशय ग्रहण किया है, यों दीखता है ।

(5) वृकवृन्दयुद्ध केलिए जानेवाले पालकी पर बैठे कंस के वर्णन के लिए रघुवंश के एक श्लोक[2] का आशय स्वीकार किया गया है ।

(6) गोपी का मानहरण प्रसंग पर चेंकोरी ने मुरारि के अनर्घराघव नाटक के नान्दीश्लोक । आशय ग्रहण कर अपनी कविता को सरसतापूर्वक बनाया है ।

1(क) रम्यकल्लोलिनीत्यूलिलसत्पुष्परागासते

....

व्यावपरागकलाबकोन्दे । कृष्णगाथा

(ख) तनीयांसंपासुम् तवचरण पंकेरुह भवम् ।

....

हरः संक्षुद्यैनम् भजति भसितोद्धूलन विधिम् । सौन्दर्यलहरी

2(क) केन्नु तुटङ्ङ्गार वपुस सिंहळना
कुन्निन्मेल मेन्मेले चेत्तुमीले । कृष्णगाथा

(ख) वेदर्भ निर्दिष्ट मसौकुमारः

....

स तुरङ्गगोत्सङ्गमीवाहुरोढ ।

रघुवंशम् ।

इस प्रकार के कई उदाहरण हम देख सकते है । लेकिन ये कभी भी अनुवाद नही दीखेंगे, कृष्णगाथाकार ने अपनी भावना के ढाँचे मे इन्हें ढालकर सुन्दरतर बनाया है ।

कृष्णगाथा की रचना से कवि का ध्येय क्या था ? आत्मसंतुष्टि के साथ ही कवि ने इसे खतम किया है । उनके लाभ भौतिक संपत्ति के रूप मे नही । 'आया कोलपूपस्य' वे काव्य रचना मे लीन हुए । राजप्रीति उनका लक्ष्य कदापि नही होगा । कवि अपनी ही भाषा मे उसे बताते है 'स्वर्गलोक मे जब मै पहुँचूँगा तब 'लो, वह कवि आया जिसने माधव की गाथा रची थी' कहते हुए सुरगण आदर के साथ खडे होंगे'[1]। चेरुश्शेरी की सरस भावना का अंत वहाँ भी नही होता । स्वर्ग उनके लिए थोडे समय का एक आरामगृह ही रहे तभी वैकुण्ठ के दूत उन्हें साथ लेने केलिए आयेंगे । वहीं द्वारपालक सादर कृष्ण गाथाकार को अन्दर जाने देंगे । दूध के समुद्र मे लेटनेवाले ईश्वर, कवि के कृष्णगाथा की रचना से संप्रीत होकर वात्सल्य रस युक्त कटाक्षों द्वारा उनको वरदान देंगे । चेरुश्शेरी की सरस भावना यहाँ प्रकट है । एक सरस भक्त के आत्मार्पण से कृष्णगाथा की रचना हुई । भागवत के नीरस, शुष्क, रागविहीन वातावरण से कृष्णगाथा के कवितासुन्दर वातावरण को चेरुश्शेरी ने भक्ति को लाकर उसे प्रतिष्ठित किया जो मामूली जनता के आकर्षण का केन्द्र बना । 'कुछ हास्यबोध का मिश्रण करके भागवत् के रासमण्डप की शुष्कता को दूर कर पाठकों केलिए उसे सरस बनाने का सफल प्रयत्नभी चेरुश्शेरी ने किया है'[2]।

कृष्णगाथा के प्रणयन के पीछे प्रेरणास्रोत की कहानी भी सरस है । काव्य लिखने की प्रेरणा इन्हें कैसे प्राप्त हुई, इसकी कथा भी मनोरंजक है । उस समय

- -

1 अभ्युक्षयेन्नुतत्तारिल वेन्न
वृत्रारि लोकम् ... पुक्कनेरम्
माधवन तन्नुटे गाथये निर्मिच्च
मानुषने कन्नुतायेन्नु चोल्लि
....
कृष्णगाथा - पृ.178

2 चेरुपिरि (लौकिक लेख से) - हास्यप्रकाशम् - पृ.280
ए.पी.पी.नम्पूतिरि

शतरंज खेलना राजाओं के लिए मनोरंजन का प्रमुख साधन था । एक दिन राजा अपने आश्रित चेरुशेरी के साथ शतरंज खेल रहे थे । पास ही रानी अपने नन्हे बच्चे को पालने में लिटाकर अपने कलकण्ठ से लोरी सुना रही थी । रानी भी शतरंज खेलना खूब जानती थी और ध्यान से खेल देख रही थी । जब उसने जान लिया कि अपने पतिदेव हारने वाले है तब सुरीले तान में एक गाना गाकर राजा को सुनाया कि प्यादे को आगे बढावो[1] । राजा ने तुरन्त वैसा ही किया और बाजी मार ली । रानी का वह गाना राजा के कान में गूंजता रहा । उस तान ने उनके मन को मोड लिया था । उसी राग में एक सुन्दर काव्य रचा जाय तो कितना अच्छा हो, यह विचार आते ही राजा ने अपने आश्रित तथा प्रतिभासंपन्न कवि चेरुशेरी से अनुरोध किया कि आप रानी ने जिस राग में गाना गाया उसी राग में भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर श्रीकृष्ण चरित गान के रूप में लिखिए[2] । राजा की आज्ञा पाकर चेरुशेरी ने कृष्णगाथा की रचना की[3] ।

अब हम देखेंगे कि चेरुशेरी का हास्य किस श्रेणी का है । इसके बारे में साहित्य के एक इतिहासकार श्री.डॉ पद्मनाभनुण्णि का मत है' कृष्णगाथा में अट्टहास से अधिक मन्दहास ही गाथाकार को प्रिय है । वह एक संस्कृतचित्त से निकलनेवाला है[4] । एक अन्य आलोचक श्री ए.पी.पी.नम्पूतिरि के शब्दों में 'कृष्णगाथा हास्यरस प्रधान एक रचना नहीं । कुंचन की तुल्लल कृतियाँ तथा संजयन की हास्य रचनायें सुनसुनकर हास्य से परिचित केरलीयों के, हास्य शब्द सुनते ही प्रथमतः उत्पन्न उस बोध की तृप्ति करने लायक कुछ भी कृष्णगाथा में नहीं । फिर भी कृष्णगाथा में हास्य है । अट्टहास कराने लायक हास्य उसमें नहीं मन्दस्मित कराने लायक हास्य ही उसमें है[5] ।

1 उन्तु न्तु म्तु न्तु म्तु न्तु न्तु म्तु न्तु म्तु न्तु -
म्तु म्तु न्तु न्तु न्तु न्तु न्ताते युन्तु' यही वह गाना था ।

2 केरल - भाषा - साहित्य - चरित्रम् - ले.उल्लूर पृ.46।

3 आज्ञया कोलभूपस्य
प्राज्ञ स्योदयवर्मणः
कृतायां कृष्णगाथायां

4 साहित्य चरित्रम् - पृ.360 डॉ.पद्मनाभनुण्णि ।

5 चेरुशेरि नामक लेख से - हास्य प्रकाशम् - पृ.278 ए.पी.पी.नम्पूतिरि ।

कृष्ण गाथा की सुविस्तृत तथा परिष्कृत पीठिका के विद्वान लेखक श्री पी.के.नारायण पिल्लै का मत भी इस प्रसंग पर आदरणीय है 'अपना हास्य, विकट, कठोर या प्रस्फुट रूप से वे प्रयोग नहीं करते । शिक्षा से या संसर्ग गुण से यह हास्यरस उनमें शान्तरूप से सन्निहित है । निमीलित लेकिन बीचबीच स्फुटित उपरितल पर न बहनेवाला लेकिन बीच बीच में शब्दों में प्रस्फुटित, सूक्ष्मदृष्टि केलिए ही गोचर यह हास्य व्याप्ति में कम होने पर भी तीक्ष्णपन में पिछड़ा नहीं'[1]।

चेरुश्शेरी के हास्य का स्वभाव इन उद्धरणों से व्यक्त है । इस सामान्य स्वभाव के बारे में भिन्नमत किसी का भी नहीं । उत्तम हास्य जिसे अंग्रेज़ी में पुकारते है वही चेरुश्शेरी की रचना में है । सामाजिक आचारों में, साहित्य संबन्धी पथों में राजनीतिक क्षेत्रों में व्यक्तियों के या व्यक्ति के दुरभिमान या उनकी मूर्खता से अन्य लोगों को व्यंग्य के प्रकाश में प्रकट कर उनके प्रचलन और अंगीकार को रोकना, कृष्णगाथा के हास्य का लक्ष्य नहीं । एक विद्वान आलोचक पूछते है 'शब्दों के चारों ओर उड़ फिरनेवाला हास्य कृष्णगाथा में है क्या ?'[2] कृष्णगाथा का हास्य एक पद या वाक्य रचना पर आश्रित नहीं ।

चेरुश्शेरी के हास्य के मूल्यांकन केलिए, सुविधा की दृष्टि से, हम इसे मोटे तौर पर, चार वर्गों में विभक्त कर सकते है :-

(1) घटनाजन्य

(2) वर्णनाजन्य

(3) अलंकारों द्वारा जनित

(4) वाग्वैदग्ध्यजन्य

(1) <u>घटनाजन्य</u> : 'घटनाओं के चित्रीकरण में चेरुश्शेरी का हास्य है न कि संवादों में'[3]। एक आलोचक का यह कथन ठीक जँचता है । उनके घटनाजन्य हास्य के कुछ उदाहरण हम यों प्रस्तुत करेंगे :-

---

1 कृष्णगाथा कविकल - पृ.218 पी.के.नारायण पिल्लै ।

2 चेरुशेरि शीर्ष लेख - हास्य प्रकाशम पृ. 279 ए.पी.पी.नम्पूतिरि

3 वही पृ.284

(क) <u>बाललीला प्रसंग</u> - 'मानव स्वभाव तथा उसके अवस्थान्तरों का हृदयंगम वर्णन में ही कवित्व आधारित है तो उस विषय में भी चेरुश्शेरी ने सम्पूर्ण सफलता प्राप्त की है। कृष्णलीला के वर्णन के गाथा के भाग हृदयावर्जक है'।[1]

बाललीला प्रसंग[2] में वात्सल्य रस के पोषक के रूप में हास्य की सृष्टि कवि ने की है।

केरल की भावना में श्रीकृष्ण की अमिट छाप लगानेवाले चेरुश्शेरी ही थे। वह भी वात्सल्य की कुशाग्रु से पूर्ण एक किशोर के रूप में। केरलीयों ने सुना, देखा और स्मरण की किया - एक चक्रधारी विष्णु को भी नहीं मुरलीधारी कृष्ण को। कंसवध के बाद लौट आनेवाले एक नेता से अधिक काननों में गायें चराते भटकनेवाले नटखट बालक की आराधना ही केरलीय करते है। 'पुराणकथाओं में प्रकीर्तित 'भक्तवत्सल श्रीकृष्ण को केरलीयों के भावनामण्डल का बालकृष्ण बनाने की कलाकुशलता का श्रेय सिर्फ चेरुश्शेरी का है'[3]। यह कैसे संभव हुआ ? चेरुश्शेरी श्रीकृष्ण के कई भावों का चित्रांकन करते है। लेकिन शोभाघवर्णनी के समान रंग कोई रंग उनमें नहीं। बालकृष्ण के भिन्न भाव असाधारण कुशलता के साथ वे प्रस्तुत करते है। भिन्न कालों में प्रकट विभिन्न बाललीलाओं का सूक्ष्मावलोकन करके उनको अप्रगल्भ रूप देने का श्रेष्ठ कार्य ही उन्होंने किया है। एक लाल या लाडला बनाकर हमारे हृदय का शासन करने के लिए उन्होंने श्रीकृष्ण को छोडा है। चेरुश्शेरी के बाद मलयालम में जो जो कृष्णस्तुतियां हुई है सब पर इनका प्रभाव पडा है।

माखन चोरी का प्रसंग विशेष रूप से सुन्दर है। कृष्ण के कपट व्यवहार और कुशलता का वर्णन करते हुए कवि कहते है। एक दिन कन्हैया के हाथ में यशोदा ने कुछ माखन दे दिया। तुरन्त ही उसे खाकर वे कहने लगे - 'ओ माँ। मैं ने साधारण रीति से माखन खाया। किन्तु वह अभी मेरे गले के अन्दर अटक गया है। बड़े संकट में पड़ा हूँ। बिना कुछ दूध पिये, वह नीचे नहीं उतरेगा। इस प्रकार कहकर कन्हैया आँखें फाड़कर देखते रह गए। बेचारी माँ ने समझा, कन्हैया का कहना ठीक है। उसी दम दूध देकर पूछा, 'अब कैसा है मेरे लाल ? तब कन्हैया मुस्कुराते हुए

- -

1 भाषाकविता - पृ.85 विद्वान टी.एम.चुम्मार

2 भक्त कवि होने पर भी नौजवान कृष्ण की अपेक्षा बालकृष्ण की ओर ही वे झुक गए। मलयालसाहित्यचरित्रम् साहित्यवुम् पृ.89 आद्दूर कृष्णपिषारटी।

3 कुसुमितपथम् - पृ.107 ताय्याट्टु शंकरन्

बोले, 'अरी माँ, यदि इस प्रकार बहाना न करता तो मुझे दूध देने का नाम न लेती। अब मैं खुश हूँ'। यह सुनकर माँ की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

माखनचोरी प्रसंग में बालकृष्ण का चोरचातुरी कई रूपों में प्रकट है। एक दिन माँ नहाने के लिए चली गयी। कृष्ण ने अन्दर जाकर देखा। कोई नहीं। अच्छा अवसर पाकर वे माखन लेने के लिए एक चारपाई के ऊपर खड़े होकर छींके को पकड़ने लगे। तब चारपाई खिसककर नीचे गिर गई। कृष्ण छींके की रस्सी को पकड़कर हिलने, डुलने लगे। कातर होकर वे चिल्लाने लगे। माँ दौड़ी आई और पुत्र को ज़मीन पर खड़ा करके पूछा 'अरे तू क्यों ऐसी शरारत करता है? तब चतुर कृष्ण बोले 'अरी माँ! जब तू नहाने गयी तो मैं ने सोचा कि तू ने दही और माखन अच्छी तरह रखा है कि नहीं। तू तो बड़ी मेहनत करके इसे रखती है तब कोई बिल्ली आकर इसे न खावे और दूध न पीवे, इस विचार से मैं इधर आया'। आगे भी वे कुछ कहते हैं जो बालक सहज भोलेपन का नतीजा है जिससे सारी कलई खुल जाती है। वे कहते हैं 'मैं तो झूठ नहीं बोलता। तू मुझपर विश्वास कर। पड़ोस के बच्चों के समान मैं तो चोरी नहीं करता। अपने वादों को मजबूत करने केलिए वह एक प्रमाणपत्र भी प्रस्तुत करता है' कल भी पिताजी ने कहा - मैं बहुत अच्छा लड़का हूँ। मैं बार बार कहता हूँ कि माखन खाने की इच्छा से यहाँ नहीं आया[2]।

बेचारा चोर अपने को ईमानदार साबित करना चाहता है। सब कुछ समझनेवाली माँ अपने बेटे की तीक्ष्ण बुद्धि तथा वाग्विदग्धता की मन ही मन प्रशंसा हँसती हँसती करती है।

---

1 निल्प मायपण्टु विजुरुन्नवेन्नये
सत्वर किन्नु विजुहुन्नेरम।
मातिल तट्टु पिलडिच्चु पोयिते
× × × × ×
अप्पोवे निन्ने तानिडहने
चिप्पोन्नुन्नल कुलुतिक्कतो। कृष्णगाथा - पृ.23 सं.राजराज वर्मा।

2 स्नानित्तिन्नायिट्टु मातावु पोकुन्न कालत्तेप्पार्त्तु निन्नान्ननोनुनाल
वेण्णयुम पालुम वेच्चुतर्क पूकिनान वेगत्तिल नोक्किक्कोळ्वतिनिहडुम।
× × × × ×
इन्नु निन्नीटुन्न पाल वेण्ण येन्निमद्दिट्टन्नुमे वेण्डातित्तिन्नुक्को।

कृष्णगाथा - पृ.22-23 सं.राजराजवर्मा।

इस घटना से मिलती जुलती और एक घटना का वर्णन भी चेरुश्शेरी करते हैं । एक दिन माता यशोदा नहाने गईं । अवसर पाकर बालक कृष्ण कमरे में घुस गये । चारों ओर देखने लगे । एक कोने में लटके हुए छींके से मक्खन लेने का संकल्प करके कहीं से एक तिपाई ले आए और उसपर चढे । छींके की रस्सी उन्होंने पकड़ी ही थी कि तिपाई गिर गई और कृष्ण टंगे ही रह गए । घबराकर वे सहायता के लिए चिल्लाने लगे । माँ दौड़ी आई और कान्ह को लटकते देखकर मुस्कुराती हुई उसके पास पहुँची । उसने कृष्ण को नीचे उतारा । माता के पूछने के पहले ही कान्ह ने सफाई देते हुए कहा । माँ ! तेरे जाने के बाद मैं ने सोचा कि तू बड़ी कोशिश करके मक्खन आदि बनाती है, उसे बिल्ली न खाए, इस विचार से मैं ने ऐसा किया । उसके सिवा मुझे दूसरी कोई इच्छा नहीं । तेरी कसम, मैं सच कहता हूँ । इस तरह की कुछ और बातें करने के बाद उसने कहा कि रखवाली करने की मजूरी के रूप में कुछ मक्खन तो दे दो । माँ ने एक हाथ में मक्खन रख दिया । तब कृष्ण ने कहा - देखो माँ ! दूसरा हाथ रो रहा है । उसको भी कुछ दे दो । माँ ने वैसा किया । एक हाथ का मक्खन खाने के बाद कान्ह ने चिल्लाकर कहा 'हाय ! हाय ! काक लेकर उड़ गया । तब माँ ने प्रसन्न होकर और मक्खन दे दिया ।'[1]

यहाँ तिपाई का नीचे झपट पड़ना, श्रीकृष्ण का छींके की रस्सी पर टंगे ही रहना, ये सब चेरुश्शेरी की भावनासृष्टि है, यह भागवत में नहीं । यह उनके हास्य बोध का उदाहरण है[2] । भागवत में यह नहीं[3] । 'एक हाथ जब मक्खन खाता है तब दूसरा हाथ रो रहा है, यों कहकर माता से मक्खन प्राप्त करना, रखवाली की मजूरी के

1 स्नानत्तिनायिट्टु मातावु पोकुन्नकालत्ते पयात्तुम्निन्नोदुनात
× × × × × × ×
वन्नु कोति पूण्डुन्न पंकज लोचनन ।
तन कैय्यिल वच्चोरु वेण्णेर । कृष्णगाथा - पृ. 163 से 167 तक
सं. पी. के. नारायण पिल्ले

2 चेरुश्शेरि शीर्षक लेख से - हास्यप्रकाशम् पृ. 280 ए. पी. पी. नम्पूतिरी ।

3 भागवत में सिर्फ यों ही है :-

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिम्
पीठकोलूखलाद्यैः
छिद्रम् ह्यन्तर्निहितवयुनः
शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।।

रूप में मक्खन मांगना, हाथ का मक्खन खा लेने के बाद कौए के लेकर उड जाने का कपट कर डालना और और भी मांगना - ये सब चेरुश्शेरी की विनोदी मनोवृत्ति के परिचायक हैं ।

कृष्ण की शरारतों का वर्णन, अन्य मलयालम कवियों के समान, चेरुश्शेरी ने भी सुचारु रूप से किया है । चेरुश्शेरी का हास्यबोध अत्यधिक प्रकट होनेवाला एक प्रसंग यों है : एक दिन एक गोपिका ने अपने पिताजी के लिए रोटी बनाई और सुरक्षित स्थान पर रख कहीं चली गयी । कृष्ण ने वहाँ पहुंचकर रोटी ले खाली और गोबर की रोटी बनाकर उसी स्थान पर रख आए । बेचारी स्त्री ने अनजाने गोबर की रोटी पिताजी और घर के दूसरे लोगों को दे दी । बेचारी भेंट के रूप में ही इसे लायी थी । रोटी लेते ही गोबर का कुछ गन्ध फैला । खाते समय गोबर का स्वाद भी उनको लगा । फिर भी रोटी पर की अत्यासक्ति के कारण इस गन्ध और रुचि की परवाह किए बिना जब वे चबाने लगे तब जिह्वा पर सुई सी चुभने लगी और वे घबराकर एक दूसरे की ओर बन्दरों की तरह देखने लगे । पहले खाये खाद्य की कै आने लगी[1] ।

(ख) <u>चीरहरण प्रसंग</u> - यहाँ शृंगार के पोषक के रूप में हास्यसृष्टि हुई है । अधिकांश कवियों ने इस घटना का वर्णन सुचारु रूप से प्रस्तुत किया है ।

गोपिका अपहरण कथा में भी चेरुश्शेरी ने अपना हास्यबोध प्रकट किया है । मूल कथा से थोड़ा सा परिवर्तन ही वे लाए हैं । फिर भी उसमें निहित हास्य अनुपम है । कालिन्दी नदी में कुछ गोपियाँ नंगे रूप से स्नान करने उतर गयी । उनके वस्त्रों को लेकर नदीतीर के नीपवृक्ष के ऊपर चढ़कर श्रीकृष्ण बैठे । नंगे रूप से उनको अपने पास लाकर वस्त्रविहीन रूप से ही उनके साथ श्रीकृष्ण ने जलक्रीडा की । फिर श्रीकृष्ण ने उनको पाप की कठोरता के बारे में समझाया । पाप के प्रायश्चित्त के रूप में उनको दोनों हाथ जोड़कर खड़ा होना पड़ा । अपने गुह्य प्रदेश से दोनों हाथ ऊपर उठाकर

---

1 बालकं नाकुन्नेरत्तिन्नेल्लारुं शंकिच्चु निन्नुटन वायिलाक्कि
वेगत्तिल निन्नु चवच्चोरु नेरत्तु वेरेन्नाय वन्नितु वाय मेल्ले
तुग कल्लन्नोरुनेरत्तु तम्मिले नोक्कि मर्कटन्मार पोले
तद्दोलिल तड्डालिल नोक्कि त्तुटङ्डिनारल्लो मुड्डलकाट्टन्मोरेन्नपोले
आनन्द कन्दाक्कल तड्डलेन्नोत्तिट्टु वानरन्मारडुम्पोल ।

कृष्णगाथा - पृ. 170 सं. पि. के. नारायण पिल्ला ।

उनको श्रीकृष्ण से वस्त्र स्वीकार करना पडा है । यह भागवत में वर्णित है । लेकिन इसके अन्त में चेरुश्शेरी ने अपना हास्यबोध मनोहर रूप से प्रकट किया है । जब श्रीकृष्ण गोपियों से अंजलि बद्ध खडे होकर अपने पाप के प्रायश्चित्त केलिए ईश्वर से प्रार्थना कराना चाहते है तब वे शरम के मारे ऐसा नहीं करते । एक हाथ से वे अपना नग्नता छिपाती है और दूसरे हाथ को उपर उठाकर प्रार्थना करती है[1] । यों ही चेरुश्शेरी का वर्णन है । तो चेरुश्शेरी के श्रीकृष्ण उनसे कहते है 'हे मुग्धे । सुनिए अंजलिबद्ध होकर ही ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए । सिर्फ एक हाथ को उपर उठाकर प्रार्थना करेंगे तो दूसरे हाथ को काट देने का विधान है । अतः दोनों हाथों को मुकुलीकृत करके प्रार्थना कीजिए[2] । अन्त में विवश होकर, पुलक रूपी वस्त्र से शरीर ओढकर वे एक क्षण के लिए अंजली बद्ध खडी रही । फिर झट उनके हाथ नाभि की नग्नता छिपाने जाते हैं । उस प्रसंग को भी चेरुश्शेरी छोडते नहीं ।

जब उनके हाथ नाभी की नग्नता छिपाने जाते है तब श्रीकृष्ण कहते है 'अपना अपना वस्त्र स्वीकार करो[3] । जब हाथ बढाते हुए वे वस्त्र स्वीकार करने का परिश्रम करती है तब श्रीकृष्ण नहीं देंगे । जब वे हाथ को नाभी तक पुनः ले जायगी तब श्रीकृष्ण कहेंगे 'ले लो' ।

यहां एक सहृदय बिना हंसे कैसा रहेगा ? गोपियों की बेबसी और श्रीकृष्ण की रसिकता भुलाए नहीं भूलती ।

(घ) <u>अर्जुन और सुभद्रा की यात्रिकता</u> - चेरुश्शेरी की विनोदी मनोवृत्ति के उत्तम उदाहरण

- -

1 'कैक्कलिलोन्निने कूप्पायि वडि वट्टु वेक्कते वाय्पोट्टु कुम्पिनिन्नार'

2 मुग्धमारे केकळ् कूप्पि निन्नीटिनान्
मुक्कण्णनायीरि, केळुम्पिन निङ्ङळ् ।
ओरुकैकोण्डु कूप्पुन्नोरक्कु वन्नीडुमल्लो
मरुकै वेट्टिक्कळयुन्नु न्यायम् । — कृष्णगाथा पृ. 119 सं. पी. के. नारायणपिल्ला

3 नाभिकल पाणिकळ नाभियिल चेल्लुम्पोल
कूवल वाङ्ङिनेन्नु चोन्नान् ।
कृष्णगाथा

के रूप में अधिकांश आलोचकों ने इस घटना की प्रशंसा की है[1]। 'सुभद्राहरण कथा में खाने केलिए बैठे अर्जुन तथा परोसने केलिए खड़ी सुभद्रा के असंतुलित व्यापारों के वर्णन में भी चेरुश्शेरी ने हास्यबोध को प्रकट किया है[2]।

यह कथा सर्वविदित है कि सुभद्रा का अपूर्व रूप-लावण्य सुनकर अर्जुन मोहित हो गया। किसी न किसी प्रकार सुभद्रा को प्राप्त करने केलिए अर्जुन सन्यासी का कपट वेष धारण करके बलभद्र के पास गया। बलभद्र ने सन्यासी का भली भांति आदर - सत्कार किया और उसकी सेवाशुश्रूषा करने का भार वयस्क सुभद्रा पर सौंपा। सुभद्रा इसके पहले ही अर्जुन पर मुग्ध हो गयी थी। सन्यासी में अर्जुन का रूप सादृश्य देखकर सुभद्रा के मन में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने लगा। कुछ दिनों के बाद ही दोनों की आंखें चार हुई।

जहाँ असंगति या अनमेलपन है वहाँ कुरूपता और फलस्वरूप हास्य होगा। सुभद्रा विषय अनुराग में निमग्न अर्जुन अपनी प्रियतमा के रूपदर्शन के लिए अनुराग रूपी भिक्षा के लिए धर्मविरोधी सन्यासीरूप स्वीकार करके बालिकागृह में प्रवेश करता है।

- -

1 (क) सन्यास वेषधारी अर्जुन को भिक्षा देते देते अनुरागावेश के कारण सुभद्रा का मतिभ्रम हो जाता है और वह केले के बदले केले का छिलका परोस देती है और अपने आपको भूले हुए अर्जुन भी उस छिलके को केला समझकर खा जाते हैं। यह वर्णन अति सरस हुआ है। गंभीर से गंभीर प्रसंगों का वर्णन करते समय भी चेरुश्शेरी का सहज हास्यरस कभी कभी मृदु उपहास में आवृत हो आविर्भूत होता दिखाई देता है। मलयालम साहित्य का इतिहास - पृ.62 पी.के.परमेश्वरन नायर

(ख) शृंगार को उसके मनोहर और विनोदी भागों की कोई कमी न किए लेकर हाथ की सफाई दिखाने में चेरुश्शेरी ने अपनी कुशलता दिखाई है। उनका नम्पूतिरी सहज भाव उसमें स्पष्ट है। कुलपातिस्सल - पृ.116 - 117 - तायाट्टु शंकरन।

2 चेरुचिरि शीर्षक लेख से - हास्य प्रकाशम् - पृ.284

ए.पी.पी.नम्पूतिरी

अर्जुन पर अनुरागी सुभद्रा को एक नौजवान सन्यासी की सेवा शुश्रूषा केलिए नियुक्त होना पड़ता है। इससे बढ़कर दोनों के जीवन में और क्या हो सकता है। स्वानुराग को छ्यक्त करना चाहनेवाला अर्जुन यह अच्छी तरह जानता है कि यदि अपनी कपट मुद्रा का सुरक्षित रूप से पालन नहीं होता तो उसका बलभद्र अपने हल से उसका काम तमाम कर देगा, यह बोध तीव्र रूप से होने के कारण वह अपने अनुराग को तनिक भी प्रकट न कर सकने की बेबसी में है। सुभद्रा तो यह नहीं जानती कि वह सन्यासी अर्जुन ही है, फिर भी आकार सादृश्यादि दर्शन के कारण स्वप्रियानुरागोद्दीपन से बहुत विवश होती है। सन्यासी के आगे अगर कुछ कामचेष्टा प्रकट होगी तो काम तमाम हो जायगा, इस भय से उसने विनय की ही शरण ली है। जब बातें ऐसी है, आपसी अनुराग को संयमित करके रखनेवाले इन युवक युवतियों की दीन हालत में कवि चेरुश्शेरी सहानुभूतिपूर्ण होकर मन्दस्मित के साथ कहते हैं 'हे नौजवानो, अनुराग तुम्हारे कपट पर्दे से छिपाए नहीं छिपता। तुम्हारे संयम उसके आगे हार मानेंगे'। फिर चेरुश्शेरी सुभद्रादर्शन पाने पर अर्जुन की आँखों से बही अनुरागधारा को सखियों की वार्तालाप का विषय बनाते हैं।

फिर एक दिन भीख देने केलिए एकान्त में सन्यासी के पास सुभद्रा आई। उस समय के दोनों के हाव भाव का वर्णन चेरुश्शेरी यों करते हैं :- सयानी सुभद्रा का मन युवा सन्यासी को देखकर चंचल होने लगा। और घबराहट के वह जितना चावल लाई थी, वह पूरा पत्तल पर डाल दिया। उसकी दृष्टि फिर भी भिक्षुक पर पड़ गयी। तभी उसने साग भी पत्ते पर उंडेल दिया। केले का अन्तर्भाग हाथ से निकल गया और छिलका हाथ में रह गया। उसने उसे परोस दिया। उसे बड़े चाव से सन्यासी ने खा लिया[1]। क्रम के विरुद्ध तरकारियाँ परोसी गईं। जो पहले परोसना चाहिए, वह पीछे परोसी गई और जो पीछे वह पहले[2]। इस प्रसंग के बारे में श्री.पी.के. नारायण पिल्लै के टिप्पणी यों है 'केले के अन्तर्भाग को दूर फेंककर छिलके को परोस लिया। ठीक है, जब मन मोहित होता है तब इस प्रकार की करतूतें होती ही रहती हैं'।

1 हिन्दी और मलयालम कृष्ण भक्ति काव्य - पृ.262 - डा.के.भास्करन नायर

2 ओदनं तन्न विलपि निनीटिनाल
....
कन्यक मुन्नापितुन्नकनतान् - कृष्णगाथा - पृ.205 सं.राजराजवर्मा।

सुभद्रा ने । सुभद्रा के मुख से आँख न लौटा सकनेवाले अर्जुन परोसे भात के लिए 'बस' नहीं कहा, यह भी नहीं फल के बदले उसके छिलके को चबा चबाकर अनजाने खा लिया।[1] इसे ही मैं शान्त हास्य पुकारता हूँ। दृढानुरागी युवक युवतियाँ प्रथम दर्शन में कुछ न कुछ असमंजस तथा चपलताओं में पड़े होंगे जो स्वाभाविक ही है। एक शान्त प्रेक्षक को इन सब पर सहानुभूति ही आयगी। चेरुश्शेरी भी मानवस्वभाव का सूक्ष्म अवलोकन करके सुभद्रार्जुन संगम सुचारु रूप से व्यक्त करते हैं। लेकिन अर्जुन से अंत में छिलके को भी खिलाना उनकी कुछ हँसी उड़ाने केलिए ही है, यह भी स्पष्ट है।[2] कामचपलता के खिलौने होने वाले लोगों का अच्छा वर्णन यहाँ हुआ है।

(च) रुक्मिणी स्वयंवर में तोता - इस हास्य प्रसंग की पीठिका के रूप में मलयालम हास साहित्य के एक इतिहासकार ने यों कहा है 'द्व्यर्थ प्रयोगों में कभी कभी वक्ता के विवक्षित न समझकर और कुछ समझने से या वक्ता के विवक्षित ठीक रूप से समझने पर भी न समझ लेने का बहाना करते हुए उत्तर देने से उत्पन्न हास्य भी निहित है। चेरुश्शेरी नम्पूतिरी की कृष्णगाथा में इस शिल्पविधि में रचित एक सरस हास्य प्रसंग यों है[3]:-

कृष्ण से रुक्मिणी के अनुराग के वर्णन का प्रसंग है।[4] प्रेम की तड़प के कारण वह दुबली-पतली हो गयी, सूख कर काँटा हो गयी। सब कुछ समझने वाली सखियों ने नासमझी के बहाने रुक्मिणी से उसके सूख जाने का कारण पूछा। तब अपनी सखियों से अनुराग रहस्य छिपाते हुए रुक्मिणी कहती है 'ईश्वर को छोड़कर और किसी का आश्रय मेरे मानस ने नहीं लिया। रात और दिन के पूजा के कारण मैं सूख गयी हूँ और इसे तुम प्रेम का परिणत फल समझ लेती हो।[5]

- -

1 कृष्णगाथा कविकल - पृ.219 पी.के.नारायण पिल्ले।

2 वही

3 हास्यदर्शनम् - पृ.77 मेलकोल्ले परमेश्वरन पिल्ले।

4 चेरुश्शेरी के हास्यप्रयोग का मुद्रीविशिष्टोदाहरण'

केरल साहित्य चरित्रम् - पृ.142 उल्लूर।

5 ईश्वरन् तन्ने योगि [ ] मल्लेनु माश्रयिक्कल्ल कमानसम् तानु
राप्पकलुल्ल पादुपनि कोण्टु तान्न वार्पु कुं [ ] मेलि रातिमोल
रुम्नतुकोण्टल्ली कमव्यमालेन्नु निरूपिच्च निनरक्कुन्नु तोषिमारे ?

कृष्णगाथा - पृ.344

'प्रिय' शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण के लिए भी उचित ही है, अतः रुक्मिणी झूठ नहीं बोलती है । लेकिन इसी समय रुक्मिणी से पालित तोता अपने पिंजड़े में बैठकर गाने लगा । अपनी मालकिन के एकान्त में अनजाने किए गए प्रलपनों को बार बार सुनकर पिंजड़े के तोते ने उसे कंठस्थ किया था । अपनी मालकिन का अनुकरण करके पिंजड़े से तोता गाने लगा 'हे ईश्वर ! मैं तुम से प्रार्थना करती हूं । मुझे मत छोड़ना । देवकीनन्दन के शरीर से मुझे भी मिलाना[1] । सखियाँ छोड़ेंगी क्या ? तीखा व्यंग्य उनसे निकलता है । आपस में देख हंसती हुई लेकिन नासमझ होने का बहाना करती हुई वे कहती है 'बिना पूछे ही हमारी शारिका कुछ कहने लगी है । शारिका को श्रीकृष्ण से प्रेम लगा है[2] । शारिका बार बार यह प्रार्थना दोहराती है । सखियों के हंसी उड़ाने को तीखा बनाने में इसने सहायता दी । सखियाँ आपस में कहने लगी 'कहीं जानेवाले श्रीकृष्ण के बारे में यों कहने की इसे आवश्यकता भी क्या थी ? इसमें न्याय भी कहाँ ? जो नहीं है, उसके बारे में भी यों कहा जायगा तो वह ठीक ही जान पड़ेगा[3] । यों जब सखियाँ बातें करने लगी तब श्रीकृष्ण शब्द के सुनने मात्र से रुक्मिणी पुलकित हो उठी । तब चतुर सखियों का पूछना है 'बुखार के कारण ही तेरा शरीर पुलकित हो उठता है क्या? तू तो शारिका से रुष्ट है, इन बातों से भी कोप दिखाना है न[4] ?'

रुक्मिणी अपनी हंसी रोक नहीं सकी । उसने अपनी अनुरागकथा सखियों को कह सुनायी ।

---

1 दैवमे निन कणुम्पोलुतीटुन्नेन कैवीट गिदिलामेन्नेयेन्नुम् नी
देवकी नन्दनन तन्नुटे मेयोटु चेर्क्कणमेन्नेयुम्

कृष्णगाथा - पृ. 345

2 केलातेकंडीते चोल्लित्तुटडीते मेलिल्लिल नम्मुटे शारिक तान्
शारिकयैतंकलु कार्वर्णन तन्निले रागमाणुळ्ळतेन्ने वेण्टू । कृष्णगाथा - पृ. 345

3 एङ्ङानुम पोकुन्न कार्वर्णन तन्नेपकोण्टिङने चोल्लुवानेन्तु न्यायम् ?
इल्लातोतिङने चोल्लुतुटङिनालुल्लतेन्निङने तोन्नुमल्लो । कृष्णगाथा पृ. 400

4 पाकृप्पनि कोण्टल्ली कोलमीयर कोल्कुन्नु वाच्चेकुन्नोटुमी मेय्यिलिप्पोल ?
रोमङल तन्नोटु कोपिच्चुकोण्टातो शारिक पैतलोटेन्न पोले ?

कृष्णगाथा पृ. 403

इस पद के अन्तिम चरण में हास्य का सुन्दर पुट है[1]।

(2) **वर्णनजन्य** - वर्णन के द्वारा हास्य रस सृष्टि में तो चेरुशेरी प्रवीण ही लगते हैं। केशादि पादवर्णन तो उनके लिए एक प्रिय विनोद ही है। रुक्मिणी के मुख की सुन्दरता के वर्णन के बीच चेरुशेरी का कहना है 'संसार की सारी सुन्दरता का सारांश एक बर्तन में इकट्ठा करके उसमें से लेकर ईश्वर ने रुक्मिणी के मुख की सृष्टि की है। बचे हुए कुछ अंशों को लेकर एक दूसरी देवी का मुख बनाया जो चन्द्रमण्डल बना।

चेरुशेरी के वर्णनजन्य हास्य के कुछ उदाहरण हम यों प्रस्तुत कर सकते हैं :-

(क) **स्वयंवर के लिए पहुँचे राजाओं की चपलता** - रुक्मिणी कामुक होकर स्वयंवर सभा में पहुँचे राजा उस लावण्य धाम को देखकर स्वयं भूलकर उसके अंगों की सुन्दरता के वर्णन करके मन ही मन थोड़ी सी तृप्ति पा रहे हैं[2]। उनका वर्णन है कि रुक्मिणी के शरीर में पुण्य तीर्थ तथा मन्दिर भी है। उसमें हार रूपी गंगा तथा केशराशि की कालिन्दी भी है। संसार के लोगों के मन में आनन्द भरने वाले उसके कुच अच्छे कुंभकोण हैं। उसके शरीर का रंग सोने से होड़ लेनेवाला है[3]। यह उदाहरण श्लेषवद्ध है। 'यह वर्णन पढ़ते समय हँसे बिना हम रह नहीं सकते। कुचों को कुंभकोण बनाने का कारण कुच की कुंभसमानता पर्यायवाद होने का कारण होगा। लेकिन कुच और कुंभकोण के बीच क्या सम्बन्ध है, इसके बारे में कवि या उन कामुकराजाओं ने नहीं सोचा होगा[4]।

---

1 देवी हँसती है, सखियाँ सब रहस्य समझ लेती हैं। लेकिन उत्तम हास्य हम देख सकते हैं। इस प्रकार की एक सूक्ति सुधा सहृदय पाठक किस देवलोक में जाकर आस्वादन कर सकते हैं। केरल साहित्य परिचयम् - पृ.143

2 रुक्मिणी की सुन्दरता का वर्णन करते समय उसके शरीर को राशियों के रूप में वर्णन करने के बाद तीर्थों और देशों के रूप में वर्णन करने की गाथाकार की कोशिश हास्यसृष्टि करती है। साहित्य चरित्रम् पृ.360

3 पावनमायुल्ल तीर्थवुम देशवुम् केवलमिन्निवल मेय्यिल काण्मू
....
कांचनम् वेल्लमीक्कामिनीमेनियाल कांचयुम् कण्टालुम् कान्तियोटे। कृष्णगाथा पृ.357

4 मून्नु भाषा कविकल पृ.220 पी.के.नारायण पिल्ले।

रुक्मिणी का रूपसौन्दर्य देखकर स्वयंवर में सन्निहित राजाओं ने एक धोखा खाया। उन्होंने उस सौन्दर्यधाम का अंग प्रत्यंग देख देख जानना चाहा। लेकिन ऐसा न हो सका। एक अंग में पड़ी आँखें उस अंग के माधुर्य को चख चख कर तृप्त न होने के कारण, वहीं से बिना हटे, वहीं अड़ती है ही। अतः एक एक राजा ने सिर्फ एक एक अंग ही देखा। और अंगों को भी ये राजा देखना चाहते हैं, फिर भी आँखों को वे हटाने नहीं सके[1]।

'नपुंसकमिति ज्ञात्वा त्वाम् प्रतिप्रेषितम् मनः

तत्तु तत्रैव रमते हता पाणिनिना वयम्' यों विलाप करनेवाले ने शिकायत की थी कि पाणिनि ने उसे धोखा दिया था। इस प्रकार यहाँ इन राजाओं ने विलाप किया कि अपनी आँखों ने ही उन्हें धोखा दिया था।

तात्वी प्रेमियों की मूर्खता पर यहाँ हास्यपुष्टि हुई है। राजकन्या का के दर्शन मात्र से और भी चपलतायें इन राजाओं ने दिखायी। 'एक को ऐसा लगा कि उसकी कर प्रवालरीति पर्याप्त रूप से आकर्षक नहीं। उसे ठीक करने केलिए उसने अपने वस्त्रों को उतारा कि झट रुक्मिणी प्रकट हुई। हाथ में वस्त्रों को पकड़ते हुए सुन्दरी को देखते देखते वह नंगा खड़ा रह गया[2]। असमंजस में पड़ी उस नंगे प्रेमी की यांत्रिकता का सुन्दर वर्णन चेरुश्शेरी ने यहाँ किया है।

इसके बारे में आलोचक श्री पी.के.नारायणपिल्लै के कथन का उद्धरण करते हुए हम इस प्रसंग की चर्चा समाप्त करेंगे। रघुवंश में इन्दुमतीस्वयंवर प्रसंग पर इन्दुमतीकामुकों की चपलता का अनुकरण करके ही चेरुश्शेरी ने इसका वर्णन किया है, तो भी इस वर्णन में चेरुश्शेरी कालिदास से परे दीखते हैं[3]।

- -

1 इस प्रकार स्वयंवर में सम्मिलित राजाओं को रुक्मिणी तो मिला नहीं, सो बात तो दूर, उस सौन्दर्य धाम को मन भर देख भी नहीं सके, पूरे रुक्मिणी को नहीं सिर्फ कुछ अंगों को वे देख सके। कुलपतिकल - पृ.116 तायाट्टु शंकरन

2 केकाट्टु निन्नोरु चेलयुमायिट्टु मैक्कण्णि तन्नेयुम नोक्किक्कोण्डु निन्नु विलङ्ङिनान् अन्यनाकुन्नोरु कन्नवन पट्टु पिन्नपोले। कृष्णगाथा - पृ.380

3 तीन भाषा कवियाँ - पृ.219 पी. के.नारायणपिल्लै

(आ) ब्रह्मा का अहंकार शमन - बाललीला प्रसंग पर चेरुशेरी ने एक मनोवैज्ञानिक कहान बडी ही कुशलता से लिख जोडी है । अपना प्रभुत्व दिखाने केलिए ब्रह्मा ने देखते देखते गोप-बालकों और गायों को लुप्त कर दिया । कृष्ण ने तुरन्त बात जान ली । उन्होंने अपनी माया से नन्द गोपी और गायों की सृष्टि की । इतना ही नहीं, ब्रह्मा का गर्व दूर करने केलिए उन्होंने एक दूसरा ब्रह्मा भी रच डाला । दूसरे ब्रह्मा की सृष्टि, पहले ब्र और दूसरे की बातचीत कवि की मौलिक कल्पना का परिचायक है । घबराहट के मारे पह ब्रह्मा ने दूसरे से पूछा, तुम कौन ? दूसरे ने कहा 'मैं ब्रह्मा' । इसपर झगडा बढता गया । दोनों आपस में अपने अपने बल का बखान करने लगे । एकायक कैटभ नामक असुर बीच में कूद पडा और पहले ब्रह्मा की जान लेने केलिए दौडा । बेचारे जान बचाने के लिए भागने लगे । असुर ने पीछा किया । तब ब्रह्मा की दशा पर कृष्ण को दर आई । उन्हों ने अपनी माया हटा ली । पहले ब्रह्मा को शान्ति मिली और उसे बोध हुआ कि अहंकार के कारण ही यह सब मुझे झेलना पडा । फिर वे कातर शब्दों में कृष्ण से क्षमा प्रार्थना करने लगे । तब उनकी हँसी उडाते हुए भगवान कहते हैं 'आप जैसे क्यों वृद्ध हमारे साथ इस प्रकार का व्यवहार करें तो हम बेचारों पर बडी विपत्ति आ जाए गाँव के भोले भाले बच्चों और गायों को घर न पहुँचा सकूँ तो मार खानी पडेगी । मेरा रोना देखने के लिए क्या आपने ऐसा किया ?'[1]

इस हास्य प्रसंग की आलोचना एक आलोचक के शब्द में यों है ' हास्य-व्यंग्य से पात्रों की हँसी उडाने की कविवासना भी आकर्षक बनी है । वत्सस्तेय में पराजित ब्रह्मा की क्षमता मांगने पर श्रीकृष्ण का कथन हास्यपूर्ण है । ब्रह्मा पर क्या इससे ज्यादा हँसी हो सकती है[2]' ।

---

1 साहित्य चरित्रम् पृ.360 डॉ.पद्मनाभनुण्णि ।

2 वार्त्तं निन्नीटुन्न शार्दूल नर्मवुम्
पोरत्तम् कोण्टवृ ताडिड ताडिड
वेगत्ते पुष्ठु कितवु निन्नीटुन्न
नागडलान्मोन्ने वीजे वीजे
× × × ×
दानवन पिन्नाले चेलवयोले कृष्णगाथा - पृ.592 सं.पी.के.नारायण पिल्ले

(ग) शिवजी की भागदौड़ - वृकासुर या भस्मासुर की कथा कृष्णगाथाकार ने वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत की है। शिवजी के वर के बल की परीक्षा शिवजी पर करने के विचार से भस्मासुर उनके सिर पर हाथ रखने लगा। वे डर के मारे भागने लगे। उनका यही दौड़ना बड़े स्वाभाविक लेकिन हास्यात्मक ढंग से कृष्ण गाथा में लिखा है। चेरुशेरी लिखते हैं :- तेज़ी से दौड़ने के कारण पहना हुआ शिवजी का शार्दूल चर्म नीचे गिरने लगा। उसे अपने हाथ से पकड़े हुए वे भागने लगे। उस समय गले से साँप काँप काँपकर एक एक करके गिरने लगे। हड्डियों की मालायें छाती पर हिलने - डोलने लगीं। हाथ के फरसे का प्रकाश चारों ओर फैल गया। कान में कुण्डल रूपी साँपों के सीत्कार से ललाट की आँख की आग चमक उठी। सिर में शोभित आकाशगंगा में लहरें उठने लगीं। पृथ्वी पर गिरे हुए बालचन्द्र को उठाते हुए और थर थर काँपती और विलपती हुई पार्वती देवी को सान्त्वना देते हुए शिवजी भागे जा रहे थे[1]। वर्णनात्मक हास्य का उत्तम उदाहरण है यह प्रसंग

(घ) कपट सन्यासी पर आलोचना - रुक्मिणी स्वयंवर में कपट सन्यासी का वेष धारण करके अर्जुन रुक्मिणी से मिलने आता है। उस कपट सन्यासी के विषय में नगरनिवासियों का वार्तालाप सुनने योग्य है। सन्यासी के दर्शन करने लोग आते हैं। उस समय वे आपस में कहते हैं 'हमने इसके पहले इस प्रकार के किसी श्रेष्ठ सन्यासी को नहीं देखा। सन्यासी का मन ऐसे स्थान पर ही रमता है जहाँ मान, अभिमान, अपमान आदि का चिन्ह भी जरा न हो। उनकी इन्द्रियाँ स्पन्दन विहीन होने के कारण वे सामने खड़े हुए हमको देख नहीं सकते। ठीक है, जिनको आन्तरिक ज्ञान मिला है, उनकी स्थिति ऐसी होती है[2]।

सन्यासी का आन्तरिक उद्देश्य लोगों ने समझा, यह उस वार्तालाप से स्पष्ट है। उनके चुभते हुए वचन कितने अर्थगर्भित हैं। ऐसे सुन्दर सन्यासी को इसके पहले नहीं देखा। स्त्री के लोभ में पड़कर इस प्रकार इससे पूर्व कोई सन्यासी नहीं हुआ, यह है प्रथम दो पदों का संकेत। और किसी पर ध्यान लगा है, यह ध्यान सुभद्रा का निहित विचार है।

---

1 कृष्णगाथा पृ.569

2 इहहने युल्लोरु सन्यासि तन्नेय
उल्लंके तोन्नितुणर्न्ने पूर्णेन्दुमौलि कुल्लोरु तायमितेन्नु कनु।
कृष्णगाथा पृ.580 सं.पी.के.नारायण पिल्ले।

(ङ) गोपियों की यांत्रिकता - श्रीकृष्ण का वेणुगान सुनने पर गोपियों की यांत्रिकता का सरस तथा हास्यपूर्ण वर्णन चेरुश्शेरी ने प्रस्तुत किया है। श्री चेरुश्शेरी लिखते हैं -जब श्याम ने बाँसुरी बजायी, उस समय वृन्दावन की गोपियाँ दुहना और उफनता उबालना, बच्चों को लोरी सुनाकर सुलाना, बच्चों को दूध देना, पतिदेव के साथ भोजन करना, बिछौना बिछाकर अपने पतिदेव के साथ सोने भीतर जाना, प्रेमी के साथ पान खाना, कृष्ण को अपने स्वामी समझकर उनके सामीप्य भीतर आँखें डबडबाती हुई प्रार्थना करना आदि विविध कामों में व्यस्त थीं। मुरली का स्वर सुनकर वे सब गृह कार्य त्याग कर मन्त्रमुग्ध सी निकल पड़ीं[1]।

एक स्त्री एक आँख में काजल लगाने के बाद दूसरी आँख में काजल लगाने जा रही थी कि मुरली की ध्वनि सुनाई दी, उसी दम सब-कुछ छोड़कर वह दौड़ पड़ी। दूसरी एक कान में कुण्डल पहन रही थी। उसने वंशी नाद सुना तो बेसुध होकर दौड़ी। गोपियों का यह दौड़ना भागना देखकर उनके भाई, माँ-बाप, पतिदेव आदि निकट संबंधियों ने उन्हें रोका। कवि कहते हैं कि इसपर भी वे नहीं रुकीं, क्योंकि इनको आकर्षित करनेवाले सबसे अधिक प्रबल हैं[2]।

गोपियों के इस सुधबुध खोकर यंत्र समान व्यवहार करने में जो हास्य निहित है, वह ध्यान देने योग्य है

(च) श्रीकृष्ण के मुरलीगान के प्रभाव से ××श्रीकृष्ण के ××मुरलीवादन जन्य यांत्रिकता -

श्रीकृष्ण के मुरलीगान का प्रभाव वृक्ष लतादियों में तथा पक्षी-मृगादि पर कैसा पड़ा, वे सब कैसे यांत्रिकता के जादू में पड़ गए, इसका सरस तथा हास्यपूर्ण वर्णन चेरुश्शेरी प्रस्तुत करते हैं 'श्याम मनोहर मुरलीधर बाँसुरी बजाने लगे तो चराचरों पर जादू का सा प्रभाव पड़ा।

1 पालकुज लन्नेयेट्टलडडुवेण्णिट्टु गोक्कले निन्नु कन्नार प्पोल
....
पीलिडु नी पेन्नु चीलित वलिवि घट्टु नैर नटांत्ततुटडीतप्पोल ।

कृष्णगाथा - पृ.65 - 66 सं.राजराजवर्मा ।

2 मातु मनडनु भ्रातु जतडडतु मौत्तिनार चोकोत्ता पेन्नु तन्ने
....
पावु तट्टकुन्न करुमले ममतु मुक्कन्तलो यडडु निन्नवन तान ।

कृष्णगाथा - पृ.67 सं.राजराजवर्मा

वृन्दावन के सब प्राणी परमानन्दसागर मे डूब गए । पशु-पक्षियो पर जो प्रभाव पडा, उसके बारे मे कवि कहते है - पुष्पो से भ्रमर रस चूस रहे थे । मुरली-गान सुनते ही उन्होने रस चूसना एकदम छोड दिया और गानरूपी मधु का आस्वादन करने के लिए चल पडे । गो - समूह गान सुनकर दंग रह गया । मोर मोरनियो के संग नाचने लगे । वृक्ष मधु और पुष्पो को गिराना छोड अपनी डालियो को झुकाकर खडे हो रहे । कंस के हृदय के समान कडा पत्थर भी उद्धव के मानस के तुल्य अद्भुत परतंत्र हो गया । कल कल स्वर करती हुई बडे वेग से बहनेवाली यमुना भी लहरो का लहराना रोककर स्तब्ध रह गई । मछलियो के आनन्द के बारे मे क्या कहना । ये सब अपनी अपनी पूंछ के सहारे जल से स्थल मे कूदकर उछलने लगी । हिरनियां गरदन घुमाकर जहां से गान सुनाई पडा उस ओर देखने लगीं । आधा चबा हुआ तृण उनके मुंहमे लगा रहा । सिंह ने, जो क्रोध के मारे हाथी का मस्तक फाड रहा था, ज्योंही मुरली गान सुना, खडा रहा । चूहे के पीछे दौडते हुए सांप ने जैसे ही उसे पकडा वैसा ही गान सुना, वह भी अवाक् स्थिर हो गया । बाघ बछडे पर हमला कर रहा था, गीत सुनते ही उसे अपने बच्चे के समान प्यार करने और दुलारने लगा[1]।

<u>(छ) विरहिणी गोपियां</u> - विरहिणी गोपियो के वर्णन मे भी हम चेरुश्शेरी के हास्यबोध की झलक पा सकते है ।

कृष्ण के विरह से अत्यन्त व्याकुल होकर गोपियां वन-वन मे उनकी खोज करती हुई विलाप करती है । उनकी दशा का वर्णन कृष्णगाथा मे बडे विस्तार से किया गया है । गोपियां आर्त स्वर से कृष्ण को पुकारती है हे कृष्ण ! श्याम मनोहर ! हमारे प्रति आप इतने वैमुख्य हो गए ? जैसे चातक घन के दर्शन न पाने से परेशान होता है, मछलियां स्थल से जल की ओर जाने के लिए छट पटाती रहती है, वैसी दशा हमारी हो गई है । आप हम पर कृपा करें[2]।

- -

1 वाए् मेल्लुमृ गानमभ्यसिच्च योनिक्कु सामित्तन मान
. . . .
नारिमोल्लानक्कु मारन् जपिच्चुन्न मारन् मेन्मायु नेरुक्कन् । कृष्णगाथा, पृ.65 सं.राजराजवर्मा

2 कारवर्णा कृष्ण कटल वर्णा कटायो
. . . .
किन्नुन्न मीनङ्ङळेन्न पोले ।

कृष्णगाथा - पृ.483-84 सं.राजराजवर्मा ।

कृष्ण का गुणगान करते करते गोपियां थक जाती है। सुअवसर पाकर कामदेव अपने बाणों का प्रयोग करने लगते है। उस समय गोपियां प्रलाप करने लगती है 'अरे पाजी। हमें मत मार[1]। इतना कहकर गोपियां मूर्छित हो जाती है। तब कवि कहते है 'काम व्याधि से पीडित मधुर भाषण करने वाली गोपियां कामदेव के बाणों से घायल होकर मूर्छित होकर गिर पड़ी। उस समय वन देवियां प्रत्यक्ष होकर चन्दनादि सुगन्धित पुष्पों से उनकी सेवा-शुश्रूषा करती है। गोपियों को ऐसा लगा मानों आग की चिनगारियां डाली जा रही हो। उनकी यह दशा देखकर वनदेवियों ने आपस में कहा कि ये बेचारी मन्मथ के बाणों से पीडित हो रही है[2]। मन्मथ का नाम सुनते ही गोपियां कामदेव को सम्बोधित करते हुए बकने लगती है 'हे भगवान्। तुमने हमारी जान लेने के लिए ही ये तीर बनाए है क्या ? तुम तो पुष्प बाण वाले नहीं क्रूर तीरवाले हो। यदि तुम्हारे तीर वज्र समान न हो तो भी हमें अच्छी तरह मालुम है कि ये पुष्पों के बाण तो नहीं मल्लिका, चूत, अरविन्द आदि के पुष्पों से युक्त तुम्हारे बाण कदापि नहीं। ये कुल तो विष की बूंदे गिराते हुए खड़े है। ऐसे कुलों के पुष्पों के बाणों से हमारे प्राण निकल जायेंगे ही। हम अबलाओं पर तुम क्यों आक्रमण करते हो ? क्या तुम नहीं सोचते कि जो शूरवीर है वे स्त्रियों की हत्या नहीं सोचते कि जो शूरवीर है वे स्त्रियों की हत्या नहीं करते[3]।

विप्रलंभ श्रृंगार के इन वर्णनों के बीच बीच चेरुशेरी का हास्यबोध प्रकट है।

(ज) मानवीय दुर्बलता - रासक्रीड़ा देखने के लिए अनेक देव तथा देवियां आते है जिस का चित्रण कृष्ण गाथाकार ने विस्तार से किया है। यह चेरुशेरी की मौलिक रचना है। इस प्रसंग पर से गाथाकार की बहुमुखी प्रतिभा, असाधारण लोकज्ञान, विशेषकर स्त्रियों के स्वभाव का ज्ञान कल्पना की कुशलता तथा हास्यबोध का परिचय पाठक को मिलता है। कवि ने लिखा है 'रंभा आदि अप्सराओं ने कृष्ण की रासक्रीड़ा देखने केलिए सबसे पहले आकाश गंगा में स्नान किया। फिर सुन्दर सुन्दर साड़ियां पहन ली। सबने निश्चय कर लिया कि अच्छे अच्छे वस्त्र पहनकर ही वहां जाना चाहिए। नन्दनन्दन के सामने सुन्दर रूप में ही

1 कृष्णगाथा - पृ. 80 सं. राजराजवर्मा।
2 वही
3 कृष्णगाथा पृ. 325 सं. पी. के. नारायण पिल्लै

उपस्थित हो जाइए[1] ।

फिर सब प्रकार सजधजकर वे निकलती है । कवि ने इन सबकी बड़ा लंबा वर्णन किया है । स्त्रियों के स्वभाव, बातचीत, गहनों और उनकी रुचि, आपस में बुरा-भला कहना, अपनी अपनी साड़ियों और वस्त्रों के संबन्ध में बढ बढकर बाते करना आदि इतनी तन्मयता और सुन्दरता से शायद ही किसी कवि ने लिखा हो । उनकी बातचीत का अंश इस प्रकार है - अरी मेनके, तू ज़रा आगे ही चल । तो दूसरी कहती है - यदि तू देर करेगी तो मैं आगे जाऊँगी ।

यह तो चेरुश्शेरी की मौलिक कल्पना है । देवस्त्रियों के नाम रखने में कवि ने अपनी प्रतिभा और भावुकता प्रदर्शित की है । गुण के अनुसार नाम भी दिए गए है । नाम ये है कन्दर्पी, मालिका, मल्लिका, विलासिनी, लीलावती, हेमा, शृंगार मंजरी, कांचनमालिनी, पेशलभाषिणी, मलिनी, पंकज मालिनी, सीमन्तवेणी, आनंदलीला, मालेयलीला आदि । मूल ग्रन्थ में यह प्रसंग बहुत साधारण रीति से लिखा गया है[2] । चेरुश्शेरी ने अपने हास्यबोध के प्रकटन के लिए यह वर्णन इतने विशद रूप में किया है ।

<u>(3) अलंकारों का प्रयोग</u> - 'सूरदास के समान चेरुश्शेरी, उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि अलंकारों के सम्राट माने जाते है[3] । उपमा कालिदासस्य' के समान उत्प्रेक्षा कृष्णगाथायाम्'[4] कहा जाता है । शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों में चेरुश्शेरी ने कमाल दिखाया है । अलंकारों के उपयोग में चेरुश्शेरी का हास्यबोध सर्वत्र प्रकट है[4] ।

---

1 नम्ब तनुजने कण्णुन्न नेरत्तु
नम्मायिलिक्कों नाणिक्कुम । कृष्णगाथा पृ.325 ब.राजराजवर्मा

2 यं मन्येयन्न नभः तावदिद्यमान शत संकुलम
दिवौकसां स दाराणामत्युदयापवृधतात्मनाम्
ततो दुन्दुभयो न दुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः
जगु गन्धर्व पतयः स स्त्रीकाः तद्यशोमलम् ।
भागवतम् - दशमस्कन्ध - अध्याय 33

3 हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य - पृ.283 डा.के.भास्करन नायर

4 (क) चेरुश्शेरी विरले ही श्लेष का उपयोग करेंगे । उस समय भी नर्मोक्तिर सहज हास्य प्रकट करना ही उनका उद्देश्य है, न कि पाण्डित्यप्रकटन ।
प्रदक्षिणम् - पृ.69 - डा.चेलनाट्ट अच्युत मेनोन
(ख) चेरुश्शेरी के अलंकारों से प्रवाहित होनेवाला हास्य भी आकर्षक है ।
साहित्यचरित्रम् - पृ.360 - डि.पदमनाभनुण्णि ।

'उपमान और उपमेय के बीच की सदृशता अधिकांश अवसरों पर हमें हंसा देती है । 'सन्ध्या और प्रभात के समान एक बूढ़ी और युवती मेरे आगे से चली गयी' जब एक साहित्यकार यों कहता है तब हम अनजाने मुस्कुरा जाते हैं । कुवलयापीड नामक हाथी और श्रीकृष्ण के बीच के युद्ध के वर्णन के बीच चेरुश्शेरी से प्रयुक्त अलंकारों को सुनकर हम अनजाने हंस जाते हैं[1] । प्रसंग कौशल उपर्युक्त ये अलंकार कवि कहां से पाते हैं, यही हमारी चिन्ता हो जाती है ।

श्रीकृष्ण के मथुरा प्रवेश पर राजगृह के पास कंस ने कुवलयापीड नामक एक आवमान हाथी को खड़ा किया । यह श्रीकृष्ण को मार डालने का एक षड़यंत्र ही था । कुवलया पीड ने कई लोगों को मार डाला था । ऐसे शूरवीर तथा नरहत्या के कुशल कुवलयापीड और श्रीकृष्ण के बीच के द्वन्द्वयुद्ध में हाथी को बड़े कष्ट सहने पड़े । जब श्रीकृष्ण ने उसकी पूंछ को पकड़कर खींचा तब वह सर्प के मुंह में पैर पड़े मण्डूक के समान चिल्लाता रहा[2] ।

'हास्त कुवलयापीड के भावपरिवर्तन की हंसी उड़ाना इससे बढ़कर क्या हो सकता है?[3] ' नालिकेर के समान बड़ा मेंढक ही क्यों न हो, धागा सा पतला एक सांप जब पैर पर कब्जा करता है तब स्तंभनारंभ से आहत के समान बिना किसी प्रत्याक्रमण के 'पोरा, पोरा' शब्द से गला फाड़फाड़ कर चिल्ला कर रहनेवाले मेंढक के समान सार हीन जीव भी और है क्या ? उस जीव से ही वीर शूर कुवलयापीड की उपमा की गयी है ।

जब श्रीकृष्ण ने हाथी की सूंड पर पकड़कर खींचा तब वह मुंह खोलकर रोने लगा, उसकी पूंछ कौपीन के समान हो गयी[4] । चेरुश्शेरी का यह अलंकार विधान भी हास्यपूर्ण है जीवियों में निकृष्टतम है भयभीत कुत्ता । डर की चरमसीमा में वह अपनी पूंछ को कौपीन ही बनाता है । उसी से हाथी की समानता बतायी गयी है ।

---

1 नवाशिय - पृ. 36 प्रो. कपलपुषा रामवर्मा
2 पन्नगवायोटु काल पिण टिट्टुन्न मण्डूक वेलये प्पूण्डु निन्नान
3 मून्नु भाषा कविकल - पृ?223 पी. के. नारायणपिल्लै
4 ~~[illegible]~~ । वा पिलन्नि्ड कर] लुटिडिन्नान
कौपीनमायम्नु वालम्पोल । कृष्णगाथा पृ. 116

चेरुश्शेरी का हेमन्तकाल वर्णन भी इस प्रसंग पर रमणीय है ।

हेमन्तकाल को कवि प्रेत-बाधाकाल के रूप में देखते हैं । भूतप्रेत के प्रकोप से जिस प्रकार लोग कांपते हैं उस प्रकार हेमन्त में लोग कांपने लगते हैं । यह एक सरस वर्णन है । इस को नगण्य करके ब्राह्मण लोग सन्ध्या वन्दनादि कर्मों का अनुष्ठान करने लगे । दांतों से ताल बजाते हुए सन्ध्यावन्दन का अनुष्ठान करनेवाले ब्राह्मणों को देखकर कवि मन ही मन हंसता होगा।[1] नियमानुष्ठान से अन्य वातावरण से हटकर पाठकों का मन ताल बजाने से जनित हास्य रस की ओर आकर्षित होता है।[2]

और एक रूपकालंकार देखें । वसुदेव बालगोपाल को लेकर वृन्दावन जा रहे थे । उस समय बड़ी वर्षा हुई। उनका गमन देखकर कवि कल्पना करते हैं कि यह एक जुलूस निकल रहा है । 'भगवान वसुदेव के हाथ रूपी वाहन पर यात्रा कर रहे हैं । बादलों का गर्जन नगाड़ा है । सर्प छाता बना हुआ है । बिजली दीपक है।[3]

और एक सुन्दर कल्पना यों है । चेरुश्शेरी कहते हैं कि सन्ध्या रूपी सुन्दरी के चले जाने पर रात्रि रूपी मधुरभाषिणी स्त्री अपने घने केश फैलाए हुए विराजमान हुई । उस समय मन्मथ रूपी किसान ने इन्दु रूपी बीज बोया । यहाँ अन्धकार की कालिमा में मधुर भाषिणी के केशों का आरोप किया गया है।[4] मन्मथ रूपी किसान, इन्दु रूपी बीज इन सबमें कवि का हास्यबोध प्रकट है ।

- -

1 शीतत्तेक्कुन्न हेमन्तकालमां भूतत्तिन कोमरंकन्न पोले
भूतलवासिकले मालोकेत्तुम चोले विरच्चु तुटङ्ङीनप्पोल
दन्तङ्ङले कोण्टु तालम् पिटिच्चिट्टु सन्ध्यये वन्दिच्चु तन्नुम् । कृष्णगाथा पृ.203

2 मून्नु भाषा कविकल - पृ.224 पी.के.नारायण पिल्लै

3 दुन्दुभिनन्नुटे वेण्णतु पाणियायुल्लोरु यानमेरि
बाहुट्टु निन्नोरु वारिद नादमां भेरि जन नादवु पूरिच्चेडड
कनकीनकाट्टोरु पन्नगनायना वेण्कुट तन्नेयुम् चूटि नन्नाय । कृष्णगाथा पृ.204

4 सन्ध्ययायुल्लोरु सुन्दरि मात्रि ताम सन्तोत्तिल पोय मर । रिट्टु नेरम्
रात्रियायुल्लोरु ताल्तैन्मोलि वन्नु चीत्तोरु केशाभिकवुवेम्मे
....
सुन्दरमायुल्लोरिन्दु वित्तन् पोटु मन्द निनच्चु चमञ्च पोले ।
कृष्णगाथा - पृ.2400 सं.वटक्कमकूर राजराजवर्मा

चेरुशेरी की एक अपूर्व तुलना इसी उल्लेखनीय बनी है । 'जैसे अल्पबुद्धि वाले लोग माया में डूबे रहने के कारण अपने दिन व्यर्थ बीतते नहीं जान पाते वैसे ही मछलियाँ नहीं जानती कि जहाँ वे रहती हैं वहाँ का पानी कम हो गया है'[1]।

(4) वाग्वैदग्ध्य - केरल साहित्य के इतिहासकार श्री उल्लूर ने ठीक ही कहा है 'कृष्णगाथाकार की वाग्वल्लुता ने मुझे आश्चर्य रसमग्न और आनन्द मग्न बनाया है'[2]। चेरुशेरी के श्रेष्ठ समालोचक श्री. पी. के. नारायण पिल्लै के शब्दों में 'इस कवि की और और रचनाओं से विशेषता है चुभती बातें बताना । भगवत् कथा का परम लक्ष्य वैराग्य सिद्धि होने के कारण रचयिता पर भी विरागी रहना कवि की बात है, यो ग्रन्थारंभ में प्रकट बात इसके लिए एक शान्त दृष्टान्त है'[3]।

चेरुशेरी के वाग्वैदग्ध्य के कुछ उदाहरण हम प्रस्तुत कर सकते हैं । एक प्रसंग यों है । कृष्ण, अर्जुन और भीम तीनों मिलकर जरासन्ध से युद्ध की भीख माँगते हैं । तब जरासन्ध जो उत्तर देता है उसमें यद्यपि शब्द थोड़े ही हैं फिर भी उसमें व्यंग्य झलकता है । चेरुशेरी की वचन विदग्धता का यह श्रेष्ठ दृष्टान्त है । जरासन्ध का उत्तर है 'हे कृष्ण ! हम दोनों के बीच के युद्ध को रहने दो, राजाओं में किस से मुझे युद्ध करना है, यही मुझे सोचना है'। यहाँ व्यंग्य यह है कि यादव कृष्ण को राजत्व नहीं, वे केवल ग्वाले हैं । सख्य, व्यवहार, विवाह और युद्ध समान कुलीनतावालों से ही हो जाना चाहिए, इस न्याय से श्रीकृष्ण से लड़ाई करने के लिए जरासन्ध तैयार नहीं ।

जरासन्ध आगे भी कहता है और यदि असमान होनेवाले तुमसे मैं युद्ध करने के लिए तैयार हो जाऊँ तो भी मेरी झलक पाते ही तू खिसककर भागनेवाला है । यदि वह कहता है कि मुझे देखते ही तू दौड़ जाता है, वहाँ हास्य नहीं । व्यंग्य की सृष्टि के लिए ही जरासन्ध कहता है 'हम दोनों के बीच परिचय का सम्बन्ध है, फिर भी देखने पर बिना कुशल पूछते ही तू रास्ता नापता है'। फिर जरासन्ध, अर्जुन पर व्यंग्य कसता है

1 वारियिल निन्नुल्ल मीनङ्ङलेन्नुमे वारि कुरञ्ञु तारि ? तिल्ले
मायियल मुट्टिटन कल्कमोलत्तु मायुरसु पोकुन्नतेन्नपोले - कृष्णगाथा - पृ. 203

2 केरल साहित्य चरित्रम् - पृ. 131 श्री उल्लूर

3 मून्नु भाषा कविकल - पृ. 227 पी. के. नारायण पिल्लै

'कोमल होनेवाले अर्जुन को देखने पर मन तो दुलार - पुचकार करना ही चाहता है'। यहां व्यंग्य बहुत तीखा है। श्रृंगारी होकर कपड़ों में कोई धूल भी पड़ने न देकर, सिर के बाल और मुख को आकर्षक बनाकर घूमते रहने वाला तू ही क्या सिर्फ युवती के लिए सा युद्ध के लिए निकला है[1]? अर्जुन के स्त्रैणभाव स्त्रीसहज श्रृंगारी वृत्ति इन सब पर यहां तीखा व्यंग्य है।

और एक बाग पर व्यंग्य कसने की कला प्रकट है। योद्धा और कृष्ण के बीच के स्पर्द्धापूर्वक युद्धाह्वान में कृष्ण की बातें व्यंग्य पूर्ण है। यहां 'बालक होनेवाले हम और योद्धा होनेवाले तुम दोनों के बीच का युद्ध न होना चाहिए था, यों अन्त में तुमको लगेगा[2]। यों कहना व्यंग्य कसने की कुशलता का परिचायक है। व्यंग्य यह कि अन्त में तुम ही हार जाओगे।

कात्यायनी (माया भगवती) देवी के वर्णन में चेरुशेरी की वाग्वैदग्ध्य प्रकट है। वे कहते हैं 'देवी के अंग लावण्य का यथोचित वर्णन करना मेरी जिह्वा की शक्ति से परे है[3]। फिर वे बालों की उपमा काले बादल आदि से की है। किन्तु एक वस्तु से उपमा करते समय कवि सोचते हैं कि दूसरी वस्तुएँ नाराज हो जायगी। इस प्रकार कहकर जिनसे उपमा की गई है उनका निषेध करके उपमा देने के काम से निवृत्त होते हैं। बाल रूपी आंगन में खेलते हुए मेघ रूपी नायिका के पुत्रों से अलक की उत्प्रेक्षा की गई है। बाल को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है मानो शिव के मस्तक के चन्द्र के बिम्ब का आधा रूप टूटकर गिरने पर भी हो पर जाकर रुक गया हो। भौंहों की उत्प्रेक्षा युद्ध-स्थल की सीमान्त रेखा से की गई है। मुख मैं समान हूं, ऐसा मानकर चन्द्र आगे बढ़ा। तब कमल ने कहा: नहीं मैं समान हूं। जब दोनों में युद्ध छिड़ गया तो मुख को

---

1 निन्नोटु पोरिन संगरम् नित्यकोट्टमरुन्नकमालोन्नेयेटु।
....
पीलिनापुत्तोरु पीलिनेरेन्नोटु वाल्ननाय निन्नु कलिप्पानिन्नाय्। कृष्णगाथा पृ.302

2 बालनेन्न नाटुवान नल्लिलेन्नोरुपोल कुटियलिल्लत्तो ओन्नु कोन्टुम्।
....
बालकन्मारोटु बालकल्लेन्नुल्ल लील नाम वेन्डीलयेन्नु तोन्नुम्। कृष्णगाथा पृ.403

3 देवि तन्मेयुटे लावण्य चोल्लुवानिन्नाविन्नु पैवम वन्नुकूटा
पू वायल तन्नुटे कान्तिये व्योल्लुवान वाड्च्युल्लाकुन्नु कान्केनिकको।
कृष्णगाथा पृ.135

श्री बीच में पड़ी और रेखा खींचकर चन्द्र से ऊपर रहने और कमल से नीचे रहने को कहा । इस प्रकार की खींची हुई सीमान्त रेखाएं हैं चोटी । मुख की ऊपरी भाग की चन्द्र से तथा निचले भाग की कमल से तुलना की गयी है - यही सार है । आंखों को चोटी रूपी लहरों के नीचे खेलनेवाली मछलियाँ कहा है । लहरों के नीचे ही मछलियाँ खेलती हैं, यह प्रसिद्ध है ।

कानों की तुलना आनन-कान्ति रूपी तरुणी के सोने के झुमकों से की गई है और अधर रूपी बिम्बाफल को देख, खाने के लिए आगे बढ़नेवाले कीर के ओठों से उत्प्रेक्षा की गयी है । सौन्दर्य की होड़ में लाल फूल अधर से हार गया । अतः अपमानित होकर माला में गूँथने के बहाने फांसी पर चढ़ना चाहता है । छाती पर शोभित मोतियों का हार देखकर दांत उसके पास न जाएं, इस विचार से होंठ दांतों को छिपा देते हैं ।

मुस्कुराहट को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि वह शिवजी के नेत्र रूपी चकोरों के खाने के लिए चांदनी हो । कवि का संकल्प है कि चकोर चांदनी का भोजन करता है । मुख पूर्णचन्द्र और गला शिवलिंग के समान है । हाथ मानो स्तन रूपी मलय पर्वत से निकलनेवाले सर्प हैं । स्तनों को यौवन रूपी मस्त हाथी के मस्तकों और रोमावलियों को सूंड के समान बताया गया है । उन रोमावलियों के अग्रभाग में नाभि रूपी पुष्कर दिखाई देता है । हाथी के मस्तक के मध्य से सूंड निकली हुई है, स्तनों के मध्य से रोमावलियाँ उनके अग्रभाग में कटि के हाथ के अग्रभाग के समान नाभि भी दिखाई पड़ती है। नितंब मानो रथ हो जिस पर बैठकर कामदेव ने बदला लेने के लिए शिव के शरीर को आधा कर दिया हो । देवी के नितंब पर मोहित होकर शिवजी ने अपने शरीर का आधा भाग देवी को दे दिया था, यह कथा प्रसिद्ध है । जंघाओं को देखकर ऐसा मालुम पड़ता है मानो हाथी अपने सूंड से नमस्कार करता हो । घुटने मंजरी के समान हैं । पर घुटने सोचेंगे कि उपमाहीन होने के कारण हमसे दूसरी वस्तुओं की तुलना की गई है । ऐसा विचार कर शायद वे कुपित होंगे, अतः कवि कहते हैं उनके समान वे ही हैं

। तन्वतीचित्ताते तुन्यत चोलुम्मोल कत्तायुम स्न्नतु कन्नुकूटु ।
× × × × × × ×
स्न्नतु कोन्दुपोल पन्नगनायकन तन्नुटे मौलियिल चेर्कुन्नतु ।

कृष्णगाथा - पृ. 238 से 182 तक सं. राजराजवर्मा ।

वेरूशेरी की वचन विदग्धता दिखाने केलिए और एक प्रसंग । रासक्रीड के बीच गोपियों के मन में अहंकार उत्पन्न हुआ तो भगवान एकायक अदृश्य हो गए । जब भगवान को मालूम हुआ कि अपनी प्रेमिकाओं का अहंकार दूर हुआ तब वे पुनः प्रत्यक्ष हो गए । इस प्रसंग वेरूशेरी की वचन विदग्धता उल्लेखनीय है ।

'मनमोहन तथा मनभावन श्रीकृष्ण गोपियों के सामने प्रत्यक्ष हुए । नीलवर्ण के उनके सिर पर मुकुट उसी प्रकार शोभित है जैसे अंजन शैल पर सरोज विलसित हो । इन्द्रनील के पत्थरों से बनी दीवार पर जड़े हुए शिवलिंग के समान कृष्ण के ललाट पर गोरोचन की टीका शोभा पाती है । ये दोनों सुन्दर तथा मौलिक कल्पनायें है । हजारों चन्द्रमाओं को पराजित करने वाली शोभा उन्होंने उनके मुख पर देखी । मुख रूपी कमल की डंडी है गला । श्रीकृष्ण के हाथ गोपियों को यमबाधा से बचाने वाले हैं । आशय यह है कि भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से गोपियों को यम से डरने की आवश्यकता नहीं । कृष्ण की छाती पर शोभित मोती की माला देखकर ऐसा मालूम पड़ता है मानो गोपियों के कटाक्ष रूपी पैने बाणों से क्षत हृदय से निकली पीयूषधारा हो ।

भगवान का उदर देखकर कवियों कहते हैं भगवान ने सोचा होगा कि मुझे क्षीरसागर सदा से धारण किए रहा है । अतः मैं उसका ऋणि बन गया हूँ । वह ऋण दूध होकर मैं चुकाऊँगा, इस विचार से वे सदा दूध पीते हो[1] ।

और एक प्रसंग देखें । मानवों के समान जानवर भी सुख-दुख का अनु करते हैं । जानवर क्या चिड़िया की भी वैसी ही अवस्था होती है । चकवी और चकवा के विरहकाल के बारे में कृष्णगाथाकार का मार्मिक चित्र देखिए[2] ।

---

1 कमल मेघ तन्नुटे कान्तियं प्योले काल
....
मोन्नुं चिन्नुं मातुमित्ते ।
कृष्णगाथा पृ. 321 से 325 सं. राजराजवर्मा

2 सन्ध्या के समय एक नायिका के विरह के विषय में और किसी कवि ने शायद ही । सुन्दरता के साथ लिखा हो । कवि, कालिदास से भी इस प्रसंग पर बाजी मार ले गए है ।' हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य पृ. 320
डा. के. भास्करन नायर

चकवा और चकवी सूर्य मण्डल को देखकर कुपित होते रहे । चकवा ने अपनी प्रेयसी का मुंह बड़े प्रेम से देखा । फिर कमल की डंडी अपने चोंच में लेकर अपनी प्रेमिका के मुंह में रखा । फिर शाम होते देखकर लम्बी सांस ली । सरोवर के उस पार की ओर देखते हुए और कूजन करते हुए वह अत्यन्त शांत सा दिखाई दिया । बेचैन होकर उसने अपनी प्रेमिका से आलिंगन किया और अपने आंसू को डबडबाते हुए 'मैं जाऊं मैं जाऊं' कहता हुआ प्रतीत हुआ[1] ।

कमल की डंडी लेकर प्रेयसी के मुंह में रखना अन्धकार को देखकर आह भरना, वापी के दूसरे किनारे की ओर देखना, एकदम कूक मारना, अपनी प्रिय से आलिंगन करना, मैं जाऊं मैं जाऊं ऐसा कहकर विदा लेना, आंखें डबडबाना आदि की कल्पना केवल सहृदय कवि ही कर सकते हैं ।

मथुरा से विदा लेकर लौटनेवाले नन्द की अवस्था के वर्णन में भी चेरुश्शेरी की वचन विदग्धता प्रकट है । यहां नन्द की भगवद् भक्ति का रूप बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है । नन्द ने जान लिया कि कृष्ण साथ वापस नहीं आयेंगे तब वे कृष्ण का रूप अपने मन में धारण कर दूसरे गोपों के साथ चले गए ।

जब कृष्ण का जन्म हुआ था तब भी वसुदेव कृष्ण को इसी प्रकार सब से छिपाकर व्रज ले गए थे । उस बार इस रहस्य को कोई जान न सका था । परन्तु इस बार यद्यपि कृष्ण के मन में छिपाकर नन्द ले जा रहे थे परन्तु यह भेद बीच में ही खुल गया । कारण यह था कि आंखें डबडबा आती थीं । और शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते थे । सबने यह दशा देख ली । ठीक है, चोरी किसी न किसी समय खुल ही जाती है । नन्द अपने मन में खूब खुशी से भगवान का ध्यान धारण कर चले गए । उस समय उनकी अगाध भक्ति के कारण आनन्दाश्रु बह रहे थे । शरीर पुलकायमान हो रहा था[2] ।

---

1 पोकाङ्डोत्तामे गोपतिमण्डल
....
तूकि स्तुटङ्डीते कम्बुनीरु । कृष्णगाथा पृ. 35। सं. राजराजवर्मा ।

2 तात्नाय निन्नोरु नन्दनोटिङ्ङने
....
चे चम्मे लोकरि ताल्से । कृष्णगाथा पृ. 389, 390 सं. राजराजवर्मा ।

यह आशय बड़ी प्रतिभा यथा चतुराई से कवि ने यहां स्पष्ट किया है ।

कुछ फुटकल हास्य प्रसंग - उपर्युक्त विभाजन के अन्दर स्थान न पा सकने वाले कुछ हास्य प्रसंग भी है ।

पहला प्रसंग है गद का सुभद्रा वर्णन । तीर्थाटन करनेवाले अर्जुन बाहर बाहर ब्रह्मचारी है, अन्दर अन्दर लौकिक विषयासक्ति से पूर्ण भी । ऐसे अर्जुन की आसक्ति को तीव्र बनाने लायक वर्णन गद से कराया जा सकता जाता है । कभीकभी यह वर्णना सभ्यता की सीमा को लांघ जाती है । ऐरावत हाथी की सूंड की शोभा की चो का अपने में समेटे रहने के कारण ही सुभद्रा की जांघें सदा वस्त्राच्छादित है ऐसा गद का वर्णन हास्यपूर्ण है ।

गद का ऐसा मादक वर्णन सुन सुनकर अर्जुन का मन उसमें रम गया। सुभद्रा लाभ का मार्ग ही उसकी चिन्ता रही । उसने श्रीकृष्ण का ध्यान किया क्योंकि आपत्ति के अवसर पर स्मरण करने से श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष होता है । श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष हो गया भी । अर्जुन उसे अपनी कक्ष के पास लाया था । लेकिन कृष्ण अन्य सब बातों के बारे में कहता है, जिसकेलिए अर्जुन तड़पता है उसके बारे में चूं तक नहीं बोलता । श्रीकृष्ण अर्जुन की बेबसी जानते हुए भी अनजाने का बहाना करते हैं । अर्जुन की आत्मा को बेबस मन ही मन आनन्द पाना ही कृष्ण का लक्ष्य रहा होगा ।

कृष्ण - बलराम संवाद में भी हास्य है । जब बलराम सन्यासी को सादर महल लाते हैं तब कृष्ण उसके विरुद्ध आवाज उठाते हैं । देखिए चोर चातुर्य । चोर हरिश्चन्द्र का सा बहाना करता है । कृष्ण जानते हैं कि सन्यासि कपट वेषधारि है, सुन्दरि का हाथ पाने के लिए वेष सजाकर आता है । सचमुच श्रीकृष्ण ने ही अर्जुन का सन्यासि वेष में भेजा भी है । जब कृष्ण सन्यासि के विरुद्ध भला बुरा कहते हैं, तब बलराम कहते हैं कि कृष्ण अब भी बच्चा है । कृष्ण का बड़े भाई से यह छल कपट हास्योत्पादक है । वक्ता, श्रोता, प्रसंग इन तीनों के असुलभ सम्मिलित हास्य के लिए अनुयोज्य रंगमंच बना डालता है । बलराम जिसको बच्चा बताता है वह बच्चा क्या सचमुच बच्चा है, सब कुछ का सृष्टा सब कुछ का सूत्रधार ।

कृपाचार्य से अर्जुन योग की कामना के लिए आनेवाले कुलपाल्या भक्तों की आपसी बातचीत द्वारा भी चेरुश्शेरी हास्य सृष्टि करते हैं।

सुभद्रा का सतत सान्निध्य चाहनेवाले कपट सन्यासि अर्जुन भीम कुमार कहता है प्रकाश नहीं, पानी उड़ेल देकर कहता है, पानी नहीं, पानी लाओ – ये सब आजकल के युवजनों के काम चापल्य का वर्णन ही है।

समीक्षा – चेरुश्शेरी के हास्य की इस चर्चा का अन्त करने के लिए सबसे उचित भी उल्लूर के ये शब्द ही है 'इस प्रकार जहाँ भी देखो, निरर्गल, निरंकुश तथा अन्य कवियों के लिए अलभ्य हास्यधारा।[1]

जीवपुर अर्जुन को फल का छिलका खिलाने वाले चेरुश्शेरी रुक्मिणी स्वयंवर के लिए सन्निहित कामी राजाओं में एक को दिगंबर खड़ा करते हैं। सुगन्ध लेपन की सामग्रियों के साथ कुबड़ी कुबड़ी चल आनेवाली त्रिवक्रा का शरीर अब ऋजु हो गया तो चेरुश्शेरी कहते हैं कि कामदेव का चाप टेढ़ा हो गया। दाँतों से ताल बजाते हुए सन्ध्या वन्दन का अपानुष्ठान करनेवाले ब्राह्मण, छींके की रस्सी पर टंगे ही डावाँडोल हो जानेवाले बालकृष्ण, एक हाथ से नग्नता को छिपाए दूसरे हाथ से वस्त्र माँगनेवाली गोपियाँ, अपनी मालकिन के अनुराग रहस्य की घोषणा करने वाला तोता, अपनी चपलता के कारण रुक्मिणी को पूरी सुन्दरता को न देख सकनेवाले स्वयंवर समागत राजा लोग, प्राण रक्षा के लिए भागनेवाले ब्रह्मदेव और शिवशंकर, पूंछ को कौपीन बनानेवाली वीर हाथी कुवलयापीड – ये सब हास्यक्षेत्र के चेरुश्शेरी के अनश्वर देन है।

चेरुश्शेरी के हास्य की समीक्षा[2] करते समय डा. चेलनाट्ट अच्युतमेनोन मूल्यांकन को भूल जाना ठीक नहीं होगा 'कृष्णगाथा आदि पढ़ते समय ऐसा दीखता है।

---

1 केरल साहित्य चरित्रम् - पृ. 142 उल्लूर

2 As a poet who revelled in sensuous beauty and aimed at r
stic presentation of its delicate sensations; cherusseri
stands unrivalled in Malayalam poetry.

Dr. Chelanadu Achutha Menon.

UNIVERSITY LIBRARY COCHIN

कभी कभी चेकुशेरी का हास्य कुछ निष्ठुर हो जाता है[1]। करुण रस को ही प्रस्तुत करना अनुकम्पा को ही उद्दीप्त करना है लेकिन कवि हास्यरस की सृष्टि करते हैं[2]।

यों 'करुणा से टक्कर लेते समय चेकुशेरी का हास्य हार जाता है, लेकिन शृंगार के साथ आते समय वह श्रेष्ठतम हो जाता है[3]।

हम भी इसका निर्णय यों करेंगे। शृंगार और वात्सल्य के पोषक के रूप में प्रयुक्त होते समय चेकुशेरी का हास्य प्रशंसनीय बन जाता है, लेकिन करुण रस के पोषक के रूप में जब हास्य की सृष्टि होती है वहाँ चेकुशेरी का हास्य पर्याप्त रूप से निखरता नहीं।

(3) चम्पुओं में हास्य - पण्डित राज श्री वटक्कुम्कूर राजराजवर्मा ने चम्पुओं में हास्य के बारे में यों कहा है 'शृंगार और हास्य में तो नम्पूतिरि लोग क्रम से ही निपुण हैं। उसका सुगन्ध चम्पुओं में भी प्रसारित है। उनके हास्य की शैली तो अलग ही है। वह कुंचन नम्पियार के लिए गुरुस्थान भी बन गया है[4]।

उपर्युक्त कथनों से यह बात स्पष्ट है कि चम्पू काव्यों में हास्य की प्रवृत्ति खूब दिखाई पड़ती है।

अब हम चम्पू काव्यों के हास्य की रीति के बारे में विचार करेंगे। एक आलोचक ने उसे 'वैयक्तिक तथा कठोर[5] पुकारा है। और एक आलोचक के शब्दों[6] में कहें तो 'जुलूस, राज्याभिषेक, उत्सव, या और कुछ दृश्य देखने जाने वाली स्त्री पुरुषों

- -

1 प्रबोधनम् - पृ.79 डा. चेलनाट्टु अच्युतमेनोन

2 अरियप्पेट्ट कोच्चु चमक्कतिन मूलमे -
....
नावचूवतीलनायल्लयत्ती ? कुचगाथा - पृ.323 सं. राजराजवर्मा

3 प्रबोधनम् पृ.80 डा. चेलनाट्टु अच्युतमेनोन।

4 भाषा चम्पू - वटक्कुंकूर राजराजवर्मा - साहित्य चरितम् प्रस्थानङ्ङलूटे पृ.519

5 नम्पियारुम तुल्लल साहित्यवुम् पृ.112 एन्नू परमेश्वरन

6 कवितयुटे प्रवाहत्तिल पृ. ए.पी.पी. नम्पूतिरि।

की रीतियाँ, स्वयंवर में शामिल होने जानेवाले प्रेमी गणों की रीतियाँ — इन सब के वर्णन में वे हास्य-व्यंग्य को स्थान देते रहे। काल, देश और व्यक्तियों के वर्णन में भी व्यंग्य कसना उनको प्रिय था।

चम्पू काव्य के हास्य प्रवृत्ति की झांकी के लिए इसके प्रतिनिधि कवि पुनम के हास्य पर प्रकाश डालना काफी है।

(3) पुनम का हास्य -

भूमिका :- चम्पू काव्यकारों में पहले पहल स्मरण में आनेवाला नाम पुनम नम्पूतिरि का है। जैसा कि एक आलोचक ने कहा है 'चेरुश्शेरी, तुंचन आदि प्रसिद्ध कवियों के लिए भी आराध्य और अनुकरणीय महाकवि थे पुनम'[1]।

पुनम कोषिक्कोड के सामूतिरी राजा (15वीं सदी) की कवि-सभा के सदस्य थे। कहा जाता है, साढ़े अठारह कवियों वाली उस सभा के पुनम आधे कवि थे। यह बड़ी विचित्र बात है कि इतना प्रतिभा-संपन्न कवि आधा कवि कैसे समझा गया। लोगों का अनुमान है कि बाकी सब संस्कृत के कवि थे और पुनम भाषा (मलयालम) के कवि थे अतएव उन्हें आधा कवि कहा गया। लेकिन महाकवि उल्लूर ने अपने केरल साहित्य चरित्रम् में बताया है कि 'पुनम आधा कवि नहीं, डेढ़ कवि थे'[2]।

'रामायण चम्पू' पुनम नम्पूतिरी की प्रसिद्ध रचना है। चम्पू हास्य की उच्चावस्था पुनम नम्पूतिरि की रामायण चम्पू में हम पाते हैं।[3] 'पुनम के हास्य के बारे में कहने की आवश्यकता नहीं, वह केरलीय ब्राह्मणों का एक विशिष्ट गुण है'[4]। चम्पूकार सब नम्पूतिरि हास्यमर्मज्ञ थे, रामायण चम्पूकार पुनम इनमें सर्वप्रथम खड़े हैं'[5]।

---

1 'पुनम' शीर्ष लेख - पी. कुंजिराम कुरुप (हास्यप्रकाशम् पृ. 267)

2 केरल साहित्य चरित्रम् (भाग 2) पृ. 185 - उल्लूर

3 वही पृ. 207

4 भाषा साहित्य चरित्रम् पृ. 358 आर. नारायण पणिक्कर

5 हास्यदर्शनम् पृ. 146 मेक्कोल्लल परमेश्वरन पिल्लै

इस प्रकार पुनम के हास्य के बारे में कई आलोचकों ने प्रशंसा प्रस्तुत की है[1]। महाकवि उल्लूर के शब्दों से हम भी सहमत है कि पुनम की हास्य प्रयोग कुशलता अनुपम है[2]। समर्थ आलोचक श्री पी.के.परमेश्वरन नायर का मत है कि पुनम हास्य क्षेत्र में कुंचन के मार्ग दर्शी थे[3]। भाषा साहित्य चरित्रकार पुनम को कुंचन के समान समाज सुधारक मानते है जो व्यंग्यों के द्वारा समाज के शरीर के दोषों को दूर करता है[4]। प्रौढ पण्डित श्री कूनेषत्तु परमेश्वर मेनोन रामायण चम्पू की पीठिका में पुनम नम्पूतिरि को हास्यरस प्रयोग में कुंचन से भी श्रेष्ठतर मानते है[5]।

भाषा रामायण चम्पू इस दृष्टि से केरलीय प्रतिभा का प्रतीक है। यह ठीक है कि इसमें मौलिक अंश कम है और संस्कृत रामकथाओं के अनुकरण या उद्धरण भरे पड़े है। फिर भी सरसता की योजना में कवि की चतुरता इससे बाधित नहीं होती। अन्य रामकथाओं से रामायण चम्पू की विशेषता यह है कि इसमें रावणोद्भव से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक की कथा बीस अनुभागों में विभाजित है।

- -

1 (क) पुनम का हास्यबोध कितना प्रफुल्ल है ?
हास साहित्यम् मलयालत्तिल - उल्लाट्टिल गोविन्दन कुट्टि नायर हास्यप्रकाशम पृ.3
(ख) 'भाषा रामायण चम्पू तो साहित्य के रसिक पाठकों की चीज बन गयी है। सरसता एवं व्यंग्य मधुरता दोनों श्लाघनीय अवश्य है'।
मानस के सरस प्रसंग (भाषा रामायण चम्पू से तुलना सहित)
मानसी - 1974 पृ.29 डा.एन.ई.विश्वनाथय्यर

2 केरल साहित्य चरित्रम् पृ.185 उल्लूर

3 नंपियार ने पुनम का साम्प्रदायिक विडंबना सम्बन्धी हास्योक्तियों के ढंग का, उसी रूप में अनुकरण किया है।

4 नंपियार के समान पुनम भी एक समाजसुधारक है।
भाषा साहित्य चरित्रम् - पृ.350 आर.नारायण पणिक्कर

5 भाषा रामायण चम्पू पीठिका पृ.8
कूनेषत्तु परमेश्वर मेनोन

पुनम के हास्य पर प्रकाश डालने के पहले उनकी कुछ खास प्रवृत्ति पर दृष्टि डालना आवश्यक है क्योंकि इन खास प्रवृत्तियों का हास्य से कुछ सम्बन्ध है ।

(1) पुनम मूलतः और पूर्णतः भक्त नहीं थे । वे विशुद्ध कवि थे । कला-प्रधान की दृष्टि से रमणीय काव्य का सृजन ही उनका ध्येय रहा । अतः हास्य की अभिव्यंजना उन्हें पूरी आज़ादी मिल सकी ।

(2) जन्म-कर्म-धर्म से पुनम केरलीय ब्राह्मण या नम्पूतिरी थे । अतः नम्पूतिरियों की सहज सरस भावना तथा व्यंग्य विनोदी मनोवृत्ति उनमें भरी रही ।

(3) कवि की हैसियत से उन्हें तत्सम-प्रधान शब्दों से भरी मणिप्रवाल काव्य शैली विशेष प्रिय थी । उस पर उनका गजब का अधिकार था । मणिप्रवाल शैली में तो सानुप्रासता पद पद पर होती है ।

(4) नम्पूतिरी कवि सरसता की दृष्टि से अपनी रचना के पृष्ठभूमि तथा वातावरण केरल ही बनाते हैं चाहे विषय पाण्डवों का हस्तिनपुर का हो, चाहे देवेन्द्र के स्वर्ग का । पुनम ने भी केरलीय पृष्ठभूमि में केरलीय कथापात्रों से काम निकाला । इसीलिए वटक्कुंकूर राज राजवर्मा ने कहा कि 'रामायण के पात्र पुनम की तूलिका को हवा पाते ही चाहे वह देव, असुर, या कोई भी क्यों न हो जादू से परिवर्तित होकर केरलीय बन जाते हैं[1] । और उल्लूर ने कहा कि 'हास्य प्रयोगों के लिए पुनम कई बार कोसल देश को केरल बनाते हैं[2] ।

इस भूमिका पर हम पुनम के थोड़े से सरस विनोद पूर्ण प्रसंगों पर विचार करें । पुनम का सबसे सरस प्रसंग सीताविवाह का है ।

<u>(1) सीता विवाह</u> - सहृदय आलोचक पुनम के सीता विवाह प्रसंग का वर्णन करने के पहले कहते हैं 'पाठको, तुम्हें हँसी है तो, उसे काम में लाने का समय यही है । शेक्सपीयर कृत जूलियस सीसर नाटक में एक प्रसंग है । जूलियस सीसर के क्षतविक्षत शव शरीर को रोमन लोगों को मार्क आन्टनी दिखाने लगते हैं । कफन हटाकर लाश को प्राप्त करने को दिखाने के पहले आन्टनी[3] ने कहा 'प्यारे देशवासियो, तुम्हारे आंसू हैं तो उन्हें बहाने का उत्तम अवसर यही है ।

1 केरल साहित्य चरित्रम् भाग -1 - पृ.259 वटक्कुंकूर राजराजवर्मा
2 केरल साहित्य चरित्रम् भाग -2 - पृ.186 उल्लूर

3 If you have tears, prepare to shed them now.

कवि सीता - विवाह का कौतुक देखने के लिए हर तरह के लोगों को मिथिला ले चलते हैं। भिन्न भिन्न देशों के राजाओं को वहां पहुंचा कर वे उनका परिचय देते हैं[1]। कवि केरल के वैदिकों तान्त्रिकों और मान्त्रिकों को भी ले चलते हैं। कहां इस केरलीय कवि के समसामयिक नम्पूतिरी गण और कहां सीताविवाह का प्रकरण ?

सीता विवाह का कौतुक देखने केलिए अग्रसर होनेवाले लोगों के एक भाग का वर्णन यों है 'कोई पहलवानी रस अईभाव भरा चाल भी भरता प्रतिद्वन्द्वियों को चुनौती देता चल रहा है। कुछ दुबले पतले कमजोरी के कारण लाठी टेके कदम कदम बढाते हैं तो रास्ते में जहां तहां खांसी के मारे सुस्ताते हैं। कुछ लोगों के मुंह एकदम पोपले हैं, पर वे मृष्टान्न के लोभ से जरा सी देर भी खोये बिना भागे भागे जाते हैं। कोई दान दक्षिणा के लोभ से चले हैं तो कोई सरस युवतीजन का आश्लेष सुख पाने की इच्छा से चल पड़ा है'।

रास्ते पर मिलते ब्राह्मण आपस में कुशल पूछते हैं 'हे शंकर! आप कब इविडन से आये ? 'हे ब्राह्मबृत ! आप हमारे घर में श्राद्ध पर क्यों नहीं पधारे?' और, यह तो खासु ठहरा ! पूरे दस साल के बाद तुम से भेंट हो जाती है। 'मैं अनर्थ पर अनर्थ के मारे मर गया। बाबाजी का देहांत हो चला। घर की दोनों कन्याओं का ब्याह क्या किया तो परिवार घटता ही गया। निर्वाह का चारा कोई नहीं रहा। ..... आदि।

सीताविवाह में शामिल होने केलिए केरल के मान्त्रिक दुर्मान्त्रिक भी जाते हैं। कवि इनकी हंसी खूब उडाते हैं कि ये कई तरह के झूठे मंत्रकर्मों के नाम बताते हुए डींग मारते हैं कि इन मंत्र-तंत्रों से इष्ट कल्याण की सिद्धि होगी। ये अन्धविश्वासी अनपढ तथा धर्मभीरु समाज को धोखा देते फिरते हैं। उनका मंत्र भी हास्यपूर्ण है[2]। कवि इनकी वेषभूषा एवं अनुयायी शिष्यगणों की भी परिहासपूर्ण झांकी दिखाते हैं। इन

- -

1 इस प्रसंग पर श्रीहर्षकृत नैषध काव्य का अनुकरण मिलता है।

2 विद्वेषणकारि शत्रु क्षयकरि
....
पंचाक्षताक्षारि बंधनसाधिनि।

भाषा रामायण चम्पू पृ. 195 सं. केरल साहित्य अकादमि

कपट भाषियों की डींग का विस्तार से वर्णन हुआ है।[1] इस प्रकार वैद्यशास्त्र का कथ न जानने पर भी कल्पतारि का सा दावा करनेवाले मूर्खराज वैद्य भी मिथिला की ओर जाते हैं। सर्व रोग संहारिणी दवाओं की डींग मारते वे बढते हैं।[2] अनादिकाल से केरल आयुर्वेद विद्या के लिए मशहूर था। अतः इन मूर्ख वैद्यराजों का वर्णन सहज और हास्य मधुर बना है।

कालिदास के रघुवंश तथा श्रीहर्ष के नैषधचरित का अनुकरण कर बालरामायण चंपूकार ने सीता का हाथ मांगनेवाले निर्लज्ज राजाओं को मिथिला में एकत्र किया। स्वयंवरसभा में सम्मिलित सुन्दरीकामी राजाओं की उन्मादमधुर चेष्टाओं का वर्णन कवि ने तीन चार पद्यों में किया है। यांत्रिक रूप से चेष्टायें प्रकट करने वाले ये राजा लोग सीतादर्शन पर अपने को भूल कर अनजाने सुगन्धियों को लेकर पीते हैं, एक हाथ से दूसरे हाथ को सहलाते हैं, इस चिन्ता से कि वह उस सुन्दरी का हाथ है।[3] लेकिन य मौलिक रूप से हास्य प्रकट नहीं।

पुनम ने एक दंडक द्वारा प्रत्येक देश के राजा के धनु-चालनयत्न और असफलता हास्य विनोदी ढंग से चित्रित की है। यहाँ के हास्य में सानुप्रासता का वि योग है। प्रस्तुत दंडक के पीछे से अंश अनूदित रूप से प्रस्तुत करने से इसमें उपयुक्त कुशलता स्पष्ट होगी। अब विपुल रोमांचिका पाड्य धात्रीश्वर प्रौढ गर्व से आसन्य पर से उठे। चाप को देखा, लोकत्रय स्वामी मन्मथारि के उदग्र प्रभाव के जोर में कुछ सो फिर पीछे मुडे और धीरता से अपनी जगह पर बैठ गए। इसके बाद मंगल्यधामा कोल ने स्वयं बडहोर्दड शक्ति से पुरारति का कोदंड किसी प्रकार उठाकर लज्जा - विनम्र आन

- -

1 महाविष्णु प्रति जन्मतिथि पर मंगलकलश की पूजा मुझसे कराते हैं। मुझमें 'मिलन' कराने के कारण ही पार्वती भगवान शिव की पत्नी बन सकी।
कल्पनयुण्टु पिरन्नाल तोरुम पद्मजानिन्नुम् मंगलकलशम्,
पार्वतियुम पण्डेन्नेक्कोण्टु मेलन होमम् चैयिच्चतिनाल
इत्तोटुत्तिकुटलवृषम् पति ..... भाषासाहित्य चरित्रम् पृ.352 आर.नारायण पणि

2 पाप विरोधिनी, कफ विध्वंसिनि
कल्याण वृत निष्कलंकवृत ...... भाषा रामायण चंपू पृ.198

3 चित्र चित्र तदानीमेवुमनसिजम् कोण्टु केली सरोजम्
....
तन्नगे लापहाम्पये तेतिवेपुमिलनीर कोण्टु शिरन्नाशकम्
भाषा साहित्य चरित्रम् पृ.355 आर.नारायण पणिक्कर

से धीरे कदम करते करते आया । कोदंड के स्पर्शमात्र से कर्नाटराजा मूर्छित होकर मुंह के बल गिर पड़े । भय से महाविराज ने द्रुत या पलायन किया । काश्मीर राजा अपमान दशा को प्राप्त हुए । कुन्तलेश, केकयेन्द्र आदि सब वीर भूपालक चाप उठा न सके यदि उठा सके तो उसका भंजन न कर सकने से तथा इस विफल श्रम के बीच हाथ कमर तथा पैर टूट जाने के कारण सिर झुका कर 'हमें यह लड़की अवश्यक नहीं मानते हुए पीछे जाने का वह कोलाहल अवर्णनीय ही है[1] । इस बात में कोई शक नहीं कि इस प्रसंग का विनोद कवि की सूझ और सानुप्रास शब्दयोजना पर पूर्णतः निर्भर है ।

(2) रामाभिषेक - प्रस्ताव का प्रसंग – पुनम की हास्यकला की श्रेष्ठता की दृष्टि से सीता विवाह प्रसंग के बाद प्रमुख हास्य प्रसंग रामाभिषेक प्रस्ताव का प्रसंग है । इस प्रसंग की आलोचना एक आलोचक ने यों की है । मानना पड़ता है कि इस प्रसंग का विस्तार करते करते कवि गंभीरता से हाथ धो बैठते हैं । कहीं कहीं शृंगारातिरेक की नौबत तक आ है[2] ।

पुनम अपने चिरपरिचित केरलीय जनों को राजतिलक के पुण्य पर्व में भाग ले दिखाते हैं । इस सुदीर्घ वर्णन भर में पुनम नम्पूतिरी ने हास्यरस सचक ही बिखेरा है । उस वर्णन के कुछ हास्यांशों का वर्णन यहां हो सकता है ।

राजतिलक का पर्व देखने निकलनेवाली औरतों की साज सज्जा का वर्णन हास्यपूर्ण है । कपड़े पहनते समय उनसे दिखाई जाने वाली कसरतें दर्शनीय हैं । कभी कपड़े पहन चुकने पर उनको लगता है वह पर्याप्त आकर्षक न हो पाया, अतः पुनः पुनः वे पहन लेती हैं । शरीर के आगे के भागों में कमियों को तो वे पूरा कर सकती हैं, लेकिन पृष्ठ भागों को पूरा पूरा न देखने से गर्दन टेढ़ा करके वे देखती हैं । तब उनका शरीर कृष्ण मृग के टेढ़े टेढ़े सींग के समान हो जाता है । बीच बीच दर्पण में देखती हैं बाल-प्रदेश का तिलक कुछ बड़ा या व्यवस्थित परिधि का न देखने पर जल से तिलक के चारों ओर रगड़ती हैं, कुछ औरतें तो पानी के अवश्यक समय पर न पहुंचने पर जीभरस से ही काम निकालती हैं[3] । इस प्रकार औरतों की साज के कोलाहल का आंखों देखा वर्णन पुनम प्रस्तुत करते हैं ।

---

1 भाषा साहित्य चरित्रम् पृ.356 आर.नारायण पणिक्कर (भाग 1)
2 मानस के सरस प्रसंग (रामायण चंपू से तुलना सहित) डा.एन.ई.विश्वनाथय्यर
3 हास्यप्रकाश - पृ.270 से उद्धृत (मानसी 1974 पृ.3:

अब मूर्खता दिखाने वाले कुछ कामी जनों को कवि पकड़ते हैं । वे कुछ श्लोकों के टुकड़े जानते हैं । इनको वे कहते भी कैसे ? या तो छन्दोविच्छेद करके या पदों को अनुचित रूप से विभक्त या सम्मिलित करके । श्रोता कोई अर्थ न ले सकता। वे तो बहुत कोपिष्ठ ठहरते । लेकिन सारा कोप अपनी पत्नी पर उतारते । उसके लिए कोई कारण भी अवश्यक नहीं । देखते समय न दिखाई पड़ना पर्याप्त से अधिक है । तब हाथ में आसानी से लगी चीज़, वह जो भी क्यों न हो, ज़ोर से फेंक देकर रसोई के सब बर्तन तितर बितर देते हैं । ऐसे गृहवीरों का वर्णन भी है[1] ।

अब सात्त्विकों का संघ आगे बढ़ रहा है । उनका वार्तालाप भी हास्यपूर्ण है ।

इनके चले जाने पर आता है ब्राह्मणों का एक दल । भोजन और दक्षिणा इन दो विषयों पर उनका समस्त संवाद केन्द्रित है । जैसा कि साहित्य के इतिहासकार ने कहा है 'कवि ब्राह्मण होने पर भी अपनी जाति के शरीर में प्रविष्ट दोषों को दिखाने में हिचकिचाते नहीं[2] । ठीक जंचता है । ब्राह्मण मध्य के बारह जीभों से निकले सरस्वती विलास यों हैं :- अभिषेक पर्व सुचारु रूप से देख सकेंगे मृष्टान्न भोजन मिलेगा प्रतिग्रह भी प्राप्त होगा । मैं ने इसे पहले कभी नहीं देखा है । ऐसा भी कौन होगा जिसने इन सबको देखा है । पिता से मैं ने सुना है कि वर्षों के पहले ऐसा था । एक विप्र की चेतावनी है 'जाते ही सुमंत्र के पास नाम देना, नहीं तो जप में सम्मिलित न हो पावेंगे । एक आलसी का इसका उत्तर है जप नहीं तो क्या भोजन और प्रतिग्रह मिलेंगे ज़रूर न ? और एक लालची का कथन सुनिए राजमहलों में बच्चों का उत्पन्न होना हमारे लिए बहुत उपयोगी है । जन्मदिन, नामकरण, अन्नप्राशन आदि से लेकर विवाह तक के दिनों में हम रह सकते हैं, भोजन दक्षिणा और दान भी प्राप्त होंगे । मंत्रतंत्र न जानने वाले लेकिन मंत्रोच्चारण स भावों के बीच बैठ याज्ञिक अक्षर विन्यास मात्र के बाद दक्षिणा पानेवाले एक लालची का संशय है । पहले ही पहुँचने से कलशजप के

---

1 बहुष कुतूहलमधुरं श्लोकं वृत्तविहीनम्
....
निगदतु मुहुरिह नटम्नु । हास्यग्रामम पृ.270 से उद्धृत

2 भाषा साहित्य चरित्रम् पृ.350 आर.नारायणपणिक्कर (भाग -1)

लिए हमें भी निमंत्रण मिलेगा क्या ? इसका उत्तर उसके मित्र के शब्दों में 'कलश, कलश अपना ही हम जानते है'[1]।

यहाँ का हास्य - व्यंग्य इतना तीखा है कि इन कथनों को सुनकर हम एक न्यायपूर्ण संदेह में पड जाते हैं कि क्या पुनम भी इन नम्पूतिरियों के बीच ये उतना सजीव चित्रण यहाँ है । यह एक रेडियो की टिप्पणी की तरह सजीव बन गया है । ये ब्राह्मण अपने एक एक वाक्य द्वारा अपने अपने चरित्र को अनजाने खोल देते हैं । कोई भोजन और दक्षिणा मात्र से सन्तुष्ट होनेवाला है । एक तो इसके साथ कुछ कुछ कौतुक भी देखना चाहता है । एक तो किसी न किसी प्रकार मंत्रोच्चारण करनेवाले वैदिकों के बीच भी स्थान पाने के लालच का पालन पोषण करता है ।

इनके पीछे तार्किक, वैयाकरण, मीमांसक, अद्वैतवादी आदि कई पण्डितों का एक दल आता है । शास्त्रार्थी के विकटशब्दों का उच्चारण करते चलनेवाले न्याय शास्त्रज्ञों का वर्णन[2] हास्यपूर्ण बना है ।

इनके चले जाने के बाद तलवार, भाला आदि विभिन्न हथियारों को धारण करते हुए आनेवाला नायर सैनिकों का एक दल पहुँचता है । उनके बीच एक जवान सैनिक की आत्म प्रशंसा यों है 'जब राजा दिग्विजय के लिए चलेंगे तब मेरा यह लाडला (तलवार) एक खेल दिखायेगा । लेकिन एक निराश नायर सैनिक अपना दुख यों प्रकट करता है 'सारा काम बेकार हुआ । जीवन काटने का उपाय भी नहीं । लेकिन और एक ने रोजगार के लिए उपाय देख रखा है । तलवार बेची जायगी तो बैल खरीद सकते हैं । जोतने से जीविका चला सकेंगे[3] ।

- -

1 अविवेकोत्सवमकरोद् कलनाम्
  ....
  कलशं कलशमितीम्नु जपिष्यामः कोलाम् नाम्नी ।

2 जाति व्यक्ति रेतौवच्छे वाचत्नुना
  ....
  सत्तमुकिर, पूर्वोक्तिचुम् । बाबा रामायणम् चम्पू पृ. 195

3 विक्कु जयिककानेकुन्नतुमोल
  ....
  अटवुवुवपुताल तिवतम् कीवृपुम । बाबा रामायण चम्पू पृ. 196

अब ज्योतिषियों का आगमन है । अनपढ़ अशिक्षित तथा धर्मभीरु लोगों का शोषण करने के लिए उनके पास क्या क्या बहाना नहीं ? बात बात में वे कहेंगे 'लग्न में गुलिक आ गया, साथ सन्निपात भी । अतः गर्भस्थ शिशु कुछ दिन के लिए जीता रहेगा, नहीं बचा तो उसकी दीर्घायु होगी ।

ये ज्योतिषी जातकों को देखते ही सौ सौ योगों के होने या न होने की बात बतायेंगे[1] ।

अंत में, जो दल आता है वह नीची जाती के लोगों का है, 'पुलय' शब्द ही इनके लिए प्रयुक्त है । उनमें से एक का शिकायत भरा आश्वास' सिर्फ ब्राह्मणों को धन और सोना मिलेगा, हमें तो सिर्फ बात ही प्राप्त होगा' । उससे भी लालची और एक अपनी एकमात्र तीव्र आशा यों प्रकट करता है '[मुझे] और कोई आशा नहीं । कल की सड़ी चीज़ों को पाऊं तो मैं पेट भर खा लूं[2] ।

उनके पीछे उनकी उनकी औरतें भी हैं । पानसुपारी लेने पर अफसरों को तालिका मिली या नहीं, यह देखने उनके पास एक आसान उपाय है, जिस प्रकार गौ को हम बाहर खींच लाते हैं उस प्रकार नितम्बों को आगे की ओर खींचना और आंखों को नीचा करके देखना । इन सबका हास्यपूर्ण वर्णन यहां है[3] ।

इस हास्यधारा का अंत भी हास्यपूर्ण है । नदी की धारा अपने अंतिम स्थान में बड़ी हलचल के साथ ही समुद्र की लीन होती है । आपस में संबन्ध न रखनेवाले शब्दों या वाक्य भागों को आपस में टकराना ही इस हास्यकला का रहस्य है ।

---

1 मालविकयोगम् केसरियोगम् भ्रुकुटियोगम्

मरकतयोगम्, तरुकयोगम्, निद्रायोगम् । भाषा रामायण चम्पू पृ. 197

2 पलपुम पोन्नुम् ब्राह्मर्क्कमे

वयरु निरक्कामत्रे वेन्दु । भाषा रामायण चम्पू पृ. 197

3 मरोरु पारवकल केसिल तिन्नुम्

एन्नु परं । चेट्टिमक्कलुम् पोन्नपकिल मं । भाषा रामायण चम्पू पृ. 199

हसे पुनम ने भी यहाँ प्रयोग किया है । अंग्रेज़ी में इस टेकनिक को *Talking at cross purposes* पुकारते है । इसकी सरसता प्रकट करने के लिए एक उदाहरण यहाँ अनुचित न होगा । एक घर में शादी के हो चुकने पर भोजन हो रहा है । कोई वर को बुलाने की आज्ञा देता है । रसोई घर के पास से कुत्ते को कोई भगाने की आज्ञा देता है । पहला कहता है 'वरको' बुलाओ' दूसरा कहता है 'कुत्ते को पत्थर फेंककर भगाओ' हास्यकर 'वरको' तथा 'पत्थर फेंककर भगाओ' इन दोनों का मिलन करने देता है जैसा वरको - पत्थर फेंक भगाओ । इन दोनों वाक्यांशों में सम्बन्ध है । कभी कभी परस्पर सम्बन्ध न रखने वाले वाक्यांशों का मिलन भी हो जाता है । रसोइया कुछ सूखी लकड़ी केलिए चिल्लाता होगा । 'वरको कुछ सूखी लकड़ी दोनों में संबन्ध हो नहीं । ऐसा हास्य पुनम भी काम में लाये है । एक कहता है 'वेक्कोट्टटिच्च' दूसरा कहता है 'नाक काटा'[1] । एक कहता है अच्छा नहीं । दूसरा कहता है 'जो सुना वह ठीक था' ।

यह हास्य प्रवृत्ति मलयालम में सर्वप्रथम लाने का श्रेय चेरुश्शेरी का है । कृष्णगाथा के 'राजसूय' वर्णन में उन्होंने इसका सजीव चित्रण प्रस्तुत किया[2] । चेरुश्शेरी से प्रभावित होकर ही पुनम ने भी यह प्रवृत्ति अपनायी होगी ।

(3) <u>आलिंगन प्रसंग</u> - अब हम पुनम नम्पूतिरी का हास्य रसोत्सव देखने केलिए रावण के उद्यान जायें । सुन्दर कांड में सीता के प्रति रावण की प्रणय प्रार्थना शृंगार प्रधानता के कारण मधुरतम बन गयी है । रामायण चंपूकार ने रावण-सीता संवाद के प्रसंग पर रावण के मुँह से राम की निर्धनता, विवशता और मामूली काम पर शेखी पर फटकार सुनाई है । रावण विविध न्यायों द्वारा सीता के समक्ष साबित करता है कि उसके लिए राम नहीं, रावण ही अनुयोग्य है ।

सीता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए रावण ने कई उपाय बताये लेकिन असफल । उसका नया उपाय यों है । उसका कहना है 'हे वैदेहि, सुन, तै

---

1 वेक्कोट्टटिच्च - मूक्कु मुरिट्टु - नीक्कम् वाधा -
नन्नल्लेतुम् - केट्टतु निर्णयम् - इप्पोळिक्की ?
निम्नरियातोर - केन्नकेट्टुपोल । भाषा रामायणम चम्पू पृ.200

2 वालि तन वालिन्टे क्कम पोत्तेडिने
....
पत्तिक्कल मानस्तु पायुम पोले । कृष्णगाथा पृ.263

राम का एक अंग भंग हुआ है । अभिषेक प्रसंग पर माता ने उसे नीचे गिरा डाला था और उस गिरने से पैर कुछ टूट गया है । क्या यह तू जानती नहीं[1] ?

यह सुनकर भी सीता उसके वश नहीं आती । तब कुछ भी बढ़ा चढ़ाकर वह कहता है ' उस मनुष्य कीट औरमुझ राक्षसेश्वर के बीच का फर्क तू ने समझा नहीं क्या[2] ? राम एक कपटी मुनि की गठरी ढोते हुए साथ चला और उनसे छल-प्रपंच सीख गया था । उसी धूर्त ने पथ पर विधवा वृद्धा ताडका का वध किया । बदनाम औरत अहल्या को पवित्र किया । आगे चिर पुरातन और जीर्णशीर्ण धनुष तो तोडकर तुझे उसने पाया। ये संवाद अतिशय दीर्घ है, शृंगार रस प्रधान भी । यहां सालंकारता और सानुप्रासता देखते ही बनती है ।

रावण और एक घटना का भी वर्णन करता है । भरत राम की खोज मे जंगल आया और कहा 'क्या अयोध्या लौटने का उद्देश है ? मुख मे दांत बाकी नहीं रहेंगे, याद रखो । पादुका कहां? ला दे दो । 'इसे सुनकर भयभीत राम ने पादुका दे दी भी[3] ।

इसके भी बाद श्रेष्ठतम हास्य पूर्ण बात बताता है 'और एक बात भी बता दूंगा । मेरी बहिन उस जंगल मे गयी । उसे देखकर दोनो भाई उसपर आकृष्ट हो गए और उसे अपनाने केलिए झगडने लगे । जब दोनो के बीच झगडा बढा तब कनिष्ठ ने मेरी बहिन के दोनो स्तनो को काट लिया और बाकी ही बडे केलिए छोड दिया। ऐसी बाते मै ही बताऊं, यह अच्छा न लगता[4] ।

- -

1 पण्टु राज्याभिषेकत्तिनाम्मारिलिरुन्न नेरत्तु
. . . .
मुण्डायतुम् नी अरिञ्ञीलयो ? — भाषा रामायण चम्पू पृ.520

2 मनुष्यपुरु प्रौढनुम् राक्षसाधिपन
तानुमायुल्ल भेदम् परिच्चीलयो ? — भाषा रामायण चम्पू पृ.520

3 पिन्नेयुम् केट्टुकोण्टालुमोरोतरम् वीर्यम -
. . . .
क्याट्टतुम् नी अरि चीलयो ? — भाषा रामायण चम्पू पृ.521

4 पिन्ने मरोन्नु चोल्लाम् विनोदान्तरम्
. . . .
मुरिच्चु तनयकलाम्माडु मौटमेम्पोरुमे । — भाषा रामायण चम्पू पृ.522

मन्डोदरी के अप्रतीक्षित आगमन से ही यह दृश्य खतम होता है वह तो रावण की सारी चपलतायें पेड़ के पीछे छिपे देख रही थी। जब निराश तथा क्रुद्ध रावण चन्द्रहास लेकर सीता की हत्या करना चाहता है तब मन्डोदरी उसे रोक लेती फिर वह रावण के बीस कपोलों पर आघात देकर, कोसते कोसते उसे खींच ले जाती है[1]।

ये तीनों पुनभ के प्रमुख हास्य प्रसंग हैं। कुछ गौण हास्य प्रसं भी है जिन पर भी प्रकाश डालना अवश्यक है पुनम के गौण हास्य प्रसंग प्रमुखतः है।

(1) शूर्पणखा की वाक्सयुक्ति - 'नासिकाछेद पर शूर्पणखा रावण के समक्ष उस घातक क्रोधाग्नि को क्रमशः उद्दीप्त करती है, यह भी देखने लायक है[2]। लक्ष्मण से छेदित नासिका तथा स्तनों के टुकड़ों को ले जाकर बड़े भाई रावण के आगे प्रस्तुत करती हुई शूर्पणखा कहती है 'जब मैं ने तुम्हारी वीरता का बखान किया तब हाथ पर हाथ मारते हुए हंसी उड़ाते हुए कनिष्ठ ने कहा 'यदि वह आता है तो उसे मैं नीचे गिराकर रेत खिलाऊंगा'। उनकी मर्यादा विहीन सब व्यवहारों को मैं सह सकती हूं क्योंकि एक न एक दिन उनका प्रतिशोध हो सकता है, लेकिन जब उन्होंने नाक और स्तन काटकर मुझे कुरूप बनाया तब उस सुन्दरी ने जो हंसी उड़ाई उसे मैं सह नहीं सकती[3]।

अपनी बात की सिद्धि के लिए झूठी कथायें बना बनाकर औरों की कानों में उड़ेल देकर सुनने वालों के मन को परिवर्तित लेने में असभ्य औरतों की एक अलग चतुरता जो है वही इन पंक्तियों से ध्वनित है।

लेकिन रावण उसका बड़ा भाई ही है न ? अतः उस पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। अपने बड़े भाई को पड़ोस का जैसा ठंडा ही देखकर शूर्पणखा दूसरा उपाय अपनाती है। उसका कोप यों रूप धारण लेता है 'हे पुष्पाकुलो। आज मैं तुझे अपना पति मानकर छाती से लगाऊंगी। अन्य स्त्रियों के स्तनों से अपनी छाती को लगा लेनेवाले तुम जिस मती मानव को यह सोदरी संगम भी उचित ही है। पत्नी मन्डोदरी से तुम्हारे मिलन की अब से कोई अवश्यकता नहीं[4]।

1 ..... मेश्वैलिरुपतु कविलतुम ।
स्वतुनिन्नाकुलागी । बाला रामायण चम्पू पृ.522

2 केरल साहित्य चरित्रम (भाग - 2) पृ.185 उल्लूर

3 निर्मर्यादकृतः वाणिकालिरुकुमाय -
....
पुन्नितेलायिलुम मे । बाला रामायण चम्पू पृ.380

4 इन्नीयत्तो पुरा कोन्नतु मम दयितम् .... मन्डोदरी संगम ते । अवश्यम्

अनादिकाल के असभ्य जंगली मनुष्य को भी हरानेवाले इन व्यंग का उद्गार एक राक्षसीय वृत्ति की औरत ही कर सकती है ।

(2) राम-परशुराम संवाद – धनुर्भंग या परशुराम के प्रसंग पर भी कवि ने खास व्यंग्य प्रस्तुत किया है । राम परशुराम संवाद में तो विचार-संघर्ष जरूर है । अन्य रामायणों की तरह इसमें भी अहंकारी परशुराम का गर्वशमन होता है । लक्ष्मण के चटुल व्यंग्य किस समय पुनम कोई मौलिकता नहीं प्रस्तुत करते ।

(3) दण्डकवन प्रसंग – आरण्यकाण्ड के दण्डक वन-प्रसंग पर शूर्पणखागमन रामकाव्य की आवश्यक सरस प्रसंग है । यद्यपि रामायण चंपू में कई कथापात्रों से हमारा परिचय होता तो भी शूर्पणखा द्वारा कवि से प्रकट हास्य एक अलग प्रकार का है, और इस उपाय से प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हरिश्चन्द्र को भी नतमस्तक कराने लायक है ।

पुनम की शूर्पणखा विलास विशेष लिये प्रवेश करती है । जब श्रीराम पूछते हैं कि उसके नाम और कुल क्या है तब हाथ जोड विनयमधुर रूप से वह प्र करती है कि मदनताप के कारण ही वह यहाँ प्रकट हुई है । चौदह जगतों में भी पुरुष से यथेष्ट अभिसार कर सकने वाली वह यहीं ही क्यों आ पहुँची यह शक हमा लिए सहज और स्वाभाविक ही है । इसका भी उचित उत्तर उसके पास मौजूद है । तद्विषयक अपनी सीमाओं को वह यों प्रकट करती है :- 'पूरा गात्र नेत्रों से युक्त होने के कारण देवेन्द्र छाती से लगाए जाने के लिए अनुयोज्य नहीं । यमदेव भी जिससे दूर रहता है, उस अग्निदेव से वरा नहीं जाला जा सकता । वायुदेव तो कहीं भी स्थिर रहने वाला नहीं सदा गतिशील है । शिवजी से काम किस के लिए, क्या श्मशान का खेल खेलने के लिए ? कठिन ताप का प्रसरण लगातार करते रहनेवाले सूर्यदेव के पास कोई जा भी सकता क्षणभंगुर जवानी के चन्द्रदेव से मिलना उचित नहीं । यक्ष, किन्नर, देव और मुनियों की सुन्दरता मुझे भाती नहीं । इन चौदह जगतों में आपके समान और एक नहीं, इसलिए आपको देखकर मुझे मदनताप हुआ है । इस प्रकार साबित करनेवाली सुन्दरी को देखा

एक बार देखकर मन्दस्मित के साथ श्रीराम कहते है 'मुझे ही इस बात मे तुम से भीख मांगनी है, लेकिन तुम्ही ने कुल से इसका प्रस्ताव किया, इसपर मै अपने को बहुत कृतज्ञ मानता हूं । इसे सुनते ही प्राप्त अवसर बिना गवाए वह चतुरा कहती है तो हे कान्त समय गंवाने की जरूरत नही । यो जब वह अपना जाल बांधने लगती है तब श्रीराम किसी न किसी प्रकार उससे बचने का उपाय ढूंढते है । उनका कहना है उन दोनो के मधुर मिलन के लिए अनुयोज्य महफिल नही सिर्फ एक कुटी है । इसका ठीक उत्तर भी उसी क्षण शूर्पणखा देती है । उसका कथन है कि किसी भी तरह का महल भी बना देने की क्षमता उसमे है । यह भी नही, सच्चा प्रेम जिसमे है उसे पत्थर भी पुष्पों का सेज ही लगेगा । अब श्रीराम और एक उपाय अपनाते है । उनका कहना है यद्यपि वे भी उसके आशिक है तो भी तपस्या के उस समय मे ऐसा मिलन अनुचित ही होगा । उसका ठीक उत्तर भी शूर्पणखा प्रस्तुत करती है । उसका कथन है कि यदि वह तपस्या बुढ़ापे मे होती तो उसका लंघन अनुचित है, लेकिन श्रीराम की तपस्या नौजवानी मे होने के कारण उतना अनुचित नही । तब श्रीराम और एक उपाय के द्वारा क्षमा पाने की कोशिश करने लगे । उन्होने कहा कि अपनी पहली पत्नी के रहते दूसरी पत्नी को भी अपनाना ठीक नही । तब शूर्पणखा कहती है कि जिस प्रकार सीता मे कामविकार है, उस प्रकार उसमे भी है । अतः श्रीराम को उससे भी रमना है नही तो वह उनके आगे ही प्राणत्याग करेगी अंत मे उसके तर्कवितर्कों के आगे पराजित होकर श्रीराम उसे लक्ष्मण के पास भेज देते है । बड़ी निराश हृदय और अकामासक्त राक्षसि को अंग भंग करके लक्ष्मण उसे लौटाता है । हास्य की मौलिक प्रवृत्ति का आभास यहां प्रकट है ।

(4) <u>लंकादहन प्रसंग</u> - लंकादहन मे रावणानुचरो की हास्यास्पद दुर्दशा का वर्णन पढ़ कर पाठकों को सहज ही हंसी आती है । लंकादहन मे लंकानिवासियों की व्याकुलता, स्वर्णनगरी का लाल भस्मरूप मे परिवर्तन, नगर का क्रन्दन - कोलाहल, रावण का क्रोध आदि वर्ण्य विषय है जो प्रत्येक रामकाव्य मे विस्तार से वर्णन किए जाते है । रामायण चंपूकार शब्दाडंबर प्रधान वर्णन मे बड़े निपुण ठहरे । अतः लंकानिवासियों की व्याकुलता आदि का चित्रण उन्होने अत्यंत सरसता से किया है। रसानुगुण शब्द रचना द्वारा हास्यसृष्टि करने का एक उदाहरण[1] यहां प्रस्तुत किया जाता है ।

- -

1 नी पिटिपेट्टु वीरिश्र कुलुडि.

. . . .

पोन्नु पणवुमोलिक्कुन्नु चिलर ।। भाषा रामायणचम्पू पृ.670

षष्ठ अध्याय

मध्यकालीन मलयालम कविता में हास्य (भाग - 2)

हास्य सम्राट के रूप में कुंचन को प्रतिष्ठित करने में मलयालम के आलोचक सहमत है[1] लेकिन साहित्य के और एक इतिहासकार महाकवि उल्लूर कुंचन को विश्वहास साहित्यकारों के समीपवर्ती मानते हुए यों कहते है ।- "यूनान के अरिस्टो फेनस, रोम के जुवनल, फ्रांस के मोलियेर आदि पाश्चात्य हाससाहित्यकारों से हम कुंचन की तुलना करने का साहस दिखा सकते है और उस तुलनात्मक मूल्यांकन में नंपियार को उनके समवीवरथ शोभित देखकर रोमांच-पुलकित हो भी सकते है"[2]। कुंचन और शेक्सपीयर को पास पास खड़ा करके तुलना करने में संशय चूकते नहीं "शेक्सपियर और कुंचन के समान - सिर्फ सरसता के बारे में ही मैं कहता हूँ - सभी रुचियों को एक साथ समय संतृप्त करने में और किसी ने भी विजय नहीं पायी"[3]। केरलपाणिनि पुकारे जाने वाले ए.आर.राजराजवर्मा ने भी 'कुंचन को केरल का शेक्सपियर' माना है[4]। और कुछ आलोचक अंग्रेज़ी साहित्य के पोप के साथ

- -

1 (क) विश्व साहित्य के हास्य से होड़ करनेवाले हास साहित्य को कुंचन ने कैरली को कमा कर दिया है'। प्रदक्षिणम् - पृ.198 डा.वेलनाट्टु अच्युतमेनोन ।

(ख) हास्य साम्राज्य के अधिपति है कुंचन नंपियार । विश्वसाहित्य में हास्य केलिए एक अलग सिंहासन स्थापित होगा तो वहाँ बेशक बिठा सकनेवाले केरल के कुंचन ही है

कुलपतिकल - पृ.39 - तायाट्टु शंकरन

(ग) विश्वसाहित्य में भी कुंचन के समान हास्यप्रिय कवि और कोई नहीं होगा । हास साहित्य - मलयालम में - पृ.35 उल्लाट्टिल गोविन्दन कुट्टि नायर ।

(घ) हाससाहित्यकार के रूप में जगत्प्रसिद्ध अनेकों को हरा सकनेवाली सरसता और व्यंग्यबाणकुशलता नंपियार में थी । आधुनिक मलयाल साहित्य-पृ.94

पी.के.परमेश्वरन नायर ।

2 साहित्य चरित्रं - पृ.421 महाकवि उल्लूर

3 साहित्य निकषम् - 2 पृ.19 संजयन ।

4 नलचरितं कान्तारतारकं - व्याख्यानम् ।

कुंचन की तुलना करते है[1]। और कुछ आलोचक कुंचन को संस्कृत साहित्य के हास्यकारों से भी श्रेष्ठ मानते है[2]।

सारांश यह कि हास्य-व्यंग्य का साक्षात् स्वरूप था कुंचन नंपियार। उनकी तुल्लल कथाओं मे जितना विस्तृत और सरस हास्य-व्यंग्य है, मलयालम की किसी भी रचना मे नही, यह तथ्य निर्विवाद है। 'हास्य के एक पर्याय के रूप मे तुल्ललों को देखने मे कोई हानि नही[3]। जैसा कि मलयालम के प्रसिद्ध समीक्षक के शंकर पिल्लै ने कहा है 'नंपियार की तुल्लल कथाओं मे देखे जानेवाले जैसे हास्यप्रयोग मलयालम की और किसी भी कृति मे इतने सरस रूप मे दिखाई नही पडते[4]। हास्यरस नंपियार की रचनाओं का अलंकार नही, उनकी आत्मा है[5]। कुंचन की तुल्लल कथाओं के समान केरलीय लोगों को आकर्षित कर सकनेवाली कोई अन्य साहित्यविधा नहीं[6]। नंपियार की कृतियों के प्रचुर प्रचार होने का एकमात्र कारण उनका हास्य है।

- -

1 समकालीन सामाजिक बातों को हास्यपूर्ण रूप से प्रकट करने की कुशलता, व्यंग्य कसने की प्रवीणता - इन दोनों से नंपियार अंग्रेज़ी साहित्य के पोप की याद कराते है। साहित्य चरित्र संग्रह - पृ.166 पी.शंकरन नंपियार।

2 पेटू, कायर और बातूनी एक ब्राह्मण की हंसी उडाने से ज्यादा हास्यबोध कालिदास ने भी नही दिखाया है। हमारे कुंचन नंपियार के सिर्फ एक हास्य मात्र पर्याप्त है संस्कृत साहित्य के सारे हास्य प्रयोगों का सिर झुकाने केलिए। प्रदक्षिणम् - पृ.198 डा.वेलनाट्टु अच्युत मेनोन।

3 सुवर्ण कैरली - पृ.148 टी.एम.कुमार।

4 उपन्यासमंजरि - पृ.60 तुल्ललकथा नामक लेख से - के.शंकरपिल्लै।

5 हाससाहित्यम् मलयालत्तिल - पृ.35 उल्लाट्टिल गोविन्दन नायर।

6 कुंचनीरते तुल्लल की पीठिका - एम.आर.वेलुपिल्ल शास्त्री।

चाक्यार लोगों की तथा नम्पूतिरी की परिहास-विदग्धता हम कुंचन में देखते हैं । कुंचन ने सूरज के नीचे के सब कुछ को एक हास्यपूर्ण दृष्टि से देखा । लेकिन उनका मार्ग मुख्यतः नम्पूतिरी का था ।[1] नंपियार के हाथ में आकर उन सबको एक नयापन मिला । कुंचन ने चाक्यार की रूढ़ियों को अपने तुल्लल में सजीव बना डा मलयाल साहित्य रूपी कूटियाट्टम में इसलिए ही कुंचन विदूषक बने ।[2] चाक्यार ने अपने आगे जिन श्रोता और प्रेक्षकों को देखा उनको ही कुंचन ने भी देखा । कुंचन के हास में चाक्यार के हास्य का श्रेष्ठ प्रभाव पड़ा है ।

विनोदप्रिय व्यक्तित्व - कुंचन की उच्च कोटि की हास्यसृष्टि का एक कारण उनका विनोद प्रिय व्यक्तित्व ही है । वे स्वभावतः रसिक थे । 'कविता में ही नहीं दैनिक जीवन में भी वे हास्यप्रिय थे[3] । उचित प्रसंगों पर सावधानी से प्रयुक्त होनेवाल हास्य पूर्ण उक्तियों में जनता को आकृष्ट करने की बड़ी शक्ति है । कुंचन के व्यक्तिगत जीवन में ऐसे भी कुछ हास्य प्रसंग हैं जो तुल्ललों में प्रयुक्त हास्यप्रसंगों के आगे गौण होने पर भी मनोरंजक हैं । उनके विनोदी व्यक्तित्व के परिचायक होने के नाते उनपर थोड़ा प्रकाश डालना यहाँ अप्रासंगिक न होगा । जहाँ जहाँ वे रहे चाहे तिरुवनन्तपुरम पर चाहे अम्पलप्पुषा पर कुंचन के हास्यबोध की रंगीन यादें जगाने वाली कई कथायें प्रचलित हैं[4] :-

(1) रसिकों के शिरोरत्न कुंचन अम्पलपुषा में रह रहे थे । इस अवसर पर की एक हास्यपूर्ण घटना स्मरणीय है । 'सचमुच एक कठिन कार्य की सिद्धि के लिए ही कुंचन ने अपने व्यंग्य का प्रयोग यहाँ किया[5] । चेम्पकश्शेरि के राजा देवनारायण के आचार्य और उपदेशक थे कैप्पिळ्ळा नम्पूतिरि । राजा अपने वश में थे, इसपर नम्पूतिरि गर्व करने लगे।

---

1 मातृभूमि विशेषांक 1973 'कुंचन का हास्य नामक लेख.डा.के.एन.एषुत्तच्छन

2 मातृभूमि विशेषांक 1973 मलयालम का हास्य नामक लेख. डा.एम.लीलावती

3 नंपियार और मलयाल साहित्य पृ.319 एस्.परमेश्वरन ।

4 ऐसी कई कहानियाँ इस हास्य सम्राट से संबन्धित होकर देश भर प्रचलित हैं । निर्दोष हास्य की हृदय मधुरिमा से मिलकर सदियों से प्रसारित होकर ये कहानियाँ जनमानस में जिन्दा रहती हैं । कुलपतिकल - पृ.47 तायाट्टु शंकरन ।

5 सुवर्ण कैरली - पृ.150 टी.एम.चुम्मार ।

फलस्वरूप आवश्यक अनावश्यक सब कहीं वे अपना अधिकार जमाने लगे। राजा को भेंट होनेवाले उपहार वे ही ले जाते थे। राजमहल के सब आश्रित इस पर असन्तुष्ट थे लेकिन इसके विरुद्ध 'चूँ' करने का साहस किसी को नहीं था। अंत में सब ने कुंचन शरण ली।

दूसरे दिन जब राजा और आचार्य बैठे बातें कर रहे थे तब कुंचन एक बर्तन लेकर उसी ओर गए, पास पहुँचने पर जान बूझकर उन्होंने उसे नीचे डाल दिया। आवाज़ सुनकर राजा ने पूछा - 'बात क्या है'। झट कुंचन ने उत्तर दिया 'कैप्पिष़ा के कारण प्रतिप्पिष़ा आयी। यहाँ कैप्पिष़ा शब्द द्व्यर्थक है। पहला अर्थ है हाथ की गलती और दूसरा अर्थ है कैप्पिष़ा नम्पूतिरि के आगमन। प्रतिप्पिष़ा का अर्थ है आपत्ति। अभिधार्थ यह है कि बर्तन हाथ से फिसल गयी और इसलिए यह आपत्ति हुई। व्यंजनार्थ यह है कि कैप्पिष़ा नम्पूतिरि के आगमन से ही सब विपत्तियाँ उत्पन्न हुई हैं। कुंचन के श्लेषार्थ और व्यंग्य समझकर राजा और कैप्पिष़ा दोनों हँस गए। कहा जाता है उस दिन से कैप्पिष़ा का कुचेष्टित और लालची स्वभाव कुछ कम हो गए[1]।

(2) तिरुवनन्तपुरम में रहते समय भी कुंचन ने कहीं अपनी हास्यप्रियता स्पष्ट की है। एक दिन की बात है, जब कुंचन श्री पद्मनाभ के मन्दिर में दर्शन करने भीतर गये। वहाँ का मुख्य पुजारि था नंपि। नंपि ने पूछा 'तुम कौन हो'। नंपियार ने उत्तर दिया 'नंपियार'। मलयालम में 'यार' का अर्थ है 'कौन'।

1 यह कहानी नंपियार के हास्यत्व का दृष्टान्त है।
नंपियार और तुल्लल साहित्य पृ.319 एवूर परमेश्वरन।

2 हमारे कुछ अनुभव हैं कि विविध प्रयत्नों से भी असफल रहनेवाले कुछ कार्य, हास्यप्रिय व्यक्ति के एक मात्र हास्यप्रयोग से सफल होता है। जिस प्रकार मत्त गज मर्म पर छूने मात्र से संयमित होता है, उस प्रकार अकृष्ट और गर्विष्ठ को शान्तप्रिय बनाया जा सकता है। यह अपूर्व वरदान कुंचन को मिला था।
सुवर्ण कैरली - पृ.150 टी.एम.चुम्मार।

हम्बालेव पर का खेल भी आ देखिए । 'नीपियार' शब्द के दो अर्थ है, पहला नीपियार जाति के बारे मे व्यक्त करने वाला, दूसरा है 'हे नीप तुम कौन हो, कौन हो तुम पूछनेवाले? तुम ही पहले मेरा यह बताओ कि आखिर तुम कौन हो के बदले प्रश्न को ही सुनकर नीप कोपिष्ठ हुए और उन्होने राजा के आगे शिकायत की । राजा की पूछताछ पर कुंचन ने स्पष्ट बताया कि उन्होने नीप से कुछ भी पूछा था, सिर्फ प्रश्न का उत्तर दिया था । कहा जाता है कुंचन की यह सरसता राजा बहुत सन्तुष्ट हुए ।

(3) एक बार राजा मार्त्ताण्डवर्मा अपने आश्रितों के साथ । कर रहे थे । हास्यप्रिय राजा ने अपने सेवको की मजाक उड़ाने के लिए एक चतु सिखायी । जब खीर की बारी आयी तब उसकी रुचि लेने के बाद उन्होने बताया खीर मे कड़ुआपन है । यों कहते हुए उन्होने उसे अलग रखा । खीर मे अतितत्पर होने पर भी सब आश्रितों ने राजप्रीति को लक्षित करके परोसी खीर को कड़ुआ बताक छोड़ दिया । लेकिन बीच मे बैठे कुंचन मनभर खीर पीने लगे । यह देख राजा ने कुंचन से पूछा खीर मे कड़ुआपन नही है क्या ? कुंचन ने झट उत्तर दिया 'हुजूर, कड़ुआपन मुझे पसन्द है । इस हास्योक्ति से राजा बहुत सन्तुष्ट हुए । यह कहा आवश्यकता है क्या कि खीर को कड़ुआ बताकर न पीने वाले सेवको को बेवकूफो के जैसे झुकाना पड़ा ।

(4) राजा मार्ताण्डवर्मा ने एक बार श्री पद्मनाभ के मन्दिर मे एक दीपक बन निर्माण के पूर्ण होने पर वे कुछ कवियो के साथ उसे देखने गए । सब कुछ देखने के उन्होने कवियो को आज्ञा दी कि उस दीपस्तंभ के बारे हर एक, एक एक पद्य सुना एक एक अपनी अपनी कल्पना के अनुसार कविता बनाने लगा । अनेकानेक अलंकारों अर्थवैचित्र्यों से भरी कवितायें उन्होने सुनायी । लेकिन कुंचन ने सिर्फ चार पंक्तियाँ

---

1 नीप आरेन्नु चोदिच्चु
नीपयारेन्नु चोल्लिनेन
नीप, केट्टाल कोपिच्चु
तम्पुराने पोरुक्कणम् ।

उनका आशय यही था कि दीपस्तंभ तो बहुत आश्चर्यकारी है, लेकिन मुझे भी पैसा है । स्तुतिपाठक और लालची कवियों का मुंह काला पड़ गया । राजा भी सब कुछ हँस गए ।

(5) सैनिक तथा अन्य कर्मचारियों के लिए 'पक्कम' में भोजन प्रबन्ध किया गया था । वहीं पाँटिया भोजन ही दिया जाता था । कुंचन इस ... से ऊब गए । राजा से शिकायत करने लायक प्रमुखता इस बात की नहीं । एक की बात है । जब राजा और कुंचन पास पास खड़े बातें कर रहे थे तब उनके पास एक गाय ढीला गोबर डालने लगी । झट कुंचन ने पूछा 'गाय, क्या यह तो बता, तुझे भी भोजन पक्कम में ही क्या ?' राजा ने बात समझी। उस दिन से कुंचन को भोजन का प्रबन्ध राजमहल में ही कराया गया ।

(6) कुंचन और उण्णायिवारियर तिरुवनन्तपुरम में साथ साथ रहे[2] यों इतिहासकारों तथा साहित्यानुसन्धानकर्ताओं का मत है । इन दोनों की मित्रता और सहृदयता को दिखानेवाली कुछ कहानियाँ प्रचलित हैं । एक बार की बात है, दो मित्र एक तालाब के पास खड़े बातें कर रहे थे कि दो औरतें स्नान करने केलिए उसी ... से आती दिखाई पड़ीं । एक तो मालकिन थी और दूसरी नौकरानी । वारियर के मुंह बाहर आया 'कातिलोला' । नंपियार के मुंह से झट बाहर आया नल्लतालि । कातिलोला और नल्लतालि के दृव्यर्थी पद से हास्यसृष्टि होती है । कातिलोला का दो अर्थ है अभिधार्थ है कान में डाले जानेवाला एक आभूषण । उसका व्यंजनार्थ है 'का अतिलो' अर्थात् 'इनमें सुन्दरतर कौन है ?' कुंचन का उत्तर नल्लतालि भी दृव्यर्थक है । अ... धार्थ है बाल साफ करने की यह चीज (तालि) अच्छी है । व्यंजनार्थ है नल्लतु अति... सखि सुन्दरतर है ।

---

1 दीपस्तंभम् महाश्चर्यम्
नमुक्कुम किट्टणम् पणम्
इत्यर्थं एषाम् श्लोकानाम्
अस्तातोन्नुम् न विद्यते ।

2 (क) A Survey of Kerala History. p.288 - A. Sreedhara Me...
(ख) प्रसंगतरंगिणि पृ.132 पी.के.नारायण पिल्ले ।

(7) नंपियार और उण्णाय वार्यर के बीच का और एक हास्यप्रसंग भी याद करने लायक है । एक दिन सबेरे वार्यर जाग उठकर कमरे से बाहर जा रहे थे । कमरे ही लेटे थे नंपियार । जाते वक्त वार्यर का पैर नंपियार के शरीर पर थोड़ा पड़ गया । पर वार्यर ने सुन्दरतापूर्वक यों क्षमा माँगी 'अनजाने की लात को गुरुपाद से जन्य समझ क्षमा करें'। प्रत्युत्पन्नमति कुंचन ने झट उत्तर दिया 'कुछ मिला तो गुरुदक्षिणा ही 'यही है नंपियार का प्रसंगोचित हास्य प्रयोग चातुर्य । यही है न अनुग्रहीत सरस्वती देवि की नाच ?[1]

(8) इन दोनों कवियों के बारे में और एक कहानी भी प्रचलित है । एक दिन राजा मार्त्ताण्डवर्मा ने उन दोनों की सहृदयता की परीक्षा करनी चाही जिस तालाब में वे नहाया करते थे, वहीं महाराजा ने एक हाथी को उतरवा कर कीचड़ जमा करने की आज्ञा दी । रोज के अनुसार, स्नान करके दोनों राजा के आगे प्रकट हुए राजा ने हर एक से पूछा कि उन्होंने कहाँ नहाया । वार्यर ने कहा करी से ललछट चौले गए तालाब में । नंपियार ने कहा कलभ से चौले तालाब में । करी और कलभ हाथी का पर्याय है । करी के दो अर्थ है - कोयला और हाथी । कलभ के दो अर्थ है चन्दन और हाथी । कहा जाता है राजा बहुत सन्तुष्ट हुए ।

कुंचन की कविता के हास्य को देखने के पहले उनके जीवन के हास्यमयी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है[2] । इसलिए हमने उनके विनोदप्रिय व्यक्तित्व पर कुछ ध्यान दिया । यह देखने में कोई देरी न हुई कि कई कहानियाँ कुंचन के विनोदप्रिय व्यक्तित्व के निदर्शक के रूप में अब भी प्रचलित है ।

कुंचन के हास्य की पृष्ठभूमि :- किसी भी बात को हास्यरस के प्रकाश में देखने की आदत कुंचन की थी[3] । अपने हास्यप्रयोगों के कारण ही तुल्लल लोकप्रिय बने । कुंचन ने समाज

---

1 सुकविकैरली - पृ. 155 टी.एम.चुम्मार

2 वडूदेजीवन की ओर की घृणा हृदय में जलती रही, फिर भी उसकी ज्वाला रही हंसी कुंचन और संजयन के जीवन में' । प्रदक्षिणम् पृ. 171 डा वेलनाट्टु अच्युतमेनोन

3 कीसस प्रधान कहानियों में भी उपकथाओं को जोड़कर या शाखा चंक्रमण करके किसी प्रसंग की सृष्टि करके श्रोताओं को हँसाने लायक कुछ प्रस्तुत करके ही कुंचन छोड़ेंगे। साहित्य चरित्रम् - पृ.642 ए.डी.हरिशर्मा प्रस्थानङ्ङलिलूटे

कि अपनी कविता में हास्य व्यंग्य को श्रेष्ठ स्थान देने पर ही वह मामूली जनता के आस्वादन का विषय हो जायगा। यह तथ्य तुल्लल कथाओं में उन्होंने प्रकट की दिया है :-

(1) कलिकाल के प्रेक्षक हास्यपूर्ण कहानियों को ही अच्छी समझेंगे। बड़े, वृद्ध कुलीन, स्त्रियाँ, बच्चे सब हँसने के लिए कुछ है तो कथा सुनने बैठेंगे। अधिकांश लोग यह देखते हैं कि हँसने का उपाय क्या है[1]।

(2) हँसानेवाली कहानी सुनायी जायगी तो भटजन (सैनिक) बैठेंगे नहीं तो चले जायेंगे। मनोरंजन करने केलिए हँसाना ही सरल मार्ग है[2]।

(3) कहानी कहते वक्त कुछ कुछ व्यंग्य भी कसना पड़ेगा। आप लोग इससे नाराज़ न हो जाय। अतः प्रार्थना है आप व्यंग्य बाणों को खुशी के साथ बरदाश्त करें[3]।

(4) हास के लिए एक रास्ता, कहीं कहीं वह भी आवश्यक है[4]।

---

1 कलिकालत्तिलुल्ल कानिकळ्क्कु कथ केट्टाल
कलितमुरसते नन्नु पलर्क्कुमिन्नतन्ने .....
चिरिप्पान संगतियुल्ल कथकळ चोल्लियेंकिल के -
ट्टीटुवानाग्रहमुण्टावेन्नियेः सत्यम केट्टाल
चिरिप्पानेन्तोरु मार्गमेन्नु नोक्कुन्नवरुम्। हनुमदुद्भवं तुल्लल - पृ. 151

2 चिरिक्कुन्न कथकेट्टालिलिक्कुमायतल्लेंकिल
तिरिक्कुमवन्ने भटन्मार् चिलमुन्न बदन्मार
चिरिक्कुते रसिप्पिप्पानोरेळुप्पमेतुतल्ले -
न्निरिक्कुन्नेन्निवन्मारुमन्नमेन्नते वेन्टु। कुचेलवृत्तम् तुल्लल पृ. 573

3 कथयिल संगति वेर्त्तु कथिक्कुम्बोलतिलकूटि
कथिक्कोण्टवुम 'कुत्तुकवित्तुम् चिल विकिल
अतुकोन्टु भवान्मार्क्कु वैरमार्क्कुम् वरिक्कोल्ला
हितमाक्कणमेन्नु सर्वरोटुम् पकुक्कुन्नेन्। पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल - पृ. 607

4 हासत्तिन्नोरु मार्गम् चिल दिक्किलतुम वेणम्।
पंचेन्द्रोपाख्यानम् चिल दिक्किलतुम् वेणम्। पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल पृ. 607

कुंचन के हास्य की पृष्ठभूमि समझने केलिए इनसे ज्यादा उदाहरणों की आवश्यकता भी नहीं । कवि दृढ स्वर में घोषित करते हैं कि कविता में हास्य व्यंग्य अवश्यक है । कवि यह भी बताते हैं कि जानबूझकर किसी की निन्दा करना या और किसी की प्रशंसा करना अपना काम नहीं[1] । हर एक कथा में हास्य प्रयोग की संभावनाओं के बारे में वे पहले ही सोचते थे । नलचरितम् के प्रारंभ में वे यों कहते हैं' एक बड़ी कथा नल का चरित मैं कहूं गा । यद्यपि हास्य की कमी होगी तो भी इससे लाभ यह है कि यह कलियुग की गन्दगी को दूर करेगा[2] । हाथ में पहुंची सारी कथाओं को कुंचन ने अपने काव्य का विषय नहीं बनाया । यह स्पष्ट है कि तुल्लल का हास्य-प्रयोग पूर्वसूचित विशाल योजना का परिणत फल है ।

तत्कालीन सामाजिक जीवन भी कुंचन की हास्यसृष्टि केलिए प्रेरक था। नंपियार के समय का समाज एक ध्वंसक आन्दोलन का सामना कर रहा था[3] । देश भर में संस्कृति का एक प्रकार अधःपतन हो रहा था । राजा सचिवों से आपस में लड लडकर सर्वनाश की ओर बढ रहे थे । समरकोलाहल तथा तज्जन्य सामाजिक अशान्ति जनजीवन और संस्कृति के लिए घातक थे । छोटे छोटे कई राज्यों को मिलाकर तिरुवितांकूर के बनाए जाने से इन राजाओं के आश्रित कई सैनिक बेकार हो गए । सैनिक अधिकांश नायर लोग ही थे । 'जातिगत मिथ्या गर्व के कारण वे और कोई काम करने को तैयार भी नहीं हुए । पुराने प्रभुत्व और प्रताप की कहानियाँ याद करना ही उनका काम रहा । ऐसे जीवन के

---

1 ओरुत्तनेकुं लघुत्वत्ते वरुत्तुवान् मोहमिल्ल
ओरुत्तन्नु प्रियमायिप्परवानुमु भावमिल्ल । पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल पृ. 607

2 चोलियोरु कथयितु नललुटे चरितम्
कलितकुतूहलमुरचेय्तीटाम्
पलितं कुरयुमितेन्निलुमोर्त्तालि
कलिमलहरमेन्नोरु गुणमधिकम् । नलचरितम् तुल्लल - रेड्यार प्रेस पृ. 171

3 मलयालम साहित्य का इतिहास पृ. 110
पी. के. परमेश्वरन नायर

सारे दुर्गुण एक एक होकर उग आये थे । अवज्ञा, ईर्ष्या, अहंभाव, परद्रूषण ये सा के बीच प्रचलित थे । उत्सव, विवाह आदि के समय अपने बड़प्पन का दिखावा उ एक आवश्यकता थी । उसकेलिए एकमात्र रास्ता है । जो पास है उसे मनमाने दा पर बेचना । फिर भी झोसते दुरभिमान के पर्दे को हटाने के लिए वे तैयार नहीं हु इस अपहास्यपरिस्थिति ने कुंचन की विनोदप्रियता को कई विषय दिए थे[1] ।

उन दिनों सरकारी नौकरी की बड़ी प्रधानता मिली । ऐसी परिस्थिति आ गयी कि [illegible] राजकर्मचारी या सरकारी अफसरों का मुँह ताकने पर ही बातें बढ़ेंगी । नीति और न्याय उनके हाथों में था । रिश्वत जैसा भ्रष्टाचार मामूली बना । कुंचन इन परिस्थितियों को क्रोध से ही देखते रहे होंगे । अव्यवस्थिति इन परिस्थितियों ने कई स्वार्थियों को अच्छा अवसर दिया । पैतोक धनरूप धन की लेनदे केलिए ब्राह्मण भी आ गए । समाज में प्रभुजनों की ही तूती बोलती थी । उसी अनुसार सामाजिक व्यवस्थिति भी कायम थी । कुंचन का ध्यान उनके अधःपतन की ओ ही ज्यादा आकर्षित हुआ । इस प्रकार 'नंपियार की सहज विनोदी वृत्ति कोउद्दीपित करने लायक परिस्थितियाँ सब कहीं व्याप्त थी[2] ।

कुंचन की हास्यसृष्टि केलिए प्रेरक और एक बात भी ध्यान देने योग्य है और वह है चाक्यारों के कूत्तु[3] से उनका निरंतर संबन्ध । पुराणों की कथाओं व सामयिक परिस्थितियों से सम्बन्ध जोड़कर परिहास रस में सनी रीति में कथा कहनेवाले चाक्यारों की हास्यसृष्टि कुंचन के लिए प्रेरक जरूर रही । हास्य की शक्ति के बोध का उनको उसीसे मिला । सार्वजनिक क्षेत्र में तीखे व्यंग्य से चीरफाड़ कूत्तु की शक्ति से उन्होंने अनुभव किया । समाज सुधार की इच्छा से पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर प्रचलित कुरीतियों का मनोरंजक किन्तु तीखी भाषा में खंडन करने की चाक्यार की हास्यकला को ही कुंचन ने अपनाया[4] ।

---

1 कुलपितक्कल - पृ. 56-57
2 मलयालम साहित्य का इतिहास पृ. 110 पी. के. परमेश्वरन नायर
3 चाक्यार एक जातिविशेष है जो पुराने समय से ही पौराणिक कथाओं का हास्य व्यं और अभिनय के साथ केरल में कथन किया करते थे । उनके कथानक को कूत्तु पु है ।
4 कुंचन ने चाक्यार की रूढ़ियों को अपनी हास्य रचना में सजीव बना डाला । मातृभूमि विशेषांक 1973 - 'कुंचन का हास्य' नामक लेख - डा. के. एन. एषुत्तच्छ

कुंचन के हास्य की नींव केरलीयता है - जब तुल्लल कथाओं में प्रेक्षक और श्रोता नटजनों के लिए हास्यसामग्री बिखर डालने का निश्चय कुंचन ने किया तब उनको तदनुसार पौराणिक कथाओं में सुधार लाना पड़ा[1]। शकुन, नल, दुर्योधन लीलावती सब की कथाओं में ये केरल की मामूली जनता के लिए मनोरंजक बातें ढूंढ निकालना मुश्किल था। कथायें घटित हुई अन्य देशों में - वह भी कई वर्षों के पहले-याने ऐतिहासिक काल में उन दिनों की बातें कौन जानता है? उन देशों को किसने देखा है? उस समय की जनता कैसी थी? कौन ये सब जानते थे ?

इस समस्या का उचित समाधान कुंचन ने ढूंढ निकाला - वह था प्रमुख पात्रों को ठीक यहीं केरल में लाना। राजा के सिपाहियों के रूप में अम्पलपुषा के 'नायर' लोगों को नियुक्त करना, लकड़ी बटोरना, पानी लाना, युद्ध के लिए जाना सब केलिए अनुयोज्य स्त्री और पुरुष - नायर, नम्पूतिरि, पट्टर सब जाति के लोग - यहां यथेष्ट है। व्यक्ति का नाम बिना बदले घर का नाम और पता बदलना, यही थी कुंचन की कुशलता[2]। सारी कथायें केरल में घटित होती है, कथापात्रों के रूप अपने समकालीन लोग लेते है, उनकी बेवकूफियों पर कुंचन इशारा करते है, वे हंसते है। हां। केरलीयता नामक एक शब्द में कुंचन की हास्यकला को समेट सकते है।

- -

1 यद्यपि पुराणों की कथाओं को ही उन्होंने अपनी कविता का प्रतिपाद्य बनाया तो भी उनकी गति कुछ नवीन प्रकार की थी जिसका प्रयोग उनके पहले अन्य किसी कवि ने नहीं किया था। मलयालम साहित्य का इतिहास पृ. 111 पी.के.परमेश्वरन नायर

2 (1) पौराणिक कथापात्रों तथा प्रसंगों को स्वकृति में चित्रण करते समय उसमें केरलीयता का आरोप कर स्वाभाव्य संपादन करने में कुंचन उत्सुक दिखाई पड़ते है। स्वानुभवों आश्रय के लिए पौराणिक पात्रों का केरलीकरण नंपियार कविता की एक आवश्यकता थी। कुंचन नंपियार - पृ. 120 एम.आर.बालकृष्णवारियर

(2) तुल्लल की केरलीयता और हास्य भावना विशेष आदर के अधिकारी है। इन के बीच चीनी और मिठास का दृढ बन्ध है। प्रदक्षिणम् पृ. 182 डा.चेत्तनाट्टु अच्युत मेनोन

(3) सब कहीं देखी आनेवाली यह केरलीयता ही नंपियार के हास्य का व्यक्तित्व है कुलपतिकल - पृ. 63 सायाट्टु शंकरन

कुछ समालोचकों का विश्वास है कि 'इस प्रकार कथापात्रों को वे केरलीय न बनाते तो तुल्लल कथाओं में आज अनुभव वैद्य हास्यरस शायद ही इससे प्राप्त होगा[1]। नंपिय को तुल्लल कविता ने ही नंपियार बनाया। तुल्लल कविता को तुल्लल कविता बना डाला उसके हास्य ने। उस हास्य की नींव थी केरलीयता में। इस प्रकार केरलीय कुंचन की कविता की जड बन जाती है।

डा. चेलनाट्ट अच्युत मेनोन के अनुसार 'तुल्ललों का केरलीयत्व उसके हास्य का एक भाग है। आगे बैठे मामूली लोगों को हँसाकर सोचने देना कुंचन का लक्ष्य था। चारों ओर की कुरूपता और असंगत्य की प्रासंगिक रूप में आलो करें तो भी हँसी उमड पडेगी। केरल का बडा खाना स्वर्ग लोक में भी इसलिए ही दिखाई पडता है। आलोचना समकालीन जीवन पर थी न ? समाज का प्रतिबिंबित न होना भी ऐसी परिस्थिति में असंभव था[2]।

पुराणों के पुरुषों और स्त्रियों को उन्होंने केरल के ही पुरुषों और मित्र स्त्रियों के रूप में चित्रित किया है। हस्तिनपुर, इन्द्रप्रस्थ, द्वारका, निषधराज्य वैकुण्ठधाम इन सबका उन्होंने केरलीय नमूने में वर्णन किया है। यह सुनकर ऐसा ल कि केरल के एक शहर या गाँव का वर्णन कर रहे हैं। उन दिनों के केरल के मुख्य सामन्त राजाओं के प्रतिबिंब ही उनके अपने रावण तथा दुर्योधन हैं[3]। उनके द्वारा जुलूस, विवाहोत्सव, भोज, युद्ध आदि सब कुछ केरलीय जनता केलिए परिचित है।

पुराणकथाओं के साथ अपने दैनिक अनुभवों का सामंजस्य करके कविता करते थे[4]। कुछ समालोचकों की राय है कि नंपियार ने स्वर्ग, नरक आदि के करते समय केरल देश की दशा तथा लोगों का स्वभाव आदि का चित्रण परोक्ष रूप से किया है।

- -

1 नंपियारुम् तुल्लल साहित्यवुम् - पृ. 239 एन्. परमेश्वरन

2 प्रबंधिणम् - पृ. 195 डा. चेलनाट्ट् अच्युतमेनोन

3 मलयालम साहित्य का इतिहास पृ. 111 पी. के. परमेश्वरन नायर

4 हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य - पृ. 289 डा. के. भास्करन नायर

श्री. पी. के. परमेश्वरन नायर ने अपने और एक समीक्षाग्रन्थ में इस वैशिष्ट्य पर यों प्रकाश डाला है । 'अपने आगे उत्कण्ठाकुल बैठे रसिकों से नंपियार ने कहानी कही थी, अतः ऐसी एक सभा की उचित कथाओं को उन्होंने चुना और उन्हें सजाया । पौराणिक पात्रों को समकालीन केरलीय कथापात्रों के रूप में उन्होंने परिवर्तित किया । नाम तो पौराणिक ही है, लेकिन आकृति स्वभाव विशेषतायें बिलकुल केरलीय दुर्योधन एक धूर्त केरलीय सरदार बना । उर्वशी और मेनका की बातचीत केरलीय स्त्रियों की बातचीत ही है । नायर, नंपूतिरि ब्राह्मण आदियों से न भी कोई उसका वैकल्प नहीं[1] ।

कुंचन के हास्य की विशेषताएं - कुंचन के हास्य की विशेषता पर प्रसिद्ध समालोचक पी. के. परमेश्वरन नायर का मत यों है 'चाहे किसी भी चीज़ का वर्णन हो, वर्णित वस्तु के असामंजस्य तथा विकृतियों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने की नंपियार में असाधारण क्षमता ऐसे प्रसंगों का स्वानुभूत सामाजिक शैली के साथ उन्हें बंधवृद्ध करके वर्णन करना नंपियार की विशेषता है[2] । डा. के. भास्करन नायर के मतानुसार उनकी आदर्श बुद्धि, कारुणिक सहानुभूति तथा हास्यास्पद शैली को चुनने की शक्ति ही नंपियार के हास्य की विशेषता[3] डा. अच्युतमेनोन नंपियार के हास्य की 'सार्वजनिकता तथा चिरन्तनता' को उसकी विशेषता मानते हैं[4] । इन मतों की पृष्ठभूमि पर कुंचन की हास्यकला की विशेषताएं यों वर्गीकरण के अन्तर्गत रखी जा सकती है ।-

- -

1 आधुनिक मलयाल साहित्यम् , भाग - 1 पृ. 94 पी. के. परमेश्वरन नायर

2 मलयालम साहित्य का इतिहास - पृ. 113 पी. के. परमेश्वरन नायर

3 हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति काव्य - पृ. 307 डा. के. भास्करन नायर

4 नंपियार का हास साहित्य सब कालों के लिए सब लोगों के लिए है - यह और एक विशेषता है ।

प्रदक्षिणम् - पृ. 185 डा. चेलनाट्टु अच्युत मेनोन

(1) समाजसुधार का माध्यम

(2) कारुणिक सहानुभूति

(3) व्यष्टि पर नहीं समष्टि पर हास्य

(4) हास्यास्पद अंशों को चुनने की क्षमता

(5) आत्मपरिहास

अब हम हर एक को लेंगे ।-

(1) समाजसुधार का माध्यम - समाजसुधार की उत्कट इच्छा ही नंपियार के हास्य में प्रकट होती है । वे कविता के द्वारा समाज की कुरीतियों को दूर करने के प्रशस्त ध्येय पर सदैव अटल रहे । वे किसी को छोड़ते नहीं, चाहे राजा हो या जमीन्दार, जागीरदार, पुजारी, कर्मचारी या गाँव का मुखिया या स्त्रियाँ कोई भी हो जहाँ उन्हें दुर्गुण दिखाई देता है उसी को काव्य का विषय बनाकर सुधारने की कोशिश करते थे[1] ।
इस प्रसंग पर साहित्य के इतिहासकार महाकवि उल्लूर का कथन भी स्मरणीय है 'मध्यम पात्रों तथा अधमपात्रों की नीचवृत्तियों को ताकते रहकर उसका चित्रण ही कुंचन ने किया है । कामक्रोध लोभमोह मद मात्सर्य आदि सब दुर्गुणों के आवरण को हटा कर उन्हें संसार के आगे नंगे रूप में प्रकट करके व्यंग्य बाणों से मारने में उन्होंने सफलता पायी है[2] ।

---

1 (क) समाज के सदस्यों के बीच प्रकट चपलताओं तथा कुचेष्टितों की हँसी उड़ाकर उसके द्वारा समाज के शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए ही नंपियार ने हास्य का प्रयोग किया है ।

नलचरितम् ओट्टन्तुल्लल की पीठिका पृ.××। ए.डी.हरिशर्मा

(ख) अपने हास्यप्रयोगों द्वारा लोगों का मनोरंजन करना मात्र नंपियार का लक्ष्य न रहा, कुछ कुछ बातों में उनको उपदेश देना भी उनका उद्देश रहा ।

उपन्यास मंजरि - पृ 61 - (तुल्ललकथायें नामक लेख से)

के.शंकर पिल्लै ।

2

2 केरल साहित्य चरित्रम् - पृ.420 उल्लूर

'सामाजिक जीवन की नाली से गंदे पानी को दूर करने का काम ही उन्होंने किया ।[1]

स्पष्ट है कि कुंचन का उद्देश्य मनोरंजन के साथ उपदेश देना था । उन्होंने समकालीन परिस्थितियों का वर्णन पौराणिक कथा पात्रों का आश्रय लेकर कि है[2] । कल्याण-सौगन्धिकम् नामक पुस्तक में कवि ने भीमसेन का चित्रण अच्छे ढंग से कि है[3] । पांचाली को सौगन्धिक पुष्प पाने की बड़ी इच्छा हुई । स्त्री-सहज सामर्थ्य से अ इच्छा वह अपने पति भीमसेन के सामने प्रकट करती है । दुःखदायक वनवासकाल में पांचाली की पुष्पाभिलाषा उपहास के योग्य है । स्त्रियों के मन में दुःख के समय भी ऐ औचित्यहीन अभिलाषा का होना सहज है । स्त्रीस्वभाव की चंचलता का ज्वलंत उदाह है यह । कामवती कामिनी बनकर वह भीमसेन के पास जाकर प्रार्थना करती है । व अच्छी तरह जानती है कि आत्मस्तुति करनेवाले घमंडी पति की दुर्बलता कहाँ है । पर वह भीम की वीरता की प्रशंसा करती है । सचमुच यह नय चतुरा स्त्री का फैला जाल है । उसे सुनकर भीम सब कुछ करने केलिए तैयार हो जाता है । वह नहीं सोचता पांचाली क्या कहती है और उसे सफल करने के लिए कितनी तकलीफों का सामना करना पड़ेगा । पांचाली ने पहले ही जान लिया होगा कि जिस बात के लिए वह प्रार्थना करती है, उसे पूरा करना बहुत मुश्किल है । इसीलिए उसने पहले ही मोहिनी मंत्र से

- -

1 कुलपतिकल - पृ.71 तायाट्टु शंकरन

2 नंपियार के परिहास शास्त्र में कोई भी जन-विभाग उन दिनों देश में बचा नहीं फिर भी उसके व्यंग्य बाणों के तीक्ष्ण आघात के विशेष पात्र देश के रईस ही बने थे । नंपियार के जनतांत्रिक चिन्तन एवं मनोवृत्तियों का यह भी एक प्रमाण है साधारण जनता में भी जहाँ कहीं कोई दोष पाया जाता था, वहाँ वे उसकी अ अवश्य करते थे और उन पर भी परिहास बाण छोड़ते थे । अक्सर राजधानों व कोविलकों (राजमहलों) में ही उनका जीवन व्यतीत होता था, और इसीलिए वास्तव में सतर्क रहना पड़ता था । यही कारण रहा होगा कि उन्हें समकाली की आलोचना करने केलिए पौराणिक पात्रों का बहाना लेना पड़ा ।

मलयालम साहित्य का इतिहास पृ.115 पी.के.परमेश्वरन नायर

3 मध्यपात्र तथा अधमपात्रों की नीच वृत्तियों को ताकते रहकर प्रस्तुत करना ही किया है । काम-क्रोध लोभ मोह और मदमात्सर्य के इन दुर्गुणों के आवरण को उनको संसार के आगे नंगे प्रकट करके व्यंग्य बाणों से मारने में कुंचन ने सफ की है । केरल साहित्य चरित्रम् - उल्लूर पृ.420

प्रभावित करके अपनी इच्छा के अनुरूप सब कुछ करने का वचन उनसे ले लिया ।
स्त्री के वचन सुनकर जड बुद्धिवाला भीम उसकी आज्ञा की पूर्ति के लिए तैयार होता है पहिले उसका जो अहंकार था, वह सौ गुना बढ गया । वह यही सोचता है कि सारे संसार को जीतने की शक्ति मुझमें है । बिना सोचे-विचारे अपनी स्त्री की क्षुद्र अभिलाषा की पूर्ति केलिए भीम रवाना हुआ । हाथ में गदा लेकर गर्जन करते हुए रास्ते के वृक्षों को तोडते मोडते हुए अहंभाव की सजीव मूर्ति बनकर वह आगे बढता है । उसका अहंकार चरमसीमा पर जा पहुँचा । जाते समय रास्ते में एक बूढे रोगी बन्दर को पडा देखा । उसका चित्र यों है :- 'उस बन्दर के हाथ पैर शिथिल थे, पूँछ बहुत पतली थी । हमेशा वह अपने शरीर को खुजलाता रहता था । उसके शरीर में हड्डी भर रह गयी थी । देखने की शक्ति भी उसमें नहीं थी । आँखें कीचड से भरी हुई थी ।[1]

अहंभावी भीम उस बूढे तुच्छ जीव को भी नहीं छोडता । वह कहता है "रे मूर्ख । मेरे रास्ते से हट जा । दुष्ट उठो । तब वह बन्दर गिडगिडाकर प्रार्थना करता है कि मुझे मत छेडिए और जरा हटाकर जाइएगा । बन्दर के ये वचन सुनकर भीम अहंकार के मारे आपेसे बाहर हो जाता है तथा आधकाधिक क्रोध दिखाने लगता है । सशक्त का धर्म है दुर्बलों की सहायता करना[2] । यहाँ सहायता तो दूर, धमकी ही देने लगता है । अपने अहंभाव के कारण ही वह यों करने लगता है । उस ~~अहंभाव के कारण ही यों करने~~ समय वह बूढे बन्दर, जो हनुमान जी थे और अपने भाई की शक्ति की परीक्षा करने केलिए कपटवेष धारण करके वहाँ पडे थे, पाण्डवों की धर्म शक्ति और शूरता की बातें आदि बडे विनम्र शब्दों में वर्णन कर उनकी बडी आलोचना करते हैं । ये व्यंग्य बाण भीम के हृदय में चुभ जाते हैं । हनुमान पूछते हैं " भरी सभा में जब तुम्हारी प्यारी पांचाली को दुशासन ने चोटी पकडकर खींचा और धकेल दिया तब तुम्हारा

- -

1 कैक्कनु कालु कुजन्नु वालुमकालु मेलिन्नु कैक्कोण्टु
चोरिन्नु रोम मेय्येंगु कोजिन्नु मेनियु चुक्कि चुलिन्नु
कण्णनु कांचुक कुरन्नु पीलयु कन्नु निरन्नु — कल्याणसौगन्धिकं तुल्लल पृ. 86

2 The strong must spare the weak.

वह बल कहाँ गया था ? वह बहादुरी क्या कहाँ गयी थी? आगे की छटपट में क
की पूछ को हिला तक देने में जब वह असमर्थ निकलता है तब उसे बुरी तरह लज्जित पड़ता है । अपने को बड़ा शूरवीर माननेवाला भीम ने पहले समझा था कि सारे संसा तहस नहस करने की शक्ति उसमें है । वही घमंडी भीम एक बूढ़े बन्दर की पूछ को हटाना तो दूर उसे हिला सकने में भी असफल निकलता है । अहंकार के उच्च शिखर प आसीन भीम को अपमान रूपी गढ्ढे में बुरी तरह गिरना पड़ा । छोटे भाई को एक प पढ़ाकर उसके अहंभाव को दूर करना ही हनुमान का लक्ष्य है[1] । दुर्भेद रूपी अन्धकार में वालों का अहंकार भीमसेन जैसे पात्र के द्वारा दूर करने में श्री नंपियार सफल होते हैं ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि 'नंपियार की 'तुल्लल' पद्धति अनुसार लिखी हुई कविताओं का प्रधान विषय अहंकारशामन है[2] । कल्याणसौगन्धिकम् में भीमसेन का अहंकार, कार्त्तवीर्यार्जुन विजयम् में रावण की मानहानि, किरात तथा स गोपालम् में अर्जुन का घमंड, सभा प्रवेशम् में दुर्योधन का अहंकार, गणपतिप्रातल में व का अहंकार आदि के नाश का सबसे सरस वर्णन कवि ने किया है[3] ।

लोभ और अहंभाव में पड़कर मनुष्य अपनी असली स्थिति को छि चाहता है । यह इच्छा नैसर्गिक रूप से हम सभी मनुष्यों में देखते हैं । काम क्रो मद मोह मात्सर्य में फंसा हुआ मनुष्य जब अपनी असली हालत को छिपाने का प्रयत्न लगता है तब वह परिहास के योग्य बनता है । नंपियार ने इसका अच्छा उपयोग भी किया है ।

---

1 पाँच मुर्गों की चोंचों की डंस पानेवाली एक मुर्गी को खुश करने के लिए किसी ज पुष्प की तलाश में दौड़नेवाले एक छोटे भाई के प्रति एक नित्य ब्रह्मचारि बड़े अनुभववेद्य स्नेहपूर्ण निन्दा भी यही है । हास्यप्रकाशम् - पृ 286
कुंचन के आंसू नामक लेख से - प्रो.सी.आर.केरलवर्मा

2 श्री.कुंचन नंपियार - सं.बालकृष्ण वारियर पृ.248

3 कुंचन की कथाओं में अधिकांश अहंभावशामन की है । कुबेर का गर्व भंग है गणप भोजन में अर्जुन का अहंकार शमन है किरात और संतानगोपालम् में, गरुड़ के घम कम करना है रामानुचरितम् में, लेकिन यह अहंकारशामन प्यार द्वारा है ।
हास्यप्रकाशम् - पृ.247 - कुंचन के आंसू नामक लेख से - प्रो.सी.आर.केरलवर्मा

'समाजसुधार के विचार से हास्यसोद्दीपक कई उपकथाएं तुल्लल कथाओं में जोड़कर कुंचन ने अपनी कविता को सजाया । लेकिन ऐसे हास्यप्रसंग केवल के लिए बनाएं गए नहीं, जनता में गुणदोषविचार लाकर विवेक और सन्मार्गनिष्ठा उन लाना भी कवि का लक्ष्य रहा'[1] यही इस विषय पर श्री पी. के. नारायणपिल्लै का मत जो कुंचन के बड़े समालोचक थे । और एक आलोचक श्री. पी. के. परमेश्वरन नायर के श मे 'जमीन्दार वर्ग के चारित्रिक पतन पर नंपियार दुखी हुए थे । हास्यमय रूप में उ उसे चित्रित किया, तीखे रूप मे उसकी आलोचना की । निरक्षरी तथा अशिक्षित मामूली जनता को कविता के द्वारा सभ्य तथा बोधयुक्त बनाने की कोशिश उन्होंने की[2] । पुराण पुरुषों के बहाने उन्होंने प्रभुवर्ग की आलोचना की । एक गाँविष्ठ केरलीय जमीन्द को ही हम पाण्डवराजधानी देखने केलिए निकलनेवाले दुर्योधन मे हम देखते है । ए. टि. हरिशर्मा के मतानुसार 'समाज के अंगो के बीच प्रकट चपलता और कुचेष्टाओं की हंसी उडाकर उनके द्वारा उनको मिटाकर समाज रूपी शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए नंपियार ने हास्य का प्रयोग किया है । धन लोभ, अहंभाव, ईर्ष्या, कपट आदि दुर्गुणों की हंसी सब कहीं उन्होंने किया[3] । दोषों और कमियों को मिटाने के उद्देश से नंपियार ने उनकी हंसी उडायी ।

<u>(2) कारुणिक सहानुभूति</u> - सहानुभूति पूर्ण हंसी ही उत्तम हंसी मानी जाती है[4] । हंसी कुंचन का एक हथियार मात्र थी । वे अच्छी तरह जानते थे कि हंसी की लहर के समुद्र के उपरी तल पर ही मारेंगे[5] । कुंचन को चमत्कार के हथियार से ही चमत्कार कं हटाना था ।

1 कुंचन नंपियार - पृ. 75 - पी. के. नारायण पिल्लै
2 आधुनिक मलयाल साहित्यम् - भाग ४ । पृ. 94 पी. के. परमेश्वरन नायर
3 नलचरितं ओट्टन तुल्लल पृ. xx । सं. ए. डी. हरिशर्मा
4 .... at its highest reach, when humour reflects the inc gruity of life itself our human lot ... between the fav and fret of life and the final calm of death.... It rep anooutlook upon life...in which is contrasted the fever fret of our early lot with its short comings and its lo illusions and its enevitable end....Thus does life, if look at it from sufficient distance disolves itself int humour. Stephen Leacock.
5 यहां कवि के अधरों पर हंसी है, आंखों मे आंसु भी । विमर्श वीथि - पृ. 1(प्रो. के. एम. डानियल

कुंचन के हास्यों में अधिकतर सहानुभूतिपूर्ण है ।

कल्याणसौगन्धिकम् तो भीम के अहंकारशमन की कहानी है । लेकिन उस कहानी का हृदय क्या है ? अपने छोटे भाई को असमंजस में पड़ाकर उस पर मनो करने की विनोदी मनोवृत्ति भी बड़ा नहीं । लेकिन कथा को चरम बनानेवाला तथा क सब कहीं तड़पनेवाली है एक बड़े भाई का छोटे भाई के प्रति प्यार और सहानुभूति । प्यार को कुछ समय तक स्थगित करके बांधकर, फिर उस बांध को टूटने देकर उस स्नेह त स्नेहधारा को अनुभव करके रख लेना, यही सचमुच हनुमान करता है । अंत में दोनों भाइयों के गले लगना तथा दोनों की आंखों से स्नेहाश्रु के टपकने का वह भाव कुंचन ने मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है[1] ।

कुंचन से चित्रित कई प्रसंगों में यह सहानुभूति स्पष्ट है । शत्रु से भयभीत होकर दौड़नेवाला एक कायर नायर सिपाही जंगल में शिकारियों से फैलाए हुए एक जाल में जाकर गिरा । उसे हरिण समझकर शिकारी ने बाण भेजा जो उसके सिर पर घुस गया । शिकारी ने आकर देखा क्या, वह हरिण नहीं, एक हट्टा कट्टा मनुष्य, मलयालम देश का एक मानव । शिकारी ने उसे जाल से स्वतंत्र किया और धीरे धीरे सिर से बाण ले लिया[2] । कुंचन को उस डरपोक नायर सिपाही से सहानुभूति नहीं तो वह बाण का लेना धीरे धीरे न होता ।

नालायनी चरितम् में भी हम यही देख सकते हैं । नालायनी सं सुन्दरियों की रानी है, नवयुवति है, लेकिन उसका पति तो बूढ़ा कुष्ठरोगी है । जित भी वह पतिव्रता पति की सेवाशुश्रूषा करती है उतना वह उसे गालियां ही पुकारेगा क्रुद्ध होगा । इन सबके होने पर भी वह पतिव्रता ही है । पति की इच्छा के

---

1 मर्तवाल्स्नलेट्टु बट्टु केट्टिट
....
मुर्देर्यावु तोट्टश्रुग्राहिच्चीटिनान । — कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ. 89

2 बलयिल पेट्टतु कन्टोर, वेटन
....
तलयील्निन्नु पतिये बाण वेटन । — घोषयात्रा तुल्लल पृ. 34

अनुसार वह मक्खियों को दूर हटाती है, उसकी कई प्रकार की सेवा शुश्रूषा करती है। अन्त में उसके साथ सहशयन भी करती है[1]।

'वह मक्खियों का दूर हटाना' - हृदयहीन और सहृदय दोनों में यह हंसी उत्पन्न होगा। लेकिन भावुक हृदयों में यह हास्य करुणरस की शक्ति को बढ़ाता ही है।

अन्तकवधम् में भी ऐसा एक प्रसंग है। सन्तानविहीन मृकण्डु तथा पत्नी ने सन्तानलाभ के लिए तप शुरू किया। अन्त में उनसे वरदान के रूप में पूछा गया 'चिरंजीवि होनेवाले सौ बुरे बच्चे मिले या साधु और सोलहवीं उम्र में मरनेवाला एक बच्चे मिले। लेकिन आज के पारिवारिक योजना काल में भी और कोई होगा तो बु... कर कहेंगे 'सौ' लेकिन मुनि और पत्नी ने कहा 'एक'। लेकिन बाद को जब अकाल मृत्यु की चिन्ता आयी तब उन्हें लगा कि उन्होंने गलती ही की। बालक की बाललीला देख कर हम पाठक और माता पिता बाहर बाहर हंसते रहे लेकिन मन ही मन दुख पाते रहे। [illegible] बच्चा नटखट होकर खेल रहा है, अपनी वाणी तथा प्रवृत्तियों से माता पिता का मनोरंजन करता है, लेकिन पीछे मृत्यु का वर्तन है। मृत्यु रूपी साँप के फन की छाया में मार्कण्डेय की बाललीला हो रही है।

अन्त में सोलह वर्ष की आयु पूर्ण हुई। दण्डपाणी यमदेव को पास देखकर तथा माता से बातें समझकर दृढ मानसी होने पर भी मार्कण्डेय दौड़ने लगा[2]। आखिर वह भी मानव ठहरा न ? कुंचन इस सोलह वर्ष की आयुवाले को बालक बनाते हैं। तभी पाठकों की सहानुभूति अधिकाधिक मार्कण्डेये के साथ रहेगी। मृत्यु के आगे सोलह वर्ष की आयु का मनुष्य तथा नब्बे वर्ष की आयु का व्यक्ति दोनों बालक हैं, यह भी याद करने लायक है।

जब मार्कण्डेय दौड़ता है, तब हम सब उसके साथ दौड़ते हैं। आखिर यह जीवन तो मृत्यु से दूर जाने की एक वाम दौड़ मात्र है। मानव जीवन

- -

1 ह्र छयोल केयनुर्साल घर्वर्तीजयाटि्ट वांसवक्युम् ....पतियोट्केन्नु शयिक्युम्
नालायणी चरितम् - 59

2 उण्णी । मकने कुमारा मनोहरा
वन्नु मायन्तकनुम्‌ निन्नन्तिकें' अन्तकवधम् - 68

का इससे बढकर वर्णन कहाँ हो सकता है? मधुशाला, सिनेमाथियेटर तथा अन्त में अस्पताल को भागदौड करके मृत्यु से रक्षा पाने का श्रम करनेवाला आधुनिक मनुष्य भी स मार्कण्डेय ही है । मार्कण्डेय की भागदौड में हम हास्य का अनुभव करते हैं । अ आगे मार्कण्डेय और पीछे पीछे यमदेव । लेकिन इस हास्य के अन्दर सब कहें तो सहानु ही भरी रहती है ।

स्यमन्तकम् तुल्लल में भी ऐसा एक प्रसंग हम देख सकते हैं । सब कहीं यह वार्ता फैल गयी है कि श्रीकृष्ण ने स्यमन्तक रत्न की चोरी की है और इस च के लिए उन्होंने प्रसेनन की हत्या भी की है । श्रीकृष्ण के बचपन की चोरियों के बारे मे जाननेवाले लोगों ने इस बात में कोई अस्वाभाविकता भी नहीं देखी । और लोगों से की गयी गलती की सजा श्रीकृष्ण को ही मिलती है । इसपर श्रीकृष्ण के दुख का वर्णन सहानुभूतिपूर्ण हास्य के साथ ही कुंचन ने चित्रित किया है[1] । श्रीकृष्ण को दूर से देखते ही बच्चे दौड जाकर कहीं छिपने लगे । श्रीकृष्ण के पास बुलाने पर वे अपना 'मणि'[2] हाथ से छिपाकर भागने लगे । जब श्रीकृष्ण अनुनय के साथ उनके पास जाकर हाथ को पकडते थे तब वे रोते रहे । उनको अपनी ओर आकर्षित करने के लिए जब श्रीकृष्ण कुछ फल या मिठाई देने लगे तब वे कहने लगे कि वे स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि माता क्रुद्ध होगी । बात यह है कि हर एक माता ने अपने बच्चे को यह उपदेश दिया होगा 'कृष्ण बडा चोर है, उसके पास मत जाना । वह तुम्हारी हत्या कर डालेगा । फल, मिठाई आदि दिखाकर अपनी ओर तुम्हें आकर्षित करने की कोशिश करेगा । उस जाल में

- -

1 अच्चनने कण्टुन्न नेरम कोच्चुकुट्टिकळोक्कॆयुम् तुडङ्ङी
अम्पलक्कॆट्टिलिल् कुन्न नेरम् मणियुम् पोत्ति पा तुटङ्ङी
कय्येत्तुम् पिटिक्कुन्ननेरम् अय्योयेन्नु कर तुटङ्ङी
तिरु मानायिट्टुटयुम् पऴवुम् सम्मानिप्पान् तुनियुन्न नेरम् ।
अम्म कयर्क्कुम् मेटिच्चालेन्नाक्कुन्नल पर तुटङ्ङी । स्यमन्तकम् तुल्लल - 103

2 मलयालम में मणि के तीन अर्थ हैं - घंटी, रत्न और अण्ड । बच्चों ने सुना कि 'म 'मणि' के लिए कृष्ण ने प्रसेनन को मारा । उन्होंने बालसहज ज्ञान से ही यही समझ लिया कि उन अण्डों के लिए कृष्ण ने प्रसेनन को मारा । अतः कृष्ण को देखते ही अपने अण्डों को हस्त द्वारा छिपाते हुए दौड़े ।

मत कूदना'। श्रीकृष्ण की इस विवशता हास्यसृष्टि करती है। लेकिन उस हास्य में एक सहानुभूति हम अनुभव करेंगे। सब से अधिक बच्चों को प्यार करनेवाले, इस स के श्रेष्ठतम बाललीला के नायक एक व्यक्ति को यह कितना दुःखदायक होगा ?

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुंचन के हास्य की एक विशेषता उ निहित कारुणिक सहानुभूति है[1]। श्री तायाट्टु शंकरन का इस कथन से हम भी सहमत होते हैं 'उन दिनों में सर्वसाधारण से भिन्नाई पढनेवाले सब लोगों पर उन्होंने व्यंग्यबाण चलाया है। इन बाणों का अग्र भाग पर नहीं सहानुभूति में वे डुबो देते थे[2]।

(3) हास्य व्यष्टि पर नहीं, समष्टि पर :- 'व्यक्ति तथा समाज से विद्वेष-वमन करना कुंचन का लक्ष्य न रहा। उनका हास्य व्यक्तिविशेष पर आक्रमण न करता रहा, लेकिन वर्गविशेष को उन्होंने छोड़ा नहीं[3]।

उन्हें नायर से घृणा नहीं, नायर की कायरता से घृणा है, ब्राह्मण से घृणा नहीं, ब्राह्मण की लालच से घृणा है, मांत्रिक, वैद्य, ज्योतिषि किसी से भी घृणा नहीं लेकिन घृणा है उनकी छलकपटता से।

आलोचना की कर्कशता तथा हास्य की प्रसन्नता का संगम कुंचन में है। जब वे हंसते हंसते मार करते हैं तब समाज भी साथ हंसता है न कि प्रतीकार भावना के साथ रहता है। यही चाक्यार के हास्य और नंपियार के हास्य की फरक है। चाक्यार का हास्य-व्यंग्य अधिकतर व्यक्तिनिष्ठ है, लेकिन नंपियार वर्गविशेष पर ही हास्यव्यंग्यकरते है।

(4) हास्यास्पद अंशों को चुनने की अद्भुत क्षमता - मनोविनोद और व्यंग्य के समन्वय से हास्यरस की उत्पत्ति होती है। यह आवश्यक नहीं कि ये दोनों सन्तुलित मात्रा में हो। जो हास्यरस की कवितायें लिखते हैं वे स्वभावतः दूसरों की दुर्बलताओं को शीघ्र ही समझ लेते हैं। रसिकता, कुशाग्रबुद्धि, उदारता, जीवन का ठोस अनुभव इन सबों

---

1 नंपियार का हास्य मानवसमाज की ओर की सहानुभूति से उत्पन्न है। प्रबंधिनम् पृ. 184 डा. वेलनाट्टु अच्युतमेनोन

2 कुलपतिकल - पृ. 65 तायाट्टु शंकरन्

3 प्रबंधिनम् - पृ. 186 डा. वेलनाट्टु अच्यु मेनोन

कारण ही हास्यास्पद अंशों को चुनने की अद्भुत क्षमता हास्यकार को मिलती है । यह गुण आवश्यकता से अधिक मात्रा में नंपियार में मौजूद था भी[1] । 'जिन बातों के कथन करने से एक चीज़ या घटना में हास्यबोध होगा, उसे ढूंढ निकालने की बात में नंपियर की एक अलग क्षमता थी[2] ।

बालयुद्धम में बालवानरों का वर्णन करते समय उनके इधर उधर पूंछ उठाकर चलने, फल चबाते चलने, स्त्रियों को दांत दिखाते रहने - इन सबका वर्णन नंपियार करते हैं[3] । कुंभकर्ण के निद्राभंग के लिए उसके नासिकाद्वारों में सीसा (lead) गलाकर डाले जाने का वर्णन भी कुंचन करते हैं[4] । ऐरावतपूजा में अर्जुन के बाणों से पीड़ितों के बीच नंपियार पेटू कुबेर की असमंजस तथा दौड़ न सकने से बेबसी ढूंढ निकालते हैं । बाणयुद्ध में भी इसी प्रकार पेटू गणपति की असमंजस नंपियार की आंखों में पड़ जाती है किसी उत्सव या स्वयंवर का वर्णन करते समय नंपियार उत्सव के बारे में नहीं, उत्सव या स्वयंवर में भाग लेने आये हुए लोगों की विलक्षणताएं ही ताकते रहते हैं । द्रुमि मणी स्वयंवर के लिए सन्निहित राजाओं की विलक्षणताओं पर ही नंपियार का ध्यान टिक जाता है ऐसे बद्धेपन को ढूंढ निकालने की होशियारी से हुडिब्रास (Hudibras) नामक ग्रंथ के रचयिता बटलर (Butler) नामक कवि के समान नंपियार भी बद्धेपन दिखाने वालों के लिए एक पब्लिक प्रोसिक्यूटर (Public Prosecutor) है[5] । यही साहित्यपंचानन का मत है ।

---

1 लौकिक जीवन की विलक्षणरीतियों को एक गवाक्ष के रूप में ताककर आस्वादन करने तथा अन्य लोगों के आस्वादन के लिए प्रस्तुत करने का काम ही कुंचन ने किया है ।
मलयालम मंजरी - पृ.114 डॉ.पद्मनाभनुण्णि

2 तीन भाषा कवियाँ पृ.141 पी.के.नारायण पिल्लै

3 मुर्गों के सुस्त चलन में कवि की आंखें कितनी पड़ गयी हैं, यह ये पंक्तियाँ साबित करती हैं । ऐसे निरीक्षण विचक्षण से मानवों के बद्धेपन कैसे बच सकते हैं ?
कुलपातिकल - पृ.81 तायाट्टु शंकरन

3 नंपियार की नज़र मानवदुर्बलताओं की आलोचना करने में थी, बद्धेपन की हंसी उड़ाने में थी । अतः जीवन का समग्र निरीक्षण करके कथापात्रों द्वारा मानव स्वभाव को प्रस्तुत करने का उद्देश उनको नहीं था।
प्रणक्षिणम् - पृ.196 डा.वेलाट्टु अच्युतमेनोन

5 तानीम्निनु .... नमुक्कु पक्किकुम । वीकयात्रा तुल्लल्नेट्या प्रेस - पृ.87

<u>(5) आत्मपरिहास</u> - स्वयं हँसी उड़ाने से हास्य की सृष्टि होती है । अपनी और कभी एक की हँसी का कारण हो जाता है तो बड़ा सरसता है । ऐसे आत्मपरि के कारण ही शेक्सपीयर का फालस्टाफ (Falstaff) पी.जी.वुडहौस का वूस्टर (Wooster) आदि अनश्वर बन गए हैं ।

कुंचन के कथापात्र स्वयं हँसी उड़ाने में भी नहीं चूकते, इस उदाहरण है घोषयात्रा का भीम । धर्मपुत्र के सामवाद से मेल न खानेवाली भीमसेन नीति बड़े भाई के नरम सिद्धांत की आलोचना ही नहीं करता, बल्कि अपनी स्थिति परिहास्यता का वर्णन भी करते हैं "मैं कुछ करूँगा भी नहीं, जो किया जा रहा है, उसपर भी रोकटोक डालूँगा । तुम ज्ञानी लोगों के बीच मैं मूढ़ ही रहा । बड़े भाई और छोटे भाईयों के साथ जंगल में तप करते रहते समय भी मैं नटखट शान्त बन रह सकता । मैं हट्ठकट्टा भीम आप लोगों के बीच बैठे असमंजस में पड़े बिना कहीं न ही । हाथ में गदा के साथ रहने वाला मैं मोटा ताजा बड़े सबेरे स्नान पुण्यागिनि उपवास के साथ रहूँगा तो मुझे अपवाद ही मिलेगा ।"

जिस प्रकार घोषयात्रा में भीमसेन स्वयं हँसी उड़ाते हैं उस प्रकार चरित के ब्राह्मण लोग भी स्वयं आलोचना करते हैं जो आत्मपरिहास का उत्तम दृष्टान्त मन भर खाना, खूब सोना, औरतों के साथ मनोरंजन करना, आँख में बैठे सब लोगों की गिन कर आलोचना करना -- इन सबके अलावा इन लोगों के कोई विचार नहीं । बाबत खा लौटते ही पानसुपारी न मिलेगी तो हम कार्यकार[1] को कोसेंगे । और लोगों के दुःख बारे में हम सोचेंगे ही नहीं[2] । पाण्डवों के साथ वन में रहनेवाले ब्राह्मण लोग अपनी हालत का जो वर्णन करते हैं वह भी आत्मपरिहास का उदाहरण है । वह यों है "दो पैसे मिलने की जगह छत्री लेकर दौड़ पहुँचने की तन्दुरुस्ती भी मुझ में न रही[3] ।

1 एक राजकर्मचारि

2 उण्णणमेन्नु मुरुक्कणमेन्नुम

कण्णिलकण्ट मनक्कलेयेल्लाम्

रण्णिन कोण्टु दुषिक्कणमेन्नुम्

इत्तोचितल्लातिप्परिषक्कोडु

वस्तुविचारमोरिक्कलुमिल्ला । पाञ्चालि तुळ्ळल - रेड्यार प्रेस - पृ.249

3 रण्टु पणम् किट्टुन्न दिक्किलकुटयुं कोण्टु

मण्टुवानेनिक्कोटु मारोग्यमिल्लाताय्यी । पाञ्चालि तुळ्ळल - रेड्यार प्रेस पृ.247

जिस प्रकार वीथ्याम्रा मे वीमसेन तथा पात्र चरितम् मे ब्राह्मण लोग आत्मडास करते है उस प्रकार शीलावती चरित मे नारद भी आत्मपरिहास करते । सन्यासीवर्ग की करतूतों पर नारद यो व्यंग्य कसते है 'मुनियो की नटखट देखकर जो थप्पड नही देते, वे सचमुच बेवकूफ ही है । ये मुनि निर्भय होकर जंगल मे जीते । और आज न जाने लोगो का नाश भी शापदृयात करते है । इनके कोप से कही कोई नही । . ...

सचमुच हमारे वर्ग/समाज के आचार विहीनता किसमे है ?

अन्य तुल्लल कथापात्रो के समान बालि विजयम् मे राजन स्वयं उडाने के लिए तैयार हो जाता है । बन्धनविमुक्त रावण, कपिश्रेष्ठ बालि को उन दि की व्यथा कह सुनाते है जब वह बालि की पूंछ मे बन्धित ही पडा था जब सबेरे, दुपहर और शाम को चारो समुद्रो मे एकसाथ तर्पण करने आप जाते थे, तब पूंछ से मुझे डोलना पडता था । जब आप तर्पण करते थे तब मुझे खारे पानी मे पडे रहना था । उस समय जलजीवियों मेरे शरीर पर डंसते थे, इस वेदना के बारे मे जानता कौन था? नदियो का पानी बदल बदल कर पीते हुए अब पांच छः वर्ष बीत गए । जहां बात पहुंचता था (पेट) वहा कीचड पहुंचती है, बदबूदार जीवियां मेरे शरीर प चढकर उछलते कूदते है, कभी कभी जलगर्भित पत्थरों पर थप्पड खाकर सिर पर घाव ल जाती है जो फिर खारे पानी मे पडने पर असहनीय वेदना लाता है । मै झूठ नही मेरा मन टुकडा टुकडा हो जाता है, पानी पी कर मेरा पेट भी बडा हो गया है[2] ।

1 ताटिच काटे कुसृतिकल काटाल
ताडिकलतवा पिटुवीकन्नार
पेटिच काते कलङ्गीलकुम
कूटिच कोल्टवा कष्ट जन्तिने
शापम् कोण्टु नशिप्पिचकुन्न
कोपम् कोण्टेरु पोतुकियुमिल्ला ।
....
नमुटे कूट्टच फलेप्पोले

निः मर्यादम् महाकुल ? शीलावति चरितम् तुल्लल - रेडयार प्रेस पृ. 30।

2 कालतलुदरकुम......... पारम् पत्तयुम् वलुताथि। बालिविजयम तुल्लल - पृ.

इसमें सरल बात यह है कि 'अति भुज विक्रमविक्रमफलतकल्पराक्रम नलविरपति राजन' ने अपने शब्दविपर्यय की ओर इशारा करके यों स्वयं व्यंग्य करता है ।

कुंचन के हास्य का विभाजन - कुंचन के तुल्लतों में प्राप्त हास्य के उदाहरणों को स्थूल रूप से दस वर्गों में यों विभाजित किया जा सकता है :-

(1) घटनाजन्य

(2) वर्णनाजन्य

(3) संवादजन्य

(4) पात्रस्वभावजन्य

(5) अलंकारजन्य

(6) छन्दजन्य

(7) पात्रोचित भाषाजन्य

(8) शब्दजन्य

(9) उपकथाओं द्वारा

(10) व्यंग्य

(1) घटनाजन्य : एक व्यक्ति या कुछ लोगों को हो जानेवाली भूल, गड़बड़ी, गलती या लज्जापूर्ण अवस्था-विपर्यय का हास्यमय चित्रण ही इसकी रीति है । व्यक्ति की पूर्वकालावस्था तथा स्वानिर्मिताव्यवस्था के बीच की अप्रासंगिकता, अनमेलपन या असामंजस्य ही यहाँ हास्य का प्रमुख कारण है । हास्यजनक घटनाओं को वाङ्मय चित्रों के रूप में प्रस्तुत करनेवाले कवि को अपनी दृष्टिगत प्रकलता में यथासंभव संयम लाना चाहिए, भावना की अभिव्यक्ति के लिए रास्ता छोड़ना भी है ।

घटनाजन्य हास्य केलिए उदाहरण तुल्लल कथाओं में काफी मिलते हैं।

- -

1 घटनाजन्य हास्य की अवतारणा में नंपियार ने सफलता पायी है । नंपियार की हठ कि चित्रीकृत घटनाएँ श्रोताओं के मन में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित हों । इसके लिए रंग का इस्तेमाल वे करते हैं वह तीखा और कड़ुआ है ।

विमर्शवीथि - पृ. 103 प्रो. के. एम. डानियेल ।

कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल में भीम की हनुमान की पूँछ को हटाने की कोशिश तथा उसमें प्राप्त असफलता का आंखों देखा वर्णन हास्यमय रूप में कुंचन ने प्रस्तुत किया है । सारे विश्व को तहस नहस करने की शक्ति की डींग मारते हुए भीम सेन आया था । हिडिंब, बक, जरासन्ध कुंभीर आदि असुरवीरों को मार डालने के अपने पूर्वकालीन इतिहास का ढिंढोरा पीटता हुआ वह आया था । वही भीम एक बूढ़े बन्दर की पूँछ को हटाने में बिलकुल असमर्थ दिखाई पड़ता है । अब लज्जाकुल हो खड़ा है भीम । भीम के पहले और अब की अवस्थाओं का असामंजस्य हास्य का कारण है । भीम का अधःपतन हास्य का और एक कारण है ।

गणपति को खिला न सकने में कुबेर की बेबसी का वर्णन भी हास्यपूर्ण है । एक बार कुबेर ने कैलास में शिव के सम्मुख कुछ केले की भेंट चढ़ायी । पूरे केले को खा चुकाने के बाद छिलके को भी खा लेने वाले गणपति पर दुखी कुबेर मन ही मन हंसने लगे । कुबेर में तो श्रेष्ठतम धनिक होने का अहंकार था ही, इसलिए एक दिन भोजन देकर उस पेटू के लालच का शमन करने का अहंकारपूर्ण निश्चय उसने किया । एक दावत केलिए गणपति आमंत्रित किये गये । कुबेर उस पेटू की खाद्य संबन्धी लालच को दूर करने केलिए विश्वसमृद्ध दावत का सज्जीकरण किया । गणपति आ गए । बड़े बड़े बरतनों पर कई तरह के पकवान बनाए गए थे । गणपति ने समझा कि मेरी हंसी उड़ाने के लिए ही कुबेर ने ये कर डाला है । उन्होंने कुछ सिखाने का निश्चय भी किया । खाना शुरू हुआ । उन्होंने बहुत खाया । कुबेर ने सोचा कि भूख के कारण ही ऐसा होगा । लेकिन जब एक एक करके वे बर्तन खाली करने लगे तब सचमुच ही कुबेर थक गए । सारा खाद्य पदार्थ पूरा हुआ । फिर भी गणपति कहते थे 'खाने केलिए लाओ, जल्दी कुछ लाओ'। कुछ न पाने पर वे बर्तन भी खाने लगे, जब वे भी समाप्त हुए, तब इधर उधर पड़कर जो हाथ में आ गया, खाने लगे । ऐसा दीखता था मानो कुछ खाने पर उनकी भूख बढ़ गयी थी । भूख से आक्रान्त होकर वे घर के खंभे तक को उखाड़कर निकाल कर निगलने लगे । फिर भी अतृप्त होकर अन्त में खाने के लिए कुछ न पाकर आतिथेय कुबेर को ही पकड़ खाने की चेष्टा करने लगे ।

तब कुबेर जान लेकर दौड़ने लगे । आगे आगे मृत्युभय से कुबेर, पीछे पीछे क्रुद्ध गणपति । अंत में कुबेर ने भगवान शिव के पीछे छिप गए और शिव से रक्षा की प्रार्थना की । शिवजी ने मुट्ठी भर लाजा[1] देकर उसे शान्त किया । उस समय, शिवजी तथा गणपति की हंसी एवं कुबेर की बेबसी का कुंचन ने अच्छा वर्णन किया कुबेर के मन का अहंभाव रूपी गन्दगी इस दौड़धूप के पसीने में मिलकर बह गयी ।

कार्तवीर्यार्जुन विजयम् तुल्लल में रावण के नर्मदा नदी की धा पकड़कर त्रास खाने का जो वर्णन कुंचन ने किया है वह भी घटनाजन्य हास्य का एक उदाहरण है ।

हरिणी स्वयंवरम् में कन्टुन मेनोन का अपनी प्रेमिका समझकर बन्दर को छाती से लगाना और फलतः नाक कटवा देने की घटना भी हास्यपूर्ण है मेनोन एक धूर्त राजकर्मचारी था । उसका आचरण बहुत बुरा था । अपने एक बड़े एक व्यापारी को उसने एक सबक सिखाना चाहा । एक दिन मेनोन ने राजा से व के विरुद्ध कई शिकायतें की । क्रुद्ध राजा ने व्यापारी को कैद करने का हुक्म दिया व्यापारी की स्त्री ने एक उपाय किया । उसने बहाना किया कि वह मेनोन से प्रेम करती है । जिस दिन उसका पति जेल गया उसी दिन उस स्त्री ने दूत के द्वारा मे को अपने घर में बुलवा लिया । मेनोन अत्यन्त खुश हो गया और ठीक अवसर पर व्यापारी का घर पहुंचा । व्यापारी के नौकर ने उसे एक अन्धकारमय कमरे में बिठाय कहा कि अभी देवी जी आने वाली है । महिला की प्रतीक्षा करते हुए मेनोन बैठे रहे उसके ऊपर एक काला डरावना बन्दर झपट पड़ा और उसने अपने नाखूनों से मेनोन क घायल कर दिया । दर्द के मारे मेनोन चिल्लाने लगा । वह किसी न किसी प्रकार बन्दर के पंजे से छूटकर भागा । बातें सब कहीं फैली । राजा ने भी बातें पायी व्यापारी स्वतंत्र किया गया और मेनोन देश से निकाल दिया गया ।

नलचरितम् तुल्लल में एक बूढ़े नायर के क्रोध से संबन्धित एक का वर्णन है । हंस अपनी यात्रा के बीच कई घटनायें देखता है । उनमें यह भी ए

---

1 Fried paddy

'भूखा प्यासा नायर घर पहुँचा तो समझ लिया - भोजन का प्रबन्ध नहीं हुआ है । क्रुद्ध नायर ने अपने हथियार को जंगल में फेंक दिया । पानी को उसने बच्चों के सिर पर डाला । हाथ में किसी छड़ी लेकर अपनी पत्नी उसने वार किया । बर्तनों को तोड़ डाला, ऊखल को कुएँ में डाला, झाड़ू को चूल्हे में डालकर जला दिया, चक्की लेकर तालाब में डाला, इन सबके बाद भी क्रोध कम न पर उस घर के चारों ओर फिरता रहा ।[1]

इसे निकृष्ट हास्य के रूप में पहचाननेवाले आलोचक भी हैं[2]।

इस प्रकार घटनाजन्य हास्य के कई उदाहरण हम तुल्लतों में पा सकते हैं[3]।

(2) वर्णनजन्य - 'विषय, वर्णनरीति दोनों हास्यपूर्ण हो सकते हैं । किसी भी आंशिक भाव और दृश्य के वर्णन से हास्यमय तथा हास्य का विषय बना सकते हैं,

- -

1 नायर विशन्नु वन्नु कुरुवोल
कायमर्न्नु रण्डरियिट्टुटिट्टिट्टस्सा ।
. . . .
प्पुत्युटेजुत्तुम मण्डि नटन्नु ।। नलचरितम् तुल्लल रेड्यार प्रेस पृ.

2 यदि कवि कहता है कि जिसकी हँसी मैं उड़ाता हूँ उससे मैं प्यार भी करता हूँ तो उससे फायदा नहीं, कवि का धर्म यह दिखाना है कि हँसे जानेवाला प्यार करने लायक भी है । तभी हास्य उत्तम होगा, यों चिन्ता करनेवाले समीक्षक सर्वत्र प्र 'नायर विशन्नु वन्नु कुरुवोल' वाली पंक्तियों की हास्य चेतना से सहमत न हो उबलते जल को अपने बच्चों के सिर पर डालने वाला वह नायर पाठकों की सहा का अधिकारी नहीं होगा; यही वे सोचेंगे ।

विमर्शवीथि - पृ. 111 प्रो. के. एम. डानियेल

3 तुल्लल काव्यों की विशेषताओं में प्रथम उनकी हास्य चेतना है । किसी भी पौराणिक काव्य की रचना में वे हास्यमय प्रसंगों का मौका निकाल लेते थे । हृदय के मर्म चोट करने वाले हास्य प्रसंगों की रचना बड़े ही कवि-कौशल का कार्य है, जिसमें नंपियार जी दक्ष हैं । हास्य - व्यंग्य की गुंजाइश जहाँ नहीं, वहाँ भी नंपियार किसी कथा उपकथा के ज़रिए हास्य-रचना कर लेते थे' ।

आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य पृ. 36 डा. एन. ई. विश्वनाथ अ

हसे उस हास्य के झटके ने साबित किया है[1]। यही श्री पुत्तेलम कुंचन के वर्णना हास्य के बारे में कथन है। हर एक को अलग अलग लेकर उसमें हास्य के लिए गु है या नहीं, इसकी परीक्षा करना ही नंपियार की वर्णनारीति है[2]। श्री पी.के.नाराय पिल्लै का यह मत सर्वथा ठीक लगता है। एक उत्सव का वर्णन करने के बीच अप हास्यचेतना को संतुष्ट करने वाले लोगों को ही कुंचन लेते हैं। मेले के लिए लोग आ रहे हैं। एक छड़ी हाथ में लेकर एक मोटा आता है, पीछे एक औरत भी है[3]। कितना स्पष्टचित्र। पूरी रसिकता है उसे मोटे के पीछे एक औरत भी है – वाले प्रयो तिलोत्तमा की अन्य सुन्दरियों पर ईर्ष्या का वर्णन करते समय कुंचन का कहना है कि उ कुछ अन्य नारियों को देखते समय सिरदर्द लगेगा[5]।

पंचेन्द्रोपाख्यान से 'यमराज से छुट्टीकाल' नामक प्रकरण वर्णनात्मक हास्य का एक उत्तम उदाहरण है। किसी समय यमराज अनिश्चित अवधि तक छुट्टी ले कर तो संसार में मृत्यु ही नहीं रही। उसके बुरे परिणामों पर यहां प्रकाश डाला ग है। 'संसार में वृद्धों का एक बड़ा दल बन गया। वे मरने में असमर्थ हैं क्योंकि मा वाले यमराज अनुपस्थित हैं। बूढ़े दादा के बूढ़े दादा बैठे हैं। उनके दादा भी न मरे हैं। पांच सौ वर्ष की उम्र के वृद्ध पितामह भी अब बच्चे बन बैठे हैं। उनके भी दादा अब हैं। एक ही घर में दो करोड़ दन्तहीन जन हैं। वे चिमपुतली से भीतर ही बैठे हैं। अंधे, काने, बहरे और चांदी के कटोरे में भी चमकीले मंजे, सिखाले हैं[6]।

- -

1 हाससाहित्यम् पृ. 97 पुत्तेलत्तु रामनमेनोन

2 तीन भाषा कवियों पृ.148 पी.के.नारायण पिल्लै

3 वटियुम् कैयिलेट्टुत्तु कुन्नोटु
तडियन् पुरकेयोपोलित्तुमुण्ड । नलचरितम् तुळ्ळल रेडयार प्रेस पृ.176

4 नंपियारुडे तुळ्ळलसाहित्यम् पृ.25। रूर परमेश्वरन्

5 पसनाळिक्को कण्टाल तलनोवु तुटङ्ङुम। कार्त्यवीर्यविजयम्

6 वृद्धन्मारु कूट्टम निर] वृद्धर् तन्निल
. . . .
किण्णमेल्लाम विलुम्पुन्न कविळिल्लेयुण्टु ।।
पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुळ्ळल - रेडयार प्रेस - पृ.599 - 600

जीवों की मृत्यु नहीं होती । इस मामूली आशय को कवि ने वर्णनजन्य हास्य के द्वारा आकर्षणीय रूप में प्रस्तुत किया है । ऐसा एक कल्पित व विश्वसाहित्य में भी शायद नहीं होगी । वर्णन के बीच कुंचन का कहना है कि एक घर में दस करोड़ दन्तहीन बूढ़े रहते हैं । यह युक्ति-संगत नहीं । कवि की भी भावना इस प्रकार युक्ति की सीमाओं का उल्लंघन करती हुई दिखाई पड़ती है, शायद यह भी हास्य के लिए होगा । यह वर्णन यहां अंत नहीं होता । आगे की पंक्तियों ज्योतिशास्त्री, वैद्य, मांत्रिक आदि की बुरी हालत का भी वर्णन है ।

'ज्योतिशास्त्र का भी बुरा हाल है । वह ज्योतिषी अब कपट की बातें कहकर लोगों को धमका नहीं दे सकता । यमराज और वैद्य में गाढ़ी मित्रता है किन्तु फिर भी बिना यम के वैद्य किसी को मार तो नहीं सकता । मन्त्र-तन्त्र करने वालों का भी बुरा हाल हो गया है । वे कहीं भी जायं, कोई उन्हें कुछ देता नहीं है, उनके लिए कोई गृह नहीं है[1] ।'

ऐसे वर्णनों में स्पष्ट लगता है कि अपने समय के वैद्यों, ज्योतिषियों आदि को भी वे छोड़ने को तैयार नहीं है ।

किसी भी दृश्य का वर्णन करते समय हास्यबोध का मधुलेपन करके ही कुंचन प्रस्तुत करते थे । ध्रुव पवमानी को भी संयमित करके जब तपस्या करने लगे तब उनके श्वास निरोध के फलस्वरूप संसार की जो आपत्ति हुई उसका वर्णन कितने हास्यात्मक रूप में वे प्रकट करते हैं, इसे हम देखें । 'संसार के सारे जीव चित्र समान रह गए । खड़े होनेवाले खड़े ही रहे, लेटनेवाली पशुएं लेटती ही रही । खानाखाने वाले हाथ में ग्रास लेकर मुंह खोले खोले बैठे रहे । देखनेवाली आंखें खोले खोले मूर्ति के समान अचंचल ही रह गयी । पानी में डूबनेवाला मनुष्य डूबा डूबा ही रहा । नारियल के पेड़ पर चढ़नेवाला मनुष्य एक हाथ और एक पैर ऊपर को उठाता हुआ चढ़ने की अवस्था में ही रह गया । जलतर्पण करनेवाला ब्राह्मण हाथों में पानी के साथ मुख ऊपर उठाता हुआ अचंचल रूप से खड़ा खड़ा रह गया[2] ।

---

1 कपटिकळनायुळ्ळ गणितक्कारनुमिप्पोळु
....
समर्थनेडमे वैन्नालोर्क्कुम् किट्टुकयिल्ला । पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुळ्ळल-वेडयार प्रेस पृ.60

2 चाञ्चियुतुल्लोरु कंतुकाळकवे
....
.... निल्कुन्नु ।
हनुमदुत्भवम् तुळ्ळल - श्रीरामविलासम् प्रेस पृ.153

खानेवाले, खेलनेवाले, डूबनेवाले, वृक्ष पर चढ़नेवाले, सन्ध्यावन्दन करनेवाले आदि कुछ न कुछ काम में रत मनुष्यों का वर्णन कितना सरस बन गया है ? शुद्ध हास्य का उदाहरण यही है[1] ।

कौरवसेना से पराजित होकर भाग लौटनेवाले दुर्योधन पक्ष का चित्र हास्यात्मक रूप में कुंचन ने खींचा है । उनकी कायरता का वर्णन करके तृप्ति न पाकर का की स्त्रियों से भी नंपियार ने उनकी हँसी उड़ाई है[2] । प्राणभय के कारण जंगल में छिपे कुछ लोगों का सिर बाघ ले गया । शिकारियों से हाथियों को पकड़ने के लिए फैलाए गए जाल में जा गिरे कुछ लोग । जाल के बन्धन से भाग देख कर जब जंगली ने आ देखा तो वह हाथी नहीं, एक मोटा ताजा - मलयालम का एक मानव । शरीर मिलता तो वह भी लाश है, समझकर युद्धक्षेत्र से भयभीत हो कर थोड़ा भाग नगाड़े के अन्दर बैठ अपने को छिपा था और किसी ने । और कुछ भयभीतों ने जमीन में गड्ढा खोदकर उसमें बैठकर अपने गु पत्ता आदि से ऊपर को ढक ले गए । इसी बीच और एक डरपोक ने पूरे पथ पर अपने भागने का निशाना (मलमूत्रविसर्जन अनजाने करके) छोड़ गया ।

- - --

1 (क) हवारहित जगत् के इस सुन्दर वर्णन में कुंचन उच्च हास्य कवि के रूप में प्रकट होते हैं । उन्होंने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है । .... हवा की प्रवृत्ति के स्थगित हो जाने पर संसार का सब कुछ अचंचल हो गया है, यों ही कहना था, लेकिन ऐसा कहने से सरसता कहाँ ?

नंपियारुम तुल्ललसाहित्यवुम् - पृ. 196 एन्नूर परमेश्वरन ।

(ख) संसार को प्राप्त एक बड़ी आपत्ति को भी एक हँसी का कारण बनानेवाले उस हास्यविधान की प्रशंसा कौन नहीं करेगा? हँसी उड़ाते हुए ही मृत्यु का भी सामना उस रसिक शिरोरत्न ने किया होगा ।

कुलपतिकल - पृ. 74 - 75 ताय्याट्टु शंकरन

2 सम्भ्रमाय मीळिकोम्बलोलतामोरो
....
.... कण्ठेन शोकम्मारे ।

घोषयात्रा तुल्लल - रेड्यार प्रेस पृ. 86

शत्रुसेना का आकस्मिक आक्रमण होने पर देश में अशान्ति, हलचल और अत्याचार फैल जाता है। इसका हास्यात्मक वर्णन है प्रबोधचन्द्रोदयम्, त्रिपुरदहनम् और बाणयुद्धम् में। कुंचन के मन में भी हलचल है, लेकिन वह हलचल हमारी प्रतीक्षा के ठीक विपरीत ही है। कम्टब्बार को कपड़ा नष्ट हुआ, नगाड़े बजाने वालों को नगाड़े से हाथ धोना पड़ा। कलकी को मांगल्य, मांगल्य सूत्र और दुपट्टा नष्ट हुए। नीली को भी अपने मांगल्य से हाथ धोना पड़ा[1]। इस प्रकार उद्धृत करते रहेंगे तो इसकी कोई सीमा न होगी, अतः अब हम उसे छोड़ दें।

एक चीज के सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल सब कुंचन चीर कोंगे कभी कभी सिर्फ दो पंक्तियों से एक बड़ी घटना को वे प्रस्तुत करेंगे। यह समस्त और विस्ती में दुर्लभ है। राजा उत्तानपाद के घर के झगड़ों के बारे में कहते समय कुंचन की कला स्पष्ट है 'लोग आपस में कहते हैं 'अरे भाई! तुमने सुना नहीं। उत्तानपाद के घर में उनकी स्त्रियाँ आपस में झाड़ियों तक बंटने लगी हैं'[2]। पर्याप्त है न मेला? इससे संक्षिप्त लेकिन उज्ज्वल वर्णन क्या और किसी से हो सकता है? पड़ोस के घेलू झगड़े की सब ईर्ष्या राजमहल के 'झाड़ियाँ' तक बंटने में निहित है न?

स्थलजलभ्रम में पड़े कौरवों का यथातथा वर्णन बिलकुल हास्यात्मक ढंग से कुंचन ने प्रस्तुत किया है 'पानी की अगाधता होने की आशंका से दुर्योधन तैरने की तैयारी करने लगे। क्षौम के कपड़े को ऊपर को उठाकर वह धीर पैरों से धीरे धीरे टटोलने लगा। पीछे पीछे चलने वाले छोटे भाई आगे आगे चलनेवाले बड़े भाई के समान सुन्दर क्षौम कपड़े को ऊपर उठाकर चलने लगे। सचमुच वहां पानी नहीं था।

---

1 कम्बक्कारुटे मुण्टुम् पोयि
नेब्बक्कारुटे नेब्बकल पोयि
वलिकव्यैक्कनु वारुदुम् मिन्नु -
मालिक्य तालिल मुण्टुम् पोयि
नीलिव्यैक्कनु तालिकल पोयि।

2 केट्टीलयो निडङ्ङुत्तानपादन्टे
वीट्टिले कोलाहलङ्ङलितोन्नुमे
च्येष्ठत्तियुमनुजत्तियुं तल्लङ्ङलिल
वाट्टि कलहङ्ङलु कूट्टियतुपोल। ध्रुवचरितम् तुल्लल पृ. 8.

फिर वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ सचमुच अथाह जल था । इस चिन्ता में वे ढ
बढे कि यहाँ कहीं भी जल नहीं । बेचारे पानी में डूब गए । बीच बीच में वे ऊपर
आते, फिर नीचे की ओर ही जाते । वे तैरना नहीं जानते थे । इनमें एक वीर बड़ो
बड़ते अपने भाइयों से अलग हो गया । पानी पीते पीते हाँफते हाँफते, काँपते काँप
उलटत पलटते तीर में पहुँचे । इन सबको देखकर भीमसेन ताली बजाते हँसते रहे ।

यहाँ सचमुच महाराजा दुर्योधन का नहीं एक मूर्ख रईस का ही व
हुआ है । यहाँ हास्य कुछ निकृष्ट हो गया है, यही सत्य शिव सुन्दर की हँसी पर स
पानेवाले श्री कुट्टिकृष्ण मारार का मत है । कुंचन ने एक हास्य के पड़ा खाना के लिए
पूर्वनिश्चित तैयारी करके ही दुर्योधन का स्थलप्रवेश कराया है, यह भी उनकी शिकायत है[2]

- -

1 नीकुल विलोक्य नुल्यु पतुके .... स्टुकाडतुम् कौट्टिविलिच्चु ।

सभाप्रवेशम् तुल्लल - रेडयार प्रेस पृ.550

2 मलयाल साहित्य के प्रथम हास्य सम्राट के रूप में अभिषिक्त कुंचन नम्पियार ने सभा
प्रवेशम नामक एक पस्यन तुल्लल रच डाला है न ? इस हास्य के पड़े जाने की तैयारी छं
रूप में नहीं । निर्वचन समय की यह तैयारी देखिए । सभा को जाना होनेवाले दुर्योधन
साथ के सौ छोटे भाइयों से कहते हैं 'हमें इस चिन्ता के साथ जाना चाहिए कि वे पाण्
पुत्र हमारी हँसी की तैयारी करेंगे । मेरी बेवकूफी कहीं न होगी, मेरे छोटे भाई इसे ध्य
एक ओर यह तैयारी, दूसरी ओर हँसानेवालों की तैयारी पाण्डव और द्रौपदी मण्डप के दु
धीरे धीरे चढ़कर माधव और बलभद्र की वन्दना कर रहे । लोगों की हँसी उड़ाने के पहले
भी शिव की प्रार्थना करना है न ? .... फिर कुंचन हास्य रूपी पड़ा खाने का
विषय एक एक लेकर प्रस्तुत करते हैं । .... कौरवों को स्थल जल भ्रम हो गया ।
(इन कौरववीरों में किसी ने भी तब तक पानी न देखा होगा न ?) .... मामूली जनत
को हँसाकर दमघोंटकर आँखें फुलानेवाली ऐसी हास्यकृतियों का साहित्यमण्डल में स्थान पाठकों
को विचार विभ्रम करनेवाले रीतिसाहित्य की दायीं ओर नहीं है तो बायीं ओर है ।

हाससाहित्यम् पृ.23 - 24

श्री कुट्टिकृष्ण मारार

लेकिन सच क्या है ? दुर्योधन से ज्यादा दया दिखानेवाला कौन है ? व्यासमुनि या कुंचन ? कुंचन ने तो सिर्फ यों ही लिखा 'द्रौपदी ने हाथों से मुंह छिपाकर धीरे धीरे मन्दस्मित किया'[1]। फिर वे यह भी कहते हैं 'पाण्डव और द्रौपदी दोनों हाथों से ताली बजाते हुए हंसते रहे'[2]। यही तुल्लल में है। दुर्योधन तथा पाठकों की हंसी उड़ानेवाले पाण्डव और पत्नी ही रहे। लेकिन महाभारत में कैसा है ? व्यासमुनि ने यों लिखा 'दुर्योधन को पानी में गिरते देखकर भीमसेन और नौकर हंसते रहे ?' इस प्रकार नौकरों इसमें मिलाकर हंसी को अनर्थात्मक बना दिया है वेदव्यास ने। कुंचन ने तो दुर्योधन पानी में गिरने ही दिया। लेकिन वेदव्यास ने किया क्या ?' शीशे की दरवाज़े को कल्पकर उसी ओर से अनजाने वह अन्दर घुसा और सिर में मार खाकर बड़ी सोच समान खड़ा रहा। फिर जहाँ शीशे का दरवाजा नहीं वहाँ हाथ से खोलने का परिश्रम कर मुँह उलटे गिर कर धराशायी बना। इसलिए ही एन्नू परमेश्वरन अपनी नीचियार तथा तुल्लल साहित्यम् नामक रचना में पूछते हैं 'ज्येष्ठ कौरव को तालाब में गिराकर पानी पिलानेवा कुंचन या कठोर जमीन पर गिराकर घायल करनेवाले व्यासमुनि, कौन ज्यादा निर्दय है'[3]

(3) संवाद जन्य — कुंचन के संवादजन्य हास्य-व्यंग्यों का श्रेष्ठतम उदाहरण है कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल का भीम - हनुमान संवाद।

वह चक्कर खाते चलने वाले एक अहंभावि रईस के समान, गदा हाथ में लेकर गर्जन करते हुए पथ के सामने खड़े हुए वृक्षों को तोड़ते मोड़ते हुए जब भीम आगे बढ़ रहा है तब अपने मार्ग के मध्य में एक बूढ़े वानर को पड़े देख अत्यन्त क्रुद्ध होता है। उस वृद्ध वानर को देखते ही निन्दासूचक 'ओ' जैसी व्याक्षेपक पदावृत्ति के साथ परुषपूर्ण स्वर में यों कहता है 'ओ देख! हमारे मार्ग में पड़े रहनेवाले मर्कट ओ दुष्ट उठो। हमारे मार्ग से हट जा। देव के हंसों को देखने पर समझ न सकनेवाला जंगली बन्दर है तू। अरे मर्कट! समझ ले कि हट उठ नहीं जाता तो आफत

---

1 मानिनिमार मणियालाम् द्रौपदियुम् करम कोण्ट्
आननत्ते मरच्चाशु मन्दहासम् चेर्तु मेल्ले । सभाप्रवेशम् तुल्लल-[illegible] पृ.

2 पाण्डवन्मारुम् द्रौपदियुम् तन्नुम् ।
एट्टुकाट्टुम कोट्टिच्चिरिच्चु । वही

3 नीचियारुम् तुल्ललसाहित्यवुम् - एन्नू परमेश्वरन पृ. 27।

पड़ेगी[1]। भीम स्वयं अपने लिए राजाओं के समान 'हम' पूजकबहुवचन का उपयोग अपने 'अहं अहं' की मनोवृत्ति का परिचय ही दिखाता है। और कोई होता तो होनेवाले भीम का आदर करते। इस जंगली बन्दर ने आदर करना तो दूर, भीम के र से हट जाने का कार्य भी नहीं किया। तब वह बन्दर अपने बुढ़ेपन की कमजोरी बताते हुए गिड गिडाकर प्रार्थना करता है कि मुझे मत छेडिए और जरा हटकर जाइएगा इसे सुनकर भावुक हो तो हट जायगा, लेकिन अहंभावि होने के कारण भीम आग से हो जाता है। भीम का कथन है 'ओ मर्कट। मुझे कौन समझकर तु ने हट जाने को कहने का साहस दिखाया'। यो कहता हुआ वह स्वयं अपना परिचय देता है 'पुरु वंश जात पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन नामक वीर के बारे मे तु ने सुना नही है क्या? समझ ले कि वह वीर यह मै ही हूं[2]। (इस आत्मप्रशंसा मे हम परजन्य हास्य भी है)

कौरवः सोमवंशीयः
कुन्त्यागर्भेण धारितः
पाण्डवो वायुतनयो
भीमसेन इतिश्रुतः

सिर्फ इतना ही मूलग्रंथ मे लिखा गया है। इसे ही बढा चढा कुंचन ने यो रूप दिया है। भीम का विश्वास है कि उसका नाम और उसकी वीरता विश्वप्रसिद्ध है, यहां तक कि जंगली जानवर भी उसे जानते है। उसका विश्वास

- -

1 नोक्केटा। नम्मुटे मार्गे विलंघ्कुन्न
मर्कटा। नीयेंकु मार्गिक्य झटा
दुष्टस्थानत्तु कन्नु ञायिप्पान्निनेक्कटा
तोन्नुवानेन्तटा संगति?
नाट्टिटल प्रभुक्कले कण्टालरियाला
काट्टिटल किटक्कुन्न मृगक्कुटु नी। कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ? 25
स.सि.के.रामन नायर

2 पुरुवंशत्तिल पिरन्नु वलन्नोरु
....
भीमनामवृकोदरमिवनेन्नोर्क नी।
कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ.26 स.सी.के.रामन नायर

'भीम' शब्द सुनते ही बूढा वानर भयभीत होकर रास्ते से हट जायगा । भीम ने यह भी बताया 'हम बड़ी रास्ता छोडेंगे नहीं, किसी के पास पराजित भी नहीं होंगे । .... धर्मपुत्र के छोटा भाई हम अधर्म कोई काम करेंगे भी नहीं[1] । भीमसेन के इस अहंकारपूर्ण घोषणा को निराधार साबित करके उस अहंकार को दूर करने का निश्चय मन ही मन लेकर वृद्ध वानर कहता है 'अभी तुम ने डींग मारा कि तुम लोग अधर्म नहीं करेंगे । तुम धर्म ही करोगे क्या ? मैं ने सुना कि पांचाली नामक एक औरत को देखकर कामासक्त होकर तुम पांच लोगों ने मिल जुलकर उसके हाथ पकड़कर बिना किसी डिवार्सिफिकेट के एकसाथ शादी की । 'पांच हैं तो पांचों हो' इस चिन्ता में बिना किसी चंचलता के उसने तुम पांचों को अपनाया और वह अपनी आंखों की बार से तुम्हें छल देने लगी । चारों जातियों में किसी जाति के लिए यह नहीं बताया गया है कि एक औरत के लिए चार पांच पति हो । चार लोग सुने तो भी ऐसी बात अच्छी नहीं लगती, यह हम पूछवाले बन्दरों के लिए भी अच्छा नहीं लगता[2] । 'भीम तथा भाई किसी के आगे हार नहीं मानते' भीम के इस वाद का खण्डन करते हुए बूढा बन्दर कह रहा है 'कौरवों ने तुम्हारे राज्य को हड़प लेकर तुम्हें बन भेजा न ? वनवास ही तुम्हारा आश्रय रहा है । लेकिन वन में पत्थर, मढे, कुश सबसे टकराकर रहनेवाले तुम्हारा अहंभाव कम नहीं हुआ है क्या ? तुम्हारे अपने इशारे पर नचाने के लिए एक औरत भी है । प्रतिदिन देखी चीज़ों पर आसक्त होकर वह उनको लाने की आज्ञा देगी । चीज़ू लकड़ी से बच जाने के लिए तुम चलने लगोगे भी[3] । इस दुर्वचन को सुनकर क्रुद्ध भीम अपने पराक्रम को

---

1 नेराय मार्गम् वेटि [illegible]

....

कर्मिजन वेरकोयिल्लेन्नु चोल्लेणम् ।

कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ.26-27

2 पांचालियेन्नोरु पेण्णिनेकण्डट्टु

....

नाणुन्न वानरन्मारकुम चितक्का । वही

3 नूपुरं निडचे नाट्टुम नगरवुम्

....

मीण्ट कूट्टकुम मुट्टाते निडलुम् । कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ.30-31

समझाकर बूढ़े वानर को प्रभावित करना चाहते हैं। भीम कहता है उसने किस प्रक
हिडिंब, बक, जरासन्ध कृम्मीर आदि राक्षस वीरों को मार डाला। तब वृद्ध वानर
है वह इससे अधिक कुछ भी जानता है 'भरी सभा में जब तुम्हारी प्यारी पांचाली को
दुःशासन ने चोटी पकड़कर खींचा था और उसका वस्त्राक्षेप किया था तब तुम आँखों फ
देखते ही रह गए थे, तब तुम्हारी यह बहादुरी कहाँ को गयी थी क्या ? अपनी प
का खुला अपमान करनेवाले को तुम कुछ नहीं करोगे, जंगल के बन्दर से ही तू वीरता
दिखाता जायगा[1]। यों बताने के बाद बुढ़ेपन के कारण पूँछ हटाने की अपनी कमजोरी
वह प्रकट करता है, उसके ऊपर से होकर उस पार हो जाने की प्रार्थना करता है।
लेकिन भीम अपने गुरु और बड़ा भाई हनुमान के वंशज होने के कारण उस बन्दर की
के ऊपर से होकर उस पार जाना उचित नहीं समझता। इसे समझकर बूढ़े बन्दर ने
कि पूँछ को रास्ते से हटाकर भीम जा सकता है। बूढ़ा बन्दर यह भी जोड़ता है कि
हाथ से पूँछ को छूना नापसन्द है तो वह गदा से ही यह कर सकता है। तब भी
का अहंभाव यों बाहर प्रकट होता है 'हटाये जाते समय क्या यह पूँछ कटी तो नहीं
जायगी?'[2]। भीम का अहंभाव है कि उसकी गदा इतनी तीखी तथा मजबूत है कि
उसके छूने मात्र से वह पूँछ कट जायगी। इस ओर की झड़ी के प्रहार को प्रहारकर्ता
की ओर ही भेजना एक कला है। बूढ़ा वानर इसमें प्रवीण है। भीम की इस
अहंभावपूर्ण वाणी का प्रत्युत्तर वृद्धवानर यों देता है 'कटी जानेवाली तेरी गदा है या
मेरी पूँछ?'[3] इतने अहंभाव से गदा प्रयोग करनेवाला भीम जब उस वृद्ध वानर की पू
को हटाना तो दूर उसे हिला तक न देने में असमर्थ हो जाते समय उपर्युक्त संवाद क
रोचकता अधिक स्पष्ट होती है।

---

1 दुःशासनन पण्टु दुर्योधनोक्तमां
. . . .
कालिन्कु पोये कोलक्क कूवेवत ? कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ. 30-31

2 मलि चु नीक्कुमन्नेरम्
मुरि त्रु पोक यिल्लल्ली ? वही पृ. 32

3 मुरियुन्नतेन्तटो भीमा
निन्टे गदयो नम्मुटे वालो ? वही

भीम हनुमान संवाद मे कुंचन की हास्य कला की आलोचन विभिन्न रूपो मे हुई है[1]।

मलयालम के श्रेष्ठ समालोचक श्री कुट्टिकृष्णमारार ने कहा है कि भीम तथा बूढे बन्दर से देहाती औरतो की भाषा मे गाली गलौज बकवायी गयी है[2]। अपने तर्क के आधार स्वरूप महाभारत का एक प्रसंग भी वे उद्धृत करते है। इस समालोचना के उत्तर स्वरूप हम यही कह सकते है कि इतिहासकर्ता का लक्ष्य तथा मामूली जनता को हंसाने के उद्देश्य से कुसल रचनेवाले नंपियार का लक्ष्य विभिन्न ही रहता है एक का फायदा, दूसरे से मिलता ही कैसा ?

अन्य कई आलोचक इस संवाद जन्य हास्य को व्यक्तिनिष्ठ पुकारते कभी कभी हास्य व्यंग्य को ऐसा ही होना चाहिए। तत्तीन साहित्य मे जुवनल ने तथा अंग्रेजी साहित्य मे ड्रैडनने व्यक्तिनिष्ठ किया है। समाज की बुराईयो की हंसी उड़ाने वाले हास्य कवि कभी कभी समाज के प्रतिनिधि बनकर व्यक्ति के ऊपर भी हाथ डालेगा।

इस प्रकार कल्याण - दूत संवाद, शिव-पार्वति संवाद[3] आदि भी संवादजन्य हास्य के उदाहरण है।

---

1 उचित परिस्थितियो मे रसो को सम्मिलित कराने मे भी कुंचन ने ध्यान रखा है। हास्यरस प्रयोग के लिए जहाँ सुविधा है वहाँ तीक्ष्ण हास व्यंग्य अपने छूट रूप नाचता हुआ दिखाई पडता है। भीम - हनुमान संवाद ही लीजिए। भीम के पराक्रम का परिमाण जानना चाहनेवाले हनुमान बहुत विनय के साथ व्यवहार करता है। इस प्राकृतमर्कट का विनय भीमसेन के क्रोध और अहंकार के लिए उत्तेजक है। पाण्डवो की महानता के कारणभूत गुणो को उनको आक्षेपपात्र बनाने के लिए पर्याप्त दोषो मे परिवर्तित करने लायक व्यंग्य ही हनुमान कर डालता है।

कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल - डॉ. सी. के. रामन नायर पृ. 28

2 राजाङ्कणम् - कुट्टिकृष्ण मारार - पृ. 9

3 पुररिपुवाक्य भगवान तन्नुटे
....
करितलेनिक्कु विवादमिवलोटु।

नंपियार के रत्न - पृ. 8-9 ए. के. वासुदेवन कुरुप।

भगवान शिव की गोद में रहनेवाली पार्वती ने पति के बालों के बीच एक सुन्दर मुख और रत्नपुंज देखकर क्रोध और ईर्ष्या से पूर्ण होकर पति से पूछा 'आपके सिर में बालों के बीच दिखाई पड़नेवाली वह वस्तु क्या है ?' शिवजी ने झट ही उत्तर दिया 'मेरे बालों के बीच सदा ही शशि रहेगा । लेकिन पार्वती बात छोड़ देने वाली थोड़े ही है 'झूठ मत बोलिए नाथ । एक सुन्दर मुख यहां दिखाई पड़ता है ।' प्रत्युत्पन्नमति शिवजी ने उत्तर दिया 'वह मुख नहीं, जल में विकसित कमल पुष्प ही है ।' लेकिन पार्वती ने तो पति को निरुत्तर बनाकर ही छोड़ने का निश्चय लिया है । अतः उसने पूछा 'उस विकसित कमल पुष्प के ऊपर लट (Curls) क्यों दिखाई पड़ता है ?' शिवजी का उत्तर है 'वह तो लट नहीं । मधुपान केलिए आए हुए भ्रमर है ।' पार्वती का प्रश्न है 'दो त्योरियाँ क्यों दिखाई पड़ती है ? 'वे त्योरियाँ नहीं, छोटी लहर है ।' यही शिवजी का उत्तर है । 'लेकिन वहां दो आँखें क्यों दिखाई पड़ती है?' यही पत्नी का प्रश्न है । इसपर शिवजी का उत्तर है 'हे पर्वतनन्दिनि ! ये आँखें नहीं, खेलनेवाला मछलीयुग्म है ।' इस पर पार्वती का प्रश्न है 'कलिकुच जैसा स्तनयुग्म क्यों दिखाई पड़ते इस पर शिवजी यों उत्तर देते है 'वह स्तन नहीं, कमल के पास खेलनेवाले कोक द्वन्द्व है' ।

यों एक दूसरे को असमंजस में डालते हुए, निरुत्तर बनाते हुए, हास्य के खेल में वे लग जाते है ।

(4) पात्र स्वभावजन्य - कुछ व्यक्तियों के विचित्र स्वभाव तथा उसके अनुसार हास्य पूर्ण बातें करने की रीतियाँ हास्यसृष्टि करती है । नाटक तथा उपन्यास के कई पात्र ही इस कारण से ही आकर्षित करते है । शेक्सपियर के फालस्टाफ (Falstaff) डागबरी और वर्जेस (Dog berry and verges) चार्ल्स डिकन्स के मिस्टर पिकविक (Pickwic और मिकाबेर (Micawber) वुडहौस के जीवस (Jeeves) कालिदास के माढव्य कुन्तुमेनोन के सुरि नम्पूतिरिप्पाट, सी.वी.रामन्पिल्लै के भ्रान्तवैस्ट आदि पात्र अपने विचित्र स्वभाव तथा हास्यपूर्ण वचनों से ही अपनी अपनी अनश्वर छाप छोड़ देते है । उनके चरित्र हमारे लिए इतने परिचित और जाने पहचाने होते है कि हम उन्हें अपने अंतरंग मित्र के सदृश अनुभव करने लगते है ।

---

1 विमर्शवीथि - पृ.105 प्रो.के.एम.डानियेल

जब इस प्रकार का हास्य उच्चतम मे पहुंचता है तब पाठकों मे प्रस्फुटित हंसी द्वेष या ईर्ष्या का नहीं प्यार और सहानुभूति का है । मालविकाग्निमित्र के विदूषकों के बारे मे हम कुछ स्मरण करें, हम उससे प्यार करते हैं, साथ साथ उसकी कमजोरियों पर हंसते हैं एक ओर वह कर्मकुशलता और प्रत्युत्पन्नमतित्व दूसरी ओर वह पेटूपन और कायरता । इतना कर्मवीर न होने पर भी मृच्छकटिक और चारुदत्त के विदूषक स्मरणीय हैं । हम मन ही मन प्यार तथा आदर करें - फिर भी हमें हंसावे - ऐसे पात्रों की सृष्टि केलिए एक अलग प्रकार की कुशलता आवश्यक है । हमने देखा कि यह कुशलता संस्कृत के साहित्यकारों मे कइयों को थी । फिर भी एक भोजनप्रिय, कायर और बातूनी ब्राह्मण प हंसी उड़ाने से ज्यादा हास्यबोध कालिदास ने भी नहीं प्रकट किया है । सारे संस्कृत साहित्य को हास्य प्रयोग मे दुबलने केलिए हमारे कुंचन नंपियार का एक मात्र हास्य पर्याप्त है[1] । हमारे लीलातिलककार ने इसे जान लिया होता तो उन्होंने कहा होगा ।- अहो । भेकवृषविलसितम् ।

हास्यपात्रों की सृष्टि मे कुंचन ने भी कोशिश की है । इस प्रसं पर हमारे मनोमुकुर मे स्पष्ट होते हैं कल्याणसौगन्धिकम् का भीम, किरात का अर्जुन, कार्तवीर्यार्जुन विजयम् का रावण आदि । भीम के स्वभाव मे अहंभाव है जिसकी नफरत ह करते हैं, साथ साथ भ्रातृभक्ति भी है, जिसकी प्रशंसा हम मन ही मन करते हैं । उसी प्रकार अन्य पात्रों मे भी । लेकिन वेदव्यास तथा अन्य विद्वानों से सूचित इस असंगति और अनमेलपन पर उचित लाभ उठाने की कोशिश कुंचन ने भी नहीं की है । चाहे जो भी हो, इतिहास प्रतिपादित कथाओं-पात्रों को अलग करके उसे विकसित करने मे ही कुंचन ने उत्सुकता दिखाई । व्याख्याकारों से विभिन्न पात्रों की सभ्यता मे कुछ कुछ अं कुंचन ने पहुंचाया है[2] । इन सब तथ्यों को मिलाकर सोचते समय हम यह गर्व नहीं कर सकते कि हास्यपात्रसृष्टि मे कुंचन ने सफलता पायी है ।

(5) अलंकार जन्य - परिचित वस्तुओं की उपमा और उत्प्रेक्षा द्वारा किसी भी वस्तु सरस यथार्थ बोध पाठक तथा प्रेक्षक के मन मे कुंचन पैदा कर सकते थे । बाढ आयी औ

- -

1 साहित्यविचारम् पृ.47 एम.पी.पॉल

2 विचारदीप्ति पृ.23 उद्धाटित मोहनन कुट्टि नायर

सब जगह पानी पानी ही गया । रावण पानी में डूबता चिल्लाता तैर रहा है मान कोई बीस पतवारों वाली बहुत बड़ी नाव आगे बढ़ रही हो[1] । कुंचन के उपमान सबको सुपरिचित होते । भीम की उपमा उन्होंने न हाथी से की और न पर्वत से वृकोदर भीम का तो कन्नन केले के पौधे के बराबर मोटे और पुल-पुल अंगों वाला कहकर ही वे उपहास करते हैं[2] । कन्नन केला, मोटा रसहीन केले का फल है जिसका पौधा मोटा और लंबा चौड़ा होता है । नंपियार के रावण की दृष्टि में कार्त्तवीर्य के हाथ बकरे की लटोरी (दाढ़ी) के समान यद्यपि बहुत लम्बे हैं, तो भी निष्फल हैं[3] । नल पर लगे दमयंती के मन को वहाँ से हटाने के लिए प्रयत्न करने वाला दूत उससे यों कहता है 'मंगलांगी, तुम और नल- दोनों का मेल अच्छा नहीं होगा वह ऐसा होगा जैसा अंधा आदमी चमेली को कूड़े में पहन लिया हो[4] । कारागृह में पड़े रावण की उपमा नंपियार जाल में फँसे बन्दर से करते हैं[5] । कुंचन के लिए युद्ध में पराजित, कूप में [illegible] बानरसमूह के समान है[6], युद्ध के लिए युद्धक्षेत्र में पहुँचे हुए लोग हवा से ताडित नदि की लहरों के तीरों पर पहुँचने के समान है[7] । जब भीम पुरोचन को कुचलने लगा तब उसका मुँह पूरि के समान पिस गया[8] ।

इस प्रकार अलंकारों के द्वारा भी कुंचन ने हास्य सृष्टि की है

---

1 [illegible] तन्टुकल [illegible]
[illegible] मंथ [illegible] रावण -
नौकाम् का पति [illegible] । कार्त्तवीर्यार्जुन विजयम् तुल्लल पृ.101

2 कन्नन [illegible] के [illegible]
पोन्नलटियनताकिय भीमन । हिडिंबवधम् तुल्लल पृ.405

3 पेराल तन्नुटे [illegible] । कार्त्तवीर्यार्जुनविजयम् तुल्लल पृ.102

4 मंगलांगी नीयुंनलनुम्
....
कुलम्पूवल चूडियपोले । नलचरितम् तुल्लल पृ.178

5 [illegible] कुरुंगु [illegible] - कार्त्तवीर्यार्जुन विजयम् तुल्लल पृ.102

6 [illegible] [illegible] [illegible] ।

7 [illegible] तीट्ट [illegible] -
[illegible] [illegible] । [illegible] तुल्लल पृ.82

8 पी [illegible] [illegible] ।

<u>(6) छन्द अन्य हास्य -</u> तुल्ललों में अश्लीलतायों से ज्यादा शब्दालंकार ही हम पाते हैं। अनुप्रास, अन्त्यप्रास द्वितीयाक्षरप्रास ये सब कुंचन की कविता की विशेषताएँ हैं। नंपियार के समान प्रास का हठी अन्य कोई मलयालम कवि नहीं। कुछ प्रास लाने की संभावना है तो, पुनि सविस्तार, असंगत तथा निकृष्ट हास्य को भी वे प्रस्तुत करते थे। पौण्ड्रकवासुदेव का कटा हुआ सिर जब भूमि पर पड गया तब ग्वालिनियों का रोदन कण्ठाराम् राग में था, यही कुंचन का कथन है[1]। शब्दप्रौढता और प्रास के लिए ऐसे क बकवास के लिए नंपियार के अलावा और कौन तैयार होगा?[2] कुछ वर्णनाओं में 'ट्ट' विहीन किसी भी चीज़ को कुंचन शामिल नहीं करते[3]। और कुछ संवादों में 'टा' विहीन किसी भी शब्द को वे नहीं जोडते[4]। संक्षेप में शब्दाडंबरप्रिय नंपियार सजातीय

---

1 तल्लार हार कम्मनायुल्ल कल्लन्टे
  कण्ठं तोकिन्नमन्नाननाल् वीणुडन्
  कन्टाविघ्नडोप्पु कन्टाकुंचलिमार
  कण्ठारागेण केणाडु पिनम्। पौण्ड्रकवधम् तुल्लल - श्रीरामविलासम् प्रेस पृ. 16।

2 श्रीपद्मम् तुल्ललसाहित्यम् - एकूर परमेश्वरन पृ. 207

3 कुट्टिकल्लुम् विल चट्टिकल्लुम् विल
  वेट्टिकल्लुम् विल पोट्टिय कलशुम्
  चट्टकवुम् विल वट्टिकल्लुम् विल
  कोट्टकलेन्निव केट्टिप्पेरि
  पाट्टिल पल पल कोट्टिल नटन्नुम्
  पट्टिकल वोले पट्टिनियिट्टुम्
  कट्टमनर्पिप्पेट्टीट्टुम्न्नु।
          नलचरितम् तुल्लल - रेड्यार प्रेस पृ. 178

4 नीयकेटा नम्मुटे मन्नवे निन्दकुन्न
  मर्कटा नीयकु मारेकेटा शठा
  दुष्ट रावणन्नु कन्नु हानिकुवान
  निन्नकेटा तोन्नुवानेन्तिटा संगति। कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ. 118

द्वितीयाक्षरप्रास, अनुप्रास, आदिप्रास, अन्त्यप्रास आदि अन्य प्रासाडंबरों को हास्यसृष्टि के लिए उपयुक्त करने वाले एक पद-कुबेर थे । उनकी रचनाओं में हास्यमधुर भाषा एवं द्रुत और विलंबित छंदों की योजना सरसता लाती है ।

<u>(7) पात्रोचितभाषा प्रयोग</u> – नीचे तले के प्रेक्षकों और पाठकों के विनोद के लिए नंपियार ने पात्रोचित भाषा का उपयोग किया है । कार्तवीर्यार्जुन विजयम् में रावण, पूजा के बीच विभीषण से संस्कृत भाषा में बातें करता है । ऐसे अवसर पर मलयाल भाषा का उपयोग होता तो भक्ति और पूजा की शक्ति की कमी होगी ऐसे अहंभावि रावण के बहाने पर व्यंग्य करने के लिए ही नंपियार ने यों किया होगा । इस प्रकार नलायनी चरितम् में मौद्गल्यन ब्राह्मण होकर आश्रम में रहते समय इन्द्रसेन से संस्कृत में ही बातें करता है । जब वे पति पत्नी तमिलनाडु में पहुँचते हैं वहाँ वे तमिल में, तेलुगु प्रदेश में पहुँचते समय तेलुगु में, कर्नाटक देश में जाते समय कर्नाटक में बातें करते हैं । जब वे गौड सारस्वत ब्राह्मण बन जाते हैं तब वे कोंकणी भाषा में बातें करते हैं । जब वे लाट जाति के होते हैं तब वे लाटों की भाषा में बातें करते हैं ।

प्रसंगों के अनुसार भाषा का उपयोग करने में कुंचन सिद्धहस्त थे । उन्होंने कहीं भी अनुपयुक्त भाषा जिसे अंग्रेजी में पेडान्ट्री पुकारते हैं, का उपयोग नहीं करते । बाज़ार की भाषा विद्यालय में अनुचित है, उस प्रकार विद्यालय की भाषा बाज़ार में भी अनुचित है[1] । यह तत्व नंपियार के लिए सुविदित था । नंपियार के सारे देहाती पात्र देहाती भाषा और शैली का उपयोग करते हैं । कुंचन का हठ था कि कथापात्रों का पद, उनकी सभ्यता आदि के अनुसार ही उनके आचार और कथन हों । इसीलिए उन्होंने ब्राह्मणों को तमिल में नम्पूतिरियों को संस्कृत में, बोसाइयों को हिन्दुस्तानी में तथा वृत्तोलों को प्राकृत में बातें करने दी । शिवपूजन के समय में रावण का विभीषण से संस्कृत में बातें करना, उसी प्रकार की कुछ हास्यसृष्टि के लिए है[2] । कार्तवीर्यार्जुन विजयम् में जिस प्रकार रावण संस्कृत में बातें करता है उस प्रकार स्यमन्तकम् में नम्पूतिरि

---

1 Biographia Literaria – p.128. S.T. Coleridge.

2 नंपियारुम तुल्लल साहित्यवुम् पृ.248 एम्.पी. परमेश्वरन

लोग सन्ध्याकवन के बीच संस्कृत में बाते करते है, पेट्ट ब्राह्मण बीजन के बीच ती
में झगड़ा करते है । मोरार्ड भी हिन्दुस्थानी में बाते करते है ।

सवाहू...म् में धर्मपुत्र के पास प्राकृतकविता बनाने में कुशल
नपुंसक प्राकृत भाषा में बाते करते है । ऐसी एक योजना भी हास्यसृष्टि के लिए
ने किया है, इसमें कोई शक नहीं । त्रिपुरदहनम् में पुलोत प्राकृत में बाते करते
यह भी हास्य केलिए कुंजन की एक योजना है । तुल्लकथाओं में कुंजन विभिन्न प्रसं
के अनुसार हिन्दुस्थानि, तमिल, तेलुगु, प्राकृत आदि भाषाओं में कविता रच डाली है

---

1 जयते राम राम सीता राम राम
जे जे राम राम कोसल्ड्राजम्
तुमारा मुलकु कौनु मुलुकु
हमारा मुलकु काशी मुलुकु । स्यमन्तकम् तुल्लल - रेडयार प्रेस - पृ. 140

2 सत्राजित किस मिलनाव...ति
चिन्तनम् ...मणि ...
यत्र गृहीते पुत्र ...
...सुमित्र ...
...मंगल -
पा...वासु ... सुजावसि
...म् (संस्कृत)

तुमारा ...कामी काहे बाबा
अमारा...सीता राम राम (हिन्दुस्थानी)

अट नघूतिरि पित्ताय...
...पुलि...
ओन्नुटे मुत्ता ? ...
साप्पाटु...कन्...नुम् (तमिल)

...नानम् आटि...हलि...बुगुंडी
...नानमाटी पकडनेमी (तेलुगु)

...
...
उपाधि...
...तीर्थास (कोन्कणि)

...
...
...
...। (प्राकृत)

अपनी कर्मनाओं में नीचे तले के लोगों को अनुभवस प्राप्त होने केलिए ही कुमन ने १ लिख डाला है ।

(8) शब्दजनित — आपसी संबन्ध न रखनेवाली और कभी कभी उलटे अर्थवाली दो बातों को अनेकार्थक शब्दों में समाहित करना ही ऐसे हास्य का स्वभाव है। इसे सु ही हमारे मनोपथ पर दो विचारमण्डल झट उत्पन्न होते हैं । इन दोनों विचारमण्डलों का संघर्ष ही हास्यसृष्टि करता है । 'वक्रिकूटोषु ...' आ प्रयोग इसके उदाहरण है । मामूली घटनाओं को हसाने के लिए नीपियार से काम में लाए गए कई उपायों में यह भी एक है । मानसिक रूप में बचपन में छूटे होनेवाले ही ऐसे हास्यों की ओर प्रायः आकृष्ट होंगे । प्रहेलिका के समान इसमें भी बौद्धिक कसरत का विनोद ही है । हास्य रूपी भवन के उपरितल पर प्रकट होनेवाले भाव के समान विद्वान इसे मानते हैं[1]। स्टीफन लीकोक जैसे पश्चिमी विद्वान इसे हास्य पुरु में भी दिखलाते हैं[2]। लेकिन भारतीयग्रंथों में ऐसा हास्य प्रचुरमात्रा में दिखाई पड़ता कुमन का कूटा जोधखान अन्य बन्दरों को चेतावनी देता है कि सा को साथ जाने की कोशिश करें तो डूबकर मर जाना पड़ेगा 'किसके लिए मरने जाते हो? तेरे केलिए क्या तुम मगर हो ?

कोप्यकप्यि-तुप्यिस्तुप्यि
दधीप्यार्धीप्यस्तप्यि तप्यि
बकबका गुड गुड गुडुकेन्नुम्
हमो-योपो - योपो - प्योयाम्

यह डूबकर मरनेवाले एक बन्दर की मृत्यु के समय की हलचल का मनोरंजक वर्णन है ।

- -

1 विमर्शदीपि - पृ. 98 - प्रो. के. एम. डानियेल

2 Humour, Its theory and technique - p.98 - Stephen Leacock

3 पौराणिक हास्य निम्नतर का है । अंग्रेजी में इसे इसे 'पन्' पुकारते हैं जो दृश्य बौद्ध प्रयोग ही है ।

हास्यदर्शनम् पृ.59 - मैसोल परमेश्वरन पिल्लै

ध्वनिवाचकों के माध्यम से केरल कुंचन ने शब्दों से कई खिलवाड़ किया है । म्याऊ म्याऊ शब्द मचाने वाली बिल्लियाँ, ककककमिसन, कि कि कि कि कूजन, घु घु घु घु घूलना आदि करनेवाले कबूतर, कर कर शोरपूर्ण चेट, सलिमय गर्जना यों शुरू करनेवाले गायक, 'मिन' शब्द के साथ चुकनेवाले बाण - इन सबके वर्णन में कुंचन ने शब्द जनित हास्य रचा है ।

प्रकृति के अनुसार नामकरण करने की कला में कुंचन अद्वितीय थे, उसका प्रमाण नंपियार की कविताओं में हम देख सकते हैं । पुरुषों को 'इक्कण्णन, चिट्टर बाबू, ताड़न, कण्टर बाबू, रामन बाबू, मूर्ख बाबू, कण्णन कोण्टि, वालन्, कुट्टि, वाक्कन वामन, परकूलोटन आदि नाम आते थे । स्त्रियों को कोता चिरुता, माधवि, काळि, चक्कि, नङङेली, तेवि, उण्णियि, नाणि, कुंजमा, मालु, तक्ति, उण्णूलि आदि कहकर पुकारते थे । ये सब शब्द जन्य हास्य केलिर थे ।

<u>उपकथाओं द्वारा हास्य</u> - तुल्लल कथाओं के बीच प्रसंगानुकूल रूप में हास्यसृष्टि के लिए कुछ उपकथाओं को कुंचन ने जोड़ लिया है । श्रीकुट्टिकृष्णमेनोन जैसे कुछ आलोचकों ने इन्हें पागलकथाएँ पुकारा है[1] । श्रोताओं के मनोरंजन के लिए कुछ प्राचीन वार्ताओं को कथासूत्र में लाकर कुंचन ने गाया है । ये उपकथाएँ संख्या में कम ही हैं । उनकी रचनाओं में निम्न लिखित सात उपकथाएँ ही प्रमुख हैं :-

(1) प्रदोष माहात्म्यम् में शिवशर्मा और उन्मत्तविचार की कहानी ।

(2) शीलावतीचरित में दो कहानियाँ

(क) बिल्ली और चूहे की मित्रता की कथा ।

(ख) मुनि और सियार की सूक्त कथा ।

(3) अहल्या मोक्षम की दो कथाएँ

(क) कबूतर की कहानी जो इन्द्र अहल्या से कहता है ।

(ख) बन्दर की बेवकूफी के बारे में एक कथा जो गौतम इन्द्र से कहती है ।

---

1 यदि नंपियार के तुल्ललों से इन पागल कथाओं को हटायेंगे तो भी कथागति में कोई हानि नहीं होती । सिर्फ ये पागल कथाएँ, पहले बनायी गयी होंगी, फिर एक एक तुल्लल में इनमें से एक एक को जोड़ा गया होगा, फिर तुल्लल के प्रचार साथ साथ इनको मन्दिरों में भी प्रचार मिला होगा, यही विश्वास ठीक होगा ।
केरल की नाट्यकला पृ.78-79 पी.एम.कुट्टिकृष्ण मेनोन

(4) सीतास्वयंवरम् मे चित्रकूटव्यापार तथा रत्नवती की कहानी ।

(5) गोवर्धन चरित मे हट्टवकाली तथा कुक्कुट की कथा ।

<u>(1) प्रदोषमाहात्म्यम्</u> – एक क्षत्रियकुमार से एक ब्राह्मणकुमार की कही गयी है इसकी उपकथा । शिवस्वामी नामक एक ब्राह्मण युवक अपनी दरिद्रता दूर करने के लिए देवी की पूजा करके अद्भुत शक्तिवाली लकडी की डिबिया और जूते पाता है । वह युवक उन्मि-त्रिवरी नामक एक वेश्या के जाल मे फँसकर धोखा खाकर दिव्य वस्तुओ से हाथ धो बैठकर लज्जित कुत्ते के समान घूमता रहता है, यही उसकी कहानी है ।

यह उपकथा हास्य रस युक्त है । वेश्या के जाल मे फँसनेवाले क्षत्रियकुमार को यो ब्राह्मणकुमार उपदेश देते है । वेश्याजन्य आपत्तियो को हास्यात्मक ढंग से इसमे प्रस्तुत किया गया है ।

<u>(2) भीमयात्रा</u> :- जानवरो की दो कथाये इसमे है । ये दोनो भीमसेन के प्रति युधिष्ठिर के कथनअंतर्गत है । गन्धर्वों की मुट्ठी मे पडकर रोनेवाले कौरवो की रक्षा करने के लिए जब युधिष्ठिर तैयार हो जाता है तब भीमसेन बडे भाई की आज्ञा न माने तर्क वितर्क और झगडे के लिए तैयार होता है । बिलकुल हास्यात्मक है यह भाग । इन कथाओ के द्वारा युधिष्ठिर भीम को शान्त बनाने का श्रम करता है । दोनो उपकथाये हास्यरसयुक्त है ।

<u>(3) अहल्यामोक्षम्</u> :- देवेन्द्र, अहल्या को अपनी विषयवासना का खिलौना बनाने के लि[1] कबूतर की कहानी बताता है । जब एक कबूतर दम्पति वृक्षशाखा पर बैठे बैठे प्यार पुच-कार कर रहे थे तभी तब एक शिकारी ने पतिको नीचे गिरा डाला । कबूतरनी ने देखा कि अपने पति के शरीर को खा जाने पर भी शिकारी भूखा रहता है तब अपना शरीर भी उसे आहार के रूप मे देने के लिए स्वयं अग्निप्रवेश करती है । इस कथा मे हास्य की ग कही भी नही, लेकिन देवेन्द्र इस कथा को सुनाकर क्या पाना चाहता है और अन्त मे क्या पाता है सचमुच वही हास्यास्पद है । यह कथा सुनाकर देवेन्द्र अहल्या से प्रार्थना करता है कि इस प्रकार मारताप मे पडे अपनी भी रक्षा हो जाय । बेचारी अहल्या आर्तत्राण परायणा होकर एक बडे त्याग के लिए तैयार हो जाती है ।

---

1 अहल्यामोक्षम् कुत्तल - रेड्यार प्रेस - पृ.224

अहल्या के इस त्याग का फल था गौतममुनि का शाप और इस शाप का परिणामस्व था सहस्त्र लिंगो के साथ देवेन्द्र का और लोगो की आँखो से छिपते रहना । कुंचन अपनी हास्यचतुरता के साथ इस अवसर का ठीक उपयोग करती है । जब सिर के ऊपर कपड़ा डालकर लज्जावनम्र होकर कमरे मे इन्द्र पड़ा रहता है तब हास्य विदग्धा मेनका वहाँ पहुँचती है । इन्द्र की हँसी उड़ाते हुए अपनी नटखट कलम पूँछ के नष्ट होने से मर जानेवाले बन्दर की कहानी कहती है । उसकी पंक्तियों यों है । 'बन्दर जाति के एक को एक बार जो दुर्घटना हुई उसे जरा सुनिए'[1] । यह पंचतंत्र मे आती है ।

सीतास्वयंवरम् :- चित्रकूटस्वार की पत्नी हल्वची अपने प्रेमी को बरतन के अन्दर छिपाती है । जब पति की आँखो मे यह पड जाता है तब बिना घबराहट के वह वाक्चातुर्यपन्न प्रेमी कहता है कि मुनिशाप से वह एक बिल्ली बन गया था और अब ? पड जाने से शापमोक्ष मिला । बेचारा पति इस कथा को सच मानता है । मुनि वचनो मे विश्वास करनेवाला पति स्वपत्नी के जारपुरुष को भी यों बताते अपनाता है 'छोटे भाई ! तुम और मै मिलजुलकर इसका पालन करेंगे[2] ।सत्यास्वयंवरम् की तुलस वेलने वाली होनेवाली एक नौकरानी यह कहानी बताती है ।

गोवर्द्धन चरितम् - गोवर्द्धनचरितम् की हदिट्टबवाली थुम्बिट्टि, केलन इन सबकी कहानी भी कुछ हँसी और कुछ गंभीर बात दोनो को मिलाकर लिखी गयी है ।

हरिणी स्वयंवरम् - एक नंपूतिरि के मुख से यह कथा प्रस्तुत की गयी है । एक नंपूतिरि एक स्त्री पर आसक्त थे, बीच बीच मे वहाँ जाया करते थे, उसे अपनी पत्नी ही मानते थे । पुत्र नंपूतिरि भी वहीं बीच बीच जाया करते थे । वह मानिनी स्त्री को समान मानती रहती । एक बार ऐसा हुआ कि जब पुत्र अन्दर थे, पिता आ पहुँचे । ~~पुत्र पेटी मे पहुँचे~~ । पुत्र पेटी मे छिपाया गया । लेकिन पिता ने पेटी खोलकर देखा ही । कुट्टिट्टवात्सन बन कर पुत्र बाहर कूदा, भयभीत पिता वहीं से दौड़ गये ।

---

1 मर्कट जातियिलोरुवन्नु पण्टोरु,
कुरीट मिडने वन्नतु कोलकू । अहल्यामोक्षम् तुलस - रेडियार प्रेस पृ.229

2 अनुजा, नीयुम् ञानुम् कूटी -
ट्टिटवलोटु मेलिल कूटि नटक्कणम् । सत्यास्वयंवरम् तुलसरेडयार पृ 35

<u>कल्याणीवधम्</u> :- पति कुछ अन्धा होने का बहाना करता है, अपनी पत्नी कुमुदिनी की प्रेमी के साथ की रतिलीला का मजाक भी बनता है और अन्त में पत्नी के प्रेमी के कान और नाक काट देता है, ऐसी एक उपकथा इसमें है ।

<u>व्यंग्य</u> - सटीयर साहित्य में कुंचन नंपियार को संसार में ही प्रमुखतम मान सकते हैं[1] । यही मलयालम के एक व्यंग्यकार श्री. ई.वी.कृष्णपिल्ले का मत है । कुंचन के साहित्य का मुख्य अंश व्यंग्य है । नंपियार के हाथ से कम से कम एक 'धम' न पानेवाली कोई केरलीय जाति न होगी[2] । इस विषय में अंग्रेजी साहित्य में अठारहवी सदी के सटायर मलयालम में भी उसी समय ही प्रकट हुआ, यही दीखता है[3] । और एक आलोचक के मतानुसार 'कुंचन की हास्यधारा ज्वालामुखी से बाहर प्रवाहित लावा के समान है[4] । कुछ आलोचकों का मत है कि शत्रुओं को गाली देने के हथियार के रूप में भी नंपियार ने साहित्य का उपयोग किया है[5] । फिर भी सब आलोचक इस बात में एकमत सहमत होते हैं कि 'कुंचन के समान तीक्ष्ण व्यंग्यबाण का प्रयोग करने वाले और कोई केरलीय कवि नहीं[6] । वर्तमान मलयालम हास्य साहित्यकारों में प्रमुख श्री वेलूर कृष्णन कुट्टि के शब्दों में 'कुंचन कोलिक व्यंग्य प्राणवायु था । सिर्फ हँसाना नहीं, हँसाकर सोचने देना भी कुंचन का लक्ष्य था । उनकी तुल्लल कृतियों में तत्कालीन आचारवैकृतों तथा बुरे रिवाजों की हँसी उड़ाकर समाज के बीच से उन्हें दूर करने का श्रम हम देखते हैं । बहुपत्नीत्व, बहुपतित्व, अहंकार, कायरता, मद्यपान, चिपतखोरी, धनमोह इन सब पर जहाँ तक हो सके व्यंग्य कसने के लिए वे कविता को काम में लाए[7] ।

- -

1 हास्यसाहित्य - पृ.97 पुत्तेष्तु रामनमेनोन ।

2 नंपियार के व्यंग्य बाण से बचा कोई जनविभाग नहीं था'
आधुनिक मलयाल साहित्यम् भाग - 1 - पृ.96 पी.के.परमेश्वरन नायर

3 साहित्य चरित्र संग्रह - पृ.163 पी.शंकरन नंपियार

4 साहित्य सम्पर्कम् पृ.23 पी.श्रीधरन पिल्ले

5 मलयालन मंजरि पृ.110 हि.पत्मनाभनुण्णि

6 नवदीप - पृ.मलयालम 42 प्रो.रामवर्मा

7 कैरलि की प्रगति पृ.61 हास्य साहित्य नामक लेख से — वेलूर कृष्णन कुट्टि

(क) देवों पर :- उस हास्य सम्राट के हाथों से शिव ने भी छुटकारा नहीं पाया। एक समालोचक का यह कथन ठीक ही दीखता है। सन्तान गोपालम् तुल्लल में कुंचन के ब्राह्मण निन्दा वचनों से श्रीकृष्ण का अविवेक करते हैं 'मेंढ़कों के सम्बन्ध में तू कैसे जान सकता है ? तेरी हजारों स्त्रियां हैं और रोज कम से कम पचास या साठ बच्चे पैदा होते हैं। अरे, कैसे तू निस्सन्तान व्यक्तियों का दुःख समझ सकता है ? यदि तू और भी आगे बढ़े तो मैं तुझे शाप दूंगा। बंसी बजाने, साथियों के साथ चलने, गोपियों के वस्त्रों की चोरी करने और स्त्रियों को धोखा देने में तू समर्थ है। हाय, भगवान! तुझे यहां से भगाने के लिए कोई नहीं है क्या ?'[2]

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को भी कुंचन ने छोड़ा नहीं है। रावणोद्भवम् में जब रावण शिव के लिए अपना दसवां सिर काटने लगता है तब घबराहट के साथ ब्रह्मा की भागदौड़ का कुंचन ने जीता जागता जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह सरस बन गया है। दौड़ दौड़कर वे पसीने से भीग गए। मुख से पसीने की बूंदे टपकने लगी। सब कपड़े उतर गए। दुपट्टा नीचे गिर गया। कमण्डलु, जपमाला सब नीचे गिर गए फिर उन्होंने जमीन से ले लिया[3]। इस प्रकार भागदौड़ करनेवाले कमलोद्भव सचमुच आकृति में हमारे उद्भट शास्त्री से भिन्न नहीं।

सुन्दोपसुन्दोपाख्यानम् में ब्रह्मा को एक कारीगर के रूप में कुंचन प्रस्तुत करते हैं। सुन्दरी तिलोत्तमा की सृष्टि में लगे ब्रह्मदेव को भी कुंचन छोड़ते नहीं। सुनिए जरा वर्णन 'देवलोक का कारीगर सुन्दर स्त्री की सृष्टि करने लगा। कमलासन ब्राह्मा अपनी नाक पर चश्मा लगाकर टकटकी बांध देखते रहने लगे। अपने मन को अच्छा न लगनेवाले भागों को बार बार बदल कर बनाने लगा[4]।

- -

1 कुलपतिकत - पृ 62 तायाट्टु हलन

2 पार परचाम्म मेन पीडकल नेर पोसनाय तीर्न्नु निनक्कुम्

× × × ×

आट्टिटबसवानुमी नाट्टिलारुमिल्लतो। सन्तानगोपालम् ओट्टन तुल्लल पृ. 36!

3 ओटि मन्नु कियर्तु वर्त्तु रुम्

. . . .

मोट्टु कर्त्त रुम वारियेट्टल्लुम। रावणोत्भवम् तुल्लल - रेडयार प्रेस पृ. 309-310

4 चोत्तेरुमेनरूपसृष्टिक्रमम्

. . . .

पिन्नेयुम् पिन्नेयुम् मारिप्पणि क्युम्।

सुन्दोपसुन्दोपाख्यानम् - वीरामविलासम प्रेस पृ. 27

यहाँ का हास्य भी ध्यान देने योग्य है । कुंचन के हाथ में असली ब्रह्मदेव भी एक बूढ़े अफीमची रहे ।

कल्याणसौगन्धिकम् में कुंचन ने न नायर या नंपूतिरि को पकड़ा है, लेकिन पकड़ा है यमराज को ही । शिवभक्ती की धर्मिष्ठता के कारण देश में मृत्यु न होने लगी तब यमराज बेकार हो गए, तब का वर्णन हास्यमय रूप में प्रस्तुत किया गया है। कालमृत्यु और दुष्कालमृत्यु भूमि में आगे चलकर जब न होने लगी तब यमदेव की नौकरी छूटी पड़ा । अपने घर में वह दुःखी होकर बैठा रहा । उसके शूल आदि हथियार छत के किसी कोने में पड़े रहे[1] । गोपालवत-पूजा में अर्जुन के बाणों से परेशान लोगों के बीच पेटू कुबेर की बेबसी और दौड़ने की असमर्थता कुंचन ढूंढ निकालते हैं । इस प्रकार बाणयुद्ध में पेटू गणपति की बेचैनी कुंचन खासकर प्रस्तुत कर दिखाते हैं ।

अहल्यामोक्षम् तुल्लल में देवेन्द्र की हँसी उड़ाई गयी है । स्वर्ग की मालियाँ और स्वर्ग के नौकर अपने ही राजा की हँसी उड़ाते हैं । स्वर्ग के एक नौकर का कथन है 'जो न करना है, करते रहेंगे तो सब लोग हमारी हँसी उड़ायेंगे[2]'। यहाँ हास्य-कथन सभ्यता की सीमा को लाँघ गया है । विनयस्वभाव ही इसका कारण होगा।

इस प्रकार डा.वेल्लनाट्टु अच्युत मेनोन के कथन को मानकर हम भी कह सकते हैं कि चाहे इन्द्र हो या चन्द्र – साक्षात् कृष्ण परमात्मा तक कुंचन के हाथों में समान हैं । वे सिर्फ यही देखते हैं कि कहीं असांगत्य है, क्रूरता या अनौचित्यपन[3] ?

चाहे देव हो चाहे असुर नंपियार ने किसी को भी नहीं छोड़ा ।

<u>(ख) राजाओं पर</u> - डा.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर ने ठीक ही कहा है कि 'समाज के निचले स्तर के लोगों में रहकर बड़ों का उपहास करनेवाली रचनाएँ लिखने का साहस भी शायद नंपियार ने ही किया था[4] । जिन राजाओं की छत्रछाया में वे पनपते थे,

---

1 कालकालनुम् दुष्कालकाले लघुमेन्नुम् ।
....
कोतायम्पुरत्तेतु मूलयिलिरुन्नावो । कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल - रेड्डियार प्रेस पृ.356

2 कट्टुत्ततल्लु काट्टि नडन्नाल्
कूट्टम परिहासम् पलरुमोत्त । अहल्यामोक्षम् तुल्लल - रेड्डियार प्रेस - पृ.231

3 प्रबन्धम् पृ.186 - डा.वेल्लनाट्टु अच्युतमेनोन

4 आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य पृ.36 डा.एन.ई.विश्वनाथअय्यर

जिनके यहाँ का पीकर वे जीवन-यापन करते थे, उन्हीं राजाओं पर भी व्यंग्य कसने में वे अग्रसर थे[1]। संकीर्ण मनोवृत्ति वाले राजाओं की दुर्नीतियों का चित्रण बड़ी कुशलता से कुंचन ने किया है। वर्तमान केरल राज्य उनके जीवन काल में छोटे छोटे टुकड़ों में बँटा हुआ था और छोटे छोटे राज्य छोटी छोटी बातों के लिए आपस में झगड़ते थे। मार्ताण्डवर्मा नामक प्रबल राजा ने दूसरे छोटे छोटे राजाओं को अपने अधीन कर लिया था इस विषय पर कवि ने कहा है 'देखो, छोटे राजा लोग आपस में झगड़ा करते हैं। वे विचारते हैं कि मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ। इसका यह नतीजा है कि एक-एक का राज्य धीरे धीरे बरबाद होता है। अतः बिना झगड़ा किए रहना अच्छा है[2]। किन्तु ये राजा लोग झगड़ा करते रहे। तब तिरुवितांकूर राजा अपनी विशाल सेना द्वारा एक-एक को पराजित कर अपने अधीन करने लगे। उस समय का राजनीति वातावरण अशान्त था। किसी को नहीं मालुम था कि अपना राज्य कब नष्ट हो जाएगा। इतना होने पर भी उनमें गर्व की भावना थी। वे क्रूर प्रकृति के थे। पत्थर ढोना जैसा कठिन काम करके थके माँदे लोग जब राजा के पास जाते हैं तब वह उन्हें अच्छी तरह बात तक न करके उलटे फटकार बताता है[3]। राजाओं के स्वभाव का एक और चित्र देखो 'वर्तमान काल के राजाओं के स्वभाव के बारे में हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। सबको यह समझ लेना चाहिए कि उनके हृदय में दया लेशमात्र भी नहीं है[4]। राजाओं के लिए स्त्री एक दुर्बलता सदैव ही रही। अधिकांश राजाओं की कई पत्नियाँ भी थीं[5]। उनके मतानुसार ही राजा सब कुछ करते थे[6]। कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल में

- -

1 नंपियार का यह कार्य आपत्तिजनक था। शेर को उसी के कन्दरे में जाकर आक्रमण करनेवाले शिकारी का कार्यक्रम था यह। ..... नंपियार ने उसे कुशलरूप में किया भी। इसकेलिए आवश्यक वाग्वैभव उनके पास था।

आधुनिक मलयाल साहित्यम् पृ.82 पी.के.परमेश्वरन नायर

2 नाट्टुवाषिकळ एन्न रूपोल अवरवरे

....

तानत्रे लियातडडोडिड प्यार्तु कोल्लुन्नु। सभाप्रवेशम् पृ.83

3 कल्याणसौगन्धिकम् पृ.148

4 सभा प्रवेशम् पृ.148

5 कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ.103

6 कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल पृ.103

कुंचन ने यह भी बताया है कि स्त्रियों की सिफारिश पर राजा से कोई भी काम कराया जा सकता है[1]। रुक्मिणी - स्वयंवर में विवाहासक्त राजाओं की चेष्टाओं के सम्बन्ध में कुंचन के वचन देखिए 'अपूर्व सुन्दरी रुक्मिणी का वदन-सरोज देखकर राजा सबकुछ भूलकर स्थाणु के समान खड़े रह गए। एक राजा रुक्मिणी को देखते ही सब भूलकर अपने हाथ में रखा हुआ पान बिना खाए उसे अपने सिर के बालों पर खोंसे बैठे गया। दूसरा राजा चूने के बर्तन से चूना लेकर समझ गया कि वह कस्तूरी के समान कोई सुगन्धित द्रव्य है। तुरन्त उसने उसे अपने मुँह पर लगा लिया।

राजाओं पर ही नहीं जमीन्दार, जागीरदार, रईस सब लोगों पर कुंचन अपना हाथ साफ करते थे। रईसों की डींग सुनने पर उन्हें बढ़ बढ़ कर बातें करते देखने पर नंपियार उन अगर मकड़ों पर जान बूझकर व्यंग्य बाण चलाते थे। राजधानी और कोविलकमों (सामन्तों के महल) में जीवन बिताने के कारण वे इन पर परोक्ष रूप से व्यंग्य कसते थे। पौराणिक पात्रों के बहाने भी वे यों करते थे। एक गर्विष्ठ केरलीय जमीन्दार को ही हम पाण्डव राजधानी देखने निकलनेवाले दुर्योधन में देखते हैं। आडम्बर तथा ठाटबाट की ओर जमीन्दार तथा नवाब जागीरदारों के सम्बन्ध में कुंचन ने यों लिखा है 'यदि शिकार के लिए जाना होता है तो सबसे पहले पचास सैनिकों का दल अवश्य साथ में जाना चाहिए। उसके पीछे कुछ लोगों को जाना पड़ता है। सन्दूक ले जाने के लिए चट्टर, पैर दबाने के लिए नायर, नौकर, वेलक्काड़न आदि का रहना जरूरी है[2]। ये लोग मूर्खों तथा स्त्रियों से सलाह लेकर अपनी प्रजा से रिश्वत लेते हैं और अपने राज्य को बरबाद करते हैं[3]। जमीन्दार वर्ग के चारित्रिक पतन पर कुंचन दुःखी थे। अतः हास्यमय रूप में उन्होंने उसे चित्रित किया, तीखे रूप में आलोचना की।

---

1 कन्य तुन्नुटे वदन सरोजे
 ....
 तेषु तुळरी मट्टोरु नृपन । रुक्मिणी स्वयंवरं पृ.162

2 वेट्टयक्काय पोकन्नेंकल मुपत्तिपतक्कंपटि वेणम्
 कासु तिरुक्कान नायरुवेणम् वेलक्कारनुमरिकेवेणम् चीचयेटुप्पान चट्टुवार वेणम् ।
 श्री कुंचन नंपियार - पं. बालकृष्णपारियर पृ.150

3 तन्नरक्षानरियाररु जनत्वोर मंत्रियाकि
 ....
 तानुं तन्ने तन्टे राज्यं नशिप्पिक्कुम् प्रकारम् ।
 हरिश्चन्द्र चरितम् पृ.39

(ग) राजकर्मचारियों पर - राजाओं के आश्रय में रहने के कारण उनके कर्मचारियों अत्याचारों का पता नंपियार को भली भाँति था । बड़े कर्मचारी बड़े घमंडी, रिश्वतखोर, घूसखोर और स्वार्थी थे । स्वार्थसिद्ध करने के लिए घृणित से घृणित कार्य करने में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं होता था । बिना उनकी सहायता के मामूली जनता राजाओं से कोई भी कार्य पूरा नहीं कर सकती थी । कार्यों की सफलता, रिश्वत की रकम पर निर्भर रहती थी । वे हमेशा दूसरे लोगों के विरुद्ध कान भरते थे । नंपियार के शब्दों में राजा की सेवा करके तथा उनकी चापलूसी करके दूसरों को धोखा देना ही इनकी योग्यता है । भोले भाले लोगों को चूसकर धन लेने का काम ही इन का है[1]। पात्र चरितम् में कुंचन का कथन है 'हमारे कर्मचारी बड़े घमंडी हैं । ये पहले दूसरों की दया के सहारे जीवन बिताते थे । इनका मन फिसल गया । उनको बुलाया और काम दिया । अब बड़े बड़े साहब बन बैठे हैं[2]।

एक प्रमुख कर्मचारी की कमज़ोरी की गाथा का कवि ने यों वर्णन किया है । उसने सबेरे उठकर हाथ-मुँह धोया । खाने के लिए थाल के सामने बैठा । जब मालूम हुआ कि खाने की कोई वस्तु तैयार नहीं है तब क्रोध के मारे अपनी नवविवाहिता युवति पत्नी को बाहर भेजा और धूप में खड़ा कर दिया । उस समय का उसका साहस देखने योग्य है । लेकिन अपने काम के लिए जब वह बाहर जाता है तब उसे बेकार होकर वापस आना पड़ता है[3]। उस असमर्थ और दुस्साहसी कर्मचारी का चित्र यहाँ है जो औरतों के आगे लंबी चौड़ी बातें करते हैं । शत्रु सेना के आगमन की वार्ता पाते ही अपने को बहादुर समझनेवाले ये लोग जान लेकर भागते हैं । राजा के सामने ये सिंह, हिरन के समान ही हैं ।

---

1 राजाक्कन्मोरेन्नु दैविक्कु नित्यम्मुम् ऽयंग पर । पलतेर चोलिन्नुम्
वेनकूलि मेलोप्पिट्टुडुमानत्ताते वन वातियन कल्पयिकित्त वाछितम्
श्री कुंचन नंपियार - डॉ. बालकृष्ण वारियर पृ. 150

2 नऽमुट कार्यक्कारन्मारिलऽम्मति मूटातुलवीलत
....
येऽमे पालु कोटुत्ताल पिन्ने नऽमेलकलोटु पीलुवैटु । पात्रचरितम् तुलल पृ.69

3 कासत्तेकुनेट्टु नोक्कुन्न नेरत्तु
....
कार्यीत्तनेत्तुन्ने नेरे अटक्कुम् । पात्रचरितम् पृ.87

और एक का चित्र देखिए । वह राजा के महल में छिपे छिपे जाता है । उंगलियों को नाक पर रखकर बरपाई के नीचे बैठकर समय और अवसर पाकर राजा से गिड़गिड़ाकर एक एक बात के लिए प्रार्थना करता है[1]।

रिश्वत लेकर न्याय और नीति का खून, पहुँचाने वाले कर्मचारी सदैव शासन के लिए एक अभिशाप ही है । बन्धु बान्धवों की सिफारिश पर ही कर्मचारियों को कर्तव्यच्युत तथा भ्रष्टाचारी होना पड़ता है । इसमें पत्नी के बन्धु वर्ग ही कर्मचारियों को ज्यादा कर्तव्यच्युत करते हैं । हरिणी स्वयंवरम् में सरस रूप में कुंचन ने इसका वर्णन किया है 'स्त्रियों से सलाह लेकर कार्य निर्णय करनेवाले लोगों से बढ़कर होगा कच्ची मिट्टी का घड़ा । .... अफसर से मिले तो बात निकाल लेने में तकलीफ होगी । यदि उनकी पत्नी नायिका से मिले तो बात सफलता से निकाल सकेंगे, ऐसा एक विचार देश में प्रचलित न हो[2] । ये मंत्री अफसर तथा अन्य कर्मचारी अधिकतर बहुपत्नीत्व के आदर्श का पालन भी करनेवाले होते तो सारी बातें बिगड़ भी जायेंगी ।

कुंचन ने सचिव तथा अन्य उच्च राजकर्मचारियों पर तीखा व्यंग्य कसा है । नंपियार के व्यंग्यबाण आजकल के मंत्रियों तथा अफसरों के लिए भी लागू है, यही ध्यान देने योग्य बात है । 'यह सारा संसार कुछ दुर्मन्त्रियों के हाथ में पड़ गया है । वे यह नहीं जानते कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है ? .... देश की जनता को चूस चूसकर सारे धन को अपने घर में ढेर लगाने के बाद घमंड दिखाना अच्छा है क्या[3] ?

कुंचन राजमहल के निम्न श्रेणी के नौकरों की हंसी भी उड़ाते हैं । गले में रुद्राक्ष माला धारण कर, छाती पर भस्म लगा, कानों में बालियाँ पहनकर वे बाहर प्रत्यक्ष होते हैं । उनका काम लोगों को सताना, कपट करना तथा रूठी सेवा करना है ।

- -

1 पतिस प्राधि मेलैं तिरुमुखिस चेन्नु पिन्ने
....
बन्धु काट्टिक्कोण्टु कार्यङ्ङलित्ति चु बोलन्नुटन । श्री कुंचन नंपियार डा. वासियर पृ.153

2 पेण्णुङ्ङलोटु चिचारिच्चु पर्यङ्ङल
....
नायिका नाट्टिल नटक्कातिरिक्कणम् हरिणी स्वयंवरम् तुल्लल पृ.103

3 धर्ममेन्तधर्ममेन्तेन्नु वर तु तिरियात्त
....
वीट्टिलाक्कि विबुलमनपोटु कॉट्ट याल मतियावीलो ? हरिश्चन्द्रचरितम् तुल्लल पृ.76

हालिनी स्वयंवर में कुंचन बताते हैं कि ये लोग जब पथिक दूर से आते हैं तब अपने सेवकों को पुरी वरों में बिठाकर उनका माल - असबाब लूट लेते हैं और उस लूट पाट से अपनी बीवी - बच्चों का पालन करते हैं[1]। ये कर्मचारी हाथ में ताड़ पत्र लेकर निकलते। लोगों का शोषण करके अपना मतलब निकालने केलिए ये लोग घूमते फिरते हैं। जहाँ एक रुपया कर (Tax) है वहाँ दस वसूल करके ये झूठे बड़े साहब बनकर चलते फिरते हैं[2]।

चन्द्रांगदचरितम् में कुंचन ने राजमहल के लेखा-पाल का हास्यात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है जो नर्ममाला में क्षेमेन्द्र कवि के कायस्थ वर्णन की याद दिलाता है 'सचमुच जितना है उससे आठ और दस ज्यादा लिखकर झूठा हिसाब लिखेगा और अनुचित रीति से पैसा कमायेगा। अधिक सूद पर वह कर्ज देगा। पत्नी और बच्चों को मन चाहा आभूषण बनवाकर देगा। यह झूठ कहेगा, डाका डालेगा और चाहरी दिखावा करेगा। महाराजा के आगे खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता के साथ मालिक को खुश करने केलिए और लोगों की बुराइयों का वर्णन करने लगेगा। बेचारे लोगों को धमकी देकर वह डरायेगा[3]।

नृगमोक्षम में भी कुंचन ने राजा के मुख्तार या प्रबन्धक की हंसी उड़ाई है। किसी को राजा प्रबन्धक व मुख्तार बनाकर कहीं भेजते हैं तो वह उस देश के लोगों को चूस चूस कर पैसा और अनाज कमाता है। जिसके पास कुछ धन है उसे डरा या धमकी देकर सब कुछ हड़प लेता है। सब खेत सरकारी बना और बताकर खेती कराता है। फसल राजा को देता नहीं, सब कुछ बेच पैसा कमाता है और पत्नीगृह पहुँचता है। वहीं सब खर्च करता है। इस प्रकार खर्च करते करते सारा धन लुप्त हो जाने पर सब लोगों से भीख माँगता रहता है[4]।

---

1 चुंक रधालडहालिल वेन्नु पथिक्के
....
मंकमार वीट्टु पलर्तिन्नितु चिलर। हालिनी स्वयंवरम् पृ. 108

2 क्योलयुं ओरु कैयिलेट्टुत्तु
....
कल्ल चोल्लु करयुं आकि। चन्द्रांगदचरितम् पृ. 115

3 अल्लातलेट्टुम पत्तुम कूट्टि
....
नीकम्मारे पकलुम ढखुम्। चन्द्रांगदचरितम् तुल्लल पृ. 356

4 हप्योतक्कमियायिट्टोरुत्तने
....
कोट्टुम तिरि [नटक्कुमाराय वरुम्। नृगमोक्षम् तुल्लल - श्रीरामविलासम् प्रेस पृ 146

(घ) ब्राह्मणों पर — ब्राह्मणों को, जिनका कर्तव्य ईश्वर की पूजा माना जाता था, लोभी और लालची बन धनार्जन में ज्यादा ध्यान देते देखकर कुंचन ने उनको अपने व्यंग्य का विषय बनाया। समाज ने उनको एक आदरणीय पद दिया था, लेकिन स्वार्थ-प्रेरित होकर जब वे अपने उच्च पद से नीचे उतर आने लगे और स्वयं परिहास्य बने तब उस अधःपतन पर कुंचन ने व्यंग्य बाण चलाए। कपड़ों का व्यापार, बड़ी सूदपर कर्ज का व्यापार देने का व्यापार - इन दोनों के साथ साथ अमित लाभ की आशा भी उनमें बढ़ती गयी। जो लोग इनसे पैसे लेते तथा कपड़े कर्ज में खरीदते, उनको उन ब्राह्मणों द्वारा दी गयी अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता था। कुंचन का कथन है 'यदि पट्टर[1] लोगों से वस्त्र उधार ले तो उसका नतीजा सर्वनाश है। वे दुगुना तिगुना मूल्य वसूल कर लेंगे। सूद की दर भी बहुत बड़ी है। ठीक समय पर पैसा वापस न दिया जाए तो वे घर में आकर डेरा डालेंगे और जब पैसा मिलेगा तभी घर से जाएंगे'[2]। एक नायर ने एक ब्राह्मण व्यापारी से कुछ कपड़े कर्ज में लिए। उस नायर के घर में जाकर उस कपड़ेवाले के बुरे व्यवहार का वर्णन सीता स्वयंवरम् में है। ब्राह्मण घर की औरत से कहता है 'तेरा पति वह कलकलनायर कहाँ गया? कपड़े का पैसा दो। पैसा नहीं हो तो गिरवी के लिए चीज दो। मुझे ब्राह्मण के पास जल्द आ जाओ। तुम अपने को गिरवी रखोगे तो बहुत अच्छा, उसे भी मैं स्वीकार करूँगा।[3] ऐसी बुरी गिरवी को एक बार अच्छी तरह देखकर स्वीकार करने की व्यापार संबन्धी यह होशियारी सुन्दर ढंग में चित्रित है[4]। तमिल और मलयालम की एक मिश्रित भाषा ही केरल के तमिल ब्राह्मण उपयुक्त करते हैं, इसे उसी प्रकार कुंचन ने चित्रित किया है।

---

1 तमिल ब्राह्मणों को निन्दा सूचक यों पुकारते हैं।

2 पट्टन्मारोट् वस्त्रमेटुत्ताल
....
वीट्टिल केरि पाटु किटक्कुम्।

3 कलकलनायनेवन्के पोनान
कच्चयेटुत्त पणमेन्तातुम्
पणमिल्लाट्टा पणयम् तारुम्
पट्टरुकिट्टे वारुम पेण्णे
ओरुमित्तानोरु पणयम् तन्ना -
लेतु कुरि पार्त्तेतु वाङ्ङिक्कोळ्ळाम्। सीतास्वयंवरम् - पृ. 114

4 कुंचन नंपियार (एन.बी.एस. 1957) पृ. 243 - 244

एम. आर. बालकृष्ण वारियर

ब्राह्मणों का यह लालच सिर्फ धन और महिला पर ही नहीं बल्कि खाद्य पदार्थों पर भी है। ब्राह्मणों का पेटूपन, खाद्यपदार्थों पर उनका लालच दावत के बीच उनकी हलचल इन सबके चोखेंअवसर बना बना कर कुंचन ने व्यंग्यबाण छेड़ा है। श्री.पी.के.नारायण पिल्लै जैसे समालोचक कुंचन की इस प्रवृत्ति में एक तरह की ईर्ष्या ही देखते हैं[1]। पंचेन्द्रोपाख्यानम् में खाद्य पदार्थों पर उनकी ललच का बीभत्स वर्णन कुंचन ने प्रस्तुत किया है 'अच्छी तरह, मन भर खाते हैं, फिर भी उनकी तृप्ति नहीं। कटहल की खीर तीन बर्तन भी पीने पर भी वे तृप्त नहीं[2]। दावतों का ऐसा वर्णन ब्राह्मणों की हंसी उड़ाने के लिए ही किया गया है। रुक्मिणी स्वयंवरम् तुल्लल में भी इस लालसा का वर्णन है[3]। पांचालीस्वयंवर में भोजन के वर्णन के बीच कुंचन यों कहते हैं 'सौ बड़े टोकरे भर के पापड़ को पीस कर दो केले फल के छिलके को दूर कर उनको भी मिलाकर बनाकर अष्टगन्ध के समान तैयार कर खानेवाले ब्राह्मण का खाना देखते समय बड़प्पन ही स्पष्ट है[4]। यहाँ अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन के अलावा एक अलग प्रकार का व्यंग्य भी कुछ आलोचक ढूँढ निकालते हैं। घेल लाओ, पापड़ लाओ आदि और भगवान प्रीतिभोजन केलिए बैठनेवालों का वर्णन कई जगहों में कुंचन ने किया है। स्यमन्तकम् और पंचेन्द्रोपाख्यानम् में ब्राह्मणों के स्नान के बीच की हलचल का वर्णन है[5]।

- -

1 परान्नम् प्राप्य दुर्बुद्धे। मा प्राणेषु दया कुरु

दुर्लभानि परान्नानि प्राणा जन्मनि जन्मनि' वाले तत्व की आड़ में दावत खाने चलने वाले लोगों पर नंपियार की कुछ ईर्ष्या और उससे उत्पन्न शत्रुता भी होगी।

2 तीन भाषा कवियाँ - पृ.150 पी.के.नारायण पिल्लै

2 अलपक्क चक्कप्रथमन् कुडुक्कोलम् पूर्णमाय -

....

कुंभरप्पटम् तिन्नान् चितर्णनम् कुडिक्कला। पंचेन्द्रोपाख्यानम् पृ.131

3 किट्टुयतोन्नुम पोरायावन्न

....

किट्टु पिडिच्चु तिन्नु नटक्कुम। रुक्मिणी स्वयंवरम् पृ.69

4 तीन भाषा कवियाँ - पृ.151 पी.के.नारायण पिल्लै

5 (क) स्यमन्तकम् पृ.85

(ख(पंचेन्द्रोपाख्यानम् पृ.73

ब्राह्मणों पर कुंचन का यह व्यंग्यविनोद इतना तीक्ष्ण, कच्चा और निचले स्तर का है कि एक बूढ़े ब्राह्मण को कड़ी धूप में धीरे धीरे चलते देख सहानुभूति तो दूर - वे यही कहते हैं कि धूप से तप्त उस गंजे पर मुट्ठी भर के धान से लावा बना सकते हैं[1]।

कुंचन ने नम्पूतिरि अर्थात् मलयाल ब्राह्मण पर भी व्यंग्य कसा है। सत्यास्वयंवरम् में अधिकांश नम्पूतिरियों को केन्द्र बनाकर उन्होंने हास्य का प्रयोग किया है। सत्या नामक सुन्दरी के आशिक पुरुषों को शादी के पहले एक दुर्दम बैल को पीटने का कठिन काम करना था। इस नियम की हंसी उड़ाते हुए एक नम्पूतिरि कहता है 'शादी के पहले राजाओं को असंयमित बैल को संयमित करना है, इस नियम के निर्माता ने सचमुच बड़ी बेवकूफी ही दिखाई है। हल से काम करने वाले कुछ किसान बैल को संयमित करने में सफल निकलेंगे तो क्या सत्या उन्हें अपनी कन्यादान करेंगे क्या? बैलों के सींगों पर चढ़कर मर मिटने के लिए पचास हजार रुपीमित नृप अभी आ पहुंचे हैं। प्रतियोग शुरू करने के पहले यह खेल ख़त्म जायगा तो प्रतिग्रह तो दूर, बड़ा खाना भी प्राप्त नहीं होगी, यही का दुःख है। बड़ा खाना हो जाय, प्रतिग्रह भी मिल जाय, फिर सत्या के आशिक मरे तो भी मुझे खेद नहीं[2]।

पेट भर जाय धन भी मिले, इससे बढ़कर उसे चिन्ता ही नहीं। कोई मरे या न मरे, इससे क्या?

पौण्ड्रकवधम् में नम्पूतिरि की लालच को उन्हीं के स्वरों में व्यक्त किया गया है 'अच्छा हो या बुरा, धन पायेंगे तो हम सब कुछ करेंगे[3]।

सीतास्वयंवर देखने के लिए आया हुआ एक नम्पूतिरि पूछता है 'क्या औरतों को देख सकते हैं' किसी का उत्तर यों है 'वहां अनगिनत औरतें दिखाई पड़ेंगी। पहले का अगला प्रश्न क्या हम औरतों से कुछ बातें कर सकेंगे? उत्तर यों है 'दूर खड़े

---

1 एकुवत्तेट्टु नाळु तिळ तिळु
....
तोलुपिटि मलरु पोरिक्कलाम् ।

2 पैलि कौविस्यान कन्न नृपन्मार
....
चत्तीटिलुम् मिडित्तोलु खेदम् । सत्यास्वयंवरम् तुळ्ळल - विद्यार्थिमित्रम् प्रेस पृ. 340-341

3 नल्लतेन्नालुम तीयतेन्नालुम् ।
वल्लतुम् वेरयाम् पणम् किट्टुमेन्कल । पौण्ड्रकवधम् - श्रीरामविलासम् प्रेस पृ. 163

देख देख कर नयनसुख पा सकते है, पास जायेंगे तो क्रमश आपे से बाहर होंगे[1]।
इससे नंपूतिरियों की विषय लालसा स्पष्ट है।

सत्यासक्त हो या पुष्पिणी स्वयंवर दान दक्षिणा और भोजन है तो वहाँ नीपयार ब्राह्मणों को लायेंगे। वहीं उनकी अच्छी हंसी उड़ाकर ही छोड़ेंगे। इस परिहास में यदि कोई जाति विद्वेष देखता है तो वह अनुवादक का हृदयकालुष्य ही होगा है। नीपयार की ब्राह्मण भक्ति स्पष्ट करनेवाले कई प्रसंग तुल्लल में है[2]। एक आलोचक का/यह मत भी चिन्तनीय है। "इससे भी निष्कलंक रूप में नीपयार नायर लोगों पर हाथ साफ करते हैं।"

ग. नायर लोगों पर – साहसी तथा वीर नायर-एक वर्ग को नालायक देखकर तथा हीन मानकर सर्वनाश की ओर अग्रसर होते देखकर नींपयार का मन दुःखी हुआ होगा। कुछ लोगों का कहना है कि एक बार तकषि में कुछ नायर लोगों ने कुंचन को दो बार धप्पड़ दी थी और प्रतिकार स्वरूप कुंचन ने अवसर निकाल निकालकर अपनी रचनाओं में नायर लोगों पर व्यंग्यबाण छेड़ा[3]। इस कहानी में सच्चाई का अंश कितना होगा, यह चर्चा यहाँ अप्रासंगिक ही होगी।

कायरता, अहंकारीपन, आलस्य, पेटूपन, विषयवासना, संयमहीनता आदि को नायर लोगों के प्रमुख दोषों के रूप में कुंचन प्रस्तुत करते हैं।

घोषयात्रा में गन्धर्व सेना से पराजित होकर पलायन करनेवाले नायर सैनिकों का अच्छा वर्णन है 'कुछ कायर जंगली गुफाओं में छिप गए नदी से भयग्रस्त उनका सिर ले गया। हाथियों को पकड़ने के लिए बिछाए गए जाल में कोई गिर गया। (दौड़ने के बीच) और एक भीरु नायर ने अनजाने रास्ते में भयभीत होकर मलमूत्रविसर्जन करके दौड़ने के रास्ते का विस्तार किया। कुछ नगाड़े के अन्दर छिप बैठे, कुछ सूखे पत्तों के अन्दर के समान लेटे रहे, कुछ जमीन पर गड्ढे खोद कर उसके अन्दर छिपे बैठे[4]। कुछ घर में छत पर लोग समान बैठ रहे[5]।

---

1 पेण्णुङ्ङळेक्काणान् संगतियुण्टो ?
....
चारत्तु चेन्नाल् कयर्क्कुमे मुक्कुम्मार। सीतास्वयंवरम् पृ.67

2 कुलपतिक्कल पृ.69 तयाट्टु शंकरन्

3 तीन भाषा कवियाँ पृ.164 पी.के.नारायणपिल्ले

4 घोषयात्रा पृ.35

5 त्रिपुरदहनम् पृ.52

स्यमन्तकम् तुल्लल में भी नायर की कायरता का वर्णन है । युद्धक्षेत्र में ललकार देखकर दोनों जाँघ काँपने लगेंगे, शरीर थक जायगा, नीचे गिर जायगा, झट अपने घर के रसोई में आकर बुखार के बहाने पड़ा रहेगा[1] ।

और एक प्रसंग पर कुंचन यों भी लिखते हैं । नायर से एक प्रश्न 'हे नायर ! हथियार के बिना तुम क्यों शिकार खेलने जंगल निकले ?' नायर का उत्तर 'मुँह खोलकर जब बाघ आता है तब हथियार भी हाथ में हो तो दौड़ना बहुत मुश्किल है[2] ।' यही तथ्य युद्ध क्षेत्र से पराजित हो पलायन करनेवालों के वर्णन में भी स्पष्ट है । दौड़ते वक्त हथियार को कहीं फेंककर ही वे दौड़ते हैं । यही नायर का कथ्य है कि हथियार नष्ट हुआ तो क्या हुआ, हम फिर भी बना सकते हैं लेकिन शरीर नष्ट हुआ तो सब कुछ नष्ट हुआ, अतः उसके त्राण पर अधिक ध्यान हो[3] । कमरे में चित्रित नरसिंह के चित्र को देखकर वह दौड़ता है[4] । छत के ऊपर छिपे छिपे बैठनेवाले कुंजुरामन को देखकर असुरों ने समझा कि यह कोई मूर्ति ही है[5] । शायद यह कुंजरामन का बहाना ही होगा । या शायद शत्रु सैनिकों को पास आते देखकर कुंजुरामन भय के कारण निर्जीव हुआ होगा[6] ।

. . . .

1 जलत्वमेलिन तुटिक्क नायर
. . . .
किटुकिटनेन्नु विरयु विरयुम् । स्यमन्तकम् तुल्लल - रेड्यार प्रेस पृ.115

2 आयुध मिल्लाते तानेन्ताटि कार्दिटल
नायाट्टिनाय पुरप्पेट्टतु नायरे
वायुम पिलर्न्नु वन्टुवा कडुन्नेरम्
आयुधमुण्डेन्नालोटुवान वषिटम् ।

3 नाशमायीटुन्नेरम्
आयुधमेल्ला वीणियस पोषि
आयतु विन्नेयुण्टाक्कीटाम्
कायम् किट्टुकिलतु पइलावम् ।

4 मदृवल महिषतुम्पिन वीटिन
. . . .
दृटावृति कन्नय कापीत वेपतु । घोषयात्रा पृ.113

5 उत्तरीत्तन मुकलोरि पार्त्तुकोलुम कुंजरामन
कौतुके य पाकटेन्नेर्त्तुपोयासुरन्मार ।

लेकिन इन नायर लोगों का कहना क्या है, वे ही सबसे श्रेष्ठ वीर और साहसी हैं। बाणयुद्धम् तुल्लल का एक प्रसंग इस अवसर पर स्मरणीय है। शत्रु आक्रमण हो रहा है, वे नगर में घुस गए हैं। एक नायर अपनी पत्नी से कहता है तो, शत्रुसेना यहाँ आ गयी। अरी कुञ्जिपेण्णे। मेरी छड़ी को ले लो[1]। सिर्फ एक छड़ी से शत्रुसेना का सामना करने की डींग वह मारता है।

नायर की मद्यपानासक्ति पर भी करारा व्यंग्य हुआ है। पौण्ड्रकवधम् तुल्लल में सेनासम्मेलन के बीच पौण्ड्रकवासुदेव की आज्ञा है 'नायर सैनिकों के लिए तंबाकू, शराब, अफीम्, तेज़ गांजा आदि लाना है[2]। पंचेन्द्रोपाख्यानम् में मीनकेतन कई वेषों को स्वीकार करने के बीच नायर भी बनता है तथा पत्नी के साथ शराब भी पीता है उस समय के हलचल का हास्यपूर्ण वर्णन कुंचन ने किया है[3]। स्यमन्तकोपाख्यानम् तुल्लल में जब अर्जुन नाटक देखता है तब नंपियार यह जोड़ना नहीं भूलते कि 'शराबी नायरों को पैर पर मार देते देखा[4]। प्रदोषमाहात्म्यम् तुल्लल में विदर्भ राजा की घोषणा में नायर लोगों के मद्यपान के बारे में कहा गया है 'डींग मारते चलनेवाले यदि शराब भी पीवें तो और लोगों से झगड़ा करेंगे तथा मार खायेंगे[5]। किरातम् तुल्लल में कुंचन ने कहा है 'नायर लोगों से कोई लाभ नहीं। हथियार धारी नायर अर्थात् वीर कम ही हैं। शराब पीने के अलावा वे कुछ भी नहीं जानते[6]। स्यमन्तकम् तुल्लल में 'इन नायर लोगों को सिर्फ एक मात्र काम

- -

1 पटवन्निङ्गु कोरि नऽमुट्टे
   वटियिङ्ङेट्टेटु कुञ्ञिप्पेण्णे। बाणयुद्धम तुल्लल - रेड्यार प्रेस - पृ.271

2 पटनेक्कुन्न नायन्मार्क्कि पुकयिल कळ्ळु कञ्चावु
   कोटुत्ताकिल कलावेन्निय करे कुत्तीटेणम्। पौण्ड्रकवधम् तुल्लल पृ.68

3 मायुन्न शूद्रनायाणोल
   कामिनियोटियायि कळ्ळु
   मोनियुम कळ्ळु कन्नाटिपकुटिच्चु वायवुम मेत्ते
   . . . .
   ताडनम् कन्नाय। हास्यदर्शनम् पृ.270 मेलकोत्ते परमेश्वरन पिल्लै

4 कळ्ळु कुटिक्कुम् नायन्मारुटे
   . . . .
   पल्लविळक्कट्टु कोट्टक्कण्ट्टु। स्यन्तानकोपालम् तुल्लल पृ.56

5 कळ्ळु नटिच्चु नटक्कुन्नवनु
   . . . .
   कोल्लुम् प्रहरवुमेल्क्कुमेयोल्लु। प्रदोषमाहात्म्यम् तुल्लल पृ.6

6 किरातम् पृ.115

है और वह है पेट भर शराब पीना और फिर अपनी शक्ति का प्रकटन करना ।
रुक्मिणी स्वयंवरम् में कुंचन का कथन है 'नायर लोग क्या जानते हैं ? ये कमजोर शराब पीकर सुधबुध खोकर मुंह खोले लेटे सो जायेंगे'[2]। लीलावती चरितम् में यों कहा गया है 'शराब पीने से पहरेदार सुधबुध खो पड़े हैं । लाश के समान पड़े वे सो रहे हैं'[3]। घोषयात्रा में एक पत्नी का विलाप है जो धनधान्य था सब कुछ को बेचकर शराब पीकर उसने (पतिदेव) सर्वनाश ही किया है । खाने पीने केलिए कुछ भी न होने से कदमों में चलने की शक्ति भी न रही[4]।

अफीम खा कर सर्वनाश करनेवाले अपने पति के बारे में एक पत्नी की शिकायत घोषयात्रा में है । धान्य देकर अफीम खरीदेगा, उसे खाकर मूर्ति के समान अचंचल बैठा रहेगा, आँखें नहीं खोलेगा, उसे सुधबुध भी न होगा । घर के बर्तन एक एक होकर नष्ट हो गए हैं ।

नायर लोगों की असभ्यता, पेटूपन, विषयासक्ति इन सब पर व्यंग्य कुंचन ने घोषयात्रा में किया है । दुर्योधन के द्वारा कुंचन का कथन है 'खाना खाने के बाद वे किसी भी जगह दिखाई नहीं पड़ेंगे, लेकिन हम बड़े ध्यान से ढूंढें तो उन्हें सुन्दरियों के घरों में पायेंगे । रात के भोजन के अवसर वे कहीं से आ पहुँचेंगे, न पहुँचे तो समझिए, वे जीवित नहीं, जीवन बाकी है तो वे जरूर पहुँचेंगे[5]।

---

1 मूडकोलमृषतककलुकुटिच्चिट्टु कुक्कल काट्टणमतरेकेल्टु । स्यमन्तकम् पृ. 38

2 नायन्मारेन्तरिञ्ञु
....
नुस्सोडु कलमुंडुवीर्त्तन्नी । रुक्मिणी स्वयंवरम् - पृ. 143

3 कारतुंकिटक्कुम काक्कल कार्की
कललुकुटिच्चेोडु बोधवुमित्ता
वस्त शवमले प्पोलोडु कूटम
तत्र निसकले युरङ्डिटुन्न । लीलावती चरितम् पृ. 38

4 उत्सोडु नेत्सुम पणवुम पाटे
....
कु ञ्ञुस्सेट्टु नटक्कालायि । घोषयात्रा पृ. 69

5 नेरसु कोटुत्तु कुप्पु तिन्नोडु
कत्तु पणाकन्नु कुत्तियिरिक्कुम्
कोन कल्पनिल्कलायि ।

विलासम् में भी दुर्योधन ने अपने 'नागर' अनुचरों को गालियों से अभिषिक्त किया है। दुर्योधन का कथन है 'ये इकठे कर के नाशकारक है, इन शठाधियों से किसी का भी कोई लाभ नहीं'[1]।

हम यह नहीं कह सकते कि नागर नामक जाति विशेष से क्षेमेन्द्र की एक प्रकार की घृणा थी। उनके अधःपतन पर दुःखी होकर ही उन्होंने आलोचना की। इसे यह याद करना है कि ब्राह्मणों से भी उन्होंने यही किया।

(च) स्त्रियों पर — सहृदय होने पर भी क्षेमेन्द्र स्त्रियों से घृणा करते थे। प्रदोषमाहात्म्य लीलावती चरितम् आदि कुत्सत कथाओं में वेश्या स्त्रियों पर तीव्र व्यंग्य बाण छोड़ा है। सुशीला स्त्रियों के बारे में भी- उनकी राय है कि कपि तथा अंगनाएं समान है। स्त्रियों की शारीरिक सुन्दरता का वर्णन ही कुत्सतों में उन्होंने किया है, कहीं भी उनके आत्मीय सौन्दर्य के बारे में उन्होंने कुछ भी नहीं कहा है। कामरस को छोड़कर और किसी रस से वे स्त्रियों का संबन्ध नहीं जोड़ते। शिवपुराणम् में स्त्रियों से प्राप्त अनर्थों का वर्णन है। स्वतंत्र प्रकृति के नीतिकार किसी विवाह में नहीं बंधित थे। शायद इसीलिए उन्होंने स्त्रियों पर इतना कटु आक्रमण किया होगा। नीतिकार मानते थे कि 'कनक और कामिनी के कारण संसार में कई तरह के कलह सुलभ है'[2]।

उन दिनों में स्त्रियों की सभ्यता भी अधःपतन की ओर अग्रसर हो रही थी। राजमहल का माल खा लेने के लिए कुछ पुरुष उनके मनोरंजन के लिए यहीं कहीं केन्द्रित कुछ स्त्रियां। कुछ धनसुपारी पाने पर वे अपना सतीत्व भी अर्पण करने के लिए तैयार थीं। इस अधःपतन पर ही नीतिकार ने व्यंग्य रूपी अधिकार ले लिया।

स्त्रियों पर अपनी घृणा का कारण वे यों बताते है 'सुन्दरियों का शरीर मल मूत्र तथा गन्दे रक्त के एक बर्तन मात्र है, इसलिए उसमें भी कोई उत्सुकता नहीं'[3]।

स्त्रियों के लालच का वर्णन प्रदोषमाहात्म्यम् में यों है 'स्त्रियों की सदा सर्वदा की यही चिन्ता है कि सुन्दर कपड़े मिले, अच्छा भोजन मिले, और आभूषण भी मिले। यदि सत्तर या सौ वर्ष की आयुवाले एक बूढ़े के पास धन है तो उसे एक

- -

1 लीटकन्थीरक बीट्टिसंशोभम् .... कुटकर्मारश्रेणिस्तनु कोलाम् । विलासम् कुत्सत पृ.32-

2 कनकम् कुलम कामिनि कुलम् कलहम् पलविकसुलभित सुलभम् ।

3 मूत्रम् मांसपुन पलशुक्रोत्थिर
....
मात्रमेतिनि कोनु कौतुकिता । प्रदोषमाहात्म्यम् पृ.67

सुन्दर युवक मानकर उसे छाती से लगाने में इनको कोई हिचकिचाहट नहीं [1] ।

कुंचन का मत है कि ऐतिहासिक युग से स्त्रियों के कटाक्ष जाल में फँसे पड़े दुर्बल है पुरुष और बलवान शिव को भी वे इसका अपवाद नहीं मानते । कुंचन पुरुषों को मक्खन का घड़ा मानते है तथा सुन्दरियों को अंगार [2] ।

इन्द्रप्रस्थ की बातों के वर्णन के बीच ब्राह्मण वहाँ युवतीजनसंगम व सुलभता पर यों टीका करते है 'नौजवानों को कोई मोड़े तो सबकुछ के लिए तैयार सुन्दर युवतियाँ वहाँ है । पान सुपारी का देने से काम सफल हो सकता है । फिर भी कर्म में काम निकालनेवाले भी यही है [3] । इन वाक्यों में छिपा व्यंग्य बड़ा चटा है

स्त्रियों की आकर्षण शक्ति की जादू का वर्णन कुचेलसुन्दोपाख्यानम् में है [4] ।

लीलावती चरितम् में वेश्या के कुच की धोबी के पत्थर से उपमा करते हुए जो हास्यात्मक कुच कुंचन प्रस्तुत करते है, वह उच्च हास्य का उत्तमोदाहरण वेश्या का कुच और धोबी के कपड़ा साफ करने का पत्थर दोनों के बीच बड़ा फरक नहीं । राजामहाराजाओं की कीमती पोशाक, मामूली नायर के कपड़े, ब्राह्मण को फटी चिथड़ी वस्तु की धोती, नंपूतिरि के कपड़े इन सबको समान रूप से वह अपनाता है [5] ।

स्त्रियों के लालच पर व्यंग्य कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल में भी प्राप्त है

---

1 तुन्नियुम् किट्टणमिष्टलिकल -
....
तपुकिन्नोरान तटविल्लेतुम् । प्रदोषमाहात्म्यम् पृ.67

2 तरुणमुकल कोण्टु कलाविन्दून पेरम्
तरुणनलमुलकटे मुकोन्नु तानु पोकुम् ।
स्नकट पुरुषन्मार नेरवकुडमम् पोले तान्ने
वेकण्णमलितायम् तीकट्टयेन्न पोले । स्यमन्तकम् तुल्लल - रेडयार प्रेस पृ.36

3 वेप्पवकलुंकुट्टम मोहमुण्डिलो नाल
.. ..
किटवकामसलोसविलिन्नुम् कटकलु विलसुन्नम् । सभाप्रवेशम् तुल्लल पृ.543

4 कमिन कोण्टु कटुक् कवकुट्टन पेण्णिनेल कटाक्षटकुणे पुरुषन । कुचेलसुन्दोपाख्यान

5 पत मुलकुल्लतु वेश्यामीकटे
....
कलोसनु वार्धिकोपमतुल्लो ? लीलावती चरितम् तुल्लल पृ.293 - 294

(छ) बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व - एकपत्नीव्रत का पालन उस ज़माने के लोग नहीं कर थे । एक पुरुष की कई पत्नियां होती थी । उसके कष्टों तथा मूर्खताओं की कड़ी आलोचना करते हुए कवि लिखते हैं 'भगवान श्रीकृष्ण ने कई स्त्रियों से विवाह किया जो था । बहुविवाह से मन को जरा भी आनन्द नहीं होता । एक समय कई स्त्रियों को कैसे बहला सकते हैं ? एक के साथ प्रेम का व्यवहार किया जायगा तो दूसरी रूठ जायगी उसे प्रसन्न करते समय चौथी कोई न कोई व्यथ्य करेगी ही । अपनी स्त्रियों को इच्छानुर गहने देने में तथा सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर खर्च करते सारी सम्पत्ति बरबाद हो जाती अन्त में कवि कहता है कि जिसकी कई स्त्रियां होती है उस मूर्ख का नाश ही नाश होता रहता है[1] ।

उस समय के जमीन्दार और जागीरदार अपने अन्तपुरों में कई महिलाएं को रखते थे । वे स्त्रियां आपस में हमेशा झगड़ती थी, जिससे घर के स्वामी को बड़ी तकलीफ झेलनी पड़ती थी । ध्रुवचरितम् में कवि राजा उत्तानपाद के बारे में लोगों से कहलवाते हैं[2] ।

बहुपतित्व को वानरों से भी घृणित बताकर जो वाग्बाण कल्याणसौगन्धिकम् में प्रयुक्त हुआ है, वह उस समय उस रीति का आचरण करनेवाले किसी पर छोड़ा एक बाण होगा[3] । एक स्त्री केलिए चार या पांच पति का होना चारों जातियों के लिए मना है । चार लोग सुने तो यह गलत ही सिद्ध होगा, पूंछ-युक्त वानरों के लिए भी उचित नहीं, पूंछ विहीन मनुष्यों के लिए पूछना ही क्या ?'[4] कलत्रों की अधिकता से मनोसुख नष्ट होता है[5] । सुन्दोपसुन्दोपाख्यानम् में भी इसका जिक्र है 'एक स्त्री के एक

- -

1 कालिय मथनन करे स्त्रीकले वैलिक्कि चतिचतमायित्त
.... कलशालिकलित कवित मुधुत्ताल । सभाप्रवेशम् पृ 532

2 केट्टीलयो निडडलुत्तान पादन्टे
वीट्टिले कोलाहलडडलितोन्नुमे
ज्येष्ठात्तियुमनुजात्तियुम् तडडलिल
चाट्टकलडडलुम् कूटे पकत्तु पोल ।

3 कुछ जातियों के बीच आज भी अपूर्व रूप से यह प्रथा चलती है ।
नलचरितम् तुल्लल पृ.24 सं.ए.डी.हरिशर्मा

4 नालुं वर्णवोत्तिक्कु तानतु
.... वालुल्ल वानरन्मार्क्कुम् चितम् वा । कल्याणसौगन्धिकम्
तुल्लल पृ.119

5 एट्टु कलत्रत्ते पुष्टाभिकवेरकुन्न
.... नष्ट तोष्पक सर्वमितलौकिरकलम । ध्रुवचरितम प 60

से अधिक पुत्र थे । वे सारे शरारती थे । कवि इसकी हँसी उड़ाते है । उस र
के जब दो पुत्र हुए तब से घर की शान्ति खत्म गई छोटी सी बात के लिए आपस
झगड़ा होता है[1] ।

(ग) सन्यासियो पर - झूठे सन्यासियो की हँसी उड़ाने में भी कुंचन नंबियार पीछे नहीं ।
शिवरात्रि तुल्लल मे सिर्फ अर्जुन सन्यासी पर नही, सारे के सारे झूठे सन्यासियो पर व्यंग्य
किया है 'आँखें मूँदकर एक चोर तप करता है । पथिको को लूटना ही उसका काम है
दिन मे चोरी नही कर सकता, अतः दिन का तपोवन का यह भाव दिखाता है । ज्यों
सूर्य अस्त होता है त्योंही वह चोरी के लिए निकलता है । सूर्योदय के पहले ही स्नान
करता है । आँखें मूँदकर यह यही चिन्ता करता है कि धन कहाँ है और मदिरा कहाँ[2]
शीलावती चरितम् मे भी नारद एक आत्मपरिहास के द्वारा सन्यासि
की बुरी करतूतो पर प्रकाश डालते है । उसकी वर्णन पहले के पृष्ठो पर अन्यत्र दिया
है[3] ।

(घ) लालच पर - अपने लिए योग्य प्रवृत्ति मे ही हमें लग जाना चाहिए । अपनी
योग्यता से बहुत ऊपर के पद को पाने की विफल आशा रखनेवालो को देखकर हम हँसते
ऐसे लोगो पर कुंचन का व्यंग्य है 'अन्धे कुएँ मे पड़े रहनेवाले मेंढक को पर्वत की चोटी
के ऊपर से उड़ने की इच्छा है[4] । सिर्फ कुछ दूर से भी बड़ी तकलीफ के साथ उड़ने
मुर्गी गरुड़ के पीछे पंखे फैलाकर आकाश मे संचार करना चाहती है[5] । ये जब कुंचन व्यंग्य
करते है तब वह हमारे लिए इसलिए मनोरंजक है कि हमारे सामाजिक तथा राजनीतिक
मे ऐसा लालच रखने वाले कई है ।

- -

1 रण्टु पुत्रनु जनिच्चायिट्टेन्नु
  . . . .
  कलह्युम् तल्लुम् पिटियुम् वलिक्कुमे । कुचेलसंकीर्तनाख्यानम् पृ.117

2 कण्णु निनाटि चार कण्णु मटच्चेन्नु
  . . . .
  नित्तिकल निनच्चेन्नोरु कष्टम् । शिवरात्रि तुल्लल रेड्यार प्रेस पृ.39

3 शीलावती चरितम् तुल्लल पृ.30।

4 कुन्टुकिणट्टिल तवळक्कु नु
  कुन्निनु मीते पत्तणम मोहम् ।

5 चोट्टर वान चाटि पट्टम माअम्
  . . . .
  गरुडने मयनम् चाडिकुन्नु ।

(ז) बूढो के शृंगार पर – पास दस पैसो की पूंजी है तो बूढो को भी लडकिया ! कालपुरि की ओर यात्रा करने वाले बूढे की भी शादी की बडी इच्छा है[2]।

त्रिपुर दहनम् तुल्लल मे बूढे की विषयलालसा का वर्णन यो है ': बूढे की उम्र चौहत्तर है, वह आंख का अन्धा है, दोनो कानो से वह सुन भी नही स लेकिन युवती को देखने की बूढे की लालसा असीम है, खासकर सुन्दर युवतियो को देखने

(ट) कुकवि तथा आलोचको पर – कुंचन ने कुकवियो तथा बुरे आलोचको पर कई मे पर व्यंग्य कसा है । कृष्ण लीला मे उनका कथन है 'गलती और कमी ढूंढ निकालने के लिए आंखे खोले कुछ लोग ताकते रहते है । उनका बहाना है कि वे सर्वज्ञ है । कि लोगो से आलोचना सुनने दुख नही । लेकिन कुछ भी न जाननेवाले मूर्ख यदि आलोच के रूप मे बला बुरा कहे तो शरीर पत्थर लेकर उनको लंगडा करूंगा[4]।

सभाप्रवेशम मे कुकवियो पर व्यंग्य है । सत्कवियो की कविता चोरी करके उसे विकसित करके अपना भी थोडा मिलाकर प्रसिद्ध होने की चाह रखने वाले कुकवियो लज्जा के बारे मे जानते भी नही[5]।

श्री मेलंगत्तु परमेश्वरन पिल्लै इन दोनो को साहित्य सटयर रूपी विभाग मे शामिल करते है[6]।

- -

1 पत्तु पणमुल्लतु मूलमुट्टेन्नालिल
वृद्धन्मारकुम् पेण्णु किट्टुकुम् । नंपियार के रत्न पृ.73 सं.वासुदेवन मूसत

2 अन्तकनाट्टिलु यात्रयट्टुलोरु
तन्त्रिकलनु मैल कोपत्तान
रुत्तोरु मोहम्, पेण्णु कोटुप्पान
कन्नुककलटुलोल के मोटरकुम । नंपियार के रत्न पृ.73 सं.वासुदेवन मूसत

3 प्रवनिप्पोलेकवेशम् क्यर सेषपत्तिनालाय
....
कोट चुपेण्णुलो वकन्नाक्केनुमुट्टहिखानम् । त्रिपुरदहनम् तुल्लल पृ.56।

4 कुट्टवुम् कुरवुम् नोकिक परयानुल्लोरु कूट्टम
....
शरीरत्तु कल्लोटिच्चु कुमेन्नारि] कोलविनेस्सलुम् । हीली स्वयंवरम् तुल्लल पृ.7374

5 सत्कविवचन चमक च कविकन्यानिकवनम्
....
शुष्ककुदृक्कोल्लारिनु पर लते कृपा पलम् । सभाप्रवेशम् ।

6 हास्य साहित्यम् पृ.34। मेलंगत्तु परमेश्वरन पिल्लै

(ठ) कथकलिवालों पर - कथकलिवालों की हँसी उड़ाना नंपियार के लिए मनोरंजन से अधिक एक आवश्यकता थी। कई प्रसंगों पर परिहास इतना तीखा बन गया है। प्रदोषमाहात्म्यम् (पृ.5), सीतास्वयंवरम् (पृ.283) कुचेलोपाख्यानम् (पृ.26) पौण्ड्रकवधम् (पृ.160) बाणयुद्धम् (पृ.108-109) रुक्मिणीस्वयंवरम् (पृ.[illegible]) आदि कई तुल्ललों में कुंचन ने उनकी कटु आलोचना की है। इतने तीखे रूप में नंपियार ने और किसी पर व्यंग्य नहीं किया है। कहीं भी उन्होंने उनके बारे में एक अच्छी बात नहीं बतायी है।

समाज में कथकलिवालों का कोई पद नहीं था। पेटियों को सिर पर लादे, विद्याविहीन कलाविहीन और विवेकहीन कुछ लोग पेट भरने के लिए कथकलि का वेश पहने देश भर घूमते हैं। इससे उन्हें नफरत थी। कनमोड़ वैसाख कुछ लोग कथकलि चलाते चलते हैं। पेटी गठरी आदि लेकर तीस या चालीस लोग धनिकों के घर पहुँचते हैं, पहले ही गाँव वालों से पूछते हैं वहाँ के धनिक कौन कौन हैं और कहाँ कहाँ हैं। अपनी कला की डींग मारते हुए वे पेटियों को नीचे रखते हैं और भोजनालय में डेरा डालते कुछ धनिक, दूर से इनको देखते ही किवाड़ बन्द करते हैं या एक एक बार का भोजन देकर भेज देते हैं। रात भर यही कुछ दिखाने के बाद थके हारे और कहीं को चले जाते हैं।

इस प्रकार कई प्रसंगों पर नंपियार ने अपना व्यंग्य बाण सन्धान कला का चमत्कार दिखाया है। विवाह संप्रदायों की अर्थशून्यता पर व्यंग्य प्रदोषमाहात्म्यम् (पृ.15) में है, पारिवारिक योजना के अभाव पर व्यंग्य बाणयुद्धम् (पृ.242) में है स्त्रीजित पुरुषों पर किरातम् (पृ.61) तथा राज सेवक पर व्यंग्य भी किरातम् (पृ.311) में है।

निष्कर्ष :- संक्षेप में तुल्लल कथाओं में आदि से अंत तक व्याप्त कुंचन के हास्य प्रसंगों को एकत्र इकट्ठा करना सरल नहीं, इसलिए कुछ प्रसंगों पर ही यहाँ प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है। हास्य व्यंग्य से सम्मिलित होने पर तो जनता दोषों से दूर रहेगी, यही क्षेमेन्द्र के समान नंपियार का भी मत था। उनकी यह हठ थी कि काव्य आद्यन्त हास्यसंयुक्त हो। वे जानते थे कि इससे मानसिक उद्धार भावक जनता धीरे धीरे होता रहेगा।

- -

1 [illegible]

[illegible]

. . . .

[illegible] । रुक्मिणी स्वयंवरम् - श्रीरामविलासम् प्रेस पृ.75

आगे हमें एक नाजुक बात पर सोचना है कि नंपियार के हास्य का स्तर क्या है ।

शत्रु को नीचे गिराकर उसके शरीर पर एक पैर डाले हँसनेवाले मनुष्य की हँसी निम्नस्तर की है, कौमलतीताओं को देख मनोरंजन या आनन्दमग्न करने की हँसी उच्च स्तर की है । इस तथ्य के आधार पर हम एक मापदंड स्वीकार कर सकते हैं: ज्यों ज्यों क्रूरता और क्रोध कम होती है तथा सहानुभूति और प्यार अधिक होती है त्यों हँसी उच्च स्तरीय बन जाती है । इसी मापदंड को रेयमन्ट और प्रोस्टसो ने अपनी शैली में व्याख्या की है । जो इसे मानते हैं वे नंपियार के हास्य-व्यंग्य के अधिकांश को उत्कृष्ट कहने में नहीं झिझकते हैं ।

इतिहासकार श्री आर. नारायण पणिक्कर ने नंपियार के हास्य को उच्च कोटि का माना है[2] ।

ऐसे कई प्रसंग हैं जब कुंचन का हास्य कर्कश तथा तीक्ष्ण बन जाता है । डा. चेलनाट्टु अच्युत मेनोन के अनुसार किसी को जानबूझकर दर्द पहुँचाना उनका लक्ष्य न रहा[3] ।

---

1 नंपियार का हास्य उच्च स्तर का है या निम्नस्तर का उस पर विभिन्न मत हो सकते हैं और हो चुके हैं भी । विमर्शवीथि पृ. 110 प्रो. के. एम. डानियेल

2 अत्युन्नत स्थान में बैठे कर मानवस्वभाव का निस्संग भाव से निरीक्षण करके उनकी चपलताओं के बारे में सोच दुःखी होने का काम ही नंपियार ने किया है । मानव चपलताओं को दूर करने के कई उपायों में हास्य अन्यतम है । नंपियार ने उसे मार्ग को अपनाया । इसमें शक नहीं है कि उनकी हँसी का पात्र न होनेवाला कोई न होगा । वे व्यंग्यबाण कितने ही तीक्ष्ण क्यों न हो, कभी भी विद्वेषविषलिप्त नहीं थे । मनुष्य वर्ग की ओर का सीमारहित प्रेम ही उनकी गलतियों और खराब करने में नंपियार केलिए प्रेरक थे ।

आर. नारायण पणिक्कर (हास्यसाहित्य - पृ. 96-97 से उद्धृत पुत्तेषत्तु रामन मेनोन के)

3 जब कुंचन हँसते हुए थप्पड़ देते हैं तब समाज भी साथ हँसता है न कि क्रुद्ध हो बैठता । प्रबंधित्रयम् पृ. 173 डा. चेलनाट्टु अच्युत मेनोन ।

मलयालम हास साहित्य के पिता के रूप में कुंचन को माननेवाले कई आलोचक हैं[1]।

लाल समुद्र के मध्य में घटित तथा ईसा के पुराणों में वर्णित एक युद्ध का चित्र खींच लाने का आदेश एक बार सुप्रसिद्ध चित्रकार राफेल को दिया गया। राफेल ने चित्र खींचा लिया भी। लोगों ने देखा कि पूरे चित्र समुद्र के रंग का नीला रंग ही सब कहीं और कुछ है ही नहीं। जब राफेल से पूछा गया 'न इस में इस्रेल सैनिक, या शत्रु सैनिक, न इसमें जहाज या सैनिक, यह क्या? सब कहाँ? सरस राफेल ने यों उत्तर दिया सब कुछ समुद्र में डूब गया। इस प्रकार कुंचन की कविता में शृंगार, वीर, करुण आदि रस भी व्याप्त है, लेकिन सब के सब हास्यरस में डूब गए हैं। यहाँ तक कि महत्वपूर्ण शिवस्तुति भी हास्य से अच्छा दिख दीखती है।

उच्च हास्य के उदात्त उदाहरण के रूप में झट याद आती है कवीन्द्र रवीन्द्र की एक लघुकविता 'खिलौने'[3]। कवि शैशव क्रीड़ा खेलते हुए शिशु से कहते हैं जो जो तू खेलता है सब कुछ से आनन्द प्राप्त करता है। अलभ्य चीजों को पाने के निष्फल श्रम में मैं तो समय गँवाता हूँ। चंचित समुद्र का पार ढोने में अशक्त मेरी नाव बुलित है, उसमें खेलता हूँ मैं भी। यहाँ कवि हँसता है - रुलाई में आ रुकनेवाली हँसी। वह भी मानवों के दैहिक जीवन के बारे में चिन्ता करके। अलभ्य में पड़ कर समय गवानेवाले,

- -

1 (क) मलयाल भाषा के व्यंग्यजातकथा के अंकन करनेवाले विभूतियों में एक के रूप में कुंचन का मूल्यांकन हो सकता है।

तीन भाषा कवियाँ - पृ. पी.के.नारायण पिल्लै

2 (ख) परकीयेतिवृत्तों को स्वकीय बनाकर एक एक तथ्य पर केरलीय जीवन के स्पन्दनों को आँखों के आगे खिलाने के कैसे प्रस्तुत करने के महाकार्य में एकान्त पथिक इनको मलयाल भाषा के पितामह के रूप में हम मान सकते हैं।

राज राजन्टे माट्टोलि - खं.2 पृ.7 प्रो.जोसफ मुण्डशेरि

(ग) आधुनिक मलयाल हास साहित्य के पिता के रूप में कुंचन का मूल्यांकन करना सिर्फ उचित मात्र है। चिन्तकिरण पृ.116 डा.के.एम. एषुत्तच्छन

3. खिलौने बनाए हुए ....
....

म खो हो गये भी। गीतांजली पृ.153

अनु. हंसकुमार तिवारी

आकाश स्थित चन्द्र को अधोनस्थ करने की विफल कोशिश दिखाने वालों के सांसारिक जीवन को देखकर कौन नहीं हँस बैठता ? जिस जीवन को हम अमूल्य समझ बैठते है उस जीवन की दीनता समझाने पर कौन नहीं रोयेंगे? चन्द्र बिंब को एक सान बनाना चाहनेवाले और सूर्य बिंब को टेढा बनाने चाहनेवाले वीरों का पराक्रम जरूर इस कोटि में आकर हास्यसृष्टि करता है ।

नंपियार का दुर्भाग्य था कि उन्होंने मलयालम जैसी एक छोटी भाषा में विहार किया था । यह बात सच है कि नंपियार के हास्य व्यंग्य को केरलीय ही उसके सच्चे अर्थ में रस और तीखेपन में समझ सकते हैं । फिर भी कालदेश के बाहर की एक सरसता उसमें सार्वभौमिक रूप से विद्यमान है । यदि एक विश्वभाषा में उन्होंने लिखा होता तो वे विश्वप्रसिद्ध जरूर हुए होते, उनकी रचनाओं के अनुवाद और अनुकरण सब भाषाओं में हुआ होगा ।

—

सप्तम अध्याय

तुलनात्मक आलोचना के सिद्धान्त

सप्तम अध्याय

तुलनात्मक आलोचना के सिद्धांत

(1) तुलनात्मक आलोचना - अर्थ और महत्ता - एक शाश्वत नियम के रूप में सब कहीं प्रकट है तुलनात्मकता । साहित्य की आलोचना में ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है[1] । तुलनात्मक आलोचक विज्ञान और इतिहास के तथ्यों को अपने समक्ष रखकर कवियों और काव्यों की परीक्षा करता है । विज्ञान आन्तरिक तथ्यों की खोज करता है और इतिहास उसके स्रोतों को । 'तुलनात्मक आलोचना में साहित्य अभिव्यंजन का साधनमात्र ही नहीं, मनुष्य के भावों और विचारों का प्रतिबिम्ब या प्रतीक है, वह सामाजिक चेतना का दर्पण है[2] ।

दो साहित्यकारों की समसामयिक परिस्थितियाँ एवं युगचेतना की जानकारी तुलनात्मक आलोचक के लिए अनिवार्य है । अतः 'वास्तव में तुलनात्मक प्रणाली ग्रहण करनेवाला आलोचक व्युत्पत्ति पर विशेष ध्यान देता है । उस कार्य की पूर्ति केलिए वह विभिन्न देशों और विभिन्न कालों की मानसिक एवं आध्यात्म प्रगति का भी अवलोकन करता है[3] ।

- -

1 आजकल की वैज्ञानिक प्रक्रिया के दो सामान्य पक्ष है - तुलना और इतिहास । साहित्य की आलोचना भी तभी वैज्ञानिक होती है जब तुलना और इतिहास के आधार पर उसकी भित्ति उठायी जाती है । जिस आलोचक की दृष्टि तौलनिक और ऐतिहासिक न होगी, वह भले ही साहित्य का भाव ग्रहण करके भावुक बन जाय, वह सच्चा पारखी तो कभी नहीं हो सकता । —साहित्यालोचना - पृ.266 डा.श्यामसुन्दरदास

2 हिन्दी साहित्य कोश, भाग - 1 - पृ.128 सं.डा.धीरेन्द्रवर्मा

3 वही पृ.228

साहित्य के सम्यक् अध्ययन और अनुशीलन में तुलनात्मक दृष्टि बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। काव्य - कृति का यथार्थ ज्ञान तभी स्पष्ट होता है, जब समानधर्मी कृतियों के साथ उसकी समता और विषमता का निरूपण होता है। किसी न किसी रूप में कवियों के बीच तुलना होती ही है - चाहे श्रेष्ठता, अश्रेष्ठता का निर्णय करना हो या दो वस्तुओं की विशेषताओं का निदर्शन न हो। तुलनात्मक आलोचना का वह प्रौढ़तम रूप है, जिसमें दो कृतियों के सामान्य परिचय से परे विवेचनात्मक ज्ञान के उन्नत स्वरूप का दिग्दर्शन कराया जाता है।

तुलनात्मक आलोचना के स्वरूप विश्लेषण के बारे में पं. कृष्ण बिहारी मिश्र का मत यहाँ स्मरणीय है ' कविता-विशेष के गुण समझने के लिए उसमें आए हुए काव्योत्कर्ष की परीक्षा करनी पड़ती है। यह परीक्षा कई प्रकार से की जाती है - जाँच के अनेक ढंग हैं। कभी उसी कविता को सब ओर से उलट पलट कर देख लेने में ही पर्याप्त आनन्द मिल जाता है - कविता के यथार्थ जौहर खुल जाते हैं, पर कभी इतना श्रम पर्याप्त नहीं होता। ऐसी दशा में अन्य कवियों की उसी प्रकार की, उन्हीं भावों को अभिव्यक्त करनेवाली सूक्तियों से पद्य-विशेष से मुकाबला करना पड़ता है। इस मुकाबले में विशेषता और हीनता स्पष्ट झलक जाती है। यही क्यों, ऐसी अनेक नई बातें भी मालूम होती हैं जो अकेले एक पद्य के देखने से ध्यान में नहीं आतीं। जरा सा फर्क कवि की मर्मज्ञता की गवाही देने लगता है।[1] इससे मिलता जुलता मत श्रीयुत प्रेमी विद्यालंकार ने भी यों व्यक्त किया है 'तुलनात्मक पद्धति ही साहित्य परिशीलन की सच्ची पद्धति है। दो कवियों के समान भाववाले छन्दों की तुलना करने से ही जाना जा सकता है कि किसकी उक्ति अधिक चमत्कारिणी है और किसकी कम। सामना होने पर वीरों की वास्तविक वीरता का परिचय मिलता है और तुलना करने से ही ज्ञान पड़ता है विषय विशेष का वर्णन करने में कौन कहाँ तक समर्थ हुआ है।[2]

---

1 देव और बिहारी - चतुर्थ संस्करण - पृ. 37-38 पं. कृष्णबिहारी मिश्र।

2 माधुरी - 11 - दिसम्बर, 1936 ई. पृ. 655

लेख - दास और बिहारी-प्रेमी विद्यालंकार।

इस प्रकार तुलनात्मक आलोचना के बारे मे हम कह सकते है कि यह दो या उससे अधिक कलाकारो की रचनाओ मे समान - भाव, विचार-शैली के सम्बन्ध मे संतुलित प्रतिक्रियाये स्पष्टरूप की जाती है । तुलनात्मक आलोचक जो अच्छा (सत्य, शिव एवं सुन्दर) होता है, उसकी प्रशंसा करता है और नकारात्मक पतनोन्मुख रूपो और विचारो को निम्न ठहराता है ।

उपर्युक्त तथ्यो से स्पष्ट है कि तुलनात्मक पद्धति की आलोचना कवियों और लेखको की तुलना अन्य भाषा या समान भाषा के कवियो और लेखको से करते हुए उन अभावो और गुणो की समीक्षा करती है । किसी कवि की श्रेष्ठता और महानता साबित करने के साथ साथ दूसरे कवि की न्यूनता और अश्रेष्ठता प्रमाणित करने की भी कोशिश करत है । ऐसी स्थिति मे इस प्रकार की तुलनात्मक आलोचना पूर्वाग्रह-ग्रसित होकर एक को बड़ा और दूसरे को छोटा प्रमाणित करती है । वस्तुतः इस प्रकार की आलोचना उत्कृष्ट नही मानी जाती । अतः तुलनात्मक आलोचना का परम लक्ष्य है - दो कृतियो या कृतिकारो का सर्वांगीण एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण कर उनका पक्षपात शून्य सापेक्षित मूल्यांकन ।

(2) तुलनात्मक आलोचना के आधार - तत्व - समस्त संकीर्णताओ और पक्षपातो से रहित होकर दो कृतियो के पारस्परिक गंभीर अध्ययन मनन और चिन्तन की चरम परिणति ही तुलनात्मक आलोचना है । विभिन्न विद्वानो के विचारो के अध्ययन तथा विविध आलोचनात्मक कृतियो के आधार पर तुलनात्मक आलोचना के कुछ सैद्धान्तिक तत्व उद्भूत होते है । वे निम्न लिखित रूपो मे प्रस्तुत किए जा सकते है ।-

(1) दो कृतियो की विषयगत एवं भावगत समानता ।

(2) दो कृतियो का संतुलित, सूक्ष्म एवं गंभीर पर्यवेक्षण

(3) निरपेक्षता एवं तटस्थता

(4) निर्णयरहित विश्लेषण एवं सौन्दर्यपरक मूल्यांकन

(5) विभिन्न भाषाओ की मर्मज्ञता एवं विस्तृत कृति एवं साहित्य के प्रति आ

(6) पूर्वाग्रही वृत्ति एवं संकीर्णता का त्याग तथा विशाल सहृदयता ।

(7) तथ्यो की वैज्ञानिक परीक्षा ।

(8) जीवन और साहित्य के शाश्वत एवं सर्वमान्य विचारो और नियमो का स

इन आठ तत्वों के विवेचन से तुलनात्मक आलोचना के स्वरूप का स्पष्टीकरण संभव है :-

(1) तुलनात्मक आलोचना के लिए विषयगत और भावगत साम्य अनिवार्यरूप से विद्यमान हो । दो वस्तुओं की समानता जरूरी है । दो कवियों या कृतियों की आपसी तुलना में देश-काल और लोकरुचि में समानता अनिवार्य नहीं । डा. श्यामसुन्दरदास का कथन इस प्रसंग पर ध्यान देने योग्य है 'जो बिना देश और काल का विचार किए शेक्सपीयर और कालिदास की अथवा मिल्टन और माघ की तुलना करने बैठते हैं वे धोखा खाते हैं और प्रायः अनर्थ कर बैठते हैं'[1] । इससे यह स्पष्ट है कि दो कवियों की तुलना देश काल और उसकी लोकरुचि की सीमा में आबद्ध है । इससे ठीक उलटा मत है श्रीमति शचीरानी गुर्टू का । 'काव्य में शाश्वत सत्य की छाप उसकी अमरता की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है । आज से सहस्रों वर्ष पूर्व साहित्य के आदि गुरु वाल्मीकि, वेदव्यास, होमर, वर्जिल, दांते, मिल्टन, फिरदौसी आदि महाकवियों की विराट कल्पना अब भी मानव की हृत्तन्त्री के तार क्यों झंकृत कर देती है, उत्तर एक है - सत्काव्य की भाषा अनन्त के मूक सन्देश की वाहिका है जो सृष्टि के अमर पृष्ठों पर रंगीन पेंसिल से अंकित है'[2] । इस मत का सारांश यह है कि देश और काल की सीमा से तुलनात्मक आलोचना को कोई बाधा नहीं पहुंचती । जीवन के तत्व तो देश काल की सीमा से परे सार्वभौम और सार्वकालिक हैं । अतः सुदूरवर्ती देशों में जीवन के तत्वों पर रचना करनेवाला कवि भी अपनी रचना में कुछ ऐसे तथ्यों की संयोजना करता है, जो अन्य देश-काल की सीमा में रहनेवाले कलाकारों की समता के लिए भी आधार निर्मित कर देता है । प्रत्येक कवि में अनेक देश और कालगत विभिन्नताओं के होते हुए भी भावनाओं की एक सूत्रता रहती है । 'काव्य का निर्माण मानवता के लिए और इसका उत्तरदायित्व मानवता के प्रति है'[3] ।

- -

1 साहित्यालोचन - पृ. 267 - डा. श्यामसुन्दरदास ।

2 साहित्यदर्शन - पृ. 5 - शची रानी गुर्टू ।

3 साहित्य दर्शन पृ. 127 - शचीरानी गुर्टू ।

इस प्रकार हम देखते है कि विषयगत और भावगत एकता काल और देश की सीमा का अतिक्रमण कर जाती है और उनका तुलनात्मक मूल्य कम नहीं होता । 'किसी भी सत्काव्य की मर्यादा प्राचीनता तक ही सीमित नहीं है और न नवीन होने से उसका महत्व ही घटता है । कभी कभी किस प्रकार देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर सैकड़ो, हजारो मील और जल-थल को पार करके महाकवियों की कल्पना परस्पर आ टकराती है - यह कौतूहल का विषय है[1] । यह तो हुई विश्वसाहित्य की विषयगत एवं भावनात्मक एकता की बात । जहाँ तक भारतीय विभिन्न भाषाओं की साहित्यगत एकता एवं समानता का प्रश्न है उनमें तुलनात्मकता स्वाभाविक रूप से है । भौगोलिक सीमाओं से अन्य साहित्यगत विभिन्नताओं के रहते हुए भी सांस्कृतिक एकता और भारतीय दार्शनिक विचारधाराये प्रायः समान है ।

विषयगत और भावगत साम्य का प्रमुख कारण यह है कि एक ही प्रकार की सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रेरणाओं से कृतिकार अनुप्रेरित होकर अपने रचनात्मक विषयों में एक समान भावलोक का निदर्शन करता है । एक उदाहरण यों है । मध्यकालीन भारतीय साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है - सांस्कृतिक भक्ति आन्दोलन । इससे अनुप्राणित होकर राम कृष्ण संबंधी साहित्य की रचना न केवल हिन्दी भाषा में, वरन बंगला, मराठी, गुजराती तथा पंजाबी आदि आर्य भाषाओं एवं द्राविड भाषाओं - तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड आदि में भी हुई । इन साहित्यिक भावधाराओं में विविधता के होते हुए भी एकता है ।

समान गुणों की कृतियां ही तुलनात्मक आलोचना की कसौटी में कसी जा सकती है । विषयगत एवं आन्तरिक भाव साम्य के अभाव में तुलनात्मक आलोचना 'बादरायण' सम्बन्ध जैसी ही सिद्ध होगी । शुक्लजी का यह कथन इस प्रसंग पर कितना ठीक लगता है '...... बहुतों ने तुलना को ही समालोचना का चरम लक्ष्य समझ लिया .... यहाँ तक कि जिन दो पद्यों में वास्तव में कोई भाव साम्य नहीं, उनमें भी बादरायण संबन्ध स्थापित करके लोग इस तुलनात्मक समालोचना के मैदान में उतरने का शौक जाहिर करने लगे[2] ।

- -

1 साहित्य दर्शन - पृ.183 - शचीरानी गुर्टू ।

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.508 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

उपर्युक्त विवेचन से हम यों निष्कर्ष ले सकते हैं :-

(1) तुलना के लिए लेखकों और कृतियों में वर्णित क्षेत्रों में समानता हो ।

(2) काव्यों और कवियों की प्रवृत्तियों में तादात्म्य हो ।

(3) विषयवस्तु में मूलभूत साम्य हो ।

तुलनात्मक आलोचना के लिए ये तीनों अनिवार्य तथ्य हैं ।

(2) तुलना के लिए दो कृतियों का संतुलित, सूक्ष्म एवं गंभीर पर्यवेक्षण आवश्यक है । तुलना शब्द का अर्थ है तोलना । आलोचना की तुला पर दो समान वर्गी कलाकारों की कृतियाँ रखी जाती हैं और उनका मूल्यांकन न्याय संगत ढंग से किया जाता है दो काव्यों या कवियों के विस्तृत अध्ययन के बाद ही आलोचक अपना दृष्टिकोण प्रकट कर सकता है । एक कवि के काव्य की अन्तरात्मा में प्रवेश कर एवं दूसरे कवि के सम्बन्ध में ऊपरी ज्ञान के आधार पर की गयी तुलनात्मक आलोचना में संतुलन संभव नहीं । कवियों की अन्तः प्रवृत्तियों की छान बीन तथा उनकी विशेषताओं के परिज्ञान से उनकी कृतियों के सूक्ष्म पर्यवेक्षण में सहायता मिलेगी । कवियों की जीवनगत परिस्थितियाँ और राजनीति, सामाजिक, आर्थिक धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य भी महत्वपूर्ण हैं । तुलनात्मक आलोचन तभी वैज्ञानिक रूप धारण करेगी जब दो कृतियों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण आलोचक, सौन्दर्य निरीक्षक एवं संतुलित विचारक बनकर तुलन करेगा ।

(3) निरपेक्षता और तटस्थता आलोचक केलिए ही आवश्यक गुण है, तुलनात्मक आलोचक के लिए तो यह अत्यन्तापेक्षित ही है । निरपेक्षता का मतलब है कि कोई साहित्यकार किसी की अपेक्षा न तो छोटा है और न बड़ा । बल्कि प्रत्येक कवि के परिप्रेक्ष्य को दृष्टि में रखकर उसकी कृतियों की विचारधारा में डूबकर एवं उसकी अन्तर्वृत्ति की छान बीनकर तुलना करनी चाहिए । तटस्थता का मतलब है अपनी व्यक्तिगत धारणाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखते हुए दो कृतियों का तथ्यात्मक निरूपण । तुलना तथ्यात्मक विवरण केलिए ही हो सकती है, किसी अन्य काव्य का आपेक्षित पद बताने के लिए नहीं जैसे हिन्दी केलिए तुलसी है, वैसे ही बंगला के लिए कृत्तिवास और तमिल के लिए कम्बन है[1] ।

- -

1 कृतवासी बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन - रमानाथ त्रिपाठी भूमिका भाग - पृ. 12 - डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ।

'प्रकाश के स्वरूप और महत्व को समझने के लिए अन्धकार के स्वरूप ज्ञान की आवश्यकता है। बस, तुलना का मूल यही है[1]। अतः तटस्थता और निरपेक्षता के अभाव में आलोचक तुलनात्मक आलोचना में सच्चाई नहीं दिखा सकता।

(4) निर्णय रहित विवेचन तथा सौन्दर्यात्मक मूल्यांकन का तुलनात्मक आलोचना में श्रेष्ठ स्थान है। 'अमुक कवि को मैं श्रेष्ठ बताऊं' इस निर्णय के साथ आलोचक को आलोचना शुरू नहीं करनी है। पाठकों के सम्मुख वह दो कवियों की रचनाओं के सौन्दर्य का यों निरीक्षण करना है कि वह स्वयं निर्णय न कर डाले, पाठकों को अपनी आप निर्णय कर लेने का अवसर दे। कवियों के काव्यों की विशेषताओं की गांठ को खोलकर रख देना ही उसका काम है।

(5) तुलनात्मक आलोचना पद्धति में और एक श्रेष्ठ तत्व है विभिन्न साहित्यों का पूर्ण ज्ञान और संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव। तुलनात्मक आलोचक को बहुभाषाविद या कम से कम द्विभाषाविद् होना आवश्यक है। अनुवादों के द्वारा देशी विदेशी साहित्यों, साहित्यकारों एवं उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों के पारस्परिक अध्ययन से तुलनात्मक आलोचना की क्षेत्रीय संभावनायें संवर्धित हो गई है। फिर भी तुलनात्मक आलोचन में दो भाषाओं के पूर्ण परिज्ञान के बिना मौलिकता नहीं आ सकती। दोनों भाषाओं की गहरी पैठ रखनेवाला तुलनात्मक आलोचक ही दोनों कवियों की आत्मा की गहराई में पैठकर, उनकी कृतियों का अन्त परीक्षण, उनकी विशेषतायें एवं उनकी संपूर्ण बारीकियां तक पहुंचकर तुलनात्मक आलोचना में काफी सफलता प्राप्त कर सकता है।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक रेन वेलके ने ठीक ही कहा 'इस दृष्टि से साहित्य के तुलनात्मक इतिहास के लिए हमारे अध्येताओं को अनेक भाषाओं में सिद्धहस्त होना पड़ेगा। इस कैलिए अपने परिप्रेक्ष्य को व्यापक बनाना होगा, स्थानीय और आंचलिक भावुकता का परित्याग करना होगा जो बहुत ही कठिन काम है[2]। तुलनात्मक आलोचक

- -

1 हिन्दी आलोचना - उद्भव और विकास - पृ.320 डा. भगवत स्वरूप मिश्र

2 थियोरी ऑफ लिटरेचर (साहित्य सिद्धांत) रेन वेलके और आस्टिन वारेन।

अनुवादक - बी.एस.पालीवाल, पृ.67

को द्विवाचात्ज्ञान के साथ साथ साहित्यक मापदण्डो और मानवीय मूल्यो का ध्यान रखकर विश्व के साहित्यकारो का मूल्यांकन करना चाहिए ।

(6) तुलनात्मक आलोचना का और एक श्रेष्ठ तत्व है पूर्वाग्रही वृत्तियो का परित्याग और विशाल सहृदयता । अपने मस्तिष्क मे एक पूर्वाग्रह या एक विशिष्ट मापदण्ड को लेकर यदि दो कृतियों की मीमांसा आलोचक करता है तो वह आलोचन एकांगी और एक पक्षीय हो जायगी । ऐसे आलोचक राजशेखर के 'तत्वाभिनिवेशी आलोचक के धर्म से च्युत हो जाता है क्योंकि 'उसमे आलोचक की साग्रह आत्माभिव्यक्ति का दर्शन होता है । साहित्य वास्तव मे अखण्ड चेतना का प्रतिफलन है । ... आलोचक का कार्य नीरक्षीर विवेक पर आधारित है । किसी भी प्रकार के आग्रह की उपस्थिति मे 'वह अपने कर्तव्य से च्युत होकर केवल सामाजिक महत्व की चीजो का ही उद्घाटन कर सकेगा इस प्रकार साहित्य के शाश्वत और चिरन्तन तत्वो की क्षति पहुंच सकती है ।[1]

तटस्थता का भाव छोडकर ईर्ष्या के वशीभूत होकर सर्वोत्तम कृतियों को भी असहृदयतापूर्ण एवं सहानुभूति-शून्य ढंग से दो कृतियों मे छिद्रान्वेषण का भाव रखना तुलनात्मक आलोचकों के लिए वर्जित है । अतः आलोचक का महान गुण हो सहानुभूति । आचार्य अभिनवगुप्त और साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी सहृदय शब्द से इसकी सूचना दी है । सहृदयता के साथ साथ संवेदनशीलता भी एक महत्वपूर्ण तत्व है । लेखक अगर ब्रह्मा की सृष्टि मे विकीर्ण शतशत सुन्दर उपादानो का चयन कर आह्लादित होता है तो आलोचक लेखक की कृति मे समाहित विविध सुन्दर तथ्यों को देखकर उल्लसित होता है ।[2] तुलनात्मक आलोचक मे उपर्युक्त गुण तभी आ सकते है जब उसका हृदय विशाल होगा संकीर्ण हृदय को सुन्दर वस्तुओं मे भी कुरूपता ही दिखाई पडती है ।

(7) तथ्यो की वैज्ञानिक परीक्षा तुलनात्मक आलोचना के लिए बहुत आवश्यक है । तुलनात्मक आलोचक दो कृतियों की पूरी शल्य परीक्षा करके उनकी पूर्णताओं अपूर्णताओं, विशेषताओं - त्रुटियों, सौन्दर्य एवं असौन्दर्यात्मक तथ्यों की ओर सहृदयों का ध्यान आकृष्ट करता है ।

---

1 आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिन्दी साहित्य - पृ.42 डा.शिवकरण सिंह ।

2 आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिन्दी साहित्य - पृ.42 डा.शिवकरण सिंह ।

(8) तुलनापरक आलोचक को जीवन के शाश्वत तथ्यों एवं साहित्य के सर्वमान्य विचारों को स्वीकार कर चलना है । साहित्य का निर्माण, जीवन के शाश्वत नियमों पर होता है । सत्-असत् सभी पक्षों का समावेश साहित्य में अनिवार्य है । साहित्य में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की अभिव्यक्ति भी है । काव्य सौष्ठव की मान्यता का आदर तुलनापरक आलोचक का धर्म है ।

तुलनापरक आलोचक को दो ग्रंथों की परीक्षा करते समय उनकी श्रेष्ठता महत्ता या उपयोगिता आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनके बारे में शिक्षितों और पण्डितों की सम्मति का भी पूरा ख्याल रखना है । इसके बारे में डा. श्यामसुन्दर दास का मत यों है 'किसी ग्रंथ की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता आदि के सम्बन्ध में यदि बहुत से शिक्षितों और समझदारों की जो सम्मति हो, वही मान्य होनी चाहिए और यदि थोड़े से लोग उसके विपरीत अपनी सम्मति प्रकट करें तो पहले हमें उनकी सम्मति पर विचार करना चाहिए और यदि उनकी सम्मति में कोई तत्व की बात न मिले तो वह सम्मति अग्राह्य समझकर छोड़ देनी चाहिए, क्योंकि जो ग्रंथ अनेक आलोचकों की परीक्षा में ठीक उतरा हो और जिसके सम्बन्ध में बहुत कुछ वाद विवाद के उपरान्त भी लोगों की सम्मति अनुकूल हो, उसे उत्तम ग्रंथ मानने में हमें कोई आनाकानी न होनी चाहिए'[1] । विश्व के महान काव्यों (उदा : रामचरितमानस, इलियड, ओडिसी, पैराडाइस लोस्ट, रामायण, महाभारत आदि) में विश्वहृदय की एक ही चेतना विलस रही है । ये जीवन के शाश्वत मूल्यों पर आधारित है । ये काव्य संसार भर के आलोचकों की सदैव की प्रशंसा के पात्र रहेंगे ही ।

(3) तुलनात्मक आलोचना का क्षेत्र - विस्तार, पद्धति और उसका वर्गीकरण - तुलनात्मकता विवेचनात्मक ज्ञान की प्रौढ़तम उपलब्धि है । उसका अस्तित्व साहित्य की समीक्षा में अत्यन्त प्राचीनकाल से है । पुराकाल में तुलनात्मकता, आलोचना में प्रयुक्त एक प्रक्रियामात्र थी । लेकिन गत तीन शतकों से तुलनात्मक आलोचना अपना निजी अस्तित्व ग्रहण कर चुकी है ।

तुलनात्मक आलोचक के मुख्यतः दो रूप दिखाई पड़ते हैं :-

(1) प्रभावमूलक दृष्टिकोण (2) साम्य वैषम्य मूलक दृष्टिकोण ।

अब हम दोनों रूपों पर थोड़ा प्रकाश डाल देखेंगे ।

- -

1 साहित्यालोचन - पृ. 256 डा. श्यामसुन्दरदास

(1) प्रभावमूलक दृष्टिकोण - एक साहित्य पर दूसरे साहित्य के प्रभावों एवं तद्‌युगीन दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि ऐतिहासिक प्रभावों की खोज मुख्य है । अर्थात् प्रभावमूलक दृष्टि के अन्तर्गत विभिन्न भाषीय साहित्यों का अन्य भाषीय साहित्यों पर पड़े प्रभावों का विवेचन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है । इस प्रसंग पर एक तथ्य याद रखने लायक है कि प्रभाव ग्रहण करनेवाले साहित्य को प्रभावक साहित्य की अपेक्षा हीनतर सिद्ध करना उचित नहीं होगा, अन्याय ही होगा ।

(2) साम्य-वैषम्य मूलक दृष्टिकोण - इसमें तुलनात्मक दृष्टि से समानान्तर प्रवृत्तियों और विचारों संबन्धी पारस्परिक विवेचन - विश्लेषण मुख्य है । इसी में प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यकारों के कर्तृत्व का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत हुआ है । हिन्दी में इस प्रकार के कई शोध ग्रन्थ निकले हैं[1] । साम्य-वैषम्य मूलक आलोचना में एक दूसरे साहित्य के प्रभावों का भी तटस्थ विश्लेषण ऐतिहासिक दृष्टि से किया जाता है । एक विद्‌वान लेखक के शब्दों में 'तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र क्लासिक परम्परा से आधुनिक साहित्य के विकास तक सम्बन्धित हो सकता है । उसमें आलोचना और समीक्षा के सिद्‌धान्तों के साथ साथ विभिन्न काव्य रूपों ‹जेनेस› और काव्य शैलियाँ ‹स्टाइल्स› का तुलनात्मक विवेचन भी किया जा सकता है । .... इस प्रकार का विश्लेषण समग्र रूप से किसी एक साहित्य के अध्ययन में संभव नहीं । तुलनात्मक साहित्य में लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य की भी तुलना अभीष्ट है[2] ।

तुलनात्मक आलोचना का एक और विशिष्ट अंग है - साहित्यशास्त्र और आलोचना सिद्‌धांत । समस्त भारतीय साहित्यशास्त्र का मूलाधार संस्कृत साहित्यशास्त्र है और आचार्यों ने जो मान्यतायें निर्धारित की है, उनका अनुसरण सभी भारतीय साहित्यशास्त्री करते है, लेकिन प्रान्तीय भेदों के अनुसार हिन्दी और अन्य भाषीय साहित्य सिद्‌धांतों में कुछ मौलिक अन्तर हो सकते है । फिर भी सबों का मूल मंत्र साम्य ही है ।

---

1 (1) प्रेमचन्द और गोर्की — डा.शची रानी गुर्टू
(2) टैगोर और निराला — डा.अवध प्रसाद वाजपेयी
(3) भारतेन्दु और नर्मद — डा.अखिलेन्द्र कुमार देसाई
(4) मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल-डा.के.एस.मणि
(5) सूरदास और नरसिंह मेहता — डा.भ्रमरलाल जोशी आदि

2 हिन्दी अनुशीलन (भा.हि.प.का त्रैमासिक मुख-पत्र) जनवरी-दिसंबर 1960 अंक - 1-4 पृ.158 लेख - विविध साहित्य - डा.कल्याणमल लोढा

जैसा कि आचार्य शुक्लजी ने ठीक ही कहा है 'समालोचना के दो प्रधान मार्ग होते हैं - निर्णयात्मक (जुडीशल) और व्याख्यात्मक (इनडक्टीव मेथड)।[1] तुलनात्मक आलोचना भी इन्हीं दो पद्धतियों की सहगामिनी रही है। प्रारंभ में निर्णायक पद्धति का व्यवहार अधिक हुआ। समयगति के विकास के साथ साथ जब कवियों और कृतियों की अन्तः प्रवृत्तियां एवं उनकी विशेषताओं की छानबीन आरंभ हुई तब व्याख्यापरक तुलनात्मक प्रणाली का जन्म हुआ। इसके अन्तर्गत ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक आलोचनायें भी समाहित हैं। लेकिन आज तुलनात्मक आलोचना प्रणाली ने अपना पृथक् महत्व स्थापित कर लिया है और इसने व्याख्यात्मक पद्धति को मूल रूप से स्वीकार लिया है। उपर्युक्त दृष्टि से तुलनात्मक आलोचना के दो भेद हुए - निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक तुलनात्मक आलोचना।

इस प्रकार तुलनात्मक आलोचना का वर्गीकरण सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विषयगत भेदों के आधार पर यों हो सकता है :-

(क) सैद्धान्तिक तुलनापरक आलोचना-पद्धति

(ख) व्यावहारिक तुलनापरक आलोचना - पद्धति

व्यावहारिक तुलनापरक आलोचना पद्धति के तीन भेद हो सकते हैं :-

(1) गुणदोषात्मक एवं निर्णयात्मक

(2) प्रभावात्मक

(3) व्याख्यात्मक

समग्र रूप से तुलनात्मक आलोचना के व्यावहारिक रूप का वर्गीकरण यों तालिका में प्रस्तुत किया जा सकता है :-

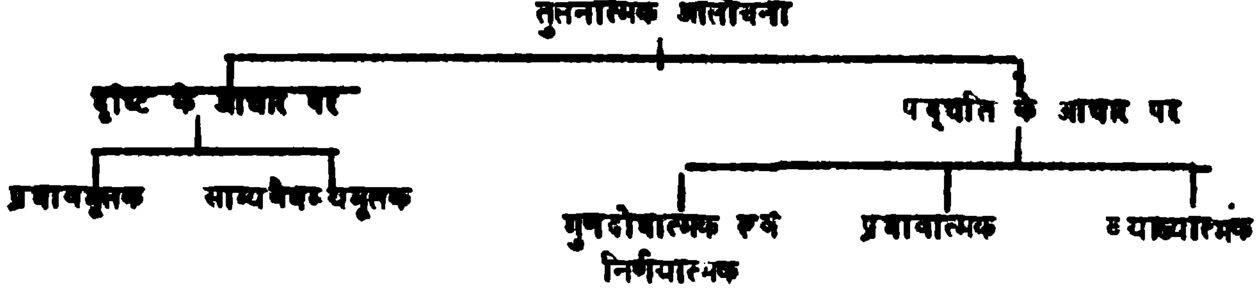

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.503 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

तुलनात्मक आलोचना का वर्गीकरण प्रवृत्तियों के आधार पर भी हो सकता है। ये प्रवृत्तियां, विषय, भाव, उद्देश्य भाषा, शैली आदि सभी दृष्टियों से सम्बन्ध है। वे यों है :-

(1) एक ही कवि के कई ग्रंथों के आधार पर विषय की पारस्परिक रूप में तुलना।

(2) एक ही कवि की भिन्न कृतियों की तुलना।

(3) एक ही भाषा के या अन्य भाषाओं के तद्विषयक कवियों और ग्रन्थों से तुलना।

(4) संसार की अन्य भाषाओं के तद्विषयक या भिन्न विषयक काव्यों की तुलना।

तुलनात्मक आलोचना का चरमोत्कर्ष तब होता है जब दो कृतियों में निहित अन्तश्चेतना की समानतायें खोज निकालने का प्रयास होता है। 'तुलनात्मक समीक्षा का वह रूप और अधिक कठिन किन्तु प्रशस्त है जो साहित्य की सीमायें पार करके रचनाओं के आन्तरिक व्यवस्थात्मक रूप खोज निकालने के प्रयास में नीरस और कृत्रिम समानताओं को दूर छोड़ देता है'[1]।

(4) निष्कर्ष :- उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि तुलनात्मक आलोचना अत्यधिक सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के कारण उद्भूत है। इसका परम उद्देश्य दो कृतियां और कृतिकारों का सर्वांगीण एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण करके उनका पक्षपात शून्य सापेक्षित मूल्यांकन करना है। तुलनात्मक आलोचना के आठ आधार तत्व है।

तुलनात्मक आलोचना पद्धति के मुख्य दो स्वरूप है :-(1) प्रभावमूलक तुलना (2) साम्य - वैषम्य मूलक तुलना। व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी की तुलनात्मक आलोचना की निम्नांकित प्रवृत्तियों का वर्गीकरण अध्ययन के लिए उपयोगी है। यह वर्गीकरण यों है :- (1) कवियों की तुलना (2) काव्यों की तुलना (3) साहित्यक प्रवृत्तियों की तुलना (4) विभिन्न प्रभावों की तुलना।

इन्हीं प्रवृत्तियों को आधार मानकर इस प्रबन्ध में मध्यकालीन हिन्दी और मलयालम काव्यों में हास्य का तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत किया गया है।

---

1 समीक्षा शास्त्र पृ. 9 पं. सीताराम चतुर्वेदी।

अष्टम अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी और मलयालम कविता में हास्य

अष्टम अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी और मलयालम कविता में हास्य

मध्यकालीन हिन्दी और मलयालम कविता में प्रकट हास्य प्रवृत्तियों के सामान्य स्वरूप का सर्वेक्षण पिछले अध्यायों में हम कर चुके हैं। अब हमें उनकी हास्य प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करना है। हास्य के प्रति मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों के दृष्टिकोण में किन किन बातों की समानता है और किनमें अन्तर- इसकी भी सोदाहरण विवेचना आगे के पृष्ठों में हमें करना है। स्थान का व्यवधान और वातावरण की भिन्नता होने पर भी दोनों साहित्यों की हास्य चेतना में भाव साम्य और विषय की एकता है। परन्तु उनकी प्रतिपादन पद्धति और विचारधारा का अन्तर निस्सन्देह एक मार्मिक महत्वपूर्ण विषय है। साहित्यक अन्वेषण की दृष्टि से भी इस विषय का महत्व कम नहीं कहा जा सकता। दक्षिण तथा उत्तर भारत में हास साहित्य के विकास का परिचय भी इससे प्राप्त हो सकता है। अस्तु।

हास्य की अभिव्यक्ति में हिन्दी और मलयालम के कवियों के अपने अपने दृष्टिकोण अलग हैं। फिर भी आलोच्यकाल के प्रतिनिधि कवियों[1] में निहित समानता पाठकों के लिए नई तथा जिज्ञासा का विषय जरूर होगी।

- -

1 हिन्दी के प्रतिनिधि कवि हैं कबीर, सूर, तुलसी, केशव तथा बिहारी। आलोच्य काल में मलयालम के प्रतिनिधि कवि हैं चेरुश्शेरी, पुनम, तथा कुंचन नंपियार। हास्य प्रवृत्ति के दृष्टिकोण से ही प्रतिनिधि शब्द का उपयोग हुआ है।

मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कविता की हास्य प्रवृत्तियों की तुलना की भूमिका में और एक बात का भी उल्लेख जरूरी है । इस काल के अधिकांश कवियों ने पुराणकथाओं को आधार बनाया । इन पुराण कथाओं में कुछ सामान्य प्रसंग भी होते हैं जिनमें सरसता की निचोड़ है । इनका विस्तार अलग अलग कवि अपने ढंग से करते हैं, यही फर्क है । दूसरे भिन्न भिन्न कवि अपनी अपनी पसंद के प्रसंगों पर सरसता की योजना कर लेते हैं । यह तो रही व्यक्तिगत रुचि एवं प्रतिभा की बात ।

मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम के हास्य - व्यंग्यकारों के बीच तुलना हो सकती है । कबीर और कुंचन, सूर और चेरुश्शेरी, तुलसी और पुनम, बिहारी और मलयालम के मणिप्रवाल कवि — इन सबके बीच हास्य की अभिव्यक्ति के दृष्टि कोण से तुलना हो सकती है ।

कबीर और कुंचन दोनों व्यंग्यकार थे । दोनों की क्रान्तिभावना और सुधारवादी विचार धारा का अबाध गतिशील वेग फूट पड़ा है । दोनों युगचेता का सा अक्खड़ और अडिग व्यक्तित्व अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूढ़ियों अन्धविश्वासों और विषमताओं की खिल्ली उड़ाता हुआ उनकी धज्जियां उधेड़ता हुआ भीतर से संवेदनशील पर बाहर से निर्मम रूप में अभिव्यक्त हुआ है । लेकिन कबीर तो संत कवि थे, भक्त थे अतः उनका क्षेत्र संकुचित ही रह सका । कुंचन तो जनकवि थे, उनका काव्य स्थल विशाल रहा । अतः कुंचन ने कहीं स्वयं के और कहीं अपने पात्रों के माध्यम से देश के सभी वर्गों, उनकी विचार धाराओं, धर्मनीति, समाजनीति आदि सभी महत्वपूर्ण विषयों पर व्यंग्य की बौछार की है और अपने कार्य में सफलता प्राप्त की है । उन्होंने हास्य-व्यंग्य के माध्यम से उत्तम विनोद और विनोद के माध्यम से उत्तम व्यंग्य की सृष्टि की । फलस्वरूप कुंचन ने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं वैयक्तिक कदाचारों, विकृतियों, विरोधाभासों और विसंगतियों पर पैने व्यंग्य - कटाक्ष किये वे कभी हास्य के मधुर थपेड़ों से और कभी व्यंग्य के तीक्ष्ण चपेटों से प्रहार करते थे । लेकिन कबीर कुंचन हास्यकार नहीं थे, सिर्फ व्यंग्यकार थे । कबीर और कुंचन का हास्य केवल हास्य के लिए न था । जान बूझकर की हास्यसृष्टि कुंचन का ध्येय रही ।

- -

और एक असमानता भी स्पष्ट है। कुंचन के काल के चार या पाँच शताब्दियों के पूर्व कबीर ने हास्य को अपनाया था। जिस काल में दोनों का जीवन बीता, तत्कालीन परिस्थितियों में बड़ा ही फर्क था। अतः हास्य चेतना के दृष्टिकोण में कुंचन को बड़ा और कबीर को छोटा ठहराना या कुंचन को छोटा और कबीर को बड़ा बताना अनुचित है। साहित्यकारों के मस्तिष्क और कला के विकास का पता तभी मिलेगा जब तत्कालीन परिस्थितियों का सम्यक ज्ञान भी प्राप्त होता है। जीवन के प्रति इनके दृष्टिकोण अलग अलग हैं। कबीर तो धर्मगुरु समाज सुधारक तथा दार्शनिक थे तो कुंचन हास्य साहित्यकार। मनोरंजन ही कुंचन का लक्ष्य रहा। लेकिन कबीर का लक्ष्य नितान्त भिन्न था।

सूर और चेरुश्शेरी के बीच भी तुलना संभव है। कई विद्वानों ने इस ओर प्रयास भी किया है। दोनों के बीच की तुलना को एक हद तक अनुचित और व्यर्थ प्रयास भी कह सकते हैं। दोनों की तुलना में मुख्य असंगति यह है कि यद्यपि सूर के व्यक्तिगत जीवन का अच्छा परिचय हमें प्राप्त है तो भी चेरुश्शेरी के व्यक्तिगत जीवन के विषय में काफी जानकारी प्राप्त नहीं। केवल कृष्णकथा काव्य लिखने से इनके व्यक्तित्वों की तुलना उचित नहीं। तुलसी एवं केशव की तुलना करके केशव को नीचा दिखाने का जो प्रयास बड़े बड़े आचार्यों ने किया है, उसके मूल में भी यह अनौचित्य है। कहाँ शत प्रतिशत संत और भक्तवत्सल तुलसी और कहाँ राजाश्रित पंडित कवि केशव? यों कवि के तौर पर कृष्णगाथाकार चेरुश्शेरी की कुशलता में सन्देह नहीं। लेकिन सूरदास का जो महत्व है वह चेरुश्शेरी में कम मिलेगा। भक्ति वैभव और अद्भुत वैयक्तिक गरिमा की बात पर तत्काल विचार न करें तो साहित्यिक दृष्टि से सूर और चेरुश्शेरि के काव्यों की तुलना कुछ कुछ कर सकते हैं। रसों को खासकर वात्सल्य तथा शृंगार तथा इन दोनों के पोषक या सहचारी के रूप में हास्य की अभिव्यंजना में सूर एवं चेरुश्शेरी निपुण हैं। वात्सल्य चित्रण में तो सूर ने लगभग 1000 पंक्तियाँ लिखी हैं। यह प्रसंग चेरुश्शेरी में भी इतनी ही पंक्तियों में वर्णित है। चेरुश्शेरी में कवित्व ही अधिक था, भक्ति तत्व कम था।

---

1 साहित्य और जीवन शीर्षक लेख - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयि

2 हिन्दी तथा मलयालम कृष्ण भक्ति काव्य - भूमिका - डा. रामचन्द्रन नायर

जहाँ तक हास्य चेतना की बात है, सूर ही चेरुशोरि से श्रेष्ठतर दिखाई पड़ते हैं । सूर ने अपने काव्य में हास-परिहास को एक निश्चित सीमा तक ही स्थान दिया है । इससे उनके काव्य में पर्याप्त संतुलन है । कहीं कहीं चेरुशोरि का हास्य मर्यादा की सीमा भी लाँघ जाता है । चेरुशोरि ने तो अलंकारों के द्वारा हास्यसृष्टि की है । लेकिन सूर की गोपियाँ अपनी वाग्विदग्धता के लिए मशहूर हैं । हास-परिहास उनके जीवन का लक्ष्य नहीं है, वह स्वच्छन्द प्रेम की ऐसी एक माँग है जिसकी पूर्ति वे बड़े उत्साह और उल्लास से करती हैं । संक्षेप में सूर की वाग्विदग्धता चेरुशोरि में नहीं ।

हास्य की प्रवृत्ति के आधार पर तुलसी और पुनम की तुलना हो सकती है । काव्यकला के दृष्टिकोण से तो तुलसी और तुंचन की तुलना श्रीरामचन्द्रदेव ने तो अपने अनुसन्धान का विषय बनाया है । लेकिन तुंचन में हास्य की मात्रा बहुत कम है । अतः तुलसी और पुनम के बीच की तुलना संगत ही है । इसमें कोई शक नहीं कि तुलसी के विराट व्यक्तित्व के आगे पुनम का व्यक्तित्व कहीं का नहीं । हास्यचेतना की दृष्टि से भी हम यही कह सकते हैं कि तुलसी ही श्रेष्ठतर हैं । तुलसी और पुनम की हास्य चेतना की तुलना एक विद्वान के शब्दों में यों प्रस्तुत है । 'भाषारामायणचंपू के रचयिता की तुलना मानसकार से एक हद तक ही हो सकती है । कारण यह कि जहाँ तुलसीदास जी मूलतः और पूर्णतः भक्तिमय हैं वहाँ रामायणचंपूकार विशुद्ध कवि हैं । कला प्रभा की दृष्टि से रमणीय काव्य का सृजन ही उनका ध्येय रहा है । इसलिए सरसता की अभिव्यंजना में उन्हें पूरी आजादी मिल सकी । मानसकार तो भक्ति के प्रभाव और दबाव के कारण बड़ी सावधानी से ही कदम आगे बढ़ाते हैं'[1] ।

सरसता एवं व्यंग्यमधुरता दोनों विशेषताएँ पुनम में श्लाघनीय अवश्य हैं । सामान्य सरस पाठक को यह प्रिय भी लगती है । लेकिन मानसकार जैसे परम भक्त की दृष्टि में अतिशय लौकिक सरसता तथा हास्यचेतना भगवत्कथा की गंभीरता में बाधक है । प्रभु की कथा में हँसी खिलवाड़ का स्थान नहीं हो सकता । यही कारण है कि रामचरितमानस में अन्य तुलसी अधिक अतिशय गंभीर रहे थे ।

- -

1 मानसी - पृ. 29 डा. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर (1973)

यह बात भी उल्लेखनीय है कि पुनम का हास्यक्षेत्र तुलसी के हास्य-मण्डल से अधिक विशाल है यद्यपि तुलसी के हास्य की मार्मिकता और उज्ज्वलता उसे प्राप्त नहीं हो सकी ।

बिहारी और मलयालम के मणिप्रवाल कवियों की हास्य चेतना की तुलना हो सकती है । दोनों शृंगार को ही प्रधानता देते रहे । साथ साथ शृंगार के सहचारी रूप से हास्य को भी उन्होंने अपनाया । फर्क यही कि मणिप्रवाल कवियों ने वेश्याओं को ही अपनी काव्य नायिकाएँ बनाया, लेकिन बिहारी ने विरह विदग्धा या मानिनी नायिकाओं को ही अपनाया । शृंगार जन्य हास्य की सृष्टि में मलयालम के मणिप्रवाल कवि बिहारी से भी होड कर सकनेवाले हैं । लेकिन बिहारी की वाग्विदग्धता तथा वचन वक्रता का एकदम अभाव मलयालम के मणिप्रवाल कवियों में परिलक्षित है । लेकिन मणिप्रवाल कवियों का हास्य सर्वांगीण तथा सर्वतोन्मुखी है ।

मध्यकालीन हिन्दी - मलयालम के हास्य व्यंग्यकारों के बीच की उपर्युक्त तुलना हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि हिन्दी कवियों ने केवल दो एक क्षेत्र चुनकर उन्हीं में अपनी हास्यकला का चमत्कार प्रदर्शित किया । मलयालम के कवियों की भांति हिन्दी कवियों ने मानव जीवन की विभिन्न दशाओं और बहुमुखी चित्तवृत्तियों का विश्लेषण नहीं किया है । लेकिन उन्होंने जो किया वह मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया गया।

मध्यकालीन हिन्दी और मलयालम कवियों में हास्यसृष्टि को परम लक्ष्य बनाकर काव्य रचना करनेवाले सिर्फ दो ही ठहरे - मलयालम के कुंचन और हिन्दी के अलि-मुहिब्बा प्रीतम । शेष सब मुख्यतः कवि थे । प्रसंगानुसार मनोरंजन के लिए या सरसता बढ़ाने केलिए ही वे हास्य सृष्टि करते थे ।

दोनों भाषाओं के हास्य व्यंग्यकारों के बीच की तुलना के निष्कर्ष के रूप में यह भी उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन मलयालम कवियों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकृतियों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति मौजूद थी जो उस त अर्थात् के हिन्दी कवियों में थोड़ी मात्रा में प्राप्त है । समाज में प्रसारित ह्रासोन्मुखी मनोवृत्तियाँ, अनीतिकता और विकृत जीवन

---

1 हिन्दी तथा मलयालम कृष्ण भक्ति काव्य - भूमिका — डा. भास्करन नायर

मूल्यों पर भी इस युग की मलयालम कविता ने व्यंग्य किया है । ऐसे सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यंग्य का उद्देश्य ध्वंसात्मक न होकर निर्माणात्मक है । विकृतियों और गलत जीवन मूल्यों के प्रति एक प्रकार की घृणा और उदासीनता उत्पन्न करने का प्रयास रहा है मध्यकालीन मलयालम काव्य में । समाज में बढ़ती हुई अनैतिकता के विरोध का स्वर भी इसमें मुखर हुआ है । संक्षेप में हम यों कह सकते हैं कि जीवन की विशाल कर्मक्षेत्र की गहराइयों में पैठकर उन आधारभूत विकृतियों और कमज़ोरियों को खोज निकालने का प्रयास मध्यकालीन मलयालम काव्य में किया गया है जो सांस्कृतिक अभ्युत्थान में सहायक है । लेकिन मध्यकालीन हिन्दी कविता में तो एक ही टैप की कुछ हास्य प्रवृत्तियाँ तथा वाग्वैदग्ध्य प्रदर्शन ही हम पा सकते हैं । हास्य प्रयोगों की विविधता मलयालम में ही प्राप्त है । लेकिन मलयालम में तो हास्य अधिकांश प्रकट तथा स्पष्ट है, व्यंग्य तो तीखा है । लेकिन आलोच्यकाल में प्रकट हिन्दी का हास्य प्रकट नहीं, अच्छादित है, छिपा है । शायद इसीलिए ही श्रेष्ठ है कि उसे प्राप्त करने में कठिनाई है ।

श्रृंगार के पोषक या सहचारी के रूप में हास्य — साधारणतः श्रृंगार संबन्धी वर्णनों में कवियों की हास्य-वृत्ति खूब रमती है । प्रेमिकाएँ प्रेमियों पर हँसती हैं । प्रेमीजनों की धार्मिकता (जैसे समीपस्थों की उपेक्षा आदि) हास्योत्पत्ति का कारण बन जाती है । पाखण्ड, अनुचित आडम्बर तथा दिखावा भी हास्य का कारण है । विषय वासना के खिलौने होने वाले कमज़ोर लोगों के या प्रेमी प्रेमिकाओं के आकृति, प्रकृति, वेश, वाणी और व्यवहार का बेतुकापन हास्य का आलम्बन हो जाता है ।

मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने श्रृंगार के सहचारी रस के रूप में हास्य का प्रयोग किया है । प्रमुख प्रसंगों को लेकर तुलना करने का क्रम ही हम यहाँ रखेंगे ।-

(1) स्वयंवर सभा में सन्निहित राजाओं की चपलता — कालिदास के रघुवंश तथा श्रीहर्ष के नैषध चरित का अनुकरण कर स्वयंवर सभा में सन्निहित सुन्दरीकामी राजाओं की उन्माद मधुर चेष्टाओं का वर्णन हास्य सृष्टि के एक उपाय के रूप में सब की सब भारतीय भाषाओं में स्वीकृत है । रघुवंश का इन्दुमती स्वयंवरप्रसंग तो ऐसे कवियों के लिए मार्ग दर्शित्व

देता है । मध्यकालीन मलयालम कवियों में चेरुश्शेरी और पुनम ने तो इस प्रथा को अपनाया । लेकिन मध्यकालीन हिन्दी कवि इस परम्परागत प्रथा की ओर आकृष्ट न हुए । तुलसी को छोडकर और किसी मध्यकालीन कवि को इसका मौका भी मिला नहीं । मायानगरी की राजकुमारी का स्वयंवर, सीता स्वयंवर आदि अवसर हाथ में आने पर भी तुलसी इस ओर नहीं झुके । यदि दरबारी विनोद प्रसंग तुलसी का प्रिय होता तो वे कालिदास का अनुकरण कर प्रत्येक स्वयंवरार्थी राजा के इंगित चेष्टाएं आदि की हंसी उडा सकते । लेकिन प्रभु एवं जानकी के मंगलसंमिलन के लिए विशेष उत्सुक तुलसी सुन्दरीप्रेमी राजाओं की चेष्टाओं पर ध्यान नहीं देते ।

पुनम अपने रामायणम् चम्पू में इस प्रसंग का हास्यपूर्ण वर्णन करते हैं यांत्रिक रूप से चेष्टाएं प्रकट करनेवाले राजा लोग सीतादर्शन पर अपने को भूलकर अनजाने सुगन्धियों को लेकर पीते हैं, एक हाथ से दूसरे हाथ को सहलाते हैं, इस चिन्ता से कि वह उस सुन्दरी का हाथ है ।

लेकिन इस प्रसंग पर चेरुश्शेरी की हास्यसृष्टि भी मार्मिक बनी है । रुक्मिणी के प्रार्थी होकर स्वयंवर सभा में पहुंचे राजा उस सुन्दरी को देख स्वयं भूलकर उसके अंगों की सुन्दरता का वर्णन करके मन ही मन थोडी सी तृप्ति पाने लगे । रुक्मिणी का रूप-सौन्दर्य देखकर चेरुश्शेरी के राजाओं ने एक धोखा खाया । एक अंग में पडी आंखें उस अंग के माधुर्य को चख चखकर तृप्त न होने के कारण, वहीं ही अडी रहीं । अतः कुछ राजाओं ने कुछ अंगों को ही देखा, पूरे शरीर को वे देख न पाए । बाद को वे बेवकूफ राजा अपनी ही आंखों को कोसने लगे कि उन्होंने बडा ही धोखा दिया । और एक राजा की चरित्रमती भी हास्यपूर्ण है । उसे ऐसा लगा था कि अपनी वस्त्रधारण रीति पर्याप्त रूप से आकर्षक नहीं । उसे ठीक करने केलिए उसने वस्त्रों को उतारा ही था कि झट रुक्मिणी प्रकट हुई । हाथ में वस्त्रों को पकडते पकडते नंगे नंगे उस सुन्दरी को देखते रहनेवाले उस विषयी राजा का वर्णन चेरुश्शेरी ने खूब किया है ।

मलयालम के हास्य सम्राट कुंचन नंपियार ने रुक्मिणी स्वयंवर में सम्मिलित विषयासक्त राजाओं की चेष्टाओं का वर्णन हास्य लेपन करके प्रस्तुत किया है ।. अपूर्व सुन्दरी रुक्मिणी का वदनकमल देखकर राजा स्तंभ समान खडे रहे । सुन्दरी को देख

सुधबुध खोनेवाले एक राजा ने हाथ में खा पान बिना खाए ही सिर के बालों पर खोंसे बैठा रहा। चूने के बर्तन से चूना लेकर उसे कस्तूरी जैसे सुगन्ध द्रव्य समझ मुँह पर लगा बैठनेवाले और एक राजा को भी कुंचन हमें दिखाते हैं।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि स्वयंवर सभा में सम्मिलित राजाओं को आलम्बन बनाकर हास्यसृष्टि करने का काम मलयालम कवियों ने ही किया है।

(2) कामवासना में पड़े लोगों की चपलता - कामी या विषयी जनों की चपलता हास्य सृष्टि के लिए उचित विषय ही है। मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने इस विषय को अपनाया है।

तुलसी का नारदमोह प्रसंग प्रसिद्ध है। यह तो तुलसी की हास्य चेतना का ठोस प्रमाण है। नारद की मानसिक चंचलता का सरस वर्णन तुलसी प्रस्तुत करते हैं। विरागी एवं ब्रह्मचारी नारदजी अत्यंत रूपवती कन्या को देख मोहित होते हैं। वे अपनी दीनकथा विष्णु से बताकर सहायता भी मांगते हैं। तुलसी तो नारद की काम-चपलता और विवशता देख हंस पड़ते हैं। रत्नावली पर मुग्ध तुलसी नारद के मानसिक दुख का अनुमान खूब कर भी सकते थे। जो मुनिश्रेष्ठ नारद काम विजय पे लंबी चौड़ी डींगें मार रहे थे, वे उन्हीं विष्णु भगवान के आगे कामवासना की पूर्ति के लिए भीख मांगते खड़े हैं। कितनी दयनीय है उस विषयी मुनिश्रेष्ठ की विवशता ! स्वयंवरसभा में बन्दर मुख के साथ नारदजी का यह बैठना कितना हास्यपूर्ण है। लेकिन सूक्ष्म हास्य इस बात में है कि परम कुरूप मनुष्य अपने को परम सुन्दर मान बैठा है। नारदमुनि का बेचैन होकर उचक उचक कर स्वयंवर कन्या का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की विफल कोशिश कितनी हास्य पूर्ण है।

मलयालम के पुनम नम्पूतिरि का अशोक-वन-प्रसंग भी काफी मशहूर है। सीता के प्रति रावण का चापल्य ही इसमें वर्णित है। सीता के प्रति रावण की प्रणय प्रार्थना हास्यमय होने के कारण मधुर तर बन गयी है। पुनम् नम्पूतिरि ने रावणसीता संवाद के प्रसंग पर रावण के मुँह से राम की विवशता, निर्धनता और दुर्बलता सुनाई है। विधवा बुढ़िया ताटका का वध, बदनाम औरत अहल्या की सहायता, चिरपुराण जीर्ण धनुष का

वंचन - इन सबको करनेवाले उस मनुष्य कीट को छोड़ देने का रावण का उपदेश सीता स्वीकार नहीं करती । अंत में रावण अपनी छोटी बहिन पर राम से हुए अत्याचार का भी वर्णन करता है । शूर्पणखा पर आकृष्ट राम और लक्ष्मण आपस में झगड़ते रहे, छोटे ने तो दोनों स्तनों को काट ले लिया और बाकी को बड़े के लिए छोड़ दिया ।

सबसे मजा इस बात में है कि रावण की सारी चपलताएं पेड़ के नीचे छिपे मन्दोदरी देख रही थी ।

श्री चेरुश्शेरी तो सुभद्रा पर आसक्त अर्जुन की कामचपलता का अच्छी ऐसा वर्णन प्रस्तुत करते हैं । सुभद्रा का सन्तत सामीप्य चाहनेवाला कपट सन्यासी अर्जुन दीप बुझाकर चिल्लाता है 'प्रकाश नहीं, दीप लाओ' । साथ पानी उंडेल देकर कहता है' पानी खतम हुआ, पानी लाओ' । - ये सब आजकल के नवयुवकों के काम चपलता से मिलते जुलते हैं ।

हास्य सम्राट कुंचन ने भी विषयी देवेन्द्र की चपलता का चलता फिरता चित्र प्रस्तुत किया है । अहल्या को अपनी विषयवासना का खिलौना बनाने के लिए देवेन्द्र एक कबूतर की कहानी बताता है । स्वामी कबूतरनी की कहानी समझाकर देवेन्द्र अहल्या से प्रार्थना करता है कि महाताप में पड़े उसकी रक्षा अहल्या करे । आत्मज्ञान पाकर अहल्या ने भी 'स्वाद' किया उसका फल था मुनिशाप से देवेन्द्र का सहस्र लिंगी का होना । मेनका के आगमन पर सिर के ऊपर कपड़े डाले पड़े रहनेवाले देवेन्द्र की अवस्था कितनी दयनीय है? अपनी चपलता के कारण देवेन्द्र को अपनी ही प्रजा की हंसी का पात्र बन जाना पड़ता है ।

कुंचन नम्पियार अपने 'त्रिपुर दहनम्' तुल्लल में एक बूढ़े की विषयलालसा का वर्णन यों किया है ' उस बूढ़े की उम्र चौहत्तर है, वह अन्धा है, बहरा है - लेकिन पृथ्वी को देखने की बूढ़े की लालसा असीम है, खासकर सुन्दर युवतियों को देखने की' ।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि कामवासना में बड़े लोगों की चपलता से हास्य सृष्टि यद्यपि कुंचन, चेरुश्शेरी तथा पुनम जैसे मलयालम के कवियों ने किया है तो भी तुलसी का नारदमोह प्रसंग की बराबरी इनमें से किसी का हास्य प्रसंग कर नहीं सकता ।

(3) प्रेमी या प्रेमिकाओं की यांत्रिकता । प्रेमी-प्रेमिकाओं की यांत्रिकता कभी कभी हास्यसृष्टि का आधार बन जाती है । हिन्दी के सूर तुलसी आदि तथा मलयालम के वेलुत्तेरी ने इसे अपना विषय बनाया है ।

रामचरितमानस के बालकाण्ड के वाटिका-प्रसंग में सीता की यांत्रिकता हमारी हास्यचेतना को जगाती है । श्रीराम और सीता के मंगल मिलन के लिए विशेष उत्सुक तुलसी फुलवारी के राम-सीता-मिलन में सुखतम प्रीति का उभार दिखाते हैं । इस प्रसंग के प्रमुख वचन हैं -

लोचन मग रामहि उर आनी
दीन्हे पलक कपाट सयानी ।।

राम को सीता द्वारा आँख भर देखने का वर्णन इस ढंग से किया गया है कि चतुर सीता ने राम को आँखों के जरिए दिल में लाकर पलक - कपाट बंद कर लिए ताकि वे बाहर न चलें । इसी प्रसंग के दूसरे वचन हैं - 'पुनि आउब एहि बिरियाँ काली ।' अन्यमनस्क श्रीराम पर सीता को ले चलने सखी उसे यह आश्वासन देती है कि कल फिर से यहाँ आएँगी । कल भी गौरीपूजा होगी और हम कुमारी में हेट करना । व्यंग्य यह है कि सीता, हम तुम्हारा मर्म तो समझ गयीं, मगर अब माँ के पास चलना होगा । विवश सखियों को यंत्रवत् सखियों के पीछे चलना पड़ा । यांत्रिकता दो 'बातों में हम देख पा सकते हैं । पहले तो सखियों के साथ खड़े होने तथा परिस्थिति को भूल कर वह यंत्रवत् श्रीराम को देखती देखती खड़ी रही । दूसरा तो यह है कि विवश सीता को यंत्रवत् सखियों के पीछे चलना पड़ा । सीता का मन तो राम के वश में है, लेकिन पाँव हैं सखियों के वश में । एक ही शरीर के दो अंग वैरुध्यात्मक प्रवृत्ति में लगे हैं ।

मलयालम के वेलुत्तेरी उपर्युक्त घटना से मिलती जुलती एक यांत्रिकता हास्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं । युद्धाह्वान कथा में खाने केलिए बैठे अर्जुन तथा परोसने केलिए खड़ी सुभद्रा के असंतुलित व्यापारों के वर्णन में वेलुत्तेरी ने कमाल दिखाया है । भारी घबराहट के सुभद्रा जितना चावल लायी थी, सब पत्तल पर डाल दिया । उसकी दृष्टि तो विजय पर अटक गयी थी । उसने सारा घी पत्ते पर उंडेल दिया । केले का अन्तर्भाग दूर फेंककर उसने छिलके को परोस लिया । क्रम के विरुद्ध तरकारियाँ परोसी गयीं । सुभद्रा के मुख से आँख न लौटा सकनेवाले अर्जुन परोसे भात केलिए 'बस' नहीं कहा, यह भी नहीं, केले के बदले उसके छिलके को चबा चबा कर अनजाने खा लिया था ।

गोपिकाओं की यांत्रिकता के बारे में हिन्दी के सूर तथा मलयालम के चेरुश्शेरी ने सरस ढंग से कहा है ।

काम-व्याकुल गोपियों का सुन्दर चित्रण सूर ने प्रस्तुत किया है । कृष्ण के रूप सौन्दर्य, ने उनकी बुद्धि हर ली है । अपने प्यारे के आगे आकर्षक रूप में खड़ी होने के लिए वे शृंगार कर रही है, पर यह भी नहीं समझ पाती कि कौन सी वस्तु कहाँ पहिननी जाय । कण्ठ में डालने का हार पैर में बाँध लेती, कुच पर धारण करने की कंचुकी कमर से बाँध लेती और कमर में पहनने का लहँगा मस्तक पर डाल कर लेती है[1] ।

श्रीकृष्ण का वेणुगान सुनने पर गोपियों की यांत्रिकता का सरस तथा हास्यपूर्ण वर्णन चेरुश्शेरी ने प्रस्तुत किया है । एक स्त्री एक आँख में काजल लगा रही थी कि मुरली की ध्वनि सुनाई दी, उसी दम सब कुछ छोड़कर दौड़ पड़ी । एक कान में कुण्डल पहन रही थी और एक, वंशीनाद सुनकर वह भी बेसुध दौड़ी[2] ।

गोपियों यों सुधबुध खोकर यंत्र समान व्यवहार करने में हास्य फूट फूट पड़ा है ।

इसके अलावा चेरुश्शेरी श्रीकृष्ण के मुरलीगान के प्रभाव से चराचरों पर अन्य यांत्रिकता का भी हास्यपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करते हैं । बड़े वेग से बहनेवाली यमुना रुक गयी । आधा चबा तृणों के साथ हिरनियाँ खड़ी रहीं । हाथी का मस्तक तो शेर फाड़ रहा था, वेणुगान सुनते ही वह पीछे हट गया । चूहे के पीछे दौड़ते साँप ने जैसे ही उसे पकड़ा, वैसे ही गान सुना, वह भी अवाक् स्थिर रहा । बाघ तो बछड़े पर हमला कर रहा था, गीत सुनते ही उसे अपने बच्चे के समान प्यार पुचकार करने लगा[3] ।

---

1 सूरसागर प.सं.1619

2 कृष्णगाथा पृ.67 सं.राजराजवर्मा

3 कृष्णगाथा पृ.312

उपर्युक्त मूल्यांकन से हम यह निष्कर्ष ले सकते है कि यांत्रिकता जन्य हास्यसृष्टि करने मे हिन्दी तथा मलयालम कविगण समान रूप से कुशल है ।

(4) चीर हरण प्रसंग - चीर हरण लीला का वर्णन भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय 22 मे और ब्रह्मवैवर्तपुराण के कृष्ण-जन्म-खण्ड के अध्याय 21 मे प्राप्त होता है । अधिकांश कृष्ण कवियो ने इसे हास्य सृष्टि का एक माध्यम बनाया है । हिन्दी के सूरदास तथा मलयालम के चेरुश्शेरी ने इस प्रसंग के द्वारा अपनी हास्य चेतना का परिचय दिया है ।

भागवत की गोपियां कात्यायिनी का व्रत करती है । परन्तु सूर की गोपियां भगवान भोलानाथ की पूजा करती है, साथ ही सविता से विनय करती है । सब गोपिकाओ ने निश्चय किया था कि जप-तप-संयम द्वारा ही कृष्ण को पति रूप मे पायेंगी क्योंकि इन्ही साधनो से 'द्रवित होत पाषाण'। जब गोपियां स्नान करने लगी तब मौका पाकर कृष्ण उन सब के वस्त्र उठा कदंब पर चढ़ गये । डाली पर वस्त्र तथा आभूषण लटका दिए । सूर ने इस समय का सुन्दर चित्र खींचा है । जब सोलह सहस्त्र गोप कन्याएं निर्वस्त्र उस शीतल जल मे श्याम को पाने की कामना मन मे छिपा, तप से शरीर को गला रही थी, तब उनके वस्त्र-आभूषण कदम्ब की डालों पर ऐसे लगे थे मानो -

"सूर श्याम व्रत पूरन को फल डारनि कदम फराए"|युवतियां प्रार्थना करने के पश्चात् जब तट के निकट आयी, तो देखा कि उनके वस्त्र-आभूषण कुछ भी तट पर नहीं । नाभी तक पानी मे खड़ी वे कड़े शीत से थरथर कांप रही थी और आश्चर्यचकित थी कि उनके वस्त्र ले कौन गया ? इतने मे कृष्ण की ध्वनि सुनी, शाखाओं के बीच । वे कह रहे थे 'हे घोष कुमारियो ! तुम अपने फलको देखो, द्रुम-डाल पर तुम्हारा व्रत प्रतिफलित हुआ है । तुम सब जल के बाहर आओ, तुम्हारा व्रत तो पूर्ण हुआ ।

गोपियां कृष्ण से बार बार अनुनय विनय करती है कि वे उन्हे वस्त्र लौटा दें । परेशान होकर वे चोली - हार लेकर केवल चीर देने की प्रार्थना करती है । पर कृष्ण मानते नहीं । उन्हे तो बस एक ही रटन है, सब लोग निर्वस्त्र ही जल के बाहर आओ और हाथ जोड़ो । बेचारी गोपियां बेहाल है । वे ऐसी मुसीबत मे है कि किये भी नहीं बनता और न किये भी आफत ही है । कृष्ण उनसे कहते है कि जैसे तुम सब ने सूर्य को हाथ जोड़े थे, उसी तरह मे जल के बाहर आओ । वे एक बार फिर विनय करती है -

नवबाला हम तुम कहत तुम कैसे अंग छिपावै ।

बेचारियों ने जल ही में चाह टेक कर श्याम को रिझाने का अन्तिम प्रयत्न किया, पर कृष्ण पर तो शैतानी करने का भूत ही सवार था ।
उनका कहना है -

ऐसे नहीं रीझने मैं तुमसे तट ही बांह उठावहु अंत में कृष्ण के हठ करने पर -

कर धरि सीस गई हरि कह मुख मन में करि आनंद

कृष्ण ने भी उन्हें वस्त्र लौटाए ।[1]

लेकिन भावना संपन्न बेकुलोरी मूलकथा से थोड़ा परिवर्तन लाए है । जब श्रीकृष्ण गोपियों से अंजलिबद्ध खड़े होकर अपने पाप के प्रायश्चित्त के लिए विष्णु से प्रार्थना कराना चाहते है तब वे शरम के मारे ऐसा नहीं करती । एक हाथ से वे अपनी नग्नता छिपाती है और दूसरे हाथ को ऊपर उठाकर प्रार्थना करती है । तब बेकुलोरी का श्रीकृष्ण उनसे कहते है 'सिर्फ एक हाथ को ऊपर उठाकर प्रार्थना करेंगे तो दूसरे हाथ को काट देने का विधान है । अतः दोनों हाथों को मुकुलीकृत करके प्रार्थना कीजिए । अन्त में विवश होकर पुलक भरी वस्त्र से शरीर ओढ़कर वे एक क्षण के लिए अंजलिबद्ध खड़ी रहीं । फिर झट उनके हाथ नाभि की नग्नता छिपाने जाते है । जब उनके हाथ फिर नाभी की ओर जाते है तब श्रीकृष्ण कहेंगे 'अपना अपना वस्त्र स्वीकार करो । जब हाथ बढ़ाते हुए वे वस्त्र स्वीकार करने का श्रम करेंगे तब श्रीकृष्ण नहीं देंगे । जब वे हाथ को नाभी तक पुनः ले जायेंगी तब श्रीकृष्ण कहेंगे 'ले लो' ।

गोपियों की बेबसी और श्रीकृष्ण की रसिकता का हास्यपूर्ण वर्णन है । इस प्रसंग पर बेकुलोरी की हास्य चेतना ही सूर की हास्यकल्पना से श्रेष्ठतर निकलती है ।

चीरहरण प्रसंग के बारे में प्रजेश्वरजी कहते है कि इस लीला में कृष्ण के चापल्यपूर्ण लीला कौतुक और गोपियों के प्रेमपूर्ण उपालम्भ द्वारा गोपियों के माधुर्य भाव की व्यंजना की गयी है ।[2] किन्तु कुछ लोग इस हास्य प्रसंग पर अश्लीलता का दोष लगाते है । लेकिन अधिकांश विद्वानों ने इसे अश्लीलत्व के दोष से बरी किया है । इनमें एक,

---

1 महाकवि सूरदास - पृ. 120

2 सूर और उनका साहित्य - पृ. 104 डा. हरिवंशलाल शर्मा

आचार्य वाजपेयी का कथन है 'यदि कृष्ण ने पुरुषों के समक्ष गोपियों को नग्न देखने की इच्छा प्रकट की होती तो उसमें अश्लीलता का आरोप किया जा सकता था[1] । कविगण तो किसी एक गोपी का किसी एक विशेष द्वारा चीरहरण कराकर उसे लज्जित नहीं कराते, वरन वह एक सामूहिक भाव को लेकर प्रकृति और पुरुष की आत्यन्तिक एकता को दिखाना चाहते हैं

डा. हरवंशलाल शर्मा ने चीरहरण प्रसंग का प्रतीकार्थ यों प्रस्तुत किया है 'भगवान बताते हैं कि निरावरण होकर माया का पर्दा हटाकर मेरे पास आओ । यह पर्दा ही तो परमात्मा और जीव के बीच व्यवधान है[2] । इस प्रतीकार्थ को समझने पर हम भी सोचने लगते हैं कि साज सज्जा तथा अलंकरण में अधिक ध्यान देनेवाले हम सब सचमुच कितने हास्यास्पद हैं ।

(5) भ्रमरगीत प्रसंग - सूर ने उद्धव को उपालम्भ देने की जिस परम्परा का उद्घाटन किया वह रीतिकाल में भी खूब फली - फूली । भ्रमरगीतप्रसंग द्वारा सूर ने अपनी वाक् चातुरी का पूर्ण परिचय दिया है । सूर की गोपियाँ व्यंग्य कसने में प्रवीण हैं । बाद को रीतिकाल में भी कविवर मतिराम की ग्वालिनी, पद्माकर की ग्वालिनें आदि अपनी अपनी तीखी जबान के लिए मशहूर हैं । कविवर देव की गोपियाँ भी उद्धव से व्यंग्य कसने में पीछे नहीं हटतीं । ये गोपियाँ कुब्जा पर भी व्यंग्य कसती हैं । लेकिन ऐसी प्रवृत्तियाँ मलयालम में बहुत कम ही मिलती हैं । मलयालम के श्रेष्ठ कृष्ण कवि चेरुश्शेरी ने सिर्फ नाममात्र के लिए इस प्रसंग पर प्रकाश डाला है ।

(6) शूर्पणखा प्रसंग - अरण्यकाण्ड का शूर्पणखा प्रसंग सभी रामकवियों को सरस विनोद का मौका दे सका है । दोनों मलयालम और हिन्दी कवियों ने इस अवसर का उपयोग किया है । लेकिन इस प्रसंग की हास्यसृष्टि में मलयालम के कवि पीछे ही रहे । अति मर्यादावादी तुंचन (मलयालम के प्रतिनिधि रामकवि) जिनकी रचनाओं में हास्य का नितान्त अभाव ही है, इस प्रसंग पर भी हास्य की ओर झुके नहीं । कुछ और एक रामकवि पुनम ने तो इस प्रसंग पर अपनी मौलिक भावना प्रकट की है ।

सरस होते हुए भी तुलसीदास की मर्यादावृत्ति उन्हें अतिशय श्रृंगारिकता से दूर रखती है । फिर भी तुलसी ने लौकिक व्यवहार पर अधिक ध्यान देते हुए शूर्पणखा को परम सुन्दरी बना दिया । वह वाल्मीकि की शूर्पणखा के समान विकृत और भीषण वेष में अपनी झांकी नहीं देती ।

---

1 महाकवि सूरदास पृ. 120 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

तुलसी की रूपगर्विता शूर्पणखा राम को कैसा प्रलोभन देती है ।

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ।

अपने सौन्दर्य की प्रशंसा स्वयं करती शूर्पणखा का चित्रण तुलसी की हास्य चेतना का प्रमाण है । अगर वे सिर्फ वैराग्यवादी भक्त होते तो इतना सरस चित्रण काहे को करते ?

श्रीराम कहते हैं कि लक्ष्मण कुमार है अतः वह शादी कर सकता है । लक्ष्मण उस कामातुर नारी को बड़े भाई के पास यह कहते भेजता है कि वे ही कुछ कर सकते हैं । इस प्रकार दोनों भाई उसे इधर उधर दौड़ाकर बड़ा नाच नचाते हैं । शूर्पणखा अपनी अनधिकृत कामातुरता, चंचलवृत्ति, मर्यादा-निरपेक्षता एवं सदुपदेश निरपेक्षता के कारण हास्यास्पद बन जाती है ।

यद्यपि मलयालम के प्रतिनिधि रामकवि तुंचन ने इस प्रसंग पर हास्ययोजना नहीं की है, फिर भी सहृदय पाठक इस प्रसंग पर अतिशय मर्यादावादी तुंचन की एक कुशलता पर मन ही मन हँस पड़ते हैं । शूर्पणखा के कर्ण-नासिका स्तन छेदन में तुंचन ने अपने आराध्य के चरित्र में संभावित कलंक का कुशलता से निवारण किया है । यह घटना तो सचमुच राम और लक्ष्मण दोनों के चरित्र के लिए कलंक है । छेदन का हीन कार्य लक्ष्मण ने किया, पर उत्तरदायित्व अध्यात्मरामायणकार (संस्कृत) ने राम पर डाला । वाल्मीकि की दृष्टि भी यही थी । कम्बरामायण में तो राम लक्ष्मण के आचरण को साधुता देने के लिए शूर्पणखा को अतिकाम से पीड़ित तथा अतीव मायिनी बना दिया । कम्बन यह भूल गया कि तादृश नारी के साथ वार्तालाप में प्रवृत्त पुरुष की चारित्रिक महत्ता भी संदिग्ध मानी जायगी । तुलसी अधिक संयम के साथ यही काम निकालते हैं । फिर भी तुलसी के राम लक्ष्मण को संकेत से अनुमति देते हैं । इस प्रसंग पर तुंचन से प्रकट की गई सर्वाधिक उचितज्ञता ही हमारी प्रशंसा का विषय है । दोनों ओर से निराश शूर्पणखा को अन्त में सीता की ओर बढ़ते देखकर लक्ष्मण उसे रोकता है और फलस्वरूप अंग काटे जाते हैं । तुंचन का वर्णन पढ़ने पर हमारे मन में शूर्पणखा के प्रति अनुकम्पा भी उत्पन्न होती है । वह अवध्या नारी क्रूर है । अतिमात्र कामुकता घोर अपराध अवश्य है, पर बड़ाई अपराध

है क्या ? तुंचन यह बात भली भांति जानते थे ही । इसीलिए उन्होंने अतिशय कामातुर नारी के अपराध को दण्डनीय मानते हुए भी उसकेलिए अनुकम्पा सुरक्षित रखी ।

अब हम और एक मलयालम कवि पुनम की बात लें । शूर्पणखागमन की भूमिका के रूप में कवि वसन्तवन का वर्णन प्रस्तुत करते हैं । शूर्पणखा विलास-विनोद लिए प्रवेश करती है । जहाँ अन्य कवियों ने शूर्पणखा के मायासौन्दर्य का उल्लेख मात्र किया है वहाँ पुनम ने उसकी रूपछटा का सांगोपांग वर्णन सुचारु रूप से प्रस्तुत किया है मानो वह रंभा को भी अपनी वशवर्ती बना ले सकती है । शेष भागों में पुनम ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है । यहाँ श्रीराम भी कुछ विनोदी प्रकृति के हो जाते हैं । वे ऐसा बहाना करते हैं कि वे तो शूर्पणखा को मन ही मन चाहते हैं लेकिन परिस्थितियों के कारण ही उसे स्वीकार नहीं कर सकते । श्रीराम से प्रस्तुत हर एक समस्या का समाधान तुरन्त प्रस्तुत करने में पुनम की शूर्पणखा समर्थ है । शूर्पणखा की इस समर्थता के आगे पराजित होकर श्रीराम उसे लक्ष्मण के पास भेज कर क्षमा प्राप्त करते हैं ।

वात्सल्य के पोषक के रूप में हास्य - वात्सल्य के पोषक के रूप में हास्य की सृष्टि होती है । मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में वात्सल्य के पोषक के रूप में हास्य का प्रयोग करनेवालों में सूरदास और परमानन्ददास का स्थान बेजोड़ है । बाल्यकाल की चेष्टाओं का सूक्ष्म निरीक्षण हास्यचेतना के साथ उन्होंने किया है । मलयालम के कवि भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहे, परन्तु हिन्दी के कवि ही अधिक प्रभावशाली हैं । 'सूरदास ने बाललीला का वर्णन करते समय अनेक पद लिखे हैं जिनमें हास्यरस प्रधान है[1] । मलयालम के चेरुश्शेरी ने भी वात्सल्य के सहचारी रूप में हास्यसृष्टि की है ।

(1) माखन चोरी - आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो माखन हृदय की कोमल वृत्तियों का प्रतीक है, जिन्हें परमात्मा अपनी ओर आकर्षित करता है । कृष्ण भी तो परब्रह्म के रूप हैं, वे मनुष्यमात्र की कोमलवृत्तियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं ।

कृष्ण के घर में तो माखन की कमी नहीं । लेकिन चोरी करके खाने से प्राप्त स्वाद घर के माखन से कैसे मिल सकता है ? अपने घर में 'कमोरियों' से भरे माखन को छोड़कर दूसरों के यहाँ से चुराकर खाने एवं खिलाने में उत्साह से भाग लेना,

---

1 हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य पृ.260
डा.के.भास्करन नायर

सखाओं को जोड कर घर घर माखन चुराना, खाना, खिलाना खाने से ज्यादा गिराना आदि बातें के द्वारा दोनों भाषाओं के कवियों ने बालकों की हास्य मनोवृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है ।

हिन्दी और मलयालम कवियों के बालकृष्ण बातें बनाने की कला में भी बढे-चढे हैं । सचमुच यह हाज़िर जवाबी प्रत्युत्पन्नमतित्व भी हास्य का कारण है । बात बनाने की कला पर कौन नहीं न्योछावर हो जायगा ?

सूर के कृष्ण एक दिन साथियों को लिए माखन चोरी को निकले, गली से जाते समय एक गोपी के घर में देखा कि वहाँ एक गोपी दूध मथ रही है । जब वह कमोरी मांगने चली गयी तो कृष्ण अपने दोस्तों को बुलाकर अन्दर घुसे और माखन खाया । बाहर जाते समय गोपी ने उन्हें देखा और कृष्ण से उसने पूछा 'तुम लोग कहाँ गए थे ? कृष्ण ने झट उत्तर दिया 'खेलते समय हमारा यह मित्र भाग गया और तुम्हारे घर में छिपा रहा । यों कहकर कृष्ण ने अपने एक मित्र को आगे खडा कर दिया ।[1]

और एक मनोरंजक घटना । एक अंधेरी रात को पडोसी घर में दही के बरतन में हाथ डाले कन्ह पकडे गए । पूछने पर उसका चोरचातुर्य प्रकट होता है 'मुझे अंधेरी रात में अपने घर का धोखा हो गया । मैं ने समझा यह अपना घर है । दही के बरतन में चींटी निकालने को ही मैं ने मटकी में हाथ डाला । मैं चोरी थोडे ही करता हूँ ।[2]

और एक बार रंगे हाथों पकडे जाने पर उलाहना देने लगे कि तेरा लडका मेरी मुरली लेकर भाग गया, अब तू मुझे मुरली ला दे । बेचारी गोपी को मुरली देकर पीछा छुडाना पडा । बार बार पकडे जाने पर भी कृष्ण के उपद्रव नित्य बढते ही गये । यमुना स्नान के लिए जाती गोपियों को देख, घर में घुस माखन खाते । बालकों के कन्धे छींके तक पहुंचने के लिए सीढी का काम करते ।

एक बार गोपी ने फिर रंगे हाथों पकडा और कहा अब बताओ कौन चोरी कर रहा है कहो तो सब माखन निकाल दूँ ? तब कन्ह शपथ खाकर कहने लगे 'मैं ने तो नहीं खाया, सभी सखा खा गये ।

---

1 सूरसागर भाग 2, पृ.35। सभा संस्करण
2 वही पृ.34।

और एक बार गोपियां उन्हें दोने बाहित यशोदा मैया के पास ले जाती है। तब कृष्ण का कहना है 'मां मैं ने माखन नहीं खाया। सखाओं ने मिल कर मेरे मुख पर लपट दिया। मैं अपने नन्हे हाथों से इतनी दूर लटके छींके को कैसे पा सकता हूं। इतना कह यही से सना मुंह पोछकर दोने को पीछे छिपा लिया। नन्हे बालक का यह चोरचातुर्य किसको प्यार नहीं लगेगा? बाल अवस्था का ऐसा उपजाऊ मस्तिष्क ही हास्य सृष्टि का कारण है।

कृष्ण की शरारतों का भी वर्णन हिन्दी कवियों ने खूब किया है। परमानन्ददास की गोपियां उलाहना देती है : अरी यशोदे! तेरे पुत्र के कारण हमें बड़ा कष्ट होता है। हमारे घर में तेरा लड़का आकर बड़ी हानि पहुंचाता है, दूध, माखन, गोरस ले जाता है, पात्र सब फोड़ डालता है और लड़कों के कान मरोड़कर भाग जाता है[1]।

सूरदास भी ऐसी एक शरारत का वर्णन यों करते हैं 'एक दिन कृष्ण एक गोपि के घर में घुसकर माखन खाने के बाद बाजनों को फोड़ डाला। फिर सोते बच्चों को कूक कर जगाया और हंसते हुए भाग गए[2]।

अब हम इस प्रसंग पर मलयालम कवियों की हास्यसृष्टि को देखेंगे।

यशोदा मैया से प्राप्त माखन को पूरा पूरा खाने के बाद कुछ दूध भी पीना चाहनेवाले कण्ण की चतुरता देखिए 'मैं गले के अन्दर वह माखन अटक गया है। बड़े संकट में हूं। बिना कुछ दूध पिए वह नीचे नहीं उतरेगा। यों कहकर आंखें फाड़ फाड़ कर विकलता दिखानेवाले कृष्ण को देखकर माता डर गयी। दूध पीने के बाद माता की उत्कण्ठा है 'अब कैसा है, अब कैसा है? मुस्कुराहट के साथ कण्ण का उत्तर है 'यदि इस प्रकार बहाना न करता तो तू मुझे दूध देने का नाम न लेती[3]।

1 परमानन्ददास पद संग्रह - पद सं. 38 सं. डा. दीनदयालु गुप्त

2 सूरसागर भाग - 1 - पृ. 351 सभा संस्करण

इससे मिलती जुलती एक घटना का वर्णन श्री तुंचन भी करते हैं । कृष्ण ने माखन माँगा तो तुरन्त माँ ने एक हाथ पर उन्हें दे दिया । तब वे बोले 'माताजी ! देखो, तू ने एक हाथ में माखन रखा है । दूसरे हाथ में माखन न रखने के कारण यह रो रहा है । 'उसी वक्त उस हाथ में माँ ने माखन रखा । कृष्ण ने एक हाथ का माखन तुरन्त खा लिया और रोने लगे । यशोदा ने कारण पूछा तो कृष्ण ने उत्तर दिया, अरी माँ, एक कौआ आकर मेरा माखन छीन ले गया, मैं बड़ा बेवकूफ निकला। यह देख यशोदा ने तुरन्त फिर माखन दे दिया[1] ।

चेरुश्शेरी एक हास्यपूर्ण घटना का वर्णन करते हैं । एक बार एक चारपाई के ऊपर खड़े होकर कृष्ण छींके को पकड़ने लगे । तब चारपाई खिसककर नीचे गिर गई । ~~कृष्ण छींके को पकड़ने लगे । तब चारपाई खिसककर नीचे गिर गई ।~~ कृष्ण छींके की रस्सी को पकड़कर हिलने डुलने लगे । चिल्लानेवाले कृष्ण की माता ने रक्षा की । माता से कृष्ण का कथन है 'मुझे ऐसा लगा कि तू ने दही और माखन को सुरक्षित रखा नहीं । तू तो बड़ी मेहनत करके इसे रखती है तब कोई बिल्ली आकर इसे न खावे और दूध न पीवे, इस विचार से मैं इधर आया । यों कहने के बाद कृष्ण का कथन है 'इसकी रखवाली करने की मजदूरी के रूप में कुछ माखन तो दे दो'[2]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माखनचोरी से अन्य हास्य में हिन्दी कवियों ने ही अधिक कुशलता दिखाई है ।

(2) शरारतें - यद्यपि हिन्दी कवियों ने कृष्ण की शरारतों का वर्णन हास्यपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया है, तो भी मलयालम कवियों का हास्य ही इस प्रसंग पर अधिक महत्वपूर्ण दीखता है ।

एक गोपिका ने अपने पिताजी को देने केलिए रोटी बनाई । कृष्ण ने तो छिपे छिपे रोटी खा ली और बर्तन में बड़ा गोबर रख दिया । रोटी समझकर बर्तन से गोबर खानेवाले लोगों की स्थिति का खूब वर्णन भी चेरुश्शेरी ने किया है[3] ।

---

1 भागवतम्, दशम स्कन्ध - पृ.218 एजुत्तच्छन

2 कृष्णगाथा - पृ.163 सं.राजराजवर्मा

3 वही पृ.180

कृष्ण की ऐसी एक नटखटी का वर्णन करते हुए कुंचन एक गोपी द्वारा कहलाते है ' यशोदे, तुम्हारे प्यारे कान्ह ने मेरे घर मे जो अनाचार किया है उसे सुन लो । मै ने पिताजी के लिए थोड़ा दूध गरम करके कमरे के कोने मे एक सुरक्षित स्थान पर रखा था । कान्ह छिपे-छिपे घर के अन्दर घुसा, सारा दूध पी लिया, और पात्र मे जल भरकर चला आया । पिताजी ने अन्धेरे मे जाकर उसे पी लिया तो मालूम हुआ कि दूध नही बल्कि जल है । मारे क्रोध के उन्होने मुझे बुरा - भला कहा और मेरे सामने बर्तन तोड़ डाले भी ।

पून्तानम कृष्ण की बालचेष्टाओ के बारे मे लिखते है - एक दिन जसुमती प्रार्थना करने के लिए बैठी । अर्चना के पुष्प रखे हुए है । कृष्ण दौड़े हुए आए। सारे पुष्प अपने सिर पर रखकर उन्होने कहा 'मै शिव हूं' तब भयभीत माँ बोल उठी 'अरे तू क्या बकता है? फिर नारायण का जप करने के लिए कृष्ण से वह कहती है तो भगवान् कृष्ण शार्मिन्दा होकर हंस देते है, क्योंकि वे स्वयं भगवान है । बेचारी यशोदा इसे कैसे जान सकती ?'

इस प्रकार शरारतो द्वारा हास्य सृष्टि करने मे मलयालम के कवि ही कुशलतर दिखाई पड़ते है ।

(3) बालक की तीव्र बुद्धि - कृष्ण की शैशवावस्था के लिए अनुचित तीव्र बुद्धि देखकर अन्य लोगो मे जो आश्चर्य होता है, यह भी हास्योद्रेक का कारण हो जाता है । हिन्दी और मलयालम के कवियो ने इस तथ्य को अपनाया है ।

मलयालम के भक्त कवि पून्तानम गाते है 'एक दिन कृष्ण को नींद नही आयी । तब यशोदा रामायण की कथा सुनाने लगी । बीच मे कहा कि रावण ने सीता को छीन लिया तो कृष्ण जाग उठे और 'अरे लक्ष्मण पुकारा ।'[1]

सूरदास ने भी इसी कथा को अपनाया है । सोने के पहले सूर की यशोदा मैया भी रामायण की कथा बच्चो को सुना लेती है । सीताहरण के प्रसंग पर कृष्ण सोते से जागते है । लक्ष्मण को बुलाकर चाप लेने केलिए कहते है । तब माँ डर जाती है।[2]

---

1 पून्तानम की कृतियाँ - पृ. 69 सं.पि.के.बदर्स ।

2 सूरसागर, भाग - 1 - पृ. 320 सभा संस्करण ।

दोनों की तुलना में इस प्रसंग पर पून्तानम ही श्रेष्ठतर निकलते हैं लेकिन सामान्यतः वचन विदग्धता में सूर का कृष्ण मलयालम कवियों के कृष्ण से श्रेष्ठतर है

(4) परछाईं प्रसंग - छाया प्रसंग को लेकर कवियों ने हास्यसृष्टि की है । पून्तानम नम्पूतिरि कहते हैं 'दर्पण में अपना रूप देखकर कृष्ण विचार करते हैं कि यह मेरा सखा है। तुरन्त वह आइने से आलिंगन करते हैं'[1]।

सूरदास ने दो स्थानों पर छाया प्रसंग द्वारा हास्यसृष्टि की है । माखन खानेवाला बालकृष्ण जब एक घड़े में झाँकता है तो और एक बालक को भी माखन खाता देखकर ईर्ष्यालु होता है । पिता से वह इस पर शिकायत करता है और अपनी बात को सही सिद्ध करने के लिए वह पिता को भी साथ लाकर बात दिखाता है । तब बात और हो जाती है । अपने और पिता के प्रतिबिंब को देखकर बालक अपने को तो पहचान नहीं पाता, पिता को पहचान लेता है और क्रुद्ध होकर उनकी गोद से उतर जाता है । माता से बालकृष्ण यही शिकायत करता है कि पिता और किसी बच्चे को गोद में लेकर प्यार पुचकार कर रहे हैं ।

दूसरा छाया प्रसंग माखनचोरी से संबन्धित है । माखनचोर माखन खाने लगता है कि सामने के मणिखंभ पर दूसरे एक बालक को देख पाता है । उस साथी को वह माखन खिलाने का परिश्रम करता है ।

उदाहरण तो ज्यादा आवश्यक नहीं । छायाप्रसंग द्वारा हास्ययोजना में हिन्दी कवि सूरदास ही मलयालम कवियों से अधिक सफल हैं ।

(5) चाँद का प्रसंग - एक बार रोने मचलने से यशोदा मैया ने चन्दा दिखलाकर मानो फूस को आग ही दिखला दी । मचलने का एक और बहाना बालकृष्ण को मिल गया -

मैया मैं तो चंद खिलौना लैहौं

किसी प्रकार थाली में पानी डालकर सूर के कृष्ण को प्रतिबिंब दिखा दिया गया, पर चंचल बालक कहाँ माननेवाला है। वह तो और अधिक मचल उठा । वह न तो दूध पियेगा, न चोटी गुँथवाएगा, न ही नन्दबाबा का लड़का कहलाएगा ।

---

1 पून्तानम की कृतियाँ - पृ. 95 - सं. पी.के. प्रवर्ति

यशोदा ने धीरे से कहा कि एक बात सुनो, कहीं बलदाऊ न सुन ले । मै तुझे चाँद सी सुन्दर दुलहिन ला दूँगी । बात तो कही गयी थी टालने केलिए, लेकिन बच्चे तो आखिर बच्चे ही होते है, उसपर यह तो नटखट बालक भी । 'मै तो अभी ब्याहने जाउँगा' नयी जिद का प्रादुर्भाव होता है ।

सूर के कृष्ण मे अन्तर्निहित बुद्धि-चातुर्य भी कम नहीं, जो आगे चलकर वाग्विदग्धता के रूप मे बढकर रूठने मचलने के नवीन उपाय ढूँढने मे सफल होता है ।

ऐसे प्रसंग द्वारा हास्यसृष्टि मलयालम कवियो ने नहीं की है । सूर जैसे हिन्दी कवियो की कल्पनाशक्ति सचमुच प्रशंसनीय है ।

(6) बडे भाई पर शिकायत - समवयस्को द्वारा चिढाए जाने पर बालको मे एक प्रकार के आत्मगौरव की भावना जाग्रत होती है, जो उन्हे शिकायत करने केलिए उत्तेजित करती है । अपने सुख-दुख की बाते ऐसी एक व्यक्ति से ही वे करते है जो उनकी कमियो और कमजोरियो से भी प्यार करते हो । माता के सिवाय बालक को अपना हितैषि और कोई नहीं । कृष्ण काले बलराम गोरे है, इसी बात को लेकर बलराम कृष्ण को चिढाते है । कृष्ण यशोदा के पास शिकायत लेकर दौडते है -

मोसो कहत मोल को लीन्हो तु जसुमति कब जायो

न तो नन्द काले है न यशोदा, फिर तू काला कैसा ? तुझे तो खरीदा ही गया है । कृष्ण का स्नेह का भूखा बालहृदय ऐसो के साथ खेलना पसन्द नहीं करता, जो उन्हे खिझाते है -

"खेलन अब मेरी जाय बलैया" लेकिन बच्चे कुछ क्षणो के बाद सबकुछ भूलकर फिर एक दूसरे से घुलमिल जाते है । खेल मे कृष्ण हारते है तो वह रूठ नाराज है । उसका कहना है -

खेलन मे को काको गुसैया

ऐसी शिकायते सिर्फ सूर ने प्रस्तुत की है । मलयालम के कवि ऐसी विचारधारा मे नहीं पडे है ।

(7) बालों को बढ़ाने केलिए दूध पीना – बालों को बढ़ाने की लालच में कृष्ण कच्चा दूध भी पीता है । उसके दिन की चिन्ता और रात का सपना है लंबी बाल का होना । बीच बीच मां से वह पूछता -

मैया कबहुं बढ़ेगी चोटी ?

बाल के न बढ़ने पर वह माता से शिकायत भी करता है । ऐसे हास्य कल्पनाओं की सृष्टि सिर्फ सूर ने की है, मलयालम के किसी कवि ने नहीं किया है ।

उपर्युक्त मूल्यांकन हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि वात्सल्य के पोषक के रूप में हास्य की सृष्टि करने में हिन्दी कवियों ने ही मलयालम कवियों से बढ़कर कुशलता दिखाई है ।

(3) हास्य - स्वतंत्र रूप में – मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कविता में अन्य रसों के सहचारी रूप में हास्य के स्थान का तुलनात्मक अध्ययन अब तक हमने प्रस्तुत किया। अब हमें स्वतंत्र रूप में प्रकट हास्य का स्थान निर्धारित करना है । मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने कुछ समान आलम्बनों पर हास्यसृष्टि की है जो इस तुलनात्मक अध्ययन में सहायक है । वे यों है :-

(क) देवों पर व्यंग्य - विनोदी वृत्ति के लोग अपने आदर्शों को भी हास्यपात्र बनाने में नहीं चूकते । मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम के अधिकांश कवियों ने अपने आराध्य देवों पर भी हास्य - व्यंग्य किया है । लेकिन इसमें उन्होंने मर्यादा का पालन किया है, वे कभी सीमा के उस पार नहीं गए । अतः उनका हास्य-व्यंग्य शिष्ट ही रहा ।

'जो लोग पौराणिक कथाओं को जानते हैं, उन्हें मालूम है कि करीब करीब सभी देवताओं और ऋषि मुनियों के नाम ऐसी कहानियां मिलती हैं जिनसे उनके चरित्र की विशुद्धता में संदेह होता है[1] । ऐसे चरित्रों की अविशुद्धता तो हास्य का आलम्बन जरूर हो सकती है यद्यपि वह नीचे स्तर का हास्य ही क्यों न उत्पन्न करे । लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने इसका बढ़ा चढ़ा वर्णन करके इनके हास्य की सृष्टि नहीं की ।

- -

1 कबीर पृ.166 - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

भगवान के प्रति उपालंभ मध्यकालीन हिन्दी कवियों की एक सामान्य प्रवृत्ति रही । यह तो मध्यकालीन मलयालम कवियों में तो नहीं दिखाई पड़ता । अपनी भूल की क्षमा केलिए भगवान के सामने अनुनय - विनय, भगवान की चुनौती, भगवान से उपालंभ ये सब प्रवृत्तियाँ हिन्दी कवियों के बीच साधारण थी । सूर की 'प्रभु से छेड़छाड़' प्रसिद्ध है । विनय के पदों में अनेक उक्तियाँ ऐसी प्राप्त है[1], जिनमें सूर बड़ी चतुराई से आत्मनिवेदन प्रस्तुत करते हैं । अपने प्रभु से होड़ करने को दुस्साहस वे इसलिए करते हैं कि उनके आराध्य ने अधम मूर्तियों के उद्धार किया है बल्कि उनका उद्धार नहीं करते । भगवान को यदि 'पतितपावन' होने का गर्व है तो भक्त भी 'पतितनिराथ' है । बनावटी क्रोध के सुन्दर नमूने हैं सूर की तत्संबन्धित उक्तियाँ । अपने आराध्य के ही बल पर उसी को चुनौती देना सचमुच हास्यास्पद है । सूर की वाक्-पटुता भी प्रदर्शित है ।

बिहारी जैसे शृंगार कवि भक्ति पक्ष में भी वक्रता नहीं छोड़ते । मुरलीधर के तीन जगह से वक्र होने के कारण बिहारी भी हृदय की वक्रता नहीं छोड़ते । भगवान को 'तारन-बिरद' दीनबन्धु आदि पुकारने में बिहारी तो आपत्ति देखते हैं[2]। 'भगवान के साथ सख्य भाव से संबन्ध रखनेवाला भक्त उसे मित्र की भाँति उलाहना देता है, उसे डाँट-डपट सकता है अथवा उससे होड़ बढ़ा सकता है[3]। कृष्ण के सखा भक्तों ने ही ऐसे उपालंभ दिए हो, सो बात नहीं । तुलसी जैसे राम के दास भक्तों को भी अपने नाथ की निठुराई' देख दुख हुआ है[4]। यहाँ तक कि वे राम के नाम का 'पुतला' बाँधने के लिए मजबूर हो जाते हैं[5]।

1 सूरसागर (सभा संस्करण) विनय पद 137, 125

2 बिहारी सतसई 61

3 बिहारी पृ.75 रामरतन भटनागर

4 जद्यपि नाथ । .... निठुराई ।। विनयपत्रिका

5 हौं अब तौ .... परिहास रुते ।। विनयपत्रिका

मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी कबीरदास को तो मूर्तिपूजकों की खिल्ली उड़ाने के बीच 'चारि भुजा' जैसा प्रयोग करना पड़ा, शिव की मूर्ति को चक्की से भी कम उपयोगी सिद्ध करना पड़ा, लेकिन इसे हम देवों पर हास्य - व्यंग्य न पुकार सकते हैं

भगवान शिवशंकर पर तो मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों समान रूप से व्यंग्य कसा है। शंकर के रूप और उनकी लीलाओं ने हास्यरस का खूब मसाला दिया है। तुलसी ने भी मन खोलकर भगवान शिव पर विनोद किया है[1]। उनका शंकर-विवाह प्रसंग का हास्य तो मशहूर है। भगवान शिव के बाह्यवेष का असामंजस्य रह रहकर कवि की विनोदीवृत्ति को उकसाता रहता है। शिव बारात के प्रसंग में तुलसी ने सीधे महादेव जी की हँसी उड़ाई है। बारात में भाग लेने केलिए शृंगार करनेवाले शिवजी हास्य के आलम्बन बन गए हैं।

रीतिकालीन कवि पद्माकर ने भी शंकर के विवाह का वर्णन हास्यपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया है।

मलयालम के कवि चेरुश्शेरी ने भी भगवान शिव की भागदौड़ का आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत किया है। भस्मासुर से रक्षा पाने केलिए भगवान शिव को भागना पड़ा। एक वर देकर अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार बैठनेवाले शिवजी की भागदौड़ सचमुच हास्यमय है। 'तेजी से दौड़ते समय नीचे खिसक गिरनेवाले शार्दूल चर्म को एक हाथ से पकड़े वे भागने लगे। गले के साथ एक एक होकर गिरने लगे। कान में कुण्डल रूपी साँपों के सीत्कार से ललाट की आँख की आग भड़क उठी। पृथ्वी पर गिरे बालचन्द्र को लेते हुए, पार्वती देवी को सान्त्वना देते हुए भगवान शिव भाग रहे थे[2]।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि भगवान शिव पर व्यंग्य कसने में हिन्दी कविगण ने ही अधिक सफलता पायी है।

ब्रह्मा पर मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने तो व्यंग्य नहीं कसा, लेकिन मलयालम के चेरुश्शेरी और कुंचन ने तो खूब उनकी खिल्ली उड़ाई है। अहंकारी ब्रह्मा को श्रीकृष्ण एक सबक सिखाते हैं। ब्रह्मा का गर्व दूर करने के लिए उन्होंने एक

- -

1 रामचरितमानस - गीता प्रेस - पृ. 104

2 कृष्णगाथा - पृ. 592

दूसरे ब्रह्मा की सृष्टि की । सृष्टिकर्ता देखते ही रहे । और एक सृष्टिकर्ता की सृष्टि और किसी से हुई है । घबराहट के मारे पहले ब्रह्मा ने दूसरे से पूछा 'तुम कौन?" दूसरे ने झट उत्तर दिया 'मैं ब्रह्मा" इसपर झगडा हुआ । एकायक कैटभासुर बीच में कू पडा और पहले ब्रह्मा को मार डालने केलिए उनके पीछे दौडा । प्राणरक्षार्थ बेचारे ब्रह्म भागने लगे । आगे आगे ब्रह्मा और पीछे पीछे हत्यारा । तभी ब्रह्मा का अहंकार शम हुआ और तब कृष्ण को उनपर दया आयी[1] ।

ब्रह्मा की ऐसी भाग दौड का वर्णन मलयालम के हास्यसम्राट कुंच ने 'रावणोद्भवम् में किया है । वरसिद्धि के लिए रावण अपना दसवाँ सिर काटने लगता है तब घबराहट के साथ ब्रह्मा भागते है । दौडदौडकर तो वे पसीने से भीग सब कपडे उलझ गए । दुपट्टा नीचे गिर गया । दण्ड, रुद्राक्षमाला सब नीचे गिर ग जिन्हे उन्होंने जमीन से ले लिया[2] ।

सुन्दोपसुन्दोपाख्यानम् में कुंचन ब्रह्मा को एक कारिगर के रूप में प्रस् करते है । देवलोक का कारीगर सुन्दर स्त्री की सृष्टि करने लगा । कमलसंभव ब्रह्मा अपनी नाक पर चश्मा डा टकटकी बाँध देखते रहने लगे । अपने मन को अच्छा न लगने वाले भागों को बार बार बदलकर बनाने लगे[3] । कुंचन के हाथ में तो असली ब्रह्मदेव भी एक बूढे कारिगर ही रहे ।

कृष्ण पर कुंचन और चेरुश्शेरी ने व्यंग्य कसा है । चेरुश्शेरी का जरासन्ध कृष्ण से व्यंग्य कसता है 'यदि असमान होनेवाले तुमसे मैं युद्ध करने केलिए तैयार हो तो भी मेरी झलक पाते ही तू खिसककर भागनेवाला है । हम दोनों के बीच परिचय का सम्बन्ध है, फिर भी देखने पर बिना कुशल पूछते ही तू रास्ता नापता है[4] ।

हास्य सम्राट कुंचन के हाथों से तो साक्षात् भगवान ने भी छुट नहीं पायी । सन्तानगोपालम् तुल्लल में कुंचन के ब्राह्मण, निन्दावचनों से श्रीकृष्ण का

- -

1 कृष्णगाथा पृ.213

2 रावणोद्भवम् तुल्लल - रेड्यार प्रेस - पृ.309

3 सुन्दोपसुन्दोपाख्यानम् - श्रीरामविलासम् प्रेस पृ.27

4 कृष्णगाथा - पृ.537

अभिषेक करते है - 'तेरी हजारों पत्नियाँ है और रोज कम से कम पचास या साठ बच्चे पैदा होते है । अरे, कैसे तू निरसन्तान व्यक्तियों का दुख समझ सकता है ? बंसी बजाने, सखियों के साथ चलने, गोपियों के वस्त्रों की चोरी करने और औरतों को पीड़ा देने में तो तू समर्थ है । हाय ! ईश्वर ! मुझे यहाँ से बचाने के लिए कोई नहीं है क्या ?[1]

चन्द्रोगदचरितम् में तो कुंचन साक्षात् यमराज पर भी व्यंग्य करते है[2] ऐरावत-पूजा में अर्जुन के बाणों से परेशान लोगों के बीच पेटू कुबेर की बेबसी और दौड़ने की असमर्थता कुंचन ढूंढ निकालते है । इस प्रकार बाणयुद्ध में तो पेटू गणपति की बेचैनी कुंचन प्रस्तुत करते है । गौतममुनि के शाप के कारण सहस्त्र लिंगवाले हो जाने वाले देवेन्द्र को स्वर्ग की नारियों और स्वर्ग के नौकरों से हंसी उड़ाने देकर कुंचन अपनी व्यंग्यचेतना प्रकट करते है । संक्षेप में चाहे इन्द्र हो या चन्द्र - साक्षात् कृष्ण परमात्मा को भी व्यंग्यकार कुंचन ने छोड़ा नहीं ।

उपर्युक्त विवेचन इस निष्कर्ष पर हमें पहुँचाता है कि देवों पर व्यंग्य कसने में मलयालम के कविगण ने ही अधिक सफलता पायी है ।

(ख) ब्राह्मणों पर - भारतीय समाज ने ब्राह्मणों को, जो ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न माने जाते थे (ब्राह्मणस्य मुखमासीत्) जिनका कर्तव्य ईश्वर की पूजा, वेदान्ताध्ययन तथा अध्यापन माना जाता था, एक आदरणीय पद दिया था । लेकिन स्वार्थप्रेरित होकर जब वे अपने उच्च पद से नीचे उतर आने लगे और स्वयं पतिताध्य बने तब उस अधःपतन पर कविगण व्यंग्य करने लगे । भोजनप्रिय, कायर और बातूनी ब्राह्मणों के प्रतिनिधि के रूप में संस्कृत नाटकों में विदूषक द्वारा हास्ययोजना की गयी ।

मध्यकालीन हिन्दी कवि गण ब्राह्मण का बड़ा आदर करते थे । अतः सूर तुलसी, केशव, बिहारी आदि इनके बारे में चूं तक नहीं बोले । लेकिन कबीर

---

1 सन्तानगोपालम ओट्टनतुल्लल पृ. 365

2 चन्द्रांगदचरितम् तुल्लल

ने पण्डितों की खूब खिल्ली उड़ायी । कबीर से वर्णित पण्डित यह पत्राचारी अवकचरा ब्राह्मण है जो ब्राह्मण मत के अत्यन्त निचले स्तर का नेता है ।

अब हम मध्यकालीन मलयालम कवियों की बात लें । केरल में तो दो तरह के ब्राह्मण हैं - मलयाल ब्राह्मण तथा तमिल ब्राह्मण । मलयालम ब्राह्मण तो नम्पूतिरि पुकारे जाते हैं । मलयालम के कवियों में पुनम् तथा कुंचन ने दोनों प्रकार के ब्राह्मणों की खूब खिल्ली उड़ायी है ।

पुनम ने मलयाल ब्राह्मण होते हुए भी अपनी जाति के शरीर में प्रविष्ठ रोगों को खोल रखने में हिचकिचाते नहीं । रामाभिषेक देखने जानेवाले ब्राह्मणों के विभिन्न बयान कवि प्रस्तुत करते हैं । भोजन और दक्षिणा इन दोनों पर ही उनका समस्त संवाद केन्द्रित है । ब्राह्मण मध्य के बारह जीभों से निकले सरस्वतीविलास यों है - 'अभिषेकपर्व सुचारु रूप से देख सकेंगे, मृष्टान्न भोजन मिलेगा, प्रतिग्रह भी प्राप्त होगा ।' 'मैं ने इसे पहले कभी नहीं देखा । 'ऐसा भी कौन है जिसने इन सबको देखा है । एक विप्र की चेतावनी है 'जाते ही सुमंत्र के पास नाम देना, नहीं तो जप में सम्मिलित न हो पावेंगे ।' एक आलसी का उत्तर है 'जप नहीं तो, क्या भोजन और प्रतिग्रह मिलेंगे जरूर न ?' मंत्र - तंत्र न जाननेवाले लेकिन तांत्रिकों के बीच बैठ यांत्रिक अक्षन्यास मात्र से दक्षिणा पानेवाले एक लालची का संशय है 'पहले ही पहुँचने से कलशजप केलिए हमें भी निमंत्रण मिलेगा क्या ? एक मित्र का उत्तर 'कलश' 'कलश' जपना ही हम जानते हैं[1] ।

ये ब्राह्मण अपने एक एक वाक्य द्वारा अपने अपने चरित्र को अनजाने खोल रखते हैं ।

मलयालम के कुंचन ने नम्पूतिरि तथा तमिल ब्राह्मण दोनों पर व्यंग कसा ।

- -

1 रामायण चम्पू - पृ.193

सत्यास्वयंवर हो या रुक्मिणी स्वयंवर दानदक्षिणा और भोजन है तो वहाँ कुंचन ब्राह्मणों को लायेंगे । वहीं उनकी हँसी उड़ाकर ही छोड़ेंगे । सत्यस्वयंवरम्, तथा पौण्ड्रकवधम् में कुंचन ने नम्बूतिरियों के लालच पर व्यंग्य कसा है । सत्या नामक सुन्दरी के आशिक पुरुषों को शादी के पहले एक दबंग बैल को बाँधना था । हमारे नंपूति मन इसीलिए दुःखी है कि शायद किसी स्वयंवरकामी की मृत्यु हो तो प्रतिग्रह तो दूर, दावत भी उन्हें नहीं मिलेगी । एक का कहना है 'दावत हो जाय, दक्षिणा भी मिल जा फिर सत्या के आशिक मरे, या न मरे मुझे खेद नहीं ।[1]

सीतास्वयंवरम् देखने निकलनेवाले नम्बूतिरियों की बातचीत भी हास्यप् है । एक की उत्कण्ठा है 'औरतों को देख सकते हैं क्यों?' और एक का उत्तर 'अनगि पहले की आकांक्षायें यों व्यक्त होती है 'क्या उन सुन्दरियों से कुछ बातें कर सकते हैं?' उत्तर यों है 'दूर खड़े नयनसुख पा सकते हैं, पास जाने पर गड़बड़ी हो सकती है[2] । नम्बूतिरियों की सहज विषयलालसा यह प्रकट है ।

तमिल ब्राह्मणों की तो कुंचन ने पोल ही खोल दी है । कपड़ों का व्यापार, बड़ी सूद पर कर्ज देने का व्यवसाय, इन दोनों के द्वारा वे मामूली जनता को चूसते थे । लालच, विषयलालसा, भोजनप्रियता, कंजूसी, दान दक्षिणा के प्रति अतिशय मोह इन सब दुर्गुणों के द्वारा ये ब्राह्मण अपने उच्च तथा आदरणीय स्थान से नीचे की ओर खिसक गए । गरीबी में पड़े नायर स्त्रियों को अपथ संचार की प्रेरणा देने में उस समय के कुछ तमिल ब्राह्मण चतुर थे । जो युवती दुपहर को कर्ज पर पैसा माँग चली, उसी के घर की तलाश में एक रात को मशाल के साथ घूमनेवाले एक ब्राह्मण का वर्णन कृष्णलीला में है[3] ।

सीतास्वयंवरम् में और एक कथा है । एक नायर कपड़े खरीदने का कर्ज चुका न सका । ब्राह्मण व्यापारी उस नायर की पत्नी के पास आकर यों कहता है

- -

1 सत्य स्वयंवरम् तुल्लल - पृ. 340

2 सीता स्वयंवरम् तुल्लल - पृ. 119

3 कुंचन नंपियार - पृ. 243 एन.बी.एस. एम.आर.बालकृष्ण वारियर

'कपड़े का पैसा दे दो। पैसा नहीं तो गिरवी के लिए चीज़ दे दो। ज़रा मुझ ब्राह्मण के पास आ जाओ। तुम अपने को गिरवी रखोगे तो बहुत अच्छा, मैं उसे भी स्वीकार करूंगा[1]। रुक्मिणी स्वयंवरम् में तथा पांचाली परिणय में ब्राह्मणों की भोजन-प्रियता का हास्यपूर्ण वर्णन है[2]। स्यमन्तकम् और पौण्ड्रोपाख्यानम् में तो ब्राह्मणों के स्नान के बीच की हलचल का वर्णन है[3]।

उपर्युक्त विवेचन से हम यह समझ सकते हैं कि ब्राह्मणों पर मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने थोड़ी मात्रा में ही व्यंग्य कसा है। लेकिन मलयालम कवियों ने अच्छी मात्रा में ब्राह्मणों को हास्य का आलम्बन बनाया है।

(ग) संन्यासियों पर - झूठे संन्यासियों पर मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम दोनों भाषाओं के कवियों ने व्यंग्य कसा है।

झूठे संन्यासियों पर व्यंग्य कसने वाले मध्यकालीन हिन्दी कवियों में प्रमुख हैं तुलसी तथा कबीर। विंध्याचल के जटिल तपस्वियों की चन्द्रमुखी चाह पर तुलसीदास द्वारा व्यंग्य कसा है। भगवान श्रीराम तो विन्ध्या पर्वत के जंगलों से होकर जा रहे हैं। तुलसी को एक हास्यपूर्ण उक्ति सूझी - हे भगवन! आप वन में पधारे, अतः आपने बड़ी कृपा की। आपके चरण कमलों के स्पर्श मात्र से शिलायें अहल्या जैसी सुन्दर स्त्रियां बन जायेंगी[4]। स्त्रियों से शून्य जंगल में पत्थर को स्त्री बनते देख मुनिकुमारों को ऐसी आशा होना सहज ही है। तुलसी का यह व्यंग्य 'अपने युग की पथ-भ्रष्ट साधुता को कठोर चिकित्सा देने के लिए ही होगा। साधुता और सभ्यता के नाम पर कलंक का टीका लगानेवाले गैरिक वस्त्रधारियों की कटु आलोचना का यह हास्य-व्यंग्य मिश्रित चित्र' ही है[5]।

- -

1 सीता स्वयंवरम् - पृ.13।

2 रुक्मिणी स्वयंवरम् - पृ.121, पांचालीपरिणयम् पृ.69

3 स्यमन्तकम् - पृ.87, पौण्ड्रोपाख्यानम् - पृ.114

4 कवितावली - अयोध्याकाण्ड - 28

5 तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन - प्रो.राजकुमार कुमार पृ.101

कबीर ने भी झूठे सन्यासियों की पोल खोली । समाज में पाखण्ड और मिथ्याचार का प्रचार करनेवाले कौन थे - ये पण्डित, सन्यासी और जोगी । अपनी विद्या के मिथ्याडम्बर में वे डूबे भी थे[1] । बाह्याचारों के इन प्रचारकों पर कबीर इतना अधिक क्षुब्ध हुए कि उन्होंने उन पर कटूक्तियों की वर्षा की । कबीर के दिनों में तो सन्यासियों की भीड़ ही लग गयी थी । जो काषाय पहने और हाथ में माला लिये फिरे, उसको भोली जनता सच्चा सन्त मानने लगी थी । 'माला तो कर में फिरै, मनुआ तो चहुँ दिसि फिरै' कबीर ने कहा कि 'यह तो सुमिरन नाहिं । मालाजप करनेवाले सन्यासियों से कबीर ने कहा 'कर का मन का डारि दे, मन का मन का फेर ।'

सादा जीवन बिताने के उद्देश से योगी और सन्यासी शिरोमुण्डन करते थे । झूठे सन्यासी भी शिरोमुण्डन करके योगी बनने का बहाना करके फिरते थे । इन झूठे सन्यासियों से कबीर पूछते हैं 'शिरोमुण्डन करके योगी बनना चाहनेवाले मूर्ख, इन बालों ने तुम्हें क्या नुकसान किया कि तुम बारबार इनको मुण्डन करके शरीर से अलग करते हो ? सिर को साफ करने के बदले तुम विषयलालसा पूर्ण मन को स्वच्छ करो[2]' । ऐसे लोगों से कबीर पूछते हैं ' यदि केवल मूँड मुड़ाने से ईश्वर मिल जाते हैं तो ये भेड़ें जिन्हें बार बार मूँड़ा जाता है, अवश्य ही वैकुण्ठ धाम जाती होंगी ।

बाल लंबाकर जटामुकुट धारी रहने वाले सन्यासियों की उपमा कबीर बकरे से करते हैं[3] ।

ईश्वरसाक्षात्कार के लिए घर परिवार छोड़ जंगल भागने वाले योगियों के बारे में कबीर करुणा-पूर्ण व्यंग्य यों करते हैं - 'योगी गेरुआ कपड़ा पहनता है, लेकिन मन को ईश्वरप्रेम के रंग में रंगता क्यों नहीं ? पैर तक दाढ़ी का बाल लंबा किया गया है, सिर पर जटामुकुट बना रखा है । इन्द्रियों पर काबू करने के लिए नपुंसक बनाने के लिए महाराज जंगल जा रहे हैं[4] ।

- -

1 पण्डित भ्रम माते पढ़ि पुरान, माते तप के भेष । क.ग्र.पृ.303

2 कबीर ग्रंथावली पृ.89

3 वही पृ.272 सं.हजारी प्रसाद द्विवेदी

4 कबीर - पृ.282 पद 68

अब हम देखेंगे कि मध्यकालीन मलयालम कवियों ने सन्यासियों पर कैसे व्यंग्य कसा है ।

चेरुश्शेरी ने दो भागों पर कपट सन्यासियों की आलोचना प्रस्तुत की है । रुक्मिणी स्वयंवर में कृष्ण बलराम संवाद के बीच का कपट सन्यासियों पर व्यंग्य ध्यान देने योग्य है । कृष्ण सन्यासियों की कटु आलोचना प्रस्तुत करते हैं । द्वारका में अर्जुन योगी की वन्दना केलिए आनेवाले गृहस्थों की आपसी बातचीत द्वारा भी ही चेरुश्शेरी सन्यासियों पर व्यंग्य कसते हैं[1] ।

झूठे सन्यासियों की हंसी उड़ाने मौका कुंचन गंवाते नहीं । किरातम् तुल्लल में सिर्फ अर्जुन सन्यासी पर नहीं, सारे के सारे झूठे सन्यासियों पर व्यंग्य किया गया है -'आँखें मूंदकर एक चोर तप करता है । पथिकों को लूटना इसका काम है । दिन में चोरी न कर सकने के कारण वह तपोवन का बहाना करता है । आँखें मूंदकर यह यही चिन्ता करता है कि धन कहाँ है और मदिरा कहाँ है[2] ?'

लीलावती चरितम्[3] में भी ऐसा एक प्रसंग है । नारद एक आत्मचरित के द्वारा सन्यासियों की बुरी करतूतों पर प्रकाश डालते हैं 'सन्यासियों की नटखट देखकर जो थप्पड़ नहीं देते, वे सचमुच बेवकूफ ही हैं । ये मुनि निर्भय होकर जंगल में जीते हैं और अक्ल न देखे लोगों का नाश भी शापद्वारा करते हैं । इन के कोप से कहीं कोई शान्ति नहीं । ...... सचमुच हमारे वर्ग के के समान अनाचारविहीनता किस में है ?'

उपर्युक्त विवेचन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यद्यपि मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने भी सन्यासियों पर व्यंग्य कसा है तो भी मलयालम कवियों को ही इसमें अधिक सफलता मिली है ।

---

1 कृष्णगाथा पृ.580 - टी.पी.के.नारायण पिल्ला ।

2 किरातम् तुल्लल - रेड्यार प्रेस - पृ.39

3 लीलावती चरितम् तुल्लल पृ.30।

(ग) वैद्यों पर - वैद्यशास्त्र का ककहरा न जानने पर भी धन्वंतरि का - सा दावा करनेवाले मूर्खराज वैद्य हास्य सृष्टि के अच्छे आलम्बन है । मध्यकालीन मलयालम कवियों ने इस विषय पर थोड़ी बहुत हास्यसृष्टि की । लेकिन हिन्दी कवियों में बिहारी को छोड़कर और किसी ने भी वैद्यों पर व्यंग्य नहीं कसा ।

खुद मरीज़ होते हुए भी दूसरों के रोगों को जड़ से उखाड़ देने का पक्का दावा करनेवाले वैद्यों की कमी हमारे समाज में नहीं । बिहारी ऐसे एक वैद्य को प्रस्तुत करते हैं[1] ।

वैद्यराज तो स्वयं नपुंसक है । लेकिन बड़ा अहसान लादकर और अपनी औषधि की बड़ी प्रशंसा करते हुए किसी बेचारे नपुंसक को सन्तानलाभ के लिए पारद-भस्म देते हैं । वैद्यजी की पत्नी इसे देख मुस्कुराती है[2] । बाहर बाहर हँसते रहनेवाला उसका कुण्ठित एवं परितप्त मातृत्व अन्दर अन्दर रोता हुआ यह कह रहा होगा 'धन्य है तुम्हारा ढोंग । पहले तुम्हारा रोग दूर करो, फिर औरों की चिकित्सा करो ।

यहाँ बिहारी मूर्खराज वैद्य संबन्धी एक घटना द्वारा हास्य-सृष्टि करते हैं । लेकिन मलयालम कवि तो घटनाओं द्वारा नहीं बल्कि वर्णन द्वारा वैद्यों की हँसी उड़ाते हैं ।

उदाहरण है पुनम का हास्य । सीताविवाह का कौतुक देखने के लिए जानेवालों के बीच कुछ वैद्यों को पुनम पकड़ लेते हैं । वैद्यशास्त्र का बालपाठ तक न जाननेवाले ये ढोंगी वैद्य धन्वंतरि का सा दावा करते हैं और बढ़ बढ़कर बातें करते हैं । ये अपने पास हर रोग की दवा होने की डींग मारते हैं । उनका कहना है

---

1 बहु धनु लै, अहसानु कै, पारो देत सराहि ।
बैदवधू, हँसि भेद सौं, रही नाह - मुँह चाहि ॥
बिहारी सतसई - 708

वातद्वेषिणि

पाशुपितौषिनि, कषीयवसीषिनि

कल्याणघृतं, षाम्कन्तघृत -

मायूष्यघृतं, भेवरकघृत -

मज्जातैलं, दृष्टि रसायन

महीनासनमामलकायम् ।[1]

अब हम वैद्यों पर हास्य सम्राट कुंचन की व्यंग्यकला का चमत्कार देखें । पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल में कुंचन का कथन है 'यमराज और वैद्य में गाढी मित्रता है, किन्तु फिर भी बिना यम के वैद्य किसी को मार तो नहीं सकता ।[2]

उपर्युक्त विवेचन से हम यह बात समझ सकते हैं वैद्यों पर व्यंग्य करने केलिए हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने विभिन्न तरीकों को अपनाया है । अतः कौन किससे श्रेष्ठतर है, यह कहा नहीं जा सकता । लेकिन प्रभाव की दृष्टि से देखें तो हम यह कह सकते हैं कि मलयालम कवियों का हास्य ही इस प्रसंग पर अधिक प्रभावपूर्ण है ।

<u>(क) ज्योतिषियों पर -</u> ज्योतिष शास्त्र के नाम पर अनपढी मामूली जनता को लूटने वाले ज्योतिषियों पर मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने सिर्फ थोडी मात्रा में व्यंग्य कसा है ।

सूर, तुलसी, आदि भक्तिकालीन कवियों ने इस ओर ध्यान दिया तक नहीं ।

रीतिकालीन कवि बिहारी, एक घटना जन्य हास्य द्वारा एक ज्योतिषी को प्रस्तुत करते हैं ।

पुत्रजन्म पर ज्योतिषीजी उसकी कुंडली बनाने बैठे । पुत्रजन्म तो पिता के लिए सन्तोष का अवसर तो जरूर है ही, लेकिन यहां ज्योतिषीजी दुखित हुए क्योंकि पुत्र के जातक में पितृमारक योग है । एक बार भी उन्होंने कुण्डली देखी । शिव को धन्यवाद,

- -

1 रामायण चम्पु - 218

2 पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल - रेडयार प्रेस - पृ.700

क्योंकि अब ग्रहों से उन्हें पता लगा कि उस जातक में जारजयोग है । अर्थात् वह बच्चा उसका नहीं, और किसीका है । और कोई पिता होता तो इस पर कोपिष्ठ होते । लेकिन ज्योतिषीजी सन्तुष्ट थे कि, चलो, जान किसी न किसी प्रकार बची । पुत्रप्राप्ति प्रसन्नता, पत्नी के प्रेमी की अकस्माति मृत्यु की खबर - इन तीनों से वे सन्तुष्ट हुए होंगे अन्य किसी हिन्दी कवियों ने ज्योतिषियों को आलम्बन बनाकर हास्य सृष्टि नहीं की है ।

रामाभिषेक का कौतुक देखने आनेवालों के मध्य से पुनम् ज्योतिषियों के एक दल को पकड़ लेते हैं[1] । अनपढ़, अशिक्षित तथा धर्म भीरु लोगों का शोषण करने के लिए उनके पास क्या क्या बहाना नहीं ? बात बात में वे कहेंगे 'लग्न में गुलिक आ गया, साथ लग्नाधिप भी' । अतः गर्भस्थ शिशु ' कुछ दिन के लिए जीता रहेगा, नहीं मरता तो उसकी दीर्घायु होगी । ये ज्योतिषी जातकों को देखते ही सौ सौ योगों के होने या न होने की बात बतायेंगे ।

हास्यसम्राट कुंचन यमविहीन काल में ज्योतिषियों की दुर्दशा का आंखों देखा नवीन हास्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं । 'ज्योतिषी अब झूठ कहकर अब किसी को बहका नहीं सकता । ज्योतिष के ग्रंथों को सिरहाने रखकर वे बेचारे भूखे भूखे लेटे हैं[2] ।

संक्षेप में हिन्दी कवियों ने ही इस प्रसंग पर अधिक सफलता पायी है

(च) मांत्रिकों पर - कबीर ने कहा था 'मंत्र तंत्र सब झूठ है, मत भरमो सब कोई' । बिहारी ने भी यों कहा था -

जपमाला, छापे, तिलक सरै न एकौ कामु ।

लेकिन इन्होंने या अन्य हिन्दी कवियों ने मांत्रिकों पर व्यंग्य नहीं कसा ।

- -

1 रामायण चम्पु पृ.317

2 पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल - पृ.60।

मलयालम के कवि पुनम ने इनपर खूब तूलिका चलायी है[1]। सीतविवाह में शामिल होने के लिए केरल के धार्मिक-दुर्मान्त्रिक जाते हैं। कवि इनकी हँसी खूब उड़ाते हैं कि ये कई तरह के झूठे मंत्रकवचों के नाम बताते हुए दावा करते हैं कि इन मंत्र-तंत्रों से इष्ट-कल्याण की सिद्धि होगी। ये दरिद्र समाज को धोखा देते फिरते हैं। पुनम इनकी वेषभूषा एवं अनुयायी शिष्यगणों की भी परिहासपूर्ण झाँकी दिखाते हैं। इन कपट मांत्रिकों की डींग का विस्तार से वर्णन है।

हास्यसम्राट कुंचन ने पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल में मांत्रिकों के बारे में कुछ बताया है। यमविहीन काल में मांत्रिक भी विवश हो गए। यमविहीन काल में कहीं भी पक्षिपीड़ा, कुक्षिपीड़ा, देवतापीड़ा, ब्रह्मराक्षसपीड़ा आदि किसी भी पीड़ा नहीं और अतः मांत्रिक कुछ कर न सके[2]।

सारांश यह है कि मांत्रिकों पर हिन्दी कवियों ने व्यंग्य नहीं कसा, सिर्फ मलयालम कवियों ने इनकी हँसी उड़ाई है।

<u>(छ) आश्रयदाताओं पर व्यंग्य</u> - उत्तर मध्यकालीन कविगण राजा या रईसों की छत्रछाया ही पनपते थे। जिनके यहाँ खा पीकर वे जीवन व्यापन करते थे, उन्हीं राजाओं पर भी व्यंग्य कसने में इनमें से कुछ कविगण प्रयत्न करते थे। बिहारी तथा अन्य कुछ रीतिकाली कवियों का इस ओर का प्रयास प्रशंसनीय है। मलयालम कवियों में तो अकेले कुंचन को छोड़कर और किसी को इसका साहस ही न मिला। संकीर्ण मनोवृत्ति वाले राजाओं की दुर्नीतियों का चित्रण तो आवश्यक है। लेकिन इसके लिए अपार साहस की आवश्यकता है। गुफा में घुसकर सुषुप्त सिंह को जगाने का सा आपत्तिपूर्ण काम है यह।

बिहारी अपने एक दोहे[3] में तुरक को संबोधित करके कहते हैं 'हे तुरक, ऋतुराज के आगमन पर यदि तुम यह समझ रहे हो कि पावस ऋतु की भाँति इससे

---

1 रामायण चम्पू - पृ.296

2 पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल पृ.60।

3 नहि पावसु, रितुराज यह, तजि, तुरक, चित-भूल।
अपतु भएँ बिनु पाइहै क्यौं नव दल, फल, फूल ?
बिहारी सतसई - 79

भी तुम्हें नव वस्त्र, फूल आदि सहज ही प्राप्त हो जायेंगे तो यह तुम्हारी भूल है, इसे अपने चित्त से निकाल दो । पत्रहीनता की स्थिति में जब तुम पहुँचते हो तभी इससे तुम्हें कुछ मिलेगा ।

प्रकट रूप से आश्रयदाता के विरुद्ध बातें कहने का साहस तो बिहारी में नहीं था । अतः प्रच्छन्न रूप से वे तथ्य को प्रस्तुत करते हैं ।

यहाँ व्यंग्य किया गया है राजाओं की निर्दयता पर । सामान्य व्यक्ति की कृपा के अभिलाषी को बहुत कठिनाई नहीं उठानी पड़ती । परंतु किसी राजवर्गीय व्यक्ति से धन वैभव या सुख सुविधाएँ पाने की किसी की कामना है तो उसे निर्लज्ज और मानापमान की भावना से रहित होना पड़ेगा । सारांश यह है कि स्वाभिमानी व्यक्ति राजाओं का कृपापात्र नहीं बन पाता, मानापमान का ध्यान न रखने वाले तथा निर्लज्ज ही राजा से कुछ पा सकता है ।

विनोदी कवि भूषण, छत्रसाल शिवाजी के आतंक से भयभीत राजाओं को प्रस्तुत करते हैं । शिवाजी के भय से राजागण भाग भाग कर सुमेरु पर्वत पर जा छिपते हैं । वहाँ जब शंकर के आगमन पर सेवकगण 'शिव आयो' कहते हैं तब शिवाजी का आगमन समझ कर सुमेरु पर छिपे राजा भागने का उपक्रम करते हैं । उनकी यह हड़बड़ी और अकुलाहट दूर करने के लिए यक्षों को कहना पड़ता है' ओ शिवाजी नहीं, भगवान शिव हैं[1] ।

सेवकों के मुख से 'सरजा आयो' सुनकर 'शिवाजी का आगमन' समझकर मुगल सम्राट औरंगजेब स्वयं भयभीत हो मूर्छित हो जाते हैं, यों भूषण ने लिखा है[2] ।

आश्रयदाताओं पर हिन्दी कवियों के व्यंग्य के अन्य उदाहरण उनके दिये हुए दान का उपहास करने को लिखे गये छंदों में मिलते हैं । बात यह है कि दूसरों की देखादेखी अपने यहाँ कवियों को आश्रय तो सभी राजा देते थे, परंतु अधिकांश के पास न उसके काव्य का मर्म समझने की बुद्धि थी और न उसको सन्तुष्ट करनेवाला उदार

---

1 हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - पृ.279 सं.ठंडन

2 उपरिवत्

हृदय थी । कवियों की आशा के अनुकूल पुरस्कार न मिलने पर उसकी प्रतिक्रिया उनके काव्य में फूट पड़ती थी । बस फिर क्या था, उन कृपण पैसों एवं रईसों को वे खूब खरी - खोटी सुनाते थे । जब भी कोई कवि किसी राजा से अप्रसन्न हो जाता था ; तो भड़ौआ लिख उसकी धूल उड़ाने में कोई कसर नहीं उठा रखता था ।

जब तैमूरलंग के समय की एक बूढ़ी हथिनी औरंगजेब ने दान में देकर 'मरी बछिया बामन के सिर' चिपका दी तो कवि ने एक मनोरंजक भड़ौआ लिखा इस पद में हास्य के बहाने यह दिखाया गया कि जब कोई वस्तु निरर्थक हो जाती है, तब उसे दान में देकर वाहवाही लूटनेवालों की कवि खबर लेते हैं ।

दयाराम नामक आश्रयदाता ने दया करके बेनी कवि को कुछ आम भेजे । दानी कहाने केलिए दान तो दिया, परन्तु उनकी चिर सहचरी कृपणता की छाप भी आमों पर लग गयी । बेनी कवि तो भला कब चूकनेवाले थे । छोटे छोटे उन आमों को देखते ही उन्हें लाने वाले के हाथों ही यों कहकर उन्होंने भेजा, जिसे सुनकर दयाराम जी दोनों कानों को पकड़ कर 'तोबा, तोबा' अवश्य कही होगी -'वाह ! क्या आम भेजे हैं । कदाचित् ब्रह्म के दर्शन हो जाय, किन्तु आम उससे भी सूक्ष्म है, दिखाई भी नहीं पड़ता । इन आमों के सामने सरसों का दाना भी सुमेरु पर्वत के समान प्रतीत हो[2] । बेनी कवि ने तो उन छोटे आमों को ब्रह्म से भी सूक्ष्मतर कर डाला है । यहां तो छोटेपन का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हास्य का कारण है जिसके मूल में विपरीतता कार्य कर रही है ।

उक्त बेनी कवि को दान में एक रजाई मिली जिसमें न कपास रुई थी और न वो ठीक सिली ही थी । कवि ने उस पर भी हंसी उड़ाई[3] ।

इस प्रकार किसी महादानी ने एक चवन्नी किसी रीतिकालीन कवि को दी जो चांदी की न होकर रांगे की थी । कवि महोदय ने उस चवन्नी तथा दाता मथुरामल दोनों को एक पद द्वारा अमर कर दिया[4] ।

---

1 तिमिरलंग लई मोल, चली बाबर के हलके .... इत्यादि
हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 302 शुक्लजी

2 चींटी की चलावे को ? मसा के मुंह आप जाय .... इत्यादि
हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 302 शुक्लजी

3 कारीगर कोऊ करामात के बनाय लायो .... इत्यादि
(हिन्दी साहित्य में हास्य - व्यंग्य - पृ. 180 से)

4 देखत सुखि गये मथुरामल ...... इत्यादि उपरिवत् पृ. 181

और एक रीतिकालीन कवि ऐसे एक कृपण नेता के वर्णन करते करते अतिशयोक्ति की चरमसीमा तक पहुँचा है। कवि का कहना है कि वह कृपण राजा देने के नाम से इतना डरता था कि 'देकर' से आरंभ होने वाले शब्दों का उच्चारण न करके उनके पर्यायवाची शब्दों का ही व्यवहार करता था[1]।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अपने आश्रयदाता की कंजूसी तथा निर्दयता पर रीतिकालीन कवियों ने करारा व्यंग्य किया है।

मलयालम के हास्यसम्राट कुंचन ने भी आश्रयदाताओं पर हास्य-व्यंग्य प्रस्तुत किया है। वेम्पकोलि देवनारायण तथा तिरुवितांकूर के मार्ताण्ड वर्मा और रामवर्मा की छत्रछाया में जीवन-यापन करते समय ही कुंचन ने राजाओं की चुटकी ली थी, यह साहस तो अनन्य साधारण है।

कुंचन ने मान लिया है कि राजसेवा महायत्न है[2]। उन्होंने यह भी बताया है कि 'ये राजा निर्दयी है, अतः लोगों को उनसे सावधान रहना है'[3]। चार पद खाते समय पसीने से तर होनेवाले इन राजाओं तथा रईसों को 'दूध पी पी कर मोटे बनेपूंछ विहीन बन्दर' के रूप में चित्रित करने का साहस केवल कुंचन को ही है।

इन राजा तथा रईसों के बहुपत्नीत्व पर भी कुंचन ने प्रकाश डाला है[4]। इन राजा तथा रईसों के लिए औरत एक कमज़ोरी थी। औरतों के मतानुसार ही राजा सब कुछ करते थे। कल्याणसौगन्धिकम् तुल्लल में कुंचन ने व्यंग्यपूर्ण रूप में साफ साफ बताया है कि स्त्रियों की सिफारिश पर राजा से कोई भी काम कराया जा सकता है[5]। रुक्मिणी स्वयंवरम् तुल्लल में तो विदयलास सी राजाओं की पोल खोल कर दी है[6]।

- -

1 देवता को सुर और असुर को दानव को .... इत्यादि

नवरस (गुलाबराय) पृ.312 से उद्धृत

2 मन्नवन्मारे सेविच्चीडुवान महायत्नम् - पंचतंत्रम् पृ.53

3 कनिविल्लवर्कतु कर्तुत नितक्कमेवतुम् - सभाप्रवेशम् तुल्लल पृ.544

4 कल्याण सौगन्धिकम् तुल्लल - पृ.103

5 वही

6 रुक्मिणी स्वयंवरम् - पृ.162

रईसों की डींग सुनने पर, बढ बढ कर उनकी बातें करते देख नंपियार ने उन मसखरों पर जानबूझकर व्यंग्य बाण चलाया। पौराणिक पात्रों के रूप में इनको प्रस्तुत करके कुंचन की व्यंग्य-चेतना संतुप्त हुई। कुंचन का कथन है 'ये लोग मूर्ख तथा स्त्रियों से सलाह लेकर अपनी प्रजा से रिश्वत लेते हैं और अपने राज्य को बरबाद करते हैं।[1]

उपर्युक्त विवेचन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आश्रयदाता पर व्यंग्य कसने में हिन्दी कवियों ने ही अधिक सफलता प्राप्त की।

उपर्युक्त विषयों के अलावा और भी कई विषय हैं जिनमें हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने हास्यसृष्टि की है। हास्य के आलम्बनों की विविधता में तो मध्यकालीन मलयालम कविगण ने ही अधिक ध्यान डाला। हास्यसम्राट कुंचन ने वेश्या, कुलीन, आलोचक, राजकर्मचारी आदि सबको अपने हास्य-व्यंग्य का आलम्बन बनाया। ऐसी सर्वतोमुखी विषयग्राहकता का हिन्दी कवियों में एकदम अभाव है।

<u>हास्यसृष्टि के उद्देश की दृष्टि से तुलना</u> - हास्यसृष्टि के उद्देश की दृष्टि से मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम काव्यों में प्रकट हास्य चेतना की तुलना भी आवश्यक है। हास्य तो मनोरंजन का एक साधन है, समाज सुधार का एक माध्यम भी है। इन दोनों उद्देशों की पूर्ति केलिए मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम काव्यों में हास्य सृष्टि हुई है।

<u>मनोरंजन के लिए हास्यसृष्टि</u> - पाठकों के मनोरंजन केलिए ही मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने हास्यसृष्टि की। भक्ति और दर्शन के जटिल तत्व तथा सूखे इतिवृत्त-कथन को पाठकों के हृदय में पहुंचाने के लिए बीच बीच में हास्य रूपी मसाला भी आवश्यक है। इसीलिए सरस प्रसंगों की सृष्टि की गयी। हिन्दी तथा मलयालम के भक्त कवि कोरे नामजपी बाबा नहीं थे, उनका हृदय सरस अमृत का स्रोत था, लौकिक जीवन से उनका सम्बन्ध था। छोटे बड़े आनन्ददायक प्रसंगों से आनन्द पाना एवं दूसरों के निर्दोष विनोद-व्यंग्य में भाग लेना सरस हृदय केलिए ही संभव है। सरस प्रसंगों के कारण कवि का चित्त भी हलका बन जाता है, पाठकों का मन भी ऊब जाने से बच जाता है।

- -

1 हरिश्चन्द्र चरितम् - पृ. 136

जिन कवियों की मुख्य काव्य प्रवृत्ति शृंगार रही, उन्हें भी हास्य को पोषक या सहचारी रस के रूप में स्वीकार करना पड़ा ।

अतः हास्य-व्यंग्य लिखनेवाले सारे के सारे मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों का प्रमुख लक्ष्य पाठकों का मनोरंजन ही रहा ।

<u>समाजसुधार के लिए हास्य-व्यंग्य</u> - कबीर को छोड़कर अन्य सब मध्यकालीन कवि मनोरंजन के लिए ही हास्यसृष्टि करते थे । लेकिन व्यंग्यात्मक हास्य के द्वारा कबीर ने समाज सुधार के लिए ही काम किया । मलयालम में तो कुंचन को छोड़कर अन्य सब ने मनोरंजन के लिए ही सरस प्रसंगों की सृष्टि की । हास्य सम्राट कुंचन ने तो पाठकों केलिए मनोरंजन तथा समाजसुधार दोनों लक्ष्यों के लेकर हास्यसृष्टि की । दोनों धाराओं ऐसे एक कवि ही हैं जिन्होंने इन दोनों लक्ष्यों को अपनाया ।

समाजसुधारक के रूप में तो मध्यकालीन हिन्दी-मलयालम में तो कबीर और कुंचन का ही जिक्र हो गया है । समाज सुधारक के रूप में तो दोनों का मूल्यांकन पहले के पृष्ठों में तो हो चुका है ।

समाज में व्याप्त एक बड़ा दुर्गुण है अहंभाव । अहंकार-शमन पर आधारित हास्य तो मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम काव्यों में समान रूप से सब कहीं प्रकट है । यद्यपि तुलसी एक समाजसुधारक नहीं माने जाते हैं तो भी उनके 'नारद मोह प्रसंग' में नारद के अहंकार - शमन का वर्णन है । परशुराम का प्रसंग इसी तथ्य पर आधारित है । सूर के उद्धव का भी अहंकार-शमन होता है । केशव के राम-परशुराम भेंट प्रसंग तथा अंगद - रावण संवाद इस पर आधारित हैं ।

मलयालम के कवि चेरुशेरी ब्रह्मा के अहंकार-शमन का हास्यपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करते हैं ।'कुंचन की कविताओं का प्रमुख विषय तो अहंकार - शमन ही है । कल्याण सौगन्धिकम् में भीमसेन का अहंभाव, कार्तवीर्यार्जुन विजयम् में रावण का अहंकार, किरातम् तथा संतानगोपालम् में अर्जुन का घमंड, सभा प्रवेशम् में दुर्योधन का अहंकार, नलचरितमानस में कुबेर का अहंभाव आदि के शमन का सरस वर्णन कुंचन ने किया है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में समान उद्देश्य को लेकर ही हिन्दी तथा मलयालम में हास्यसृष्टि हुई है ।

<u>हास्य की अभिव्यंजना की विधाओं की दृष्टि से तुलना</u> – मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने हास्याभिव्यक्ति के अधिकांश तरीकों को अपनाया है, अतः उनकी तुलना संभव है। इनमें अधिकाधिक विधाओं को अपनाने का श्रेय मलयालम का है। कुछ विधाएँ ऐसी हैं जिनको दोनों भाषाओं के कवियों ने अपनाया है। कुछ विधाएँ ऐसी भी हैं जिन को सिर्फ मलयालम कवियों ने अपनाया, लेकिन हिन्दी कवियों ने इस ओर ध्यान भी नहीं दिया। अब हम विस्तृत रूप से विवेचन प्रस्तुत करेंगे :-

<u>(1) घटनाजन्य</u> - घटना द्वारा हास्य के विधान में लेखकों को प्रायः सफलता मिल जाती है। घटनाओं की असम्बद्धता, विपर्यय, असंगति अथवा अप्रत्याशितता इत्यादि हास्य के कारण हुआ करती है। अपकर्ष के सिद्धांत के अनुसार भी प्रायः अनेक घटनाओं का विधान किया जाता है। प्रकृति का बेतुकापन है लोभवृत्ति, झक्कीपना, झेंप, पाखण्ड, कंजूसी, दिखावा आदि। परिस्थिति का बेतुकापन है देशकाल का अनौचित्य, व्यक्ति और समाज के बीच की असमंजस, महत्ता और हीनता की ग्रंथियों के बेतुके परिणाम आदि। ये सब घटनाजन्य हास्य के अन्तर्गत आते हैं।

मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने घटना जन्य हास्य की सृष्टि की है। नारदमोह - प्रसंग, केवट प्रसंग, शूर्पणखा प्रसंग, ग्रामवधू प्रसंग आदि के द्वारा तुलसी ने तो घटनाजन्य हास्य की सृष्टि की है। माखनचोरी के विविध प्रसंग, छाया प्रसंग, चोर का प्रसंग, पनघट लीला प्रसंग आदि सूर के घटनाजन्य हास्य के कुछ उदाहरण हैं। परकीया से प्रेम करनेवाले पौराणिक मित्र के विषयलालसा से बचने केलिए लोगों को उपदेश देना, नपुंसक को सन्तान प्राप्ति के लिए पारा-भस्म देना, आदि बिहारी के घटनाजन्य हास्य के उदाहरण हैं। कृष्ण का स्त्रीवेष धारण करके राधा से मिलना, एक गोपी का खाली मटकी पर छाछ की छींटे डाल कृष्ण के पास से जाना तथा दही के लालच में कृष्ण का खाली मटकी लूट लज्जित होना आदि संवाद जन्य हास्य की सृष्टि अधिक करने वाले केशव के घटनाजन्य हास्य के उदाहरण हैं। कबीर ने तो घटनाजन्य हास्य की सृष्टि कहीं भी नहीं की।

मलयालम में तो पुनम ने घटना जन्य हास्य की सृष्टि थोडी मात्रा ही की है । पानसुपारी लेने पर अधरों को लालिमा मिली या नहीं, यह देखने केलिए स्त्रीयों का निःनायक को आगे की ओर खींच देखना आदि सिर्फ कुछ घटनायें हम पाते हैं बाललीला के विविध प्रसंग, चीरहरण, रुक्मिणी स्वयंवर में तोता प्रसंग, अर्जुन और सुभद्रा की असमंजसता आदि चेरुशोरी के घटनाजन्य हास्य के कुछ उदाहरण हैं । हास्यसम्राट कुंचन तो घटनाजन्य हास्य में प्रवीण है । हनुमान की पूंछ को हटाने की भीम की असफल कोशिश, गणपति को खिला न सकने में असंवादि कुबेर की बेबसी, विषयी कल्हन मेनवन का सुन्दरी समझ बन्दर को छाती से लगाना, बूढ़े नायर का घर में गडबड मचाना आदि कई उदाहरण कुंचन से हम प्राप्त कर सकते हैं ।

निष्कर्ष यह कि घटनाजन्य हास्य की सृष्टि में हिन्दी तथा मलयालम कविगण ने अतिशय सफलता पायी है ।

(2) वर्णन-जन्य – सहृदय कवि किसी भी असिक भाव या दृश्य को हास्यपूर्ण वर्णन से सरस तथा आकर्षक बना सकते हैं । शारीरिक दुर्बलता, मानसीक पतन, सामाजिक पतन आ का अतिरंजित वर्णन हास्यपूर्ण बन जाता है । आकृति और प्रकृति का पर्वतीकरण या लघूकरण और इन दोनों द्वारा अतिशयीकरण, आकृति और प्रवृत्ति की विपरीतता, अनजाने जानेवाली आवृत्ति, अंगभंगी, कूबड, तोंद आदि आकृति का बेतुकापन, धर्मध्वजियों, फैशन परस्तों आदि का विन्यास अर्थात् वेष का बेतुकापन - इन सबका वर्णन हास्यसृष्टि करता है ।

अब हम देखें कि वर्णन– जन्य हास्य की सृष्टि में आलोच्यकाल का [illegible] के हिन्दी तथा मलयालम कवि कहां तक सफल निकले हैं ।

कबीर की उलट बासियों में वर्णन जन्य हास्य है । शंकर विवाह प्रसं तपस्वियों परखुटकी, लक्ष्मण वचन-प्रसंग, जनकपुर की सखियों का प्रसंग, भोले बाबा की मन ग्रामवधू प्रसंग, पुष्पवाटिका में सीता की असमंजस - ये सब तुलसी के वर्णन - जन्य हास्य के उदाहरण हैं । कृष्ण की बालक्रीडाएं बड़े भाई पर शिकायत, राधा-कृष्ण का प्रथम मिलन गोपिकाओं की असमंजस, माखन - मोहन प्रसंग, चीरहरण प्रसंग आदि सूर के वर्णन - जन्य

हास्य के उदाहरण है। बिहारी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। रानियों तथा वानरों का लुका छिपी खेल केशव के वर्णन-जन्य हास्य के उदाहरण है।

अब हम मलयालम कवियों की कला पर विचार करेंगे। पुनम तो वर्णन-जन्य हास्य के आचार्य ही है। सिता विवाह, रामाभिषेक-प्रस्ताव, लंकादहन प्रसंग, रावणवध पर लोगों का आनन्द - ये सब पुनम की वर्णन-जन्य हास्यसृष्टि की सफलता के श्रेष्ठ उदाहरण है। स्वयंवर के लिए पहुँचे राजाओं की चपलता, शिवजी की भाग दौड़, गोपियों की असमंजस आदि चेरुश्शेरी के वर्णन जन्य हास्य के दृष्टान्त है। यम विहीन काल वायु विहीन काल, गन्धर्व सेना से पराजित होकर भागनेवाले दुर्योधन, स्थलजलभ्रम में पड़े कौरव - इन सबके वर्णन से कुंचन ने हास्य सृष्टि की है।

उपर्युक्त अवलोकन से हम यह समझ सकते है कि आलोच्यकाल में दोनों भाषाओं के कवियों ने वर्णनजन्य हास्य की सृष्टि करने में अपूर्व सफलता पायी है।

(3) संवाद जन्य - यद्यपि आलोच्यकाल में पश्चिमी साहित्यों में Anachronism, Malapropism, Spoonerism आदि संवादजन्य हास्य में नई प्रवृत्तियां प्रकट हुई, तो भी हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने परम्परागत प्रवृत्तियों को ही संवादजन्य हास्य की सृष्टि के लिए अपनाया। विभिन्न स्वभाववालों के संवाद और टकराहट हास्य सृष्टि कर सकते है। इस पद्धति को ही दोनों ने स्वीकार किया।

कबीर साहित्य में तो संवादजन्य हास्य के लिए स्थान ही नहीं। राधा-यशोदा संवाद, राधा-माता संवाद, आदि संवादों द्वारा सूरने हास्य की सृष्टि की है। परशुराम प्रसंग, रावण-अंगद संवाद आदि प्रसंगों में तुलसी ने संवादजन्य हास्य की ओर आकर्षणीयता दिखायी है। बिहारी ने तो इस हास्य-पद्धति को अपनाया नहीं। मध्यकालीन हिन्दी कवियों में संवाद जन्य हास्य की सृष्टि के लिए प्रसिद्ध आचार्य केशवदास है। वाण-रावण संवाद, राम-परशुराम भेंट प्रसंग, अंगद-हनुमान संवाद, अंगद-रावण संवाद, रावण-हनुमान संवाद, लव-शत्रुघ्न संवाद, लव-विभीषण संवाद, लव-कुश-लक्ष्मण संवाद - इस प्रकार संवादों के द्वारा केशव की हास्य सृष्टि अधिकतर हुई है।

अब हम मलयालम की बात लेंगे । पुनम ने तो थोड़ी मात्रा में इस वृत्ति को अपनाया । राम परशुराम संवाद में तो पुनम ने कुछ कमाल जरूर दिखाया है। योदृधा और कृष्ण के संवाद दृवारा चेरुशेरी भी कुछ हास्यसृष्टि की । भीम - हनुमान संवाद, रुक्मिणी - दूत संवाद, शिव-पार्वति संवाद आदि कुंचन के संवाद जन्य हास्य के उदाहरण है ।

विरुद्धोद्देश संवाद Talking at cross purposes नामक एक टेकनिक पश्चिमी साहित्य में काफी मात्रा में प्रचलित है । संवाद जन्य हास्य का यह नूतन रूप मलयालम के चेरुशेरी तथा पुनम ने अपनाया है जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है । हिन्दी में ऐसी प्रवृत्ति का अभाव है । कृष्णगाथा में राजसूय वर्णन के बीच चेरुशेरी तथा रामायण-प्रस्ताव के प्रसंग पर पुनम इन दोनों ने इस टेकनिक का उपयोग किया है । इस हास्य प्रवृत्ति के बारे में विशद वर्णन हम पहले के पृष्ठों में कर चुके है ।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से हम यों निष्कर्ष निकाल सकते है :-

(1) संवाद जन्य हास्य की परम्परागत प्रवृत्ति के प्रस्फुटन में तो मध्यकालीन हिन्दी कवियों को ही अधिक सफलता मिली ।

(2) संवादजन्य हास्य सृष्टि में नूतन परम्पराओं को खोल लाने का श्रेय मलयालम कवि का ही है ।

(4) पात्र स्वभाव जन्य - हास्य की योजना की दृष्टि से पात्रों को, स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम वर्ग में वे पात्र आते है जो हंसोड प्रकृति के ही होते हैं और जिनकी वेश-भूषा, चाल-ढाल, वाक्-भंगिमा, कार्य-व्यवहार, सभी से उसका परिचय मिलता है । संस्कृत नाटक के विदूषक, अंग्रेजी नाटक के फूल (Fool) सर्कस के जोकर, सिनेमा के बफून आदि इस वर्ग के है । ऐसे हास्यपात्रों की सृष्टि मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने नहीं की ।

द्वितीय वर्ग के पात्र हंसोड प्रकृति के तो नहीं होते, परंतु अवसर पर अथवा प्रसंग - विशेष में हंसानेवाली कोई बात कहकर अपनी विनोद प्रियता का परिचय देते है । आलोच्यकाल के हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने ऐसे पात्रों की ही सृष्टि की है

सहज और स्वाभाविक हास्य का रूप तो वस्तुतः उन स्थलों पर दिखायी देता है जहाँ सामान्य अथवा घनिष्ठ परिचय या संबंध वाले व्यक्तियों से विनोद की बात कहकर कोई पात्र-पात्री अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करती है । परिचय की घनिष्ठता की स्थिति में तो हास्य के साथ व्यंग्य में कभी कभी तीखापन भी आ जाता है ।

ऐसे भी कुछ पात्र हैं जिनकी सृष्टि करके कवि या लेखक की हास्यचेतना संतुष्ट होती है । तुलसी के नारद मोह प्रसंग में तो नारद मुनि के उच्च पद से नीचे गिर कामी हो जाता है और हम लोगों की दृष्टि में भी गिर जाता है, अतः वह ऐसा पात्र बन जाता है जिसमें कवि की हास्य चेतना रमती है । परशुराम प्रसंग में तो शीघ्रकोपी परशुराम के स्वभाव से जन्य बातें हमें हँसने देती हैं । केवट प्रसंग में तो केवट नामक पात्र अपने 'भय' के कारण हास्यपात्र बन जाता है । शूर्पणखा प्रसंग में तो अपनी अनधिकृत कामातुरता और मर्यादा - निरपेक्षता के कारण वह हास्योत्पत्ति का विषय बन जाती है । ग्रामवधू प्रसंग में तो अनधिकृत लेकिन स्त्री सहज उत्कण्ठा के कारण ग्रामवधुएँ तथा 'तिरीछे नैनन' के प्रयोग से सीता हास्यसृष्टि करती हैं ।

सूर में भी पात्र स्वभाव जन्य हास्यसृष्टि की क्षमता है । माखनचोरी प्रसंग, छाया प्रसंग आदि सब में कृष्ण ही हास्यसृष्टि का केन्द्र हैं । भ्रमरगीत प्रसंग में तो गोपियाँ अपनी वाग्विदग्धता के कारण हास्यसृष्टि करती हैं ।

विषयवासना से बचते आने का उपदेश अपनी प्रेमिका के भी उपस्थित होते समय लोगों को देनेवाला विषयी पौराणिक मिश्र स्वयं नपुंसक वैद्य होते हुए भी और लोगों की नपुंसकता की चिकित्सा करनेवाले वैद्यराज - ये सब बिहारी के अमर हास्यपात्र हैं ।

स्त्रीवेश धारण कर राधा के पास जानेवाला श्रीकृष्ण, खाली मटकी को दही से भरी मटकी का सा बहाना करके लालची कृष्ण को नचानेवाली गोपिका - ये सब केशव के हास्यपात्र हैं ।

कबीर ने तो हास्यपात्रों की सृष्टि नहीं की । लेकिन उनके कुछ पात्र अपने क्रियाकलापों के कारण हास्यास्पद जरूर हो गए । मसजिद के उच्चतम स्थान पर खड़े होकर उच्च स्वरों में 'अल्लाह' को पुकारनेवाले मुल्ला लोग, शिरोमुण्डन मात्र करके वैकुण्ठ

के आशिक रहनेवाले कपट भक्त, अन्तःस्थित शिव को मन्दिर मसजिद में ढूंढनेवाले मामूली भक्त, दिन भर व्रतोपवास करते रहकर सन्ध्या के होते ही गाय को मार खाने वाले मुसलमान धर्मवीर - ये सब कबीर के इस वर्ग के पात्र है ।

यह रही मध्यकालीन हिन्दी कवियों की बात । अब हम मलयालम कवियों को लेंगे । पात्र स्वभाव जन्य हास्य की सृष्टि में अतिशय रूप से बढ़ा है मलयालम के कवि ।

अपनी प्रेमिका वेश्या को चन्द्रोत्सव में भाग लेने केलिए पहुंचाने केलिए कंधे पर लेकर चल देने वाले विलासी नौजवान चन्द्रोत्सवकार की अमर पात्रसृष्टि है ।

स्वयंवरकन्या को देख स्वयं भूलकर अनजाने सुगन्धियों को लेकर पीने वाले चपल राजागण, त्र्यम्बक चाप को उठा न सकने पर 'हमें यह लड़की अवश्यक नहीं' मानते हुए पीछे हटनेवाले कायर तथा कमज़ोर राजागण, राजसभा के बीच पिछले भागों को देखने केलिए गर्दन टेढ़ा कर देखनेवाली औरतें, किसी न किसी प्रकार कलाजीवियों के बीच बैठ दक्षिणा पाना चाहने वाले मंत्र न जाननेवाले ब्राह्मण, वैद्यशास्त्र का ककहरा न जानने पर भी धन्वंतरि का सा दावा करने वाले मूर्ख वैद्य - ये सब पुनम के पात्र स्वभावजन्य हास्य के कर है ।

अर्जुन को फल का छिलका खिलाने वाली सुभद्रा और उसे खानेवाला अर्जुन, दांतों से तालबजाते हुए सन्ध्या वन्दन करनेवाले ब्राह्मण, छींके की रस्सी पर टंगे ही हाथाहों हो जानेवाले बालकृष्ण, एक हाथ से नग्नता छिपाए दूसरे हाथ से वस्त्र मांगनेवाली गोपियां मालकिन के प्रेमरहस्य को घोषणा करनेवाला तोता, प्राण रक्षा केलिए भागनेवाले ब्रह्मा व शिव, पूंछ को कौपीन बनानेवाला वीर हाथी कुवलयापीड - ये सब चेरुश्शेरी के अमर देन है ।

एक बूढ़े बन्दर की पूंछ को न हटा सकनेवाला भीमसेन, आमंत्रण देकर स्वागत घर गए अतिथि का सत्कार न कर सकनेवाला कुबेर, दुश्मन से भयभीत होकर ज़मीन में गड्ढे बनाकर उसमें छिपे आंखें मूंद लेटनेवाला नायर सैनिक, पानसुपारि मात्र से सतीत्व खोने वाली स्त्रियां, इसे भी कर्ज में डालनेवाले चतुर पुरुष, उबलते पानी को बच्चों के सिर पर डालनेवाले और प्रोत्साहन न पाकर घर की चीज़ों को कुएं में डालने वाले और फिर घर की चारों ओर घूमते रहनेवाले बूढ़े नायर - ये सब हास्यसम्राट कुंचन के अनगिनत हास्यपात्रों में कुछ है ।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से हम यह समझ सकते हैं पात्र द्वारा-जन्य हास्य की सृष्टि में मलयालम के कवि ही अधिक प्रशंसनीय है क्योंकि लोकजीवन से संबन्ध रखनेवाले पात्रों की सृष्टि ही उन्होंने की ।

(5) अलंकार जन्य - परिचित वस्तुओं की उपमा और उत्प्रेक्षा द्वारा किसी भी वस्तु का सरस तथा यथार्थ बोध पाठक तथा प्रेक्षक के मन में पैदा करना कवियों की एक कला है । उपमान और उपमेय के बीच की सादृश्यता अधिकांश अवसरों पर हमें हँसा देती है । इस आश्चर्यपूर्ण चिन्ता में हम पड़ जाते हैं कि प्रसंग केलिए सर्वथा उपयुक्त यह अलंकार कवि ने कहाँ से पाया ।

मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने अलंकारों के माध्यम से बीड हास्यसृष्टि की ।

कबीरदास का मन अलंकारों में तो नहीं रमा । फिर भी प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अपने तथ्य को जनसामान्य के मन में मार्मिक बनाने केलिए कुछ अलंकार प्रयोगों को भी उन्होंने जोड़ा था । शिरोमुण्डन करके स्वर्ग के लिए प्रवेशपत्र पाने के आशिकों की तुलना बार बार मूँडे जाने पर भी वैकुण्ठ न जा सकनेवाले भेड़ों से की । जटाधारियों को तो उन्होंने बकरा ही बना डाला ।

तुलसी ने इस पद्धति पर ध्यान तक नहीं दे दिया ।

सूरदास तो उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के सम्राट थे । इसके द्वारा भी उन्होंने हास्यसृष्टि की । चीरहरण प्रसंग पर कदम्ब वृक्ष की शाखाओं पर वस्त्रों को लटकने देने के बाद सूर के कृष्ण गोपियों से कहते हैं कि उनके व्रत का फल वृक्ष शाखाओं पर लटकते हैं । भ्रमरगीत प्रसंग पर तो सूर का वक्रोक्ति विधान उज्ज्वल रूप से प्रकट है । गोपियाँ श्याम को काला भ्रमर ही बनाती है जो अनगिनत पुष्पों से मधु पीता रहता है ।

आचार्य केशवदास ने संवादों के बीच थोड़ी मात्रा में अलंकार जन्य हास्य की सृष्टि करने का यद्यपि परिश्रम किया है तो भी वह उल्लेखनीय रूप से महत्वपूर्ण नहीं ।

अलंकारजन्य हास्य सृष्टि में तो मध्यकालीन हिन्दी का श्रेष्टतम कवि बिहारी ही है । उनकी अन्योक्तियों में हास्य रस लबालब भरा रहता है । बिहारी का वक्रोक्ति विधान भी अतिशय रूप से महत्वपूर्ण है । श्लेषालंकार के द्वारा हास्यसृष्टि करने में उनके समान सफल कवि तो मध्यकालीन हिन्दी में और कोई नहीं। 'हल धर वीर', 'वृषभानुजा' आदि प्रयोग तो काफी मशहूर हो गए है । बिहारी के कुछ दोहों के तो नानार्थ निकाले जा सकते है ।

यह रही मध्यकालीन हिन्दी की बात । अब हम मलयालम को लेंगे ।

अलंकार जन्य हास्य की सृष्टि पुनम ने नहीं की है ।

सूर के समान चेरुश्शेरी भी अलंकारों के सम्राट माने जाते है । उत्प्रेक्षा 'कृष्णगाथायाम्' एक प्रयोग ही बन गया है । शब्दालंकार, अर्थालंकार दोनों के प्रयोग से चेरुश्शेरी ने हास्यसृष्टि की है । जब श्रीकृष्ण ने कुवलयापीड नामक आदमखोर हाथी की पूंछ को पकड़ खींचा तब वह सर्प के मुंह में पैर पड़े मण्डूक के समान दीनरोदन करने लगा। जब श्रीकृष्ण ने उसकी सूंड पकड़कर खींचा तब वह मुंह खोलकर रोने लगा । भयभीत कुत्ते के समान उसने पूंछ को कौपीन बनाया । हेमन्तकाल को चेरुश्शेरी प्रेतबाधाकाल पुकारते है। कांपते हुए सन्ध्यावन्दन करने वाले ब्राह्मणों का वर्णन करने के बीच कवि का कहना है कि वे दांतों से ताल बजाते है । माया में डूबे मनुष्यों को कवि मछलियों के सदृश्य वर्णन करते है ।

हास्यसम्राट कुंचन भी अलंकार जन्य हास्य की सृष्टि में अतीव कुशल थे । जब रावण पानी में डूबता चिल्लाता तैर रहा है तब कुंचन को ऐसा लगता है मानो कोई बीस पतवारों वाली बड़ी नाव आगे बढ़ रही हो । भीम कुंचन की दृष्टि में हाथी या पर्वत नहीं कन्नन केले का पौधा है जो मोटे और थुलथुल अंगों वाला है । कुंचन के रावण की दृष्टि में कार्तवीर्य के हाथ बरगद की बाढ़ी के समान लंबे होने पर भी निष्फल है । नल और दमयन्ति का मेल ऐसा होगा जैसा गंजा आदमी चमेली को जूड़े में पहन लिया हो । कारागृह में पड़े रावण की उपमा कुंचन जाल में फंसे बन्दर से करते है ।

उपर्युक्त विवेचन से हम यह कह सकते है कि अलंकार जन्य हास्य की सृष्टि में हिन्दी तथा मलयालम कवियों ने सफलता पायी है । फिर भी मलयालम कवियों की हास्य योजना ही अधिक मार्मिक है । बिहारी जैसे हिन्दी कवियों ने श्लेषालंकारों के द्वारा हास्य की सृष्टि तो जुरूर की, लेकिन मामूली जनता के पास अधिक पहुंचने में सफल निकलनेवाला मलयालम कवियों का हास्य ही था । हिन्दी के अलंकार जन्य हास्य को सिर्फ पण्डित ही समझकर आस्वादन कर सकते थे, लेकिन मलयालम कवियों का ऐसा हास्य जनसामान्य की पहुंच के अन्दर रहा । जनजीवन के बीच से ही, रोज देखी सुनी बातों से ही उन्होंने उपमानों को लिया । फलस्वरूप मलयालम कवियों का इस वर्ग का हास्य ही अधिक प्रभावपूर्ण निकला ।

<u>(6) उपकथाओं द्वारा</u> - मुख्यकथा के बीच प्रसंगानुकूल रूप से हास्यसृष्टि केलिए कुछ उपकथाओं को जोड़ना, सरस कवियों की सहज प्रवृत्ति है । इन उप कथाओं के हटा देने पर भी कथा गति में कोई हानि नहीं होगी ।

आलोच्यकाल में हिन्दी तथा मलयालम के कुछ कवियों ने ऐसी उपकथा या घटनाओं को जोड़कर काव्य की सरसता बढ़ाने की कोशिश की । केवट प्रसंग, ग्रामवधू प्रसंग पुष्पवाटिका में सीता की असमंजस आदि तुलसी की कल्पना के सन्तान मात्र है । माखनचोरी की कई घटनाएँ बड़े भाई पर शिकायत, चांद का प्रसंग, छाया प्रसंग आदि तो सूर की भावना के उपज मात्र है । रानियों तथा बानरों का लुका-छिपी खेल आदि तो केशव के बनाये प्रसंग ही है ।

मलयालम के कवि भी इस कला में प्रगतिशील है । बाललीला के विभिन्न प्रसंग तथा चोरहरण प्रसंग की कुछ घटनाएँ भावना संपन्न चेरुश्शेरी ने जोड़ दी है । इस प्रसंग पर सबसे महत्वपूर्ण कार्य कुंचन ने ही किया है । पांच सरस कथाओं को बीच बीच में जोड़ देकर उन्होंने अपनी रचनाओं को आकर्षक तथा हास्यपूर्ण बनाया है ।

हास्य की अभिव्यंजना की इन छः विधाओं के आधार पर मध्यकालीन हिन्दी तथा मलयालम काव्यों में प्रकट हास्य पर सर्वेक्षण करने के बाद समीक्षा के रूप में हम यही कह सकते है कि हास्याभिव्यक्ति के तरीके में अधिक सफल मलयालम के कविगण ही है ।

प्रमुख सहायक ग्रंथ - सूची

संस्कृत :

अग्निपुराणम्	(सं) श्रीराम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम संस्करण, 1965
अभिनव भारती	अभिनवगुप्त, चौखम्बा, द्वि.सं. 1949
काव्य प्रकाश :	मम्मटाचार्य, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, तृतीय सं. 196
दशरूपकम्	धनंजय, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस चतुर्थ सं. 19
ध्वन्यालोकः	आनन्दवर्धन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम सं. 1963
नाट्यशास्त्रम्	आचार्य भरत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम सं. 1964
रसगंगाधर	चन्द्रिका संस्कृत हिन्दी व्याख्या, चौखम्बा, 1949
संगीत रत्नाकर	शार्ङ्गदेव, कल्लीनाथ - सिंह भूपालकृत व्याख्या - चौखम्बा, वाराणसी, 1949
साहित्यदर्पण	विश्वनाथ, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, सप्तम् सं. 1973

हिन्दी

आचार्य केशवदास	डा. हीरालाल दीक्षित, लखनऊ विश्वविद्यालय प्र.सं. 2001 वि.
आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य	डा. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य	डा. प्रभाकर माचवे, लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, 1971
आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिन्दी साहित्य	डा. शिवकरणसिंह
कबीर-वाङ्मय	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, बंबई च.सं. 1953

कबीर का रहस्यवाद	डा. रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1961
कबीर की विचार धारा	डा. गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी साहित्य निकेतन, कानपुर, 1926
कबीर ग्रंथावली	डा. श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ष.सं. 1008 वि.
कबीर ग्रंथावली	अयोध्यासिंह उपाध्याय, ना.प्र.सभा, 1964
कवितावली (सटीक)	लाला भगवानदीन, रामनारायणलाल, इलाहाबाद 2005 सं.
काव्य जिज्ञासा	डा. रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख, श्रीभारत भारति दिल्ली, 1965
काव्य दर्पण	रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला प्रकाशन, पटना 1970
केशव और उनका साहित्य	डा. विजयपालसिंह, राजपाल एण्ड संस, 1961
केशव की काव्यकला	प्रो. कृष्णशंकर शुक्ल, सुलभपुस्तकमाला कार्यालय, बनारस, 2006 वि.
केशवदासः जीवनी, कला और कृतित्व	किरणचन्द्र शर्मा, भारती साहित्य मन्दिर, 1961
गोस्वामी तुलसीदास	डा. श्यामसुन्दर दास, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद 1945
गोस्वामी तुलसीदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, 1947
गोस्वामी तुलसीदासः व्यक्तित्व, दर्शन,	डा. रामदत्त भारद्वाज, चन्द एण्ड कम्पनी 1967
चिन्तामणि भाग - 2 साहित्य	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद 194
तुलसी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	प्रो. राजकुमार कुमार, सरस्वती पुस्तक सदन, 1964
तुलसी की काव्यकला	डा. भाग्यवती सिंह, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली 197
तुलसीदास	डा. माता प्रसाद गुप्त, हिन्दी साहित्य परिषद्, प्रयाग, 1953
तुलसीदास	आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, ना.प्र.सभा, 1957
तुलसीदास और उनके काव्य	डा. रामदत्त भारद्वाज, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली 1962
देव और बिहारी	पं. कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1965
नवरस	बाबू गुलाबराय

नाथसंप्रदाय — आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, 1950

प्राचीन कवि केशवदास — डा. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - लोकभारती, 1967

बिहारी — डा. रामरतन भटनागर, किताब महल, इलाहाबाद, 19

बिहारी और उनका साहित्य — डा. हरवंशलाल शर्मा तथा डा. परमानन्द शास्त्री, भारत प्रकाशन, अलीगढ़, 1967

बिहारी की वाग्विभूति — आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र वाणी-वितान प्रकाशन, वाराणसी, 1962

बिहारी वैभव — कमला देवी गर्ग, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1964

बिहारी सतसई की समीक्षा — देवेन्द्र शर्मा इन्द्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1964

मलयालम साहित्य का इतिहास — मू. ले. पी. के. परमेश्वरन नायर अनु. सी. आर. नाणप्पा साहित्य अकादमी 1968

महाकवि सूरदास — आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1958

मानस-दर्शन — डा. श्रीकृष्णलाल, आनन्दपुस्तक भवन, बनारस 2007 वि

मिश्रबन्धु विनोद — गंगापुस्तक माला, लखनऊ 1972

मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी — डा. रामसागर त्रिपाठी अशोक प्रकाशन, दिल्ली 1966

रस कलश — अयोध्यासिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, 1961

रस रत्नाकर — हरिशंकर शर्मा, रामनारायण लाल बेनीप्रसाद

रस सिद्धान्त — डा. नगेन्द्र, नेशनल, 19[illegible]

रस सिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण — डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित, राजकमल, नई दिल्ली 197

रसिकप्रिया — सं. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कल्याणदास ब्रदर्स

रामचन्द्रिका — सं. भगवानदीन, ना. प्र. सभा, 1958

रामचरितमानस — सं. ना. प्र. सभा, 1946

रीतिकाव्य की भूमिका — डा. नगेन्द्र नेशनल दिल्ली 1964

विचार और विवेचन — डा. नगेन्द्र नेशनल दिल्ली 1966

विनय पत्रिका — सं. लाला भगवान दीन, रामनारायण लाल बेनीप्रसाद- इलाहाबाद, 1952

विनय पत्रिका — गीता प्रेस, गोरखपुर, 1966

विश्व साहित्य में रामचरितमानस — श्री राजबहादुर लमगोड़ा, ना.प्र.सभा, 2000 वि.

समीक्षाशास्त्र — सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, 1961

साहित्यदर्शन — शचीरानी गुर्टू, नवभारती प्रकाशन, दिल्ली, 1971

साहित्यालोचन — डा.श्यामसुन्दरदास

साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप — डा.सुमन राजे, ग्रंथम, कानपुर, 1974

सूर और उनका साहित्य — डा.हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 195

सूर की साहित्य साधना — डा.भगवत्स्वरूप मिश्र तथा विश्वंभर अरुण, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1965

सूरदर्शन — डा.कृष्णलाल हंस, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, 1957

सूरदास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ना.प्र.सभा, 1938

सूरदास — डा.ब्रजेश्वर शर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, 195

सूर निर्णय — द्वारकादास परीख तथा प्रभुदयाल मित्तल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, 2005 वि.

सूर सागर — वेंकटेश्वर प्रेस

सूर सागर — सं.नन्ददुलारे वाजपेयी, न.प्र.सभा

सूर सौरभ — डा.मुंशीराम शर्मा सोम, आचार्य शुक्ल साधना सदन, कानपुर, 199 वि.

हास्य के सिद्धान्त और मानस में हास्य- प्रो.जगदीश पाण्डेय

हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य — जगदीशनारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नारायण दीक्षित

हास्यरस — मु.ते.केलकर - अनु.श्री रामचन्द्र वर्मा, साहित्य रत्नमाला कार्यालय, वाराणसी 1958

हिन्दी कविता में हास्य — डा.सर्वेशकान्ता, लोकभारती, इलाहाबाद 1969

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास — अयोध्यासिंह उपाध्याय, किताब महल, इलाहाबाद, 195

हिन्दी साहित्य — डा. श्यामसुन्दरदास, इण्डियन प्रेस, प्रयाग 1951

हिन्दी साहित्य का आदिकाल — आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बीहार राष्ट्रभाषा परि पाटना, तृ.सं. 1961

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डा.रामकुमार वर्मा रामनारायणलाल, इलाहाबाद-1971

हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ना.प्र.सभा, 8वां सं 1999 वि

हिन्दी साहित्य का इतिहास — डा.रामअवलोकन पाण्डेय, अनुपम प्रकाशन, पाटना, 1969

हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1 — डा.धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद, च.सं. 19

हिन्दी साहित्यानुशीलन — डा.सत्यकाम वर्मा, एम.चन्द एण्ड कम्पनि, 1972 दिल्ली

हिन्दी साहित्य परिचय — सं.हरिशंकर शर्मा - रामप्रसाद भार्गव, आग्रा, 2003 वि.

हिन्दी साहित्य में हास्य रस — डा.बरसानेलाल चतुर्वेदी आर्य बुक डिपो, नयी दिल्ली तृतीय सं. 1975

हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य — सं.प्रेमनारायण टंडन, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, 1957

मलयालम

अुपतु तुल्लल कथकल — श्रीरामविलासम् प्रेस, कोल्लम, 1961

आधुनिक मलयाल साहित्यम् भाग-2 — पी.के.परमेश्वरन नायर, श्रीरामविलासम प्रेस, कोल्लम, 195

उण्णुनीलि सन्देशम् — सं.इलमकुलम कुञ्ञन् पिल्लै एन.बी.एस.कोट्टयम, 1954

उपन्यास मंजरि — के.शंकर पिल्लै, बी.वी.प्रेस, तिरुवनन्तपुरम को.सं. 1103

कल्याण सौगन्धिकम् तुल्लल — सी.के.शंकर पिल्लै, को.सं. 1104

कवितयुटे प्रानकल — ए.पी.पी.नम्पूतिरि, परिषद बुक स्टाल, एर्नाकुलम 1964

किल्लिकल — डा.के.एन.एषुत्तच्छन, मंगलोदयम्, त्रिशूर, 1964

कुलपीतिकल — तायाट्टु शंकरन्, मंगलोदयम्, त्रिशूर, 1961

कुंचन नम्पियार — पी.के.नारायण पिल्लै, बी.वी.प्रेस, तिरुवनन्तपुरम को.सं. 1082

कुंचन नम्पियार — एम.आर.बालकृष्ण वार्यर, पी.के.ब्रदर्स, कोषिक्कोड, 1957

कुंचन नम्पियार — के.एस.एषुत्तच्छन, मंगलोदयम्, 1950

कुसुम कूटियाट्टवुम — अम्मामन तम्पुरान, मंगलोदयम्, 1939

कृष्णगाथा	मंगलोदयम् प्रेस, त्रिशूर, 1956
केरल चरित्रम्	के. दामोदरन, एन.बी.एस. कोट्टयम्, 1961
केरल चरित्रत्तिलेट इरुलटञ्ञ एटुकल	इलंकुलम कुञ्ञन पिल्ली, एन.बी.एस. कोट्टयम्, 19
केरलत्तिले नटनकला	वी.एम. कुट्टिकृष्ण मेनोन, पी.के. ब्रदर्स, कोषिक्कोड 1957
केरल पाणिनीयम्	ए.आर. राजराजवर्मा
केरल भाषा साहित्य चरित्रम् भाग-1	आर. नारायण पणिक्कर, वि.वि. बुक डिपो, तिरुवनन्तपु
,, भाग-2	,, ,,
केरल साहित्य चरित्रम् - भाग - 2	उल्लूर एस. परमेश्वरय्यर, केरल विश्व विद्यालय-1962
केरल साहित्य चरित्रम् चर्च्चयुम् पूरणवुम्	वटक्कुंकूर राजराजवर्मा - मंगलोदयम् 1954
केरल स्वातंत्र्य समरम्	सरदार के.एम. पणिक्कर, प्रभात बुक डिपो, तिरुवनन्तपुरम् 1957
कैरलियुटे कलर्षा	सं. नरसिंह विलासम्, तृशूर, 1967
घोषयात्रा तुल्लल	सं. रामकृष्ण ब्रदर्स, तिरुवनन्तपुरम को.सं 1108
चन्द्रोत्सवम्	सं. कोलत्तिरि शंकर मेनोन, मनोमोहनम् प्रेस, कोल्लम् को.सं. 1097
तुल्लल कथकल भाग - 1	मंगलोदयम्, को.सं. 1106
,, 2	,, 1107
,, 3	,, 1108
तोल महाकवि	पी.वि. कृष्ण वार्यर, पी.के. ब्रदर्स, कोषिक्कोड
ध्रुवचरितम् तुल्लल	सं. एम.आर. वेलुप्पिल्ले शास्त्री, विद्याविलासिनी प्रेस कोट्टयम को.सं. 1109
नम्पियारुटे तुल्लल	सं. भाषा परिष्करण कम्मिट्ट को.सं. 1130
नम्पियारुम तुल्लल साहित्यवुम्	एळुर परमेश्वरन, एन.बी.एस. कोट्टयम्, प्र.सं. 1969
नलचरितम् तुल्लल	सं. ए.डी. हरिशर्मा, 1961
नव रश्मि	प्रो. अम्बलपुषा रामवर्मा, मलयाल मनोरमा प्रकाशन कोट्टयम, 1959
पद्य साहित्य चरित्रम्	टी.एम. चुम्मार, एन.बी.एस. कोट्टयम् 1960

प्रबन्धिनम्	डा. वेलनाट्टु अच्युत मेनोन, करन्ट बुक्स, त्रिशूर 19
प्रबन्ध समाहारम्	डा. के. गोदवर्मा, पी. के. ब्रदर्स 1954
प्रसंग तरंगिणी	पी. के. नारायण पिल्लै, मंगलोदयम्, 1952
भाषा चम्पूक्कल	सं. उल्लूर, उल्लूर प्रकाशन, तिरुवनन्तपुरम 1954
भाषा रामायण चम्पु	सं. केरल साहित्य अकादमी, 1961
मध्यकाल मलयालम	डा. पी. वी. वेलायुधन पिल्लै, एन. बी. एस. कोट्टयम, 19
मलयाल काव्य रत्नाकरम्	सं. शूरनाट्टु कुंजन पिल्लै, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 1962
मलयाल भाषा चरित्रम् भाग - 1	पी. गोविन्द पिल्लै, एन. बी. एस. कोट्टयम् 1960
मलयाल भाषा चरित्रम्	पी. के. परमेश्वरन नायर, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली तृ.सं. 1966
मून्नु भाषा कविकल	पी. के. नारायण पिल्लै, परिषद बुक स्टाल, एरणाकुलम 1958
राजाङ्कणम्	कुट्टिकृष्ण मारार, मंगलोदयम्, 1956
राजराजन्टे माट्टोलि	प्रो. जोसफ मुण्डश्शेरी, मंगलोदयम्, 1961
लीलातिलकम्	सं. एन. बी. एस. कोट्टयम्, 1955
लीलातिलकम्	सं. शूरनाट्टु कुंजन पिल्लै, बी. वी. बुक डिपो तिरुवनन्तपुरम, 1957
विचार दीप्ति	उल्लाट्टिल गोविन्दन कुट्टि नायर, पी. के. ब्रदर्स कोषिक्कोड, 1958
विमर्शवीथि	के. एम. डानियेल, पी. के. ब्रदर्स, कोषिक्कोड 1958
सभा प्रवेशम् तुल्लल	सं. ए. डी. हरिशर्मा, को. सं. 1124
सुन्दोपसुन्दोपाख्यानम्	सीतारामविलासम्, कोल्लम् 1951
सुवर्ण कैरलि	टी. एम. चुम्मार 1964
साहित्य कौतुकम्	वटक्कुंकूर, मंगलोदयम्, त्रिशूर, 1963
साहित्य विचारम्	इ. पद्मनाभनुण्णि 1961
साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङलिलूटे	डा. के. एम. जोर्ज - एन. बी. एस. कोट्टयम, 1958

साहित्य चरित्र संग्रहम्	पी.शंकरन नम्पियार, एन.बी.एस.कोट्टयम् 1958
साहित्य - निकषम् भाग - 2	एम.आर.नायर, मातृभूमि प्रकाशन, 1964
साहित्य विचारम्	एम.पी.पौल, 1959
साहित्य सम्पर्कम	पी.श्रीधरन पिल्ले
साहित्य समीक्षा	पी.के.परमेश्वरन नायर
हास साहित्यम्	कुट्टिकृष्ण मारार, परिषद् बुक स्टाल, एरणाकुलम 1967
हास साहित्यम्	पुत्तेषत्तु रामन मेनोन, एन.बी.एस.1969
हास्य कौनम्	मेक्कोल परमेश्वरन पिल्ले, एन.बी.एस.कोट्टयम् 1969
हास्य प्रकाशम्	मातृभूमि प्रकाशन - 1958
त्रिपुरदहनम् तुलल	ए.एम.के.नायर, 1944

__English__

A Glossary of Literary terms-	Ed. M.H. Abrams -Norton & Peters, Rushton 1968.
A survey of Burlesque and Parody in English	George Kitchen - Rinehart & Winston, London 1966
A Survey of Kerala History	A. Sreedhara Menon 1967
A Survey of Malayalam Literature-	Dr. K.M. George, Asia publishing House, Delhi 1968.
An essay on comedy	Meredith, Andre' Deutsch Ltd. Great Britain 1956.
An Introduction to dramatic theory	Meredith George Allen & Unwin 1962
An outline of psychology	William Mc Dougall Martin Secker, London 1926.
Biographia Literaria	S.T. Coleridge Cox & Wyman Ltd. London 1954.
Cochin State Manual	C. Achutha Menon, Government Press, Ernakulam 1911.
Early Manipravalam: A study	Dr. K. Ramachandran Nair, Anjali, Trivandrum 1971.
Encyclopaedia Britanica	1927

English Satire and satirists	Hugh Walker, Macmillan & Co. Ltd. London WC2 - 1969
History of English Language and Literautre	Lournsbury Routledge & Kegal paul Ltd. Great Britain 1961
Humour-Its theory and technique	Stephen Leacock Appleton Century Crofts New york 1959
Idea of comedy	Meredith - George Allen & Unwin 1957
Laughter	Brereton & Rothewell 1900 (Translation of Le Rire - Henri Bergson)
Literature in Modern Indian Languages	Dr. V.K. Gokak Asia publishing House, Delhi 1969.
Satire : A critical Anthology	John Russell & Brown - Harper & Row, New york 1971.
Six paperson wit	Addison - Prince Hall International London 1966
The anatomy of satire	Gilbert Hight Vintage books, Newyork 1972
The English comic writers	William Hazlitt, Catto & Windus, London 1953
The psychology of laughter and comedy	J.V.T. Greig, Barnes & Noble, Newyork, 1964
The sense of humour	Max Eastman Lawrence & Wishrant, London 1958.
Travancore State manual Vol.I	T.K. Velu Pillay, Govt. of Travancore, Trivandrum. 1940
Wit and Its relations to the unconsious	Sigmund Freud, Authorised English edition with an introduction by A.A. Brill The modern library, New-york 1938.